नाटककार-परिचय

क्रम

दृश्यबन्ध और चित्र-क्रम

गिरीश कारनाड

माथेरान (महाराष्ट्र) में १९३८ में जन्म। मातृभाषा कन्नड़ है, और अब आप मैसूर राज्य के निवासी हैं। गणित की सर्वोच्च परीक्षा में सफल होकर 'र्होड्स स्कॉलर' के रूप में ऑक्सफ़र्ड चले गये। १९६३ से ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मद्रास में काम करने लगे। १९७० में 'भाभा फ़ैलोशिप' मिलने पर नौकरी छोड़ दी और नाट्य-लेखन और अध्ययन में लग गये।

व्यापक और उदार शिक्षा ने कारनाड की सृजनात्मक प्रतिभा को प्रस्फुटित और पोषित किया। १९६८ में आपका पहला नाटक 'ययाति' प्रकाशित हुआ और रंगमंचीय क्षेत्रों में चर्चा का विषय बन गया। 'तुग़लक' के प्रकाशन और प्रदर्शन ने कारनाड को अखिल भारतीय ख्याति प्रदान की। कई भाषाओं में इस नाटक के अनुवाद और प्रदर्शन हुए हैं तथा इसे संगीत नाटक अकादेमी का कन्नड़ भाषा का 'सर्वोत्कृष्ट नाटक' का पुरस्कार मिला। १९७१ में 'हयवदन' का प्रकाशन और मंचन हुआ; इसमें कारनाड ने लोक-नाट्य भक्तगान के तत्त्वों का बड़ा ही सफल प्रयोग किया। इस पर भारतीय नाट्य-संघ का 'कमलादेवी चट्टोपाध्याय पुरस्कार' प्राप्त हुआ।

'संस्कार' और 'वंशवृक्ष' कन्नड़ फ़िल्मों में कारनाड ने अभिनय किया और 'वंशवृक्ष' का निर्देशन भी। 'संस्कार' को राष्ट्रपति का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है।
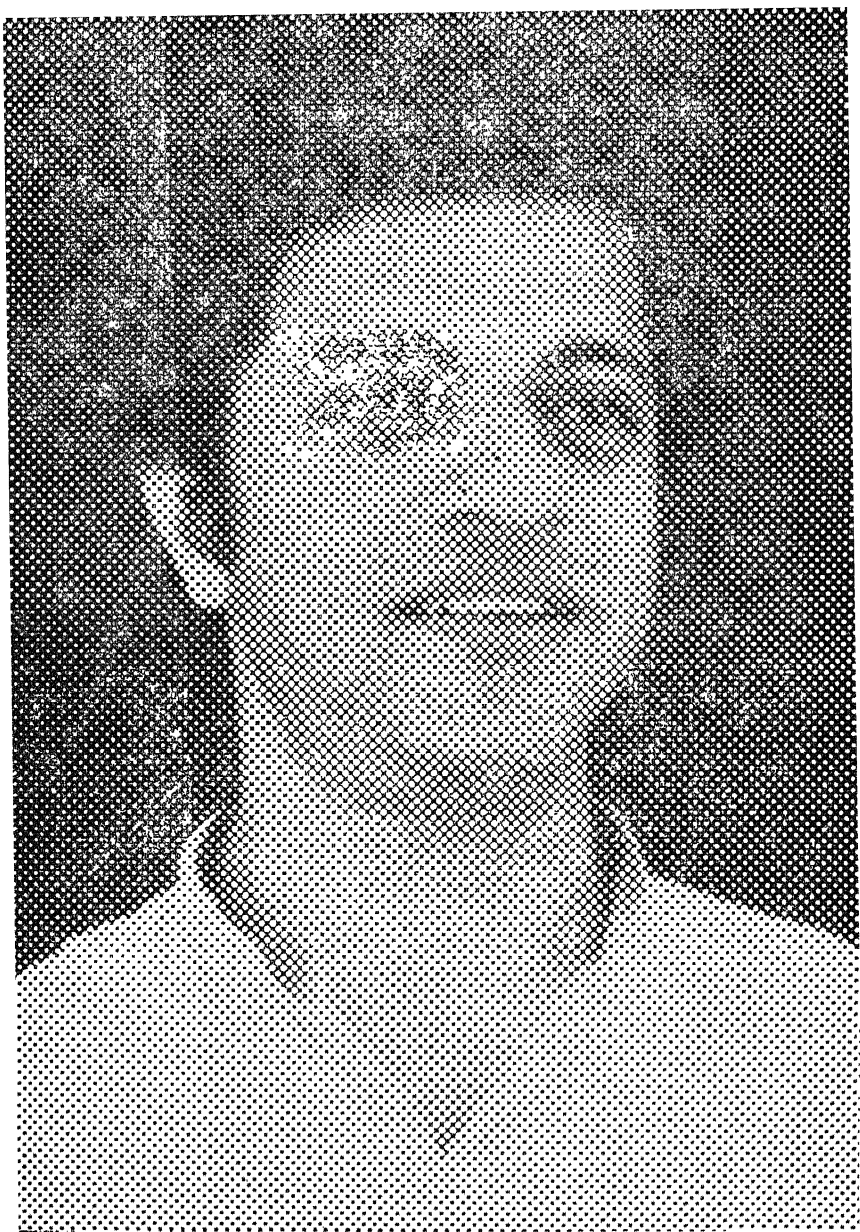
कन्नड के रंग-कर्मी जिन्होंने परंपरा तथा आधुनिकता—दोनों परिवेशों के लोकप्रिय नाटकों को रचना की है।

बादल सरकार

१९२५ में जन्म हुआ। शिक्षा और व्यवसाय से सिविल इंजीनियर और टाउन-प्लानर हैं, लेकिन आरंभ से ही आपकी नाट्य-लेखन में रुचि रही है। आपने एक दर्जन से अधिक नाटकों की रचना की है। 'एवम् इंद्रजित्' तथा 'बाकी इतिहास' आपके सबसे अधिक ख्यातिप्राप्त नाटक हैं। इन दोनों नाटकों का कई भाषाओं में अनुवाद और प्रदर्शन हो चुका है और भारतीय रंगमंच की नई चेतना को विकसित करने में इन नाटकों का बहुत बड़ा हाथ है। आप एक कुशल अभिनेता और निर्देशक भी हैं और अपनी नाट्य-संस्था 'शताब्दी' के द्वारा अपने नाटकों का प्रदर्शन करते हैं।

बादल सरकार को १९७१ में संगीत नाटक अकादेमी का नाट्य-लेखन का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।

अपनी नाट्य-कृतियों में शाश्वत प्रश्नों को सहजता से उठाने वाले प्रबुद्ध नाटककार।

विजय तेंदुलकर

जन्म १९२८ में बंबई में हुआ। व्यवसाय से पत्रकार हैं और मराठी में विविध विधाओं में समर्थ लेखक। अब तक लगभग पन्द्रह संपूर्ण नाटक, अनेक एकांकी और कहानियाँ लिखी हैं। नाटकों में 'शांतता, कोर्ट चालू आहे, 'गिधाड़े' तथा 'सखाराम बाइंडर' ने विशेष ख्याति प्राप्त की। 'शांतता, कोर्ट चालू आहे' (खामोश, अदालत जारी है) का कई भाषाओं में अनुवाद और प्रदर्शन हो चुका है, और सत्यदेव दुबे ने मराठी में इस पर बड़ी ही सशक्त फिल्म बनाई है।

तेंदुलकर ने नाट्य-लेखन में सफल रूपात्मक प्रयोग भी किये हैं। अखिल भारतीय नाटक आंदोलन के उत्थान में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान है। आपको संगीत नाटक अकादेमी का नाट्य-लेखन का पुरस्कार प्रदान किया गया है।

आधुनिक जीवन की विकृतियों पर गहरी चोट करने वाले और सशक्त
पात्रों के स्रष्टा महाराष्ट्र के रंग-कर्मी।

मोहन राकेश

जन्म १९२५ में अमृतसर में हुआ। १९४४ में एम० ए० (संस्कृत) तथा १९५२ में एम० ए० (हिन्दी) किया। प्राध्यापक और संपादक के रूप में कुछ वर्ष कार्य करने के बाद १९६२ से स्वतंत्र लेखन करते हुए जीवन-यापन करने की चुनौती को स्वीकार किया। ३ दिसम्बर १९७२ को हृदय-गति रुक जाने से अचानक असामयिक देहान्त हो गया।

नाटकों एवं एकांकियों के अतिरिक्त राकेश ने कहानी तथा उपन्यास के क्षेत्र में भी ख्याति पाई। उनके तीनों नाटक—'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' तथा 'आधे-अधूरे'—कई भाषाओं में अनूदित हुए और खेले गये हैं, और हिन्दी-रंगमंच के विकास में इन नाटकों का भारी योगदान है। अखिल भारतीय स्तर पर नाट्य-रंगमंच को समृद्ध बनाने में मोहन राकेश का बहुत बड़ा हाथ रहा है।

१९५९ में 'आषाढ़ का एक दिन' को संगीत नाटक अकादेमी का 'सर्वोत्कृष्ट-नाटक' का पुरस्कार प्रदान किया गया। राकेश को १९७१ में संगीत नाटक अकादेमी का नाट्य-लेखन का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।

कहानी, उपन्यास और नाटक—विविध विधाओं में साहित्य की रचना और हिन्दी रंगमंच को भारतीय स्तर पर प्रतिष्ठित करने वाले प्रतिभाशाली कलाकार ।

संपादक-परिचय

इब्राहिम अलकाज़ी

जन्म १९२५ में। १९५० में लन्दन की रॉयल एकैडेमी ऑफ़ ड्रमाटिक आर्ट्स से स्नातक हुए। ब्रिटिश ड्रामा लीग ने इन्हें पुरस्कृत किया, और ब्रिटेन के ड्रामा-बोर्ड के संयुक्त सदस्य रहे। विदेश में नाट्य-प्रशिक्षण पाकर श्री अलकाज़ी ने बम्बई में 'थियेटर-यूनिट' की स्थापना की और नाट्य-प्रशिक्षण और प्रदर्शन द्वारा नए रंगमंच-आन्दोलन का सूत्रपात किया। आप बम्बई की नाटक एकैडेमी के प्रिंसिपल भी रहे। पिछले दस वर्षों से आप नैशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा के डायरेक्टर के पद पर काम कर रहे हैं। आपके द्वारा प्रशिक्षित कितने ही युवा कलाकार देश के विभिन्न क्षेत्रों में काम कर रहे हैं। श्री अलकाज़ी को संगीत नाटक अकादेमी का निर्देशन का पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

पुरुषोत्तम लक्ष्मण देशपांडे

जन्म (बम्बई में) १९१९ में हुआ। जीवन में प्रारम्भिक दिनों से ही मराठी रंगमंच से सम्बद्ध रहे। श्री देशपांडे स्वयं न केवल एक विख्यात अभिनेता हैं, वरन् नाटककार और निर्देशक भी। अब तक आप लगभग आधा दर्जन सम्पूर्ण नाटक और अनेक एकांकी लिख चुके हैं। एकपात्री नाटकों में आपका अभिनय भारतीय रंगमंच की एक अनुपम उपलब्धि है।

आपको हास्य-व्यंग्य निबन्धों के लेखक के रूप में साहित्य अकादेमी का और अभिनेता के रूप में संगीत नाटक अकादेमी का पुरस्कार मिल चुका है। आप आज-कल संगीत नाटक अकादेमी के उपाध्यक्ष हैं। थियेटर सम्बन्धी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठियों में लगातार भाग लेते रहे हैं। आप 'मराठी नाट्य परिषद्' के अध्यक्ष और कई अन्य साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध रहे हैं।

सुरेश अवस्थी

सुरेश अवस्थी का जन्म १९१८ में उन्नाव में हुआ और आप ने लखनऊ विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए० की परीक्षा पास की। साथ-साथ आपने १९४२ में लखनऊ रेडियो स्टेशन में काम करना आरम्भ कर दिया। रेडियो-नाटकों में भाग लेने और रेडियो-नाटक लिखने के साथ-साथ आपकी अभिरुचि नाटक में हुई। १९५९ में लखनऊ विश्वविद्यालय से ही 'हिन्दी नाट्य-रूपों के विकास का अध्ययन' विषय पर अनुसंधान किया और पी० एच-डी० की उपाधि प्राप्त की। धीरे-धीरे आप नाट्य-समीक्षा और रंगमंच के इतिहास के अध्येता बन गये और भारतीय पारंपरिक रंगमंच का गहरा अध्ययन किया। पिछले कुछ वर्षों से दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों और जापान के पारंपरिक रंगमंच का अध्ययन कर रहे हैं। १९६०-६१ में आप 'भारतीय नाट्यसंघ' के अवैतनिक सचिव थे, और "नाट्य"—अंग्रेज़ी पत्रिका के संपादक। १९६५ से संगीत नाटक अकादेमी के सचिव के पद पर काम कर रहे हैं।

टूटे आईने के प्रतिबिम्ब

भारतीय रंगमंच के विकास में छठा दशक अनेक कारणों से बहुत ही समृद्ध और महत्त्वपूर्ण कालों में से एक माना जाएगा। सबसे स्पष्ट और सबसे प्रमुख कारण यही है कि इन वर्षों में रंगकला की आनुषंगिक शाखाओं—नाट्य-लेखन, अभिनय, निर्देशन, मंच-परिकल्पना एवं प्रकाश-व्यवस्था—ने विशिष्ट प्रतिभाओं के ज़रिये प्रौढ़ता प्राप्त कर ली।

यह व्यापक उत्कर्ष आकस्मिक नहीं था, क्योंकि इसके पीछे धीमे लेकिन दृढ़ और समर्पित प्रयत्न के दस-पन्द्रह वर्ष हैं। देश के महानगरों—कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली में रंगकर्मियों के सामूहिक, अनवरत जोश से धरातल पहले ही तैयार हो चुका था। ये लोग अधिकांशत: शौक़िया थे (केवल इस मायने में कि रंगमंच इनके लिए आजीविका का साधन नहीं था), लेकिन उनकी अंतर्दृष्टि, जीवन-दृष्टि तथा व्यावसायिक कुशलता नि:संदेह ऊँचे दर्जे की थी। इस रचनात्मक शक्ति का अधिकांश चालीसी के मध्य में बम्बई के 'इंडियन पीपुल्स थिएटर एसोसिएशन', 'इंडियन नेशनल थिएटर', 'थिएटर ग्रुप', 'रंगभूमि', 'एमेच्योर ड्रामैटिक क्लब' तथा 'मुंबई साहित्यसघ' आदि के नाट्य-दलों के कार्य में प्रकट हो चुका था, जिसके पीछे पाँचवे दशक में गुजराती, मराठी, कन्नड़ और हिन्दी की 'थिएटर यूनिट', 'रंगायन' तथा अन्य समान कार्यशील मंडलियों का नाम आता है। 'पृथ्वी थिएटर्स' के बृहद प्रयास भी इसी काल से संबंधित हैं, जिसने बम्बई को गढ़ बनाकर पूरे सोलह वर्षों तक अपने भव्य प्रदर्शनो के साथ सारे उप-महाद्वीप की यात्राएँ कीं। इन्हीं दो दशकों के दौरान कलकत्ता में भी रचनात्मक प्रयत्न का उन्मेष दिखायी देता है जिसमें शंभु मित्र, उत्पल दत्त तथा तरुण राय प्रमुख हैं। इसी प्रकार दिल्ली में भी बेगम ज़ैदी, हबीब तनवीर' 'इंडियन नेशनल थिएटर', 'यूनिटी थिएटर' एवं चार्ल्स पैत्राम के कारण नयी रंगचेतना आयी।

छठे दशक के पहले के पन्द्रह वर्षों का एक समीचीन लेखाजोखा आवश्यक है, क्योंकि उसमें हमें एक ओर तलाश और प्रयोग के इस दौर की विभिन्न धाराओं एवं प्रतिधाराओं को जानने में मदद मिलेगी और दूसरी ओर उस अथक परिश्रम तथा मूक समर्पण को समझने का अवसर मिलेगा, जिसने नये विचारों के आविर्भाव के लिए अनुकूल वातावरण बनाया। निर्देशन और अभिनय के ऊँचे स्तर की दृष्टि से यह काल नि:संदेह श्रेष्ठ है।

लेकिन यह रंगकार्य चाहे कितना ही निष्ठावान्, महान्, कौशलपूर्ण एवं कल्पना-मूलक रहा हो, प्रत्येक मंडली का योग केवल अपनी भाषा की हदों तक ही सीमित था और क्षेत्रीय तथा भाषिक सीमाओं के पार विचारों का कोई आदान-प्रदान नहीं होता था। दूसरे, हर भाषा में इस चेतना का काँटा चुभ रहा था कि राजनीतिक उतार-चढ़ाव, सामाजिक परिवर्तन, असुरक्षा, कुंठा तथा अवसाद के साथ समय के मिजाज़ को रंगमंच में वाणी नहीं मिल रही है। अब बस, एक आवाज़ की ज़रूरत थी—जीवंत, प्रामाणिक और परिस्थितियों के आक्रोश से भरी हुई आवाज़ की।

तभी अचानक छठे दशक में इस संकलन में प्रस्तुत चारों नाटककारों ने देश के विभिन्न भागों में अपनी-अपनी क्षेत्रीय भाषाओं—बंगला, मराठी, कन्नड़ तथा हिन्दी—में कुछेक वर्षों के पारस्परिक अंतर से उस 'जीवंत स्वर' को पकड़ लिया, जिसके लिए भारतीय रंगमंच ने इतनी लम्बी प्रतीक्षा की थी। जैसे ही उनका नाट्य-लेखन अपनी मूल भाषा में प्रत्यक्षत: अथवा अनुवाद के रूप में मंच पर आया, उसने ज़बर्दस्त प्रभाव डाला और गर्मागर्म बहस और विवाद को जन्म दिया। सौभाग्यवश अब तक हिन्दी-साहित्य-संसार ने आस्वाद तथा विनिमय का पर्याप्त लचीलापन पा लिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत ही थोड़े समय में, विश्वास नहीं होता, ये सभी नाटक अनूदित रूप में हिन्दी में सुलभ हो गये और बदले में क्षेत्रीय भाषाओं में भी यही प्रतिक्रिया हुई। इससे एक ओर जहाँ हिन्दी-रंगमंच में तीव्र प्रगति हुई, वहीं दूसरी ओर हिन्दी ने क्षेत्रीय नाटककारों को 'राष्ट्रीय' दर्जा और सम्मान दिया। १९७० में जब 'खामोश, अदालत जारी है' को 'वर्ष के श्रेष्ठ नाटक' के रूप में 'कमलादेवी चट्टोपाध्याय-पुरस्कार' मिला, तो सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में उसके अनुवाद हुए। इसके अतिरिक्त उस पर एक सफल फ़िल्म भी बनी। 'आधे अधूरे' का, जिस पर फ़िल्म भी बनी है, अनुवाद बँगला, गुजराती, कन्नड़ और अंग्रेज़ी में हो चुका है। 'तुग़लक' कन्नड़, उर्दू, बंगला, मराठी और अंग्रेज़ी में मंच पर प्रस्तुत हुआ है और 'एवम् इंद्रजित' के भी बंगला, हिन्दी, कन्नड़ और अंग्रेज़ी में प्रदर्शन हुए हैं।

भारतीय रंगमंच के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ, जब एक नाटककार

ने अपनी मातृभाषा में नाट्य-रचना के कुछ महीनों के भीतर ही राष्ट्रीय स्तर पर दर्शक-समुदाय पा लिया, अपने नाटकों की कम-से-कम एक दर्जन प्रमुख निर्देशकों द्वारा व्याख्याएँ देख लीं और उच्चतम राष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त कर लिए। ऐसी स्थिति में नाटककार के मनोबल और उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। क्षेत्रीय सीमाओं के इस प्रकार टूट जाने से रंग-आंदोलन को तीव्र गति मिली और रंगमंच में 'राष्ट्रीय' चेतना का जन्म हुआ। ऐसा भी अकसर हुआ है कि एक नाटककार, जिसके नाटकों पर अपने क्षेत्र में कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं हुई, दूसरे प्रदेशों में मिली अपनी प्रशंसा से अभिभूत हो गया। बादल सरकार का 'पगला घोड़ा' ऐसा ही एक उदाहरण है। 'अभियान' की सुनिर्धारित अवधारणा और संवेदनशील व्याख्या ने नाटक को बँगला रंगमंच के लिए पुनरुज्जीवित कर दिया।

मेरे विचार में प्रस्तुत संकलन वस्तुत: छ: खंडों की एक माला का चौथा भाग होना चाहिए था जो अपनी क्रमिक संख्या के अनुसार सही ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आधुनिक भारतीय रंगमंच के विकास का निदर्शन करता। अपनी समग्रता में देखे जाने पर इन छ: खंडों के चौबीस नाटक इसी दौर में किसी भी देश में लिखी गयी सर्वश्रेष्ठ नाट्य-कृतियों से तुलनीय होंगे और अगर कुछेक श्रेष्ठ प्रदर्शनों का चित्रों के साथ लेखाजोखा लेते हुए उनका विश्लेषण भी किया जाए, तो हमें समकालीन भारतीय रंगमंच की उपलब्धियों की महत्ता की भी जानकारी होगी। साथ ही मेरा दावा है कि इन संकलनों में प्रस्तुत नाटककारों में से कम-से-कम छ: समय की सीमाओं को लाँघते हुए अरसे तक स्मरणीय रहेंगे।

कारनाड सही थे जब एक इंटरव्यू में उन्होंने कहा कि वह और तेंदुलकर एक कोटि में आते हैं, क्योंकि वे 'किसी हद तक उपलब्ध नाट्य-रूढ़ियों के भीतर कार्यशील हैं। तेंदुलकर के या मेरे अपने नाटकों के ढीलेपन का कारण यह है कि हम समूचे रूपबंध के लिए बहुत बड़ी सीमा तक इन्हीं नाट्य-रूढ़ियों पर निर्भर करते हैं।' इस कथन में विनय की मोहक पुट है, क्योंकि कारनाड स्वयं अपनी उपलब्धियों को कम करके देखते हैं। लेकिन उनकी या तेंदुलकर की नाट्य-रचना में 'ढीलेपन' की बात कहना आश्चर्यजनक है, क्योंकि वह इस संकलन में उन दोनों की कृतियों में कहीं भी दिखायी नहीं देती। 'तुगलक' का गठन कुशलता-पूर्वक संतुलित और कसा हुआ है और 'खामोश, अदालत जारी है' में ऊपर से यों ही-सा दिखायी देने वाला प्रत्येक संवाद, हाव-भाव या गति में एक सुचिंतित नाट्य-स्पर्श है। तेंदुलकर के पास सूक्ष्म चरित्र-निरूपण की जो असाधारण कुशलता है, उससे निर्देशक या अभिनेता बहुत-कुछ सीख सकता है।

जहाँ तक रूपबंध का सवाल है, प्रस्तुत संकलन के नाटकों में तेंदुलकर की रचना परंपरावादी है। यह अदालती नाटक के साथ जुड़ी कथा एवं स्थितियों की चमत्कारिता आदि के सभी उपकरणों का भरपूर इस्तेमाल करती है। एक असह्य सीमा तक खींचा जाता हुआ तनाव बार-बार हँसी-मज़ाक़ से तोड़ा जाता है, जो ठहाके पैदा करने के बावजूद विपरीत प्रभाव छोड़ता है। तिरस्कार को छूता हुआ उपहास एक व्यापक विडंबना से संभला रहता है। जब बेणारे उसे क्रूरता से अनावरित करने की कोशिशों से तड़पती है, तब हम उस पर अभियोग लगाने वाले भी अप्रत्यक्ष लेकिन समान रूप से ही नंगे होते दीखते हैं। बेणारे निजी स्वतंत्रता की भावना और भोलेपन की मूर्त्ति है, जीवन के सहज काव्य की तरह सुन्दर : 'आने वाला हर क्षण फिर कितना नया और अनोखा लगता है! खुद अपना अस्तित्व कितना नया-नया लगता है! आकाश, पक्षी, बादल, किसी सूखे तरु की धीरे-से झाँकती हुई कोई टहनी और खिड़की में हिलता हुआ परदा। चारों ओर फैली हुई नीरवता और कहीं दूर से आती आवाज़ें, हास्पिटल की दवाओं की भभक...यह सब भी तब ज़िंदगी के रस से परिपूर्ण लगती है। लगता है, ज़िंदगी चौकड़ी भरती हुई मेरे लिए गीत गा रही है। कितना ज़्यादा था आत्म हत्या की असफलता का आनन्द! जीवित रहने की वेदना से भी ज़्यादा...।' उसका अकेलापन और उदासी ज़िन्दगी के उस संघर्ष का भाग है, जो जीते जी भी मृतप्रायः है। पहले प्रेम की गंध से ('हृदय से जिसके साथ एकरूप होने की तीव्र इच्छा होती हो...जिसके केवल संसर्ग से सम्पूर्ण जीवन सार्थक लगता हो...। मेरा पुरुष दुम दबाकर भाग गया...इतना क्रोध आया उस पर कि जी चाहा सरे-बाज़ार खड़ा करके उसका मुँह तोड़ दूँ......थूक दूँ उसके मुँह पर') और साथ ही अधिक प्रौढ़ कामानुभव से हीन ('......एक अनूठी बौद्धिकता के प्रति आकर्षण है...यह प्रेम नहीं हो सकता। यह तो भक्ति है...और नैवेद्य पाते ही मेरा बुद्धि का देवता मुकर गया')। बेणारे ऐसे मौत के मुँह में झोंक दी जाती है, जैसे दमघोंट विषैली औषधियों में फँसे कीड़े। अगर वह बच जाती है, तो केवल अपने अजन्मे बेटे के लिए जीने की अदम्य इच्छा के कारण।

एक पतनोन्मुख समाज अपने जीवन के इस साक्षात्कार से हिल उठता है और बर्बरता से अपने विषदंत खोले उसकी ओर झपटता है, जिसके पास मन और मस्तिष्क की पवित्रता और जिस्म की अपेक्षाओं के सौन्दर्य को स्वीकार करने का साहस है। सभी पुरुष-पात्र खोखले, मिथ्यावादी एवं नितान्त घृण्य हैं। वे बचकाने, छिछले और छिछोरे और बुद्धि, सौन्दर्य एवं कल्पना की दृष्टि से बिलकुल हीन हैं और केवल उस स्त्री की जिजीविषा एवं ओजस्विता पर दाँत गड़ा सकते हैं, जिसमें ज़िंदगी को दोनों बाँहों से गले लगाने की हिम्मत थी। गिद्ध के समान अपनी घिनौनी चोंच से वे उस पर पैने प्रहार करते हैं, जबकि वह हताश, पीड़ा

में विवश होकर तड़पती रहती है।

मुख्य कार्यकलाप के बाहर अतिनाटकीय-से लगने वाले तत्व उन श्रेष्ठ नाटकीय स्पर्शों को पहचानने में बाधक नहीं बनने चाहिएँ, जो नाटककार के असाधारण नाट्य-बोध को प्रकट करते हैं। संवादों की अवधारणा बहुत सुन्दर है। प्रत्येक चरित्र अपने विशिष्ट मुहावरे और उसकी लय से चित्रित होता जाता है। सभी चरित्र पूरी तरह जीवंत लगते हैं। चाहे निर्दोष, अबोध, ग्रामीण नौजवान सामंत हो, जो अनचाहे ही इस कुत्सित खेल में खींच लिया गया; चाहे इस नकली कचहरी का सेवक, परेशान, बुद्धू बालू रोकड़े, जिसके ऊपर नपुंसक काशीकर अपनी पत्नी से अवैध सम्बन्ध रखने का सन्देह करता है—एक प्रकार का सामंत, जो नगर-निवासियों द्वारा शीघ्र ही भ्रष्ट होने वाला है। काशीकर और उसकी पत्नी के बीच के सम्बन्ध कुटिल चतुराई से प्रकट किये गये हैं। कान साफ़ करने और दाँत कुरेदते रहने वाला अधेड़ बगुला-भगत बार-बार अपनी पत्नी पर धौंस जमाता है, लेकिन क़दम-क़दम पर उसके द्वारा मक्कारी से छला जाता है, हालाँकि वह पतिपरायण, आज्ञाकारिणी पत्नी की अपनी भूमिका निभाती है। 'जूड़े में लगे गजरे को अनजाने ही टटोलते' हुए श्रीमती काशीकर का बिलकुल पहला प्रवेश ही एक विलक्षण प्रभावशाली नाट्य-संकेत है।

सुखात्मे—'कानूनाचार्य जी भी हैं अपनी मण्डली में। कानून में उनकी पहुँच इतनी ज़बर्दस्त है कि कोर्ट का मारा हुआ मूर्ख मुवक्किल भी उनके पास नहीं फटकता...अकेले ही बैठे-बैठे अपने कानूनी ज्ञान से बार-रूम की मक्खियाँ मारा करते हैं...' —वही सुखात्मे बेणारे से की गयी अपनी जिरह में दूसरे को फाँसी पर चढ़ाने-जैसा परपीड़न-सुख पाते हैं, जो किसी को अपने शिकार को ख़त्म करके मिलता है, क्योंकि वह खुद अपनी असफलता की पीड़ा को बर्दाश्त नहीं कर सकता।

तेंदुलकर की सूक्ष्म नाट्य-दृष्टि के उदाहरणस्वरूप और भी एक-दो बातें कही जा सकती हैं। नाटक की प्रारम्भिक पंक्तियों में ही हम समझ जाते हैं कि बेणारे अनजाने ही जाल में फँस रही है। वह अपनी चोट-खायी उँगली को चूसती हुई मंच पर दाख़िल होती है। 'क्या हुआ', उसे देखता हुआ सामंत पूछता है— 'कड़ी खोलने में उँगली दब गई? यह सब पुराना है ना, इसीलिए ऐसा होता है। आसानी से कड़ी खिसकती ही नहीं, और जो कहीं कुंडा बाहर रह गया और कड़ी खींच ली तो जानती हैं क्या होगा? दरवाज़ा अन्दर से बंद और बाहर से कड़ी। बस समझिए, अन्दर वाले को तो जेलखाना ही हो गया।' नाटक का सम्पूर्ण अर्थ इन कुछ प्रारम्भिक, ऊपर से असार्थक-सी लगने वाली पंक्तियों में छिपा है। कैसी ओजस्वी युक्ति है!

इसी प्रकार पहले अंक के प्रारम्भिक भाग में बेणारे एक कविता की पंक्तियाँ

सुनाती है। तेंदुलकर ने एक टिप्पणी में कहा है कि श्रीमती शिरीष पई द्वारा लिखित इस मर्मस्पर्शी कविता को पढ़ते हुए ही कुमारी बेणारे का चरित्र उनके मन में उभरने लगा था। वह कविता-पाठ बीच में ही छोड़ देती है और एक गाना गाती है, जो दु:खद ढंग से विडंबनापूर्ण है : 'मलाड का बुड्ढा शकोटी में आया। मलाड का बुंड्ढा, बुड्ढे की बीवी, बीवी का लड़का, लड़के की दाई, दाई का दामाद...।' बेणारे के गायन के साथ अन्य चरित्र लय पर ताल देने लगते हैं। सुखात्मे इस तरह ताली बजाता है, जैसे किसी धार्मिक समारोह में हो। कैसी विलक्षण सूझबूझ से तेंदुलकर ने बेणारे के इस बलिदान-अनुष्ठान को शुरू किया है!

आंद्रे ज़ाइद ने सन् १८९५ में लिखा था, 'मैं तथ्यों को ऐसे ढंग से संयोजित करता हूँ, जिससे वे यथार्थ की अपेक्षया सत्य के अधिक नज़दीक आ जाएँ।' तेंदुलकर की पैनी दृष्टि से कुछ भी ओझल नहीं हो पाता। जो कुछ वे देखते और सुनते हैं, उसे ही ऊपरी तौर पर लापरवाही और सरसरे ढंग से पुनर्नियोजित कर देते हैं, और फिर भी कुछ भी अपनी जगह से बाहर नहीं होता। प्रत्येक सूक्ष्म अर्थ-छाया में ज़हर का-सा डंक है।

जब मोहन राकेश कृत 'आधे अधूरे' पहली बार दिल्ली में सन् १९६९ में प्रदर्शित हुआ, तो भारतीय दर्शक-समुदाय पर उसका वैसा ही तीखा प्रभाव पड़ा, जैसा कि मेरा अनुमान है कि जॉन ऑसबर्न के नाटक 'लुक बैक इन एंगर' का पाँचवे दशक में ब्रिटेन में पड़ा होगा। यह रचना तेज़ वाद-विवाद का बायस बनी। जहाँ एक ओर समीक्षकों ने इसे आधुनिक भारतीय रंगमंच में एक अन्यतम कृति और हिन्दी नाटक में पहली गंभीर उपलब्धि माना, वहीं दूसरी ओर कलात्मक दृष्टि से असार्थक लेखन कहकर इस पर प्रहार भी किया गया जो मध्यवर्ग का ऐसा एकतरफ़ा विरूपित चित्रण करता है, जिसकी कोई सामाजिक प्रासंगिकता नहीं। लेकिन समीक्षकों की यह धारणा उन दर्शक-समुदायों ने झूठी साबित कर दी, जो एक ओर बड़ी-बड़ी संख्याओं में इसे देखने आये और दूसरी ओर बड़ी ही ग्रहणशीलता से इसकी विस्फोटक सघनता के सम्मुख नतशिर भी हुए। ऐसा नाटक, जो लोकप्रियता के लिए कोई छूट नहीं देता, इस प्रकार की प्रतिक्रिया कैसे जगा सकता है, अगर कारण यही नहीं है कि वह अपना कथ्य पूरे प्रभाव के साथ संप्रेषित कर सका?

यह नाटक मध्यवर्गीय जीवन की शुष्क, विनाशकारी रिक्तता का प्रखर दस्तावेज़ है और विकृत मूल्यों, भ्रान्तियों एवं दोगली नैतिकता का निर्मम अनावरण, जो उस रिक्तता के कारण हैं। इसके केन्द्र में पत्नी के वे प्रयत्न हैं, जो वह अपने बिखरते परिवार को बाँधने के लिए करती है।

अब शारीरिक आकर्षण से रहित, बिना रीढ़ की हड्डी के असफल पति के साथ एकाकी प्रौढ़ावस्था बिताने के भविष्य से त्रस्त यह स्त्री हताशा के साथ स्वयं को समेटने का प्रयास करती है। उसके अपने वैवाहिक जीवन की असफलता बीस-वर्षीया बेटी के भाग्य में भी प्रतिध्वनित होती है, जो अपने पति का घर छोड़कर माता-पिता के घर लौट आती है लेकिन घर वही साँपों की बांबी जैसा उसे दीखता है जो कि वह हमेशा से था। 'ऐसा भी होता है क्या कि...दो आदमी जितना ज़्यादा साथ रहें, एक हवा में साँस लें, उतना ही ज़्यादा अपने को एक-दूसरे से अजनबी महसूस करें?...एक गुबार-सा है जो हर वक्त मेरे अन्दर भरा रहता है और मैं इन्तज़ार में रहती हूँ जैसे कि कब कोई बहाना मिले जिससे कि उसे बाहर निकाल लूँ।'

नयी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व लड़के ने किया है, जो कॉलेज में फ़ेल होने के बाद दिन भर घर में पड़ा रहता है—पत्रिकाओं से अभिनेत्रियों की तसवीरें काटता हुआ, बिस्तर में कैसेनोवा के संस्मरण पढ़ता हुआ। अनजाने पर स्पष्ट ही वह अपने पिता के पद-चिह्नों पर चल रहा है। अपने बिखराव से तंग आने के बाद अब उसकी दिलचस्पी पड़ोस की एक युवा लड़की का पीछा करने में है और अपनी बहन की चीज़ें चुरा कर उपहारस्वरूप उस लड़की को देने में। छोटी लड़की तुनुकमिज़ाज और बदज़ुबान है, जिसे अपना दुख और अपनी अवहेलना ऐसे गुस्से के लिए भड़काते रहते हैं कि उसकी ओर दूसरों का ध्यान आकर्षित हो सके।

मध्यम वर्ग के अन्य अपेक्षया समृद्ध स्तर भी राकेश द्वारा निर्ममतापूर्वक अनावृत्त हुए हैं। यहाँ सिंहानिया जैसा भ्रष्ट एवं असंस्कृत व्यवसायी है, जिसके लिए हर एक काम एक व्यावसायिक सौदा है और उसकी क़ीमत लेनी-चुकानी होती है। वह लड़के के लिए कुछ विशेष नहीं कर सकता, लेकिन यदि सावित्री अपनी लड़की को उसके पास भेज सके, तो शायद उसके लिए कुछ प्रबन्ध करना संभव हो जाये। फिर पत्नी का पुराना प्रेमी जोग है, जिसके लिए स्त्रियों की चाहत एक हृदयहीन, नपा-तुला खेल है। जो वह चाहता है, बिना किसी संकोच के दबोच लेता है, और जिससे उसका कोई मतलब नहीं निकलता, उसे लापर-वाही से छोड़ देता है। अंत में जुनेजा आता है, पति महेन्द्रनाथ का भूतपूर्व व्यावसायिक भागीदार, जो अंतिम दृश्य में पत्नी की भ्रांतियों, आकाँक्षाओं एवं आत्म-वंचना को बेरहमी से उधेड़कर रख देता है, लेकिन जो अपनी साफ़गोई और दूसरों की कमियों का अनावरण कर देने के अपने गुण के बावजूद स्वयं भी बहुत रुचिकर चरित्र नहीं है।

मध्यवर्गीय जीवन की प्रत्येक अवस्था और प्रत्येक स्तर पर राजयक्ष्मा का घातक रोग घर कर गया है, जो जीवन के उत्स को ही खा लेता है—पीछे सिर्फ़ खुले घाव और मूक दर्द रह जाता है। हर एक प्रताड़ित व्यक्ति अपनी हताशा और

असफलता को दूसरे के विरुद्ध घृणा के हथियारों में बदल देता है। मध्यमवर्गीय औचित्य के प्रदर्शन और आत्मसम्मान की भावना के पर्दे के पीछे यौन कुंठाओं, अज्ञात भयों, बड़े-बड़े सपनों एवं व्यक्तिगत पराजय के साँप कुंडली मारे रहते हैं।

दृश्यबंध में टूटे-फूटे फर्नीचर का ढेर है, दीमक लगी फाइलें, लकड़ी और लोहे के टुकड़े, फटी पत्रिकाएँ, गंदे प्याले और तश्तरियाँ। ये सब घुटन और अकेलेपन के आतंक के वातावरण को सघन करते हैं, और पात्रों के बिखरे जीवन का प्रतीक हैं।

नाटक की भाषा सादी, सच्ची और एकसमान तनाव-भरी है। इसमें एक ओर जहाँ बोलचाल की भाषा की लय और उसकी बुनावट है, वहीं दूसरी ओर सहज प्रवाह एवं स्वतःस्फूर्तता भी है। अनुभूति की सूक्ष्मता को प्रकट करने वाले ध्वनि और मौन के समन्वय की गहरी समझ रखने वाला केवल एक श्रेष्ठ रचनाकार ही वह उपलब्ध कर सकता था जो राकेश ने किया है। संभवतः मुखर मौन में भी नाटक-तत्व अधिक रहता है—सघन संवाद की अपेक्षा अनुच्चरित विचारों में। जैसाकि संगीत में है जो मौन ध्वनि की व्यवस्था का एक भाग होता है। 'नाटकीय शब्द' के लिए राकेश का सम्मोहन उनकी खोज का एक हिस्सा है—अस्तित्व के जटिल, गहरे एवं सूक्ष्म स्तरों की अभिव्यक्ति के लिए, और उस भाषा को पकड़ने के लिए, जिसमें हमारे समय के विखंडित व्यक्तित्वों के प्रामाणिक स्वर बोल सकें।

'मैं नाट्य-रचना के संदर्भ में सामाजिक या किसी और प्रासंगिकता की बात नहीं सोचता। अगर लेखक निष्ठावान् है, तो सामाजिक प्रासंगिकता अपने-आप आ जाती है।' —बादल सरकार, एक इंटरव्यू में। १९७१।

भाषा की विलक्षण देन के साथ बादल सरकार चमत्कारिक हास्य-नाटकों के लेखक के रूप में बँगला रंगमंच पर आये; वे नाटक ताज़े, मौलिक एवं वाग्वैदग्ध्य-युक्त थे और मंच पर बहुत सफल साबित हुए। फिर भी छठे दशक से बादल सरकार मनुष्य के अमानवीयकरण की स्थिति से उद्विग्न थे, यातना और पराजय से, वैयक्तिक और सामूहिक उत्तरदायित्व से और इस बात से कि किस प्रकार आदमी उस महाविनाश के बीच जीने के बोझ को उठाये, जो अब मानवीय इतिहास में अभूतपूर्व है। दैत्याकार घटनाओं की श्रृंखलाओं के विरुद्ध जहाँ मानवीय पीड़ा जनसामूहिक स्तर पर है, वहाँ एक अकेले व्यक्ति के संघर्ष का क्या अर्थ है और कुछ मानवीय मूल्यों को अक्षुण्ण बनाये रखने के उसके प्रयत्नों में क्या संगति है?

कुछेक कमियों के बावजूद १९६५ के 'शौभनिक' के 'एवम् इन्द्रजित्' के प्रदर्शन में असाधारण जीवंतता थी, जिसने एक ओर दर्शक-समुदाय को विशुद्ध

ऐन्द्रिय उल्लास से आकर्षित किया और दूसरी ओर गहन काव्य से। यह नाट्य-कृति रचनात्मक व्यक्तित्व वाले इन्द्रजित् के क्रमिक विघटनीकरण से सम्बन्धित है, जिसकी साक्षी बनता है लेखक। वह कला के माध्यम से यथार्थ को अभि-व्यक्त करने के अपने प्रयत्न में पाता है कि समकालीन ज़िंदगी अर्थहीन और नीरस है, मशीनी एवं फीकी, और निरन्तरता की एकतानी लय तथा बासी आदतों की अटूट शृंखला में जकड़ी जाकर रह गयी है। दर्शक-समूह में से बुलाये गये अमल, कमल, विमल एवं इन्द्रजित् नामक पात्रों के द्वारा लेखक जीवन के सूत्रों और ढाँचों को खोजता है—घर, स्कूल, कॉलेज, यौवन के प्रेम और प्रतिष्ठान के विरुद्ध विद्रोह के माध्यम से।

जबकि अमल, विमल और कमल अपने जीवन के शुष्क दैनिक कार्यकलाप में फँस जाते हैं, इन्द्रजित् अपने आदर्श की राह पर बढ़ता है और जीवन, ज्ञान, कर्म, महत्वाकाँक्षाओं, ऐश्वर्य, व्यक्ति और व्यक्ति के बीच के सम्बन्धों, प्रेम और अपने ही टूटे व्यक्तित्व के मायनों की तलाश में संघर्ष-रत रहता है। अपने आदर्शों के प्रति उसमें निष्ठा है और अपने चारों ओर की ज़िंदगी पर वह अपनी गहरी भावनाओं की छाप छोड़ता चलता है। लेकिन इस भीषण संघर्ष में वह ज़्यादा देर तक खड़ा नहीं रह सकता; उसके सामने कड़ी रुकावटें हैं; यौवन, आदर्श की खोज, देर से संजोये स्वप्न, सौन्दर्य और अर्थों की तलाश में वह चकनाचूर हो जाता है और उसे निराशा और हताशा के आगे घुटने टेक देने पड़ते हैं। अपने ठूँठ परिवेश के हमले का मुक़ाबला कोई भी व्यक्ति, जो अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के कारण सामान्य से पृथक् धरातल पर हो, सदा के लिए नहीं कर सकता। जल्दी या देर में उसे पराजय माननी ही होगी; रोज़मर्रा की ज़िंदगी के अर्थहीन कार्य-चक्र को अपनाना ही होगा; उसकी मानवीय भावनाएँ क्षरित होंगी, और प्रत्येक उस विचार और भावना को उसे गँवा बैठना होगा जिन्होंने उसे विशिष्टता और अनन्यता प्रदान की थी। इन्द्रजित् फिर से निर्मल बन जाता है, और उन्हीं ढाँचों में ढल जाता है जिनमें कि दूसरे ढले हुए हैं। इस अनन्य चरित्र के विघटन के बाद 'लेखक' नाटक लिखने की अपनी कोशिश को त्याग देता है। इन्द्रजित् का अवसान 'लेखक' की पराजय है, और उसकी हत्या में 'लेखक' ने स्वयं भी आत्महत्या कर ली है।

यह नाटक इस रूप में आज के हमारे युग की ही गाथा है, और इसकी विशेषता है इसका रूपबंध। कुछ ही अभिनेताओं द्वारा विभिन्न पात्रों के अभिनय करने के विचार की मौलिकता, नाटक की गति में दिक् और काल को नाटकीय तत्वों के समान प्रयोग में लाने की दक्षता, लेखक का सूत्रधार के समान व्यवहार, अपनी ही कल्पना से प्रसूत पात्रों के बीच स्वयं लेखक का होना, भ्रांति और यथार्थबोध के विभिन्न स्तर, लेखक की टिप्पणी में गहरी काव्य-चेतना का समावेश

—बादल सरकार के विचारों के नाटकीकरण में ये सब श्रेष्ठ उपकरण इस्तैमाल में लाये गये; नाटक के अर्थ को अभिप्रेत करने में ये सब सप्रयोजन और उसकी इकाई को बनाये रखने में सामानांतर रूप से सफल सिद्ध हुए। देश में नाट्य-लेखन के क्षेत्र में यह कार्य मौलिक और साहसपूर्ण था; इसने नाट्य-लेखन के कार्य को एक नयी दिशा दी।

उन्नीसवीं शताब्दी से ऐतिहासिक नाटक का लेखन भारतीय नाट्य-परंपरा का महत्वपूर्ण पक्ष रहा है। बंगला, मराठी, हिन्दी और उर्दू के अनेक विशिष्ट नाटकों का ताना-बाना ऐतिहासिक तथ्यों और चरित्रों के इर्द-गिर्द बुना गया। नाट्य-क्षेत्र का यह पक्ष अभिनेताओं और दर्शकों—दोनों के लिए समान रूप से आकर्षक और सुखदायी रहा है; ऐतिहासिक नाटकों में बड़े पैमाने पर लम्बे तेज़-तर्रार ढंग से बोले गये वाद-संवादों और दुस्साहसपूर्ण हावभाव के अभिनय की एवं बृहदाकार दृश्यबंधों और वेशभूषा की गुंजाइश रहती है। ये नाटक बीते युगों की स्मृति को जगाकर एक रूमानी तथा शौर्यपूर्ण आत्मोत्सर्ग के वातावरण को पैदा करते हैं और बड़े पैमाने पर घट रही और स्थानीय नाटकों की रसहीन गति की तुलना में बृहत्तर अर्थवत्ता की घटनाओं में भाग लेने की चेतना को दर्शकों में जगाते हैं।

मनोविज्ञान की राह से ऐतिहासिक व्यक्तित्वों को बेहतर ढंग से समझने की कोशिश अब पिछले कुछ समय से होने लगी है। नाटककार अब किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्व के निजी, मानवीय जीवन के अन्वेषण में रहने लगा है : उसका व्यक्तिगत जीवन क्या था ? घर में उसके सम्बन्ध कैसे थे ? अंतरंग परिवार के संबंधों के स्तर पर उसे क्या संघर्ष और क्या तनाव झेलने पड़ते थे ? आदि। फिर इस बात की तलाश रहती है कि किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के द्वि-स्तरीय जीवन का पारस्परिक सम्बन्ध क्या था : उसके सार्वजनिक और शासकीय जीवन और उसके अपने और व्यक्तिगत जीवन में। शासन-सम्बन्धी जीवन में व्यस्त रहने का मतलब पारिवारिक और व्यक्तिगत खुशियों की बलि में दिखाई पड़ता था। चरित्र के व्यक्तिगत जीवन के परोक्ष में छिपी ताकतें और दबावों का नतीजा प्रायः राजनीतिक चालों में भी देखने को मिलता था। इन सब नाटकीय घटनाओं का विवेचन हमें राज-नीतिक परिस्थिति को समझने-बूझने की नयी दृष्टि देता है।

पश्चिम में, ऐतिहासिक नाटक प्रचुर संख्या में लिखे जा रहे हैं : 'कैलीगुला', 'ए मैन फ़ॉर ऑल सीज़न्स', 'बेकेट', 'लूथर', 'द रॉयल हन्ट ऑफ़ द सन', ब्रेख्ट द्वारा लिखित 'गैलिलियो' और 'कोरिओलैनस', तथा शेक्सपीयर के ऐतिहासिक नाटकों की पुनः-पुनः की गयी व्याख्याएँ। हिन्दुस्तान में तथा विदेशों में ऐतिहासिक विषयों पर बनी फ़िल्में भी बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुई हैं।

इस दृष्टि से यह समझना कठिन नहीं है कि गिरीश कारनाड ने तुग़लक के चरित्र और काल को अपने नाटक के लिए क्यों चुना। एक कारण, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है, कन्नड़ में ऐतिहासिक नाटकों का प्राय: अभाव-सा है। निश्चय ही केवल इसी से उन्हें प्रेरणा न मिली होगी। इस महान् शासक के बृहद् आदर्शों, स्वप्नों और आकाश को छूने वाली आकाँक्षाओं में, तदनन्तर उसके आमूल पराभव में उन्हें भारतीय समसामयिक वस्तुस्थिति का बोध हुआ होगा। कुछ ही वर्षों में तुग़लक की गगनचुंबी योजनाएँ और स्वप्न धूल में मिट गये; अपनी इच्छाओं की पूर्ति में बाधा बनने वाले सभी व्यक्तियों को उसने मौत के घाट उतार दिया, और अन्त में उसने यही पाया कि अपने ही उलझन-भरे अस्तित्व की छायाओं से वह ज़िंदगी-भर लड़ता रहा। निपट अकेला, शवों के झुंडों से और अपने ही हाथों किये सर्वनाश से घिरा हुआ वह उन्माद के छोर तक पहुँच गया।

नाटक के आरम्भ से, जैसे-जैसे वह आम़ लोगों के सामने बड़ी-बड़ी योजनाएँ प्रस्तुत करता है, ताकि उनका समर्थन प्राप्त कर सके, हमें विरोधाभास देने वाला एक व्यंग्य भी दिखलाई पड़ता है। बादशाह द्वारा उठाये गये हर क़दम का अपने हित-साधन के लिए विकृत अर्थ लगाकर अज़ीज़ तुग़लक की सदाशयता की खिल्ली उड़ाता है। तुग़लक की प्रत्येक सोद्देश्य और सद्भावनाओं से प्रेरित कार्यवाही कुटिल अज़ीज़ द्वारा हास्यास्पद रूप में पेश की जाती है।

तुग़लक ने पाया कि उसकी योजनाओं में उसके सर्वाधिक विश्वस्त व्यक्ति ही धोखा देते हैं; उसे कोई नहीं समझता; उसके सपनों का कोई भागी नहीं बनता; अपने क्षुद्र हितों से हटकर देख पाने की किसी में क्षमता नहीं है और धोखे और विद्रोह के अतिरिक्त और किसी बात को कोई सोच ही नहीं पाता। अन्त में, उस की अपनी सौतेली माँ भी, जिसके प्रति उसकी लगावट है, उसे धोखा देती है। ऐसी प्रत्येक परिस्थिति का तुग़लक को एक ही हल मालूम है—तलवार की मदद लेना और विरोधियों का सफ़ाया कर देना। उसकी असफलता राष्ट्र के लिए एक भयंकर दुर्घटना है, और उसके आदर्शों के प्रसाद के ढहने के साथ उसका मस्तिष्क भी जवाब दे जाता है।

नाटक का मुख्य कार्यव्यापार निरन्तर दो स्तरों पर चलता है—दरबार का स्तर जहाँ कि बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाई जाती हैं, और अज़ीज़ का स्तर, जहाँ यही योजनाएँ विफल की जाती हैं। इनके अतिरिक्त दृश्यस्थल दरबार से हटकर षड्यन्त्र रचते हुए अमीर-उमरा, बेचैन, परेशान भीड़, कुटिल उपाय खोजते हुए अज़ीज़, और फिर वापस दरबार की ओर मुड़ आता है। नाट्य-वेग में ढिलाई लाये बिना राजनीतिक और शासकीय प्रश्नों को नाट्य के कार्य के साथ संम्पृक्त किया गया है। विभिन्न दृश्यों का आकर्षण एक समान बना रहता है और बीच-

बीच में दरबारी शानो-शौक़त उन्हें राजकीय भव्यता भी प्रदान करती है।

बहुत सीमित साधनों की सहायता से कारनाड अनेक आकर्षक चरित्रों की रचना में सफल हुए हैं : सौतेली माँ, जो तुग़लक के प्रति अनुरक्त है, चालाक और दूसरों को अपने अंकुश में रखने की प्रवृत्ति से युक्त, उसके और उसके वज़ीरे-आज़म नजीब में जो घनिष्ठता है उसे सहने में अशक्त, ज़बकि नजीब दक्ष और निःशंक है, और तुग़लक के प्रति प्रतिबद्ध; धार्मिक नेता शेख इमामुद्दीन, जिसने तुग़लक की सत्ता को चुनौती दी लेकिन राजनीतिक दावपेंच के खेल में उससे बुरी तरह पिट गया; दरबार का वाक़या-नवीस बरनी—जो घटनाओं के चक्र से घबराकर अपने बादशाह को छोड़ जाता है; शहाबुद्दीन, रतनसिंह, अज़ीज़, आज़म, जवान पहरेदार—ये सभी चरित्र अपनी समग्रता में कल्पित किये गए हैं और नाटक में अपनी नाटकीय पात्रता को निबाहते हुए अपने में भी दिलचस्प हैं।

नाटक के उर्दू अनुवाद की भाषा में एक आश्चर्यजनक प्रवाह और चमत्कार है। इसमें ओजपूर्ण, प्रभावशाली लम्बे-लम्बे भाषण भी हैं—जबकि तुग़लक अपने आदर्श की अनुभूति की सघनता से दोलायमान होता है, और शान्तमुद्रा में गहरी विचारशक्ति से पूर्ण कथन भी—जबकि दौलताबाद के किले की फ़सील पर तुग़लक बरनी के सामने अपने दिल की बातें खोलकर कहता है। अज़ीज़ के संवादों की भाषा भी उसके, तुग़लक के ठीक विपरीत, चरित्र के उपयुक्त पात्र की भाषा है। शेख इमामुद्दीन और बादशाह के बीच के तीखे वाद-संवाद में नंगी तलवारों की टकराहट-सी सुनाई पड़ती है। कारनाड की सूझबूझ कभी नहीं डगमगाती; उसके सभी चरित्र मांसमज्जा और प्राणों की उमंग से भरे-पूरे चरित्र हैं, और प्रत्येक पात्र अपनी-अपनी विशिष्ट बोली में बात करता है।

यहाँ जो नाटक प्रस्तुत किये गये हैं उनमें से तीन में भारतीय मध्यवर्ग का अंकन है, और उनमें समाज के इस अंग का जो चित्र उभरता है वह सचमुच निराशाजनक और भयावह है। सम्बद्ध तीनों लेखक तीन भिन्न प्रदेशों के निवासी हैं जिससे पता चलता है कि यह ह्रास कितना गहरा और व्यापक है। हमारा मध्यवर्ग तन-मन और प्राणों के बंजर में रहता है। पारिवारिक संकीर्णता में आबद्ध, आत्म-परीक्षण के लिए आवश्यक एकान्त और शान्ति से हीन, मानस द्वारा उपलब्ध अथवा हाथों से रचे गए सौंदर्य के स्पर्श से वंचित, कुरूप परिवेश में साँसें लेते हुए, प्रकृति के आकर्षणों, फूलों या पौधों या चिड़ियों या धूप की चमक से मिलने वाले सहज उल्लास से विमुख, गन्दगी से बेख़बर भी वे ऐसी गन्दगी में रहते हैं जो अधिकतर उन्हीं की सृष्टि है। नैतिक प्रतिबद्धता की मूल समस्याओं से कतराते हुए और मुर्दा, अर्थहीन रूढ़ियों के भय से अपनी स्वतंत्रता, इच्छा-शक्ति एवं पसन्द के व्यवहार का अस्वीकार करते हुए, सारे व्यक्तिगत दायित्वों

से बचते हुए, मिथ्या पाखण्ड और कायरतापूर्ण आचरण से वे जीवन को ही झुठलाते रहते हैं। उनमें महत्त्वपूर्ण सामयिक समस्याओं पर कोई स्पष्ट और प्रत्यक्ष चर्चा नहीं होती ताकि मुक्त रूप से विचार-विनिमय हो सके और मतामत प्रकट हो सके—उनकी हर बात व्यंग्य, अर्धसत्य, कानाफूसी, कटाक्ष और विद्रूप से पूर्ण होती है। पुण्य की उन की भावना या तो एक प्रकार के लेन-देन का सौदा बन जाती है या मात्र आत्मरक्षा के लिए मंत्रों का उच्चारण। उनका कहना है कि केवल अभिप्राय और उद्देश्य सदा पवित्र होने चाहिएँ—यह एक ऐसा दृष्टिकोण है जो दुनिया भर के पापों को ढक लेता है। उनके दम्भपूर्ण नैतिक दृष्टिकोण इतने पाखण्डयुक्त होते हैं कि वे अश्लील बन जाते हैं। उनकी यौन-कुण्ठा, नरनारी के संबंधों की समस्याओं के बारे में उनकी झेंप और अपराध-भावना से मिलकर एक ऐसी गुप्त कामुक ग्रंथि बन जाती है जो समस्त सामाजिक वातावरण को दूषित कर देती है। उनके दृष्टिकोण मूलतः भौतिकवादी और धन-लोलुप होते हैं, यद्यपि उनकी विवेकहीन रुचि रुपये से खरीदी जाने वाली चीज़ों में भेदभाव नहीं कर पाती। उनकी न तो कोई सांस्कृतिक जड़ें हैं, न उनमें परंपरा के प्रति कोई लगाव है, न उनका कोई मूल्य-विधान है। वे तो मानसिक प्रमाद, मूढ़ भ्रान्ति और प्रच्छन्न भोगों की दुनिया में रहते हैं। तिस पर तुर्रा यह कि वे अपनी दुरवस्था की भयावहता से नितान्त अनजान रहते हैं। यह वह वर्ग है जो हर भौंडे सौदे का अधिकाधिक लाभ उठाते हुए जीता है और यही वह वर्ग है जो हमारी समाज-व्यवस्था में विष का काम करता है।

नाट्यबंध, नाटकीय शब्द—संवेग, अनुषंग और उसकी अर्थ-वहन की शक्ति—एवं शैली के प्रति हमारे नाटककारों का आग्रह मेरी दृष्टि में इस रूप-हीन, आकृतिहीन, दुःस्वप्नमयी मध्यवर्गीय रिक्तता को मंच पर प्रस्तुत करने की विधियों की खोज का ही प्रयास है। अपने आखिरी दिनों में राकेश ने कहा था, —'मैं 'जानने' की भाषा की बजाय निरन्तर 'जीने' की भाषा की ओर जाना चाहता हूँ।' और कि 'मनुष्य तो मूलतः मनुष्य ही रहता है पर अपने परिवेश से तालमेल बैठाने का उसका प्रयास आज कष्टदायी अनुभव बन गया है। आज एक दबाव और तनाव निरन्तर मौजूद रहता है जिसे अभिव्यक्त करना ज़रूरी है। द्वन्द्व की इस स्थिति का उद्घाटन करने वाली भाषा को स्वयं भी उसके प्रतिरूप ढलना होगा।' समाज-व्यवस्था आज तेज़ी से बदल रही है। न तो कोई टिकाऊ मूल्य रह गये हैं, न कोई धार्मिक आस्था, न कोई राजनीतिक विश्वास, न कोई वैयक्तिक या सामाजिक विवेक। सभी कुछ काम-चलाऊ है और हरेक समाधान तात्कालिक सुविधा पर टिका है। शाश्वत सत्य निकम्मे उपदेश बन गये हैं। ऐसी कोई चीज़ नहीं है जो लोगों को एक कर सके। न तो कोई एक लक्ष्य है, न कोई प्रतिबद्धता। समाज बिखर गया है, घर टूट चुका है और उसके सदस्य

एक-दूसरे से कटकर अपरिचित की तरह भ्रान्ति और हताशा की अपनी-अपनी निजी आकार-हीन दुनिया में रहते हैं। आपने नाटक 'हुइ क्लो' में ज्याँ पॉल सार्त्र ने कहा है, 'औरों की संगति नरक है।' भारत के मध्यवर्ग के बारे में यह बात निश्चय ही सच है। पर इससे भी बड़ी बात यह है कि व्यक्ति खुद अपने आपसे कट गया है। वह स्वयं ही अपना नरक है।

इस प्रकार की स्थिति में चरित्रों की कोई निश्चित और संगत अस्मिता नहीं बन सकती। वे तो लुंज-पुंज प्राणी हैं, चिन्दियों और थिगलियों से बने हुए। टूटे हुए आईने की धुँधली आकृतियाँ, खण्डित प्रतिबिम्ब। इसी कारण वे अबोधगम्य और गूढ़ बन जाते हैं, अस्थिर और परिवर्तनशील, बदलती हुई रोशनी में कई-कई रूप धारण करते हुए।

फलस्वरूप आज यह चेतना निरन्तर बढ़ती जा रही है कि पुराने नाट्यरूप ओछे पड़ गये हैं और अब ऐसे नये उपायों की खोज ज़रूरी है जिनके द्वारा इस नये विघटित मानव-व्यक्तित्व को, उसके विघटन के मूल कारणों को और उसके आस-पास की बदलती दुनिया से उसके सम्बन्ध को प्रक्षेपित किया जा सके। अपनी सुनिर्दिष्ट संरचना और सुन्दर गठन के गुण के कारण पारंपरिक नाट्य-रूप स्थायित्व की भावना का, तर्क-संगत विकास का, प्रबोध या सामंजस्य द्वारा समाधान का अथवा मृत्यु में मुक्ति का संप्रेषण करता आया है। त्रासदी का चरित्र नैतिक विधान का उल्लंघन करता था, फिर अपने सत्य के क्षण पर पहुँचता था, और अन्ततः अपने संसार से और अपने आपसे सामंजस्य प्राप्त कर लेता था। पर यहाँ तो ऐसा कुछ है ही नहीं जिससे सामंजस्य बैठाया जाये, यहाँ कोई अन्तिम समाधान नहीं है। यहाँ तो व्यक्ति अपनी कटु इयत्ता के साथ जीता है। वह केवल सहता है।

यद्यपि हमारी सामाजिक स्थिति हमे हताशा की ओर ले जाती है, इन लेखकों का दृष्टिकोण हमें आशा की ओर ले जाता है। ये ईमानदार हैं, इनमें साहस है, इन्होंने अपने शिल्प पर अधिकार कर लिया है और इन्हें अपने दायित्व की अत्यन्त स्पष्ट चेतना है। राकेश ने ठीक ही कहा है: 'मेरी दृष्टि में यदि कोई कलाकार कहे कि उसके पास ऐसी कोई विशिष्ट दृष्टि है जो दूसरों का मार्गदर्शन कर सकती है तो यह उसका कोरा दंभ है...वह तो ज्यादा-से-ज्यादा इतना ही कर सकता है कि अपने पाठक या दर्शक के मन में बैठे द्रष्टा को जगा दे और उसे एक ऐसे बिन्दु पर लाकर खड़ा कर दे जहाँ से वह यदि चाहे तो स्वय अपना पथ आलोकित कर सके।'

—**इब्राहिम अलकाज़ी**

उभरती हुई तसवीर के रंग

समसामयिक प्रतिनिधि भारतीय नाटकों का इस प्रकार का यह पहला संकलन भारतीय रंगमंच के इतिहास में कई दृष्टियों से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यह संकलन भारतीय नाटक और रंगमंच की नयी चेतना का प्रतिनिधान करता है, और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों और उपलब्धियों की सहज परिणति है। भारतीय रंगमंच की वर्तमान स्थिति का ही यह सहज परिणाम है कि इस प्रकार का भारतीय प्रतिनिधि नाटकों का संकलन हिन्दी में प्रकाशित हो रहा है। पिछले एक दशक में भारतीय रंगमंच के नये आन्दोलन का स्वरूप निर्धारित करने और उसे समृद्ध तथा अग्रसर करने में हिन्दी-रंगमंच का अपरोक्ष रूप से महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यह एक विचित्र तथ्य है कि एक ओर तो हिन्दी का अपना कोई बहुत सक्रिय और व्यावसायिक रंगमंच नहीं है, यद्यपि पिछले एक दशक में उसका क्रियाकलाप विस्तृत हुआ है और उसके कलात्मक स्तर ऊँचे हुए हैं—और दूसरी ओर, उसने पिछले एक दशक में विभिन्न भाषाओं के बीच विनिमय का एक ऐसा धरातल तैयार किया जो भारतीय रंगमंच के इतिहास में सर्वथा नया है।

हिन्दी रंगमंच ने स्वतन्त्रता के पश्चात् लगभग अथ से आरम्भ किया, और दो दशकों की यात्रा के बाद वह ऐसे बिन्दु पर आ गया, जहाँ से अपनी नवीन चेतना और स्फूर्ति के कारण इस महत्त्वपूर्ण दायित्व को निभा सका। इस संकलन में सम्मिलित किये गए प्रायः तीनों ही नाटक 'एवम् इन्द्रजित्' (बंगला) 'तुग़लक' (कन्नड़) और 'खामोश, अदालत जारी है' (मराठी) हिन्दी में अनूदित और प्रदर्शित होकर ही अखिल भारतीय स्तर पर प्रतिष्ठित हुए। यह भी हुआ कि हिन्दी के माध्यम से ही इन नयी चेतना के नाटकों का अनुवाद एक भाषा से दूसरी भाषाओं में हुआ। प्रायः तो यह भी हुआ कि कुछ नाटकों के प्रदर्शन पहले हिन्दी में हुए, कम-से-कम महत्त्वपूर्ण प्रदर्शन, और उसके बाद उन भाषा-क्षेत्रों में जिस भाषा के ये नाटक हैं। 'तुग़लक' का पहला महत्त्वपूर्ण प्रदर्शन हिन्दी में हुआ, और उसके बाद मराठी, अंग्रेजी, बॅगला आदि कई भाषाओं में। इस प्रकार हिन्दी रंगमंच ने पिछले एक दशक में बड़ी ही निष्ठा और संवेदनशीलता के साथ सेतु-धर्म का निर्वाह किया है; उसका यह सेतु-धर्म भारतीय रंगमंच की नयी चेतना के विकास और उसकी अभूतपूर्व उपलब्धियों में बहुत अधिक सहायक हुआ है।

स्वतन्त्रता के उपरान्त हमारे जीवन में जो एक नया उन्मेष आया उसने जीवन के सभी पक्षों और क्रियाकलापों को प्रभावित किया। भारतीय रंगमंच की यह

चेतना इसी व्यापक सांस्कृतिक पुनरुत्थान का परिणाम है। यदि हम इस नयी चेतना वाले रंगमंच-आन्दोलन को एक व्यापक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में देखे तो उसके उदय के स्रोत और विकास के चरण सहज ही स्पष्ट हो जायेंगे। भारतीय रंगमंच के सामान्य विद्यार्थी को भी यह ज्ञात है कि हमारी संस्कृत नाट्य-परम्परा नवीं-दसवीं शताब्दी में विघटित होकर नष्ट हो गयी, और उससे बाद पारंपरिक और लोकनाटकों के रूप में हमारा रंगमंचीय क्रियाकलाप क्षीण रूप से जीवित रहा। आधुनिक रंगमंच का उदय उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में पाश्चात्य नाटक-साहित्य और रंगमंच-परंपरा के सीधे प्रभाव से हुआ; और अनेक ऐतिहासिक कारणों से हमारा आधुनिक भारतीय रंगमंचपरंपरा से विलग हो गया। ऐसी परिस्थितियों में हमारे रंगमंचीय क्रियाकलाप में वह मौलिकता और विशिष्टता नहीं आ सकी जो किसी भी जाति तथा भाषा के रंगमंच का अनिवार्य गुण होती है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् नये सांस्कृतिक उन्मेष के साथ-साथ हम परंपरा की ओर उन्मुख हुए, लेकिन हमारे मन में दुविधा बनी रही और इस संबंध में हमारी दृष्टि और हमारी धारणाएँ स्पष्ट न हो सकीं। किन्तु छठे दशक में पहुँचते-पहुँचते अनेक कारणों से रंगमंच सम्बन्धी हमारे मूल्यों और हमारे सम्पूर्ण नाट्य-बोध में परिवर्तन आने लगा। यह एक रोचक बात है कि लगभग इसी काल में चित्रकला में भी हमारा कला-बोध सहसा बदल गया और हमारे चित्रकार अपने परिवेश को अधिक प्रामाणिकता के साथ चित्रित करने लगे। यह ऐतिहासिक संयोग की ही बात है कि इस बीच स्वयं पश्चिमी रंगमंच की प्रवृत्ति बिलकुल बदल गई, और इस क्रान्तिकारी परिवर्तन में वह एशियाई नाट्य-परपरा और उसके मूल्यों तथा शैलियों के अधिक निकट आ गया। वास्तव में, पश्चिमी रंगमंच की यात्रा में यह नया मोड़ इस शताब्दी के दूसरे दशक में वहीं आरम्भ हो जाता है जब रूस के कल्पनाशील निर्देशक ताइराव और मेयरहाल्ड रंगमंच की यथार्थवादी परंपरा से ऊबकर एक काव्यात्मक, कल्पनाप्रधान और रूढ़िधर्मी रंगमंच की खोज मे संस्कृत रंगमंच और जापान तथा चीन के पारंपरिक रंगमंच की ओर उन्मुख होते हैं।

अपने व्यक्तित्व की पहचान, पारंपरिक नाट्यदाय का अन्वेषण और एक नयी, अधिक मौलिक और प्रामाणिक नाट्यशैली की खोज छठे दशक के भारतीय रंगमंच की मुख्य प्रवृत्ति और उसकी सबसे बड़ी घटना है। अन्वेषण तथा प्रामाणिकता की इसी भावना ने समसामयिक भारतीय रंगमंच की नयी चेतना का विकास किया है। इस नई चेतना के विविध रूपों और और पक्षो में सबसे महत्त्व-पूर्ण पक्ष यह है कि आज लगभग दो शताब्दियों के आधुनिक भारतीय रंगमंच के इतिहास में पहली बार यह संभव हो सका है कि हम एक प्रकार के 'राष्ट्रीय' रंग-मंच की तसवीर उभरते हुए देखते हैं। 'राष्ट्रीय' रंगमंच से मेरा तात्पर्य केवल इतना ही हैकि आज हमारे नाटक और रंगमंचीय क्रियाकलाप में कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ

विकसित हुई हैं, और ऐसे रूपों और शैलियों का विकास हो रहा है, जिनमें एक विशिष्टता है और जिनका स्वरूप देशव्यापी है। वास्तव में, आज भारतीय रंगमंच का क्रियाकलाप विभिन्न भाषाओं में होकर भी उसमें एक समग्रता है और व्यापक अर्थों में उसे भारतीय रंगमंच की संज्ञा दी जा सकती है। आज हम भाषा-वार रंगमंच की चर्चा के साथ-साथ 'भारतीय' रंगमंच की भी बात करते हैं। क्षेत्रीय और भाषागत परंपराएँ और विशिष्टताएँ रखते हुए भी, आज का भारतीय रंगमंच भाषागत सीमाओं में नहीं बँधा है; उसके 'राष्ट्रीय' आयाम हैं और उसकी प्रवृत्तियाँ और मूल्य भी 'राष्ट्रीय' हैं।

इस दशक में विभिन्न भाषा-क्षेत्रों के बीच विनिमय के ऐसे संबंध स्थापित हुए और ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई कि एक भाषा के नाटक कई भाषाओं में अनूदित और प्रदर्शित हो रहे हैं; और आज कितने ही नाटकों को 'राष्ट्रीय' नाटक-चक्र के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इस सकलन में सम्मिलित किये गये चारों नाटक इसी राष्ट्रीय नाटक-चक्र का अंग है; वे केवल एक भाषा के नाटक नहीं हैं। यह स्थिति भारतीय नाटक के इतिहास में पहली बार संभव हुई है। गिरीश कारनाड के कन्नड़ नाटक 'तुग़लक' और 'हयवदन'; बादल सरकार के वंगला नाटक 'एवम् इन्द्रजित्' और 'बाकी इतिहास', विजय तेंदुलकर के मराठी नाटक 'शान्तता, कोर्ट चालू आहे' और 'सखाराम बाइंडर' तथा मोहन राकेश के हिन्दी नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' और 'आधे अधूरे' इसी राष्ट्रीय नाटक-चक्र के नाटक हैं। मराठी के नाटककार खानोल्कर और गुजराती के युवा नाटककार मधु राय तथा और कितने ही नए नाटककारों की कृतियाँ धीरे-धीरे इसी राष्ट्रीय नाटक-चक्र में सम्मिलित हो रही हैं। पहली बार नाटक को अन्य साहित्यिक विधाओं की-सी गरिमा मिली है, और नाटक मनोरंजन मात्र का साधन न रह कर गहरे जीवन-बोध और जीवन के साथ सच्चे साक्षात्कार का माध्यम बन गया है।

एक बार हम फिर पुनरावलोकन करें तो देखेंगे कि पाँचवें दशक का काल रंगमंचीय क्रियाकाप के विस्तार का काल है। इसी दशक में संगीत नाटक अकादेमी की सन् १९५४ में स्थापना हुई, और १९५६ में अकादेमी ने प्रथम अखिल भारतीय नाट्य-गोष्ठी का आयोजन किया। पहली बार विभिन्न भाषा-क्षेत्रों के नाटककार, निर्देशक, अभिनेता और नाट्य-समीक्षक एक मंच पर मिले, और उस पारस्परिक विनिमय का सूत्रपात हुआ जो अगले दशक में और अधिक तीव्र होकर एक व्यापक 'राष्ट्रीय' चेतना के रूप में प्रतिफलित हुआ। इस गोष्ठी ने पहली बार विशाल भारतीय रंगमंच की विविधता और उसकी समृद्धि को उद्घाटित किया। 'भारतीय नाट्य-संघ' ने १९६१ में अखिल भारतीय नाट्य-गोष्ठी का आयोजन किया जिसमें पहली बार रंगमंच सम्बन्धी कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और मूल प्रश्नों को उठाया गया और भारतीय रंगमंच के भावी विकास

का एक नया आलेख प्रस्तुत किया। इसी गोष्ठी में पहली बार नाटक और रंगमंच के संदर्भ में परंपरा का महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया और इस बात पर गंभीर चर्चाएँ हुई कि हमारे आधुनिक रंगमंच का हमारी हज़ारों वर्ष की पुरानी और समृद्ध नाट्य-परंपरा के साथ क्या सम्बन्ध होना चाहिए, और क्या हम नये नाट्य-रूपों और शैलियों की खोज में इस परंपरा से कोई प्रेरणा ले सकते हैं, अथवा यह परंपरा रचनात्मक दृष्टि से हमारे लिए कोई महत्त्व नहीं रखती, और पूर्ण विघटन ही उसकी नियति है।

इसी क्रम में १९७१ में संगीत नाटक अकादेमी ने एक अखिल भारतीय नाट्य-गोष्ठी का आयोजन किया जिसमें पारंपरिक रंगमंच की आधुनिक सार्थकता के प्रश्न पर और भी गहराई के साथ विचार हुआ, और इस जटिल प्रश्न को पिछले एक दशक के रचनात्मक कार्य और नाटककारों तथा निर्देशकों के अनुभवों के आधार पर फिर से जाँचा गया। इस गोष्ठी में जो वक्तव्य प्रस्तुत किए गए और स्थापनाएँ की गयीं उनसे रंगमंच-आन्दोलन की प्रकृति और उसकी कलाधर्मिता परिभाषित हुई और रचनाकारों ने एक नए-बाँध का पुनराख्यान किया। यह तथ्य रंगमंच के नये आन्दोलन के विकास को स्पष्ट करता है जब कि १९६० की गोष्ठी में हमारे मन में प्रश्न और दुविधाएँ थीं और हमको हमारा समूचा नाट्यदाय जड़ और निरर्थक लगता था, वहीं १९७१ में आयोजित विचारगोष्ठी में यह परंपरा सार्थक लगने लगी। आज भारतीय रंगमंच में जो एक मौलिकता और प्रामाणिकता दिखाई दे रही है वह परंपरा के इसी सार्थकता-बोध और उसके अन्वेषण का परिणाम है।

भारतीय रंगमंच में यह एक बहुत बड़ा विरोधाभास रहा है कि अत्यन्त समृद्ध और विविध रूपों और शैलियों वाले पारंपरिक रंगमंच के साथ हमारे आधुनिक रंगमंच के कोई सम्बन्ध नहीं रहे और दोनों के बीच बराबर एक कृत्रिम व्यवधान बना रहा। संगीत और नृत्य के क्षेत्र में तो प्राचीन और परंपरागत रूपों और शैलियों और मूल्यों में एक प्रकार की अखण्डता और निरन्तरता है, और उनके मूल्यों के प्रति हमारा आग्रह भी है, किन्तु नाटक के क्षेत्र में ऐसा सम्भव नहीं हो सका। इस अन्तर्विरोध को समझ पाना कठिन है कि या तो हम परंपरा की पूजा करते है और उसे एक अन्धविश्वास के साथ स्वीकार कर लेते हैं, अथवा हम अपने रचनात्मक कार्य में उसकी उपयोगिता और प्रामाणिकता की परीक्षा किये बिना ही उसे तिरस्कृत कर देते हैं, उसका त्याग कर देते हैं। नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में भी हमने यही किया। स्वतन्त्रता के पश्चात् भी हम नाट्य-परंपरा के प्रति उदासीन बने रहे और उसके प्रति हमारी दृष्टि स्पष्ट नहीं हो सकी। परंपरा किसी भी युग में रचनात्मक कार्य में महत्वपूर्ण भाग लेती है, रचनात्मक कलाकारों ने बराबर परंपरा का अन्वेषण किया है। नाटक के क्षेत्र

में तो परंपरा और नये प्रयोगात्मक कार्य का प्रश्न और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि रंगमंच एक परंपरासम्मत और रूढ़िधर्मी कला है, विशेषकर हमारे देश में, जहाँ उसकी लगभग ढाई हज़ार वर्षों की अखण्ड परंपरा है।

नयी चेतना के नाटक और रंगमंच आन्दोलन ने परंपरा के प्रति सजगता और संवेदनशीलता दिखाई और समसामयिक नाट्यलेखन और नाट्य-प्रदर्शन के श्रेष्ठ स्तर का समस्त कार्य इसी सजगता और संवेदनशीलता की भावना से प्रभावित है। आज हमारे नये नाटककार संस्कृत और लोकनाट्य के तत्वों तथा व्यवहारों का प्रयोग करके एक सर्वथा नये नाट्यरूप का विकास कर रहे हैं। इस संकलन में सम्मिलित प्रायः सभी नाटकों में इस नये नाट्यरूप के मूल लक्षण देखे जा सकते हैं। ये नाटक यर्थाथवादी परंपरा के विहित और रीति-सम्मत नाट्यरूप को छोड़कर, जिसका शिल्प-विधान यथार्थवादी रंगसज्जा द्वारा नियामित था, एक ऐसे खुले रूपबन्ध वाले नाटक का विकास कर रहे हैं जो भारतीय नाट्यमेधा और उसकी प्रकृति के अधिक निकट है। 'एवम् इन्द्रजित्' और 'खामोश, अदालत जारी है' में संवादों और कथास्थितियों में एक ऐसी सहजता है और आशुभावन का वह तत्व है जो हमारे लोक और पारंपरिक नाट्यरूपों का मूलाधार है। गिरीश कारनाड ने अपने नये नाटक 'हयवदन' में मैसूर के पारंपरिक नाट्यरूप यक्षगान के कुछ तत्वों और व्यवहारों का इस प्रकार से उपयोग किया है जिससे इस नाटक की कथा और अधिक नाटकीय और प्रामाणिक हो गयी है। विजय तेंदुलकर और पु० ला० देशपाण्डे ने महाराष्ट्र के लोकनाट्यरूप तमाशा की शैली में अत्यन्त सशक्त सामाजिक व्यंग्य के नाटकों की रचना की है। पु० ला० देशपाण्डे के रंगमंच की सारी शक्ति और उसका उल्लास महाराष्ट्र के लोकनाट्य तमाशा से प्रेरित है। उत्पल दत्त ने पश्चिमी बंगाल के नाट्यरूप 'जात्रा' की शैली पर कई सक्षक्त नाटक लिखे हैं। आद्य रंगाचार्य ने 'सुनो जनमेजय' में संस्कृत नाटकों की शैली में सूत्रधार का उपयोग किया है, और संस्कृत नाट्य-परंपरा के तत्वों और व्यवहारों का नये रूपों और अर्थों में प्रयोग किया है।

नाट्य-प्रदर्शन के क्षेत्र में भी अपनी और प्रकृति की इस पहचान और परंपरा के इस अन्वेषण ने एक नयी शैली को विकसित किया है, और हमारे निर्देशक पारंपरिक रंगमंच की कितनी ही प्रदर्शन-युक्तियों और रूढ़ियों का उपयोग कर रहे हैं। नाट्य-प्रदर्शन की नयी शैली का सूत्रपात भी छठे दशक में नयी चेतना के इन नाटकों की प्रेरणा से हुआ। अलकाज़ी ने १९६३ में 'अंधा-युग' का प्रदर्शन फिरोज़शाह कोटला के ऐतिहासिक खण्डहरों की पृष्ठभूमि में एक विशाल खुले रंगमंच पर किया जिसमें लोक-नाटक शैली के प्रदर्शनतत्वों और मध्ययुगीन रंगमंच की रूढ़ियों का बड़ा ही रोचक और सृजनात्मक प्रयोग किया। उन्होंने बहुदृश्यबंध वाले और बहुधरातलीय अभिनय-क्षेत्र का निर्माण

किया जो पारंपरिक रंगमंच की पद्धतियों और व्यवहारों के बहुत निकट है। शम्भु मित्र ने छठे दशक के आरम्भ में टैगोर के नाटक 'राजा' के प्रदर्शन में संवाद, गीत और गतियों के समन्वय से एक सर्वथा नयी प्रदर्शन-शैली का विकास किया। उत्पल दत्त ने अपने कई नाटकों में जात्रा रंगमंच से प्रेरणा ली और उसकी युक्तियों और रूढ़ियों को अपनाया। श्यामानन्द जालान ने 'एवम् इन्द्रजित्' और ज्ञानदेव अग्निहोत्री के 'शुतुरमुर्ग' के प्रदर्शन में अत्यन्त व्यंजनापूर्ण अभिनटन और अर्द्ध-नृत्यवत् गतियों का प्रयोग करके एक नयी रूढ़िधर्मी अभिनय शैली का विकास किया। हबीब तनवीर ने छठे दशक के आरम्भ में ही संस्कृत नाटक 'मृच्छकटिकम्' का उर्दू अनुवाद नौटंकी शैली में प्रस्तुत किया और 'आगरा बाज़ार' के प्रदर्शन में लोक रंगमंच के सभी तत्वों को उनके श्रेष्ठतम रचनात्मक रूप में प्रयुक्त किया। कारन्त ने गिरीश कारनाड के नाटक 'हयवदन' के प्रदर्शन में रूढ़िधर्मी मुखसज्जा और अभिनटनपरक नृत्यवत् गतियों के साथ नयी अभिनय शैली विकसित की।

यदि हम व्यापक रूप से पिछले दस-पन्द्रह वर्षों के रंगमंच-इतिहास का अवलोकन करें तो हम देखेंगे कि नयी चेतना के नाटकों और उनके प्रदर्शन में एक प्रकार का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है—नये नाटक की पूर्णाभिव्यक्ति प्रदर्शन में ही होती है। 'अन्धा-युग' और 'आषाढ़ का एक दिन' की रचना १९५५ और १९५९ में हुई। उनके प्रदर्शन छठे दशक के आरम्भ में ही हो पाये। 'आषाढ़ का एक दिन' का प्रदर्शन श्यामानन्द ने १९६० में कलकत्ते में और अलकाज़ी ने नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा के विद्यार्थियों को लेकर १९६२ में दिल्ली में किया। सत्यदेव दुबे ने १९६२ में बम्बई में और अलकाज़ी ने १९६४ में दिल्ली में 'अन्धा-युग' का प्रदर्शन किया। किन्तु जैसे-जैसे रंगमंच का यह नया आन्दोलन अधिक तीव्र और संगठित होता जाता है, यह अन्तराल घटता जाता है और आज यह स्थिति है कि किसी भारतीय भाषा में कोई अच्छे स्तर का नाटक लिखा जाता है, तो कुछ ही महीनों में उसका प्रदर्शन हो जाता है कभी उसी भाषा में, कभी हिन्दी में, और हिन्दी से अनूदित होकर कितनी ही अन्य भाषाओं में। 'तुग़लक़' का प्रकाशन १९६५ में हुआ; कुछ ही महीनों में बम्बई में 'इंडियन नेशनल थिएटर' ने और दिल्ली में 'कन्नड़ भारती' ने इसका प्रदर्शन कन्नड़ में किया। १९६७ में 'नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा' ने उर्दू में इसे प्रदर्शित किया; और उसके बाद मराठी, बँगला और अंग्रेजी में इसके प्रदर्शन हुए। 'खामोश, अदालत जारी है' का प्रदर्शन मराठी में १९६७ में हुआ जबकि नाटक प्रकाशित नहीं हुआ था। इसका निर्देशन सुलभा देश पांडे ने किया। 'आधे अधूरे' १९६९ में प्रकाशित हुआ, और उसी के साथ ओम शिवपुरी ने इसका निर्देशन किया। बड़ी तेज़ी के साथ नये-नये नाटककार, नये नाटक सामने आ रहे हैं, और नयी प्रतिभाएँ साहित्य की दूसरी विधाओं से नाटक की ओर आकर्षित हो रही हैं।

इस संकलन के चारों ही नाटक कथावस्तु और शिल्प की दृष्टि से अपनी-अपनी विशिष्टताएँ रखते हैं, लेकिन साथ-ही वे इस नये नाट्यबोध की उपज हैं, इसलिए उनमें बहुत से तत्व समान हैं। इन नाटकों में कथ्य की जैसी प्रामाणिकता है और यथार्थ में अन्तर्निहित सत्य को उद्घाटित करने का जैसा निर्मम आग्रह है, और उनमें रूप और शैलीगत जैसी प्रयोगशीलता और विशिष्टताएँ हैं, इनके पहले के भारतीय नाटक-साहित्य में दुर्लभ हैं। 'एवम् इन्द्रजित्' और 'खामोश, अदालत जारी है' में नाटक के पात्र, उसकी घटनाएँ, संवाद एक साथ यथार्थ और कल्पना दोनों ही स्तरों पर संचरण करते हैं, और यह दो स्तरों का संचरण ही नाटक को ऐसी नाटकीयता और नयी अर्थवत्ता प्रदान करता है। दोनों स्तर कभी समानान्तर दीखते हैं, कभी वे आपस में मिलते हैं, टकराते हैं और कभी उसकी अपनी प्रकृति मिट जाती है—कल्पना यथार्थ लगने लगती है, यथार्थ कल्पना और इन्हीं अत्यन्त जटिल नाटकीय प्रक्रियाओं के साथ नाटक आगे बढ़ता है। इन नाटकों का रीति-मुक्त रूपबंध और कथास्थितियों की बहुआयामता निर्देशकों को नई-नई शैलियों में प्रस्तुतीकरण की संभावनाएँ प्रदान करते हैं। यही कारण है कि ये नाटक अलग-अलग भाषाओं में और बहुधा एक ही भाषा में, विशेषकर हिन्दी में, अलग-अलग केन्द्रों में विभिन्न निर्देशकों द्वारा प्रस्तुत किये गये। 'तुग़लक' का निर्देशन अलकाज़ी ने उर्दू में किया तो कारन्त ने कन्नड़ में, देशपांडे ने मराठी में, पदमसी ने अंग्रेज़ी में और श्यामानन्द जालान ने बँगला मे। 'आधे-अधूरे' का निर्देशन ओम शिवपुरी ने हिन्दी में किया तो सत्यदेव दुबे ने मराठी में। 'खामोश, अदालत जारी है' का निर्देशन अरविन्द देशपाण्डे ने मराठी में, सत्यदेव दुबे ने हिन्दी और शम्भु मित्र ने बँगला में किया। 'एवम् इन्द्रजित्' का निर्देशन श्यामानन्द जालान, सत्यदेव दुबे और स्वयं बादल सरकार ने किया। राजेन्द्रनाथ द्वारा बादल सरकार के कई नाटकों के अत्यन्त संवेदनशील और परिष्कृत निर्देशनों ने प्रदर्शन की इस समर्थ शैली के विकास में योग दिया है। एक ही नाटक के विविध शैलियों में विभिन्न निर्देशकों द्वारा निर्देशन की यह परम्परा भी भारतीय रंगमंच के इतिहास में सर्वथा नयी है।

इन चारों ही नाटकों में आज के जीवन के तनावों से जूझते और टूटते हुए व्यक्तियों और व्यक्ति और उसके सामाजिक परिवेश को जोड़नेवाले सेतुओं और अवरुद्ध संप्रेषण व्यक्ति-सम्बन्धों की कहानी बड़ी ही कठोर ओर निर्मम सच्चाई तथा प्रामाणिकता के साथ कही गयी है। इस दृष्टि से ये नाटक पिछले खेवे के उन समस्यामूलक सामाजिक नाटकों से सर्वथा भिन्न हैं, जिनमें नाटककार एक बड़ी सतही और खोखली आदर्शवादिता का सहारा लेकर जीवन की इन जटिल समस्याओं का चित्रण प्रस्तुत करता और उनका एक सरलीकृत समाधान प्रस्तुत कर देता था। 'आधे अधूरे' में एक मध्ययुगीन परिवार के विघटित होते हुए और

टूटते हुए सम्बन्ध और जीवन मूल्यों की नंगी तसवीर है, तो 'एवम् इन्द्रजित्' में एक समूची पीढ़ी के जीवन की अर्थहीनता और यान्त्रिकता का जो रूप प्रस्तुत किया गया है, वह भयावह भी है और करुणा भी उपजाता है। 'खामोश, अदालत जारी है' भी बड़े निर्मम और तीखेपन से उन झूठी और खोखली सामाजिक मान्यताओं पर गहरी चोट करता है जो व्यक्ति के मन की सहज आकाँक्षाओं और उससे सामान्य मानवीय व्यवहारों को स्वीकार नहीं कर पायी और उसे कुचलने के प्रयास में स्वयं नग्न हो जाती है। 'तुग़लक' सम्भवतः किसी भी भारतीय भाषामें पिछली आधी शताब्दी में लिखे गए ऐतिहासिक नाटकों में पहला ऐसा नाटक है, जिसमें ऐतिहासिक कथा और पात्रों को उस बिन्दु तक 'अनैतिहासिक' बनाया गया है, जहाँ आकर उनकी समसामयिक अर्थवत्ता और सार्थकता मुखरित हो जाती है, और वह इस नयी चेतना के भारतीय नाटकों की प्रथम पंक्ति में आ जाता है। 'तुग़लक' में जहाँ एक ओर उस कालखण्ड की ऐतिहासिक गाथा उसके सारे अन्तर्विरोधों के साथ प्रस्तुत की गयी है, वहीं वह ऐसे व्यक्ति का भी चित्र प्रस्तुत करता है जो स्वप्नद्रष्टा है, जो आदर्शों की खोज में है, लेकिन जो अपने आसपास के जगत् की मूल्य-भ्रष्टता से घिरकर पूरी तरह विघटित हो जाता है।

नये रंगमंच आन्दोलन की इस व्यापक लहर का प्रभाव हमारे रंगमंचीय क्रियाकलाप के और दूसरे पक्षों पर भी पड़ रहा है। प्रदर्शन और अभिनय के साथ-साथ—रंगसज्जा, वेशभूषा और प्रकाश-योजना में भी पिछले एक दशक में अधिक कलात्मक और कल्पनाशील काम हुआ है। नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा में प्रशिक्षित होकर युवा कलाकारों की एक पूरी पीढ़ी तैयार हो गयी है, जो रंगमंच का कार्य अधिक निष्ठा और अनुशासन के साथ कर रही है। यह भी अपने आपमें एक रोचक बात है कि इस आन्दोलन में इतनी शक्ति है कि वह एक ओर तो नितान्त शौकिया नाट्यकर्म को भी प्रभावित कर रहा है, और दूसरी ओर पेशेवर रंगमंच पर भी उसका प्रभाव पड़ रहा है। इसी आन्दोलन का एक परिणाम यह है कि अंग्रेज़ी के नाटक का प्रदर्शन करने वाले नाट्य दलों ने पहली बार यह अनुभव किया है कि उनके इस कार्य का सृजनात्मक दृष्टि से कोई बहुत उपयोग नहीं है और वह भारतीय रंगमंच का अभिन्न अंग नही बन सकता। इसी अनुभूति के कारण बम्बई और कलकत्ते में अंग्रेजी के नाट्यदल भारतीय नाटकों के अंग्रेज़ी अनुवादों का प्रदर्शन करने लगे हैं। पिछले दो-तीन वर्षों में बम्बई की नाट्य-संस्था 'थियेटर ग्रुप' ने 'तुगलक' और 'आषाढ़ का एक दिन' के प्रदर्शन करके इसी नई प्रवृत्ति का परिचय दिया है। रंगमंच की नयी चेतना की ही उपज और उसकी पोषक नेमिचन्द्र जैन द्वारा संपादित हिन्दी की त्रैमासिक नाट्य-पत्रिका 'नटरंग' और राजेन्दर पाल द्वारा संपादित अंग्रेजी की मासिक पत्रिका 'इनैक्ट' है।

नई चेतना के इस रंगमंच की शक्ति का एक स्रोत उसका नया, संवेदनशील

और उत्साही दर्शक समाज है जो रंगमंच को एक सस्ते मनोरंजन का साधन न मानकर उसे जीवन के साथ साक्षात्कार का एक ईमानदार माध्यम मानता है। नए रंगमंच ने दर्शकों की रुचियों का परिष्कार भी किया है, और नए दर्शक-वर्ग का निर्माण भी। दिल्ली तथा अन्य अनेक केन्द्रों में दर्शक-वर्ग का अवरुद्ध-विस्तार 'आधे अधूरे' और 'ख़ामोश, अदालत जारी है' के प्रदर्शनों से सहसा टूट गया, और रंगमंच नें हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में अपना स्थान बना लिया, जो 'सामूहिक अनुभव' की कला होने के नाते उसका अधिकार है—पिछले तीन हज़ार वर्षों से।

—सुरेश अवस्थी

निर्देशक का वक्तव्य

इब्राहिम अलकाज़ी

दृश्य-विधान

'तुग़लक' की प्रस्तुति की परिकल्पना हमने नैशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा के खुले रंगमंच के ख़याल से तैयार की थी। मंच का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है जिसमें पीपल का एक बृहदाकार और सुन्दर पेड़ इस प्रकार स्थित है कि वह कार्य-व्यापार को एक केन्द्र प्रदान करने के साथ-साथ मंच-चित्र को अन्विति भी देता है।

प्रस्तुत नाटक विशद निरूपण के उपयुक्त तो है ही, वह वस्तुत: उसकी माँग भी करता है। अतएव दृश्य-विधान की कल्पना ऐसी होनी चाहिए जो कार्य-व्यापार की व्याप्ति और शक्ति को बल प्रदान कर सके। सबसे पहले तो अग्रमंच का वह मुख्य कार्य-क्षेत्र है जिसका भीड़ के दृश्यों और जुलूस के दृश्यों के लिए पूरा-पूरा इस्तेमाल होता है।[1] पृष्ठमंच के दक्षिण में तुग़लक का अध्ययन-कक्ष है। इसे सुरुचि से सजाया गया है: दीवार से दीवार तक फ़र्श बिछाया गया है। इसमें शाही तख़्त और दो नीची मेज़ें हैं जिनमें से एक पर उनकी शतरंज बिछी है और दूसरी पर हरे रेशमी कपड़े से ढकी क़ुरान पाक़ रखी है रहल पर। क़ारी (क़ुरान पाक़ की आयतें पढ़नेवाला) इसका इस्तेमाल करता है जिससे मैंने नाटक के दौरान उपयुक्त अवसरों पर आयतें पढ़ने वाले पात्र का काम लिया है। अध्ययन-कक्ष की पिछली दीवार पर कई ताख़ हैं जो किताबों, नक्शों, पाण्डुलिपियों और यन्त्रों से ठसाठस भरे हैं ताकि तुग़लक की अध्ययनशील, वैज्ञानिक और अन्वेषणप्रिय रुचि का संकेत मिल सके। तुग़लक के मस्तिष्क में अत्यन्त मौलिक और साहसिक परिकल्पनाएँ बुदबुदाती रहती हैं: जैसे दौलताबाद में नए नगर की योजना; दिल्ली

---

१. सारे निदश अभिनेता को दृष्टि में रखकर दिये गये हैं। मंच-दक्षिण का अर्थ है दर्शकों की ओर मुँह करके मंच के बीच में खड़े अभिनेता के दाहिने हाथ की ओर। अग्र-मंच का अर्थ है दर्शकों की ओर और पृष्ठमंच का अर्थ है दर्शकों से हटकर पीछे की ओर।

से दौलताबाद जाने वाले हजारों-लाखों परिवारों के लिए परिवहन, भोजन और दवा-दारू की बहुमुखी व्यवस्था; ताँबे के नये सिक्कों का चलन; नई प्रतिभाओं को प्रेरित करने के उद्देश्य से विद्यालयों और विद्या-भवनों की स्थापना (क्योंकि तुग़लक का यह गुण अत्यन्त विलक्षण था); नई सड़कों और सिंचाई व्यवस्था की परियोजना आदि-आदि। मूल अभिप्राय यह है कि एक ऐसे प्रतिभाशाली चरित्र का चित्रण हो जाय जो दूरदृष्टि में अपने समय से शताब्दियों आगे था और जिसका आधुनिक मन इस विशाल देश को एक राष्ट्र का रूप देने में लगा था, और जो इसी कारण अपने अमीर-उमराओं के संकीर्ण, सामन्तीय, क्षुद्र दृष्टिकोण को घृणा की दृष्टि से देखता था और क़दम-क़दम पर अपना धैर्य खो बैठता था क्योंकि उस की यह आकाँक्षा थी कि हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियाँ मिलकर एक हो जाएँ। तुग़लक की सारी विडम्बना यही है कि वह एक ऐसा द्रष्टा था जिसके दृष्टिकोण की व्यापकता उसके समकालीनों के लिए अबूझ पहेली थी। जब तक तुग़लक के चरित्र को यह आयाम न दिया जाय तब तक यह नाटक अर्थहीन रक्तपात और हिंसा का ही कांड बनकर रह जायगा।

तुग़लक के व्यक्तित्व के इस पहलू के बारे में मैंने कुछ विस्तार से लिखा है क्योंकि दृश्यबन्ध का एक विशिष्ट अंग यानी उसका अध्ययन-कक्ष ऐसा होना ज़रूरी है जो दृश्य के माध्यम से दर्शकों तक उसके इस पहलू का सम्प्रेषण कर सके। जैसा कि वह अपनी सौतेली माँ को बताता है, वह रात में घंटों अकेले बैठा पढ़ता-लिखता रहता है और मन ही मन अपनी योजनाओं को उलटता-पलटता रहता है। नाटक में दो दृश्य ऐसे हैं जिनमें सौतेली माँ को चुपचाप, रात गये उसके मन की बात जानने के लिए और शायद उसकी अंकशायिनी बनने के लिए उसके इस कक्ष में आते दिखाया गया है। वह जवान है, महत्त्वाकाँक्षिणी है, तुग़लक से प्यार करती है और राजसत्ता के अधिकाधिक निकट रहना चाहती है।

यथार्थवादी दृश्यविधान से प्रायः शून्य खुले मंच पर यह ज़रूरी होता है कि कुछ विशिष्ट भागों को कतिपय प्रमुख चरित्रों के साथ सम्बद्ध कर दिया जाय। तुग़लक का अध्ययन-कक्ष ऐसा ही भाग है। दूसरा भाग है हरम यानी सौतेली माँ का महल। यह एकदम पीछे की ओर है। मंच के केन्द्र से एक लम्बा रास्ता इस तक पहुँचता है जहाँ एक विशालकाय दरवाज़ा है : इस दरवाज़े की मेहराब, उस पर किया गया लिप्यंकन और अन्य मेहराबें—सब की सब तुग़लक-कालीन वास्तुकला और प्रकल्पना की विशेषताओं पर आधारित हैं जिसके नमूने तुग़लकाबाद में बनी ग़ियासुद्दीन तुग़लक की कब्र पर देखे जा सकते हैं। पर्सी ब्राउन के ग्रंथ 'इंडियन आर्कीटेक्चर (द इस्लामिक पीरियड)' में इस विषय की प्रचुर प्रामाणिक जानकारी मिलती है जिसके साथ अनेक रेखांकन और छायाचित्र भी दिये गये हैं। हम कई बार इन स्थलों को देखने गये ताकि हमें उनके स्वरूप,

बनावट और प्रसार का अन्दाज़ हो जाय। इस काम में हमें तत्कालीन वास्तुकला के विशेषज्ञ एक वास्तु-विशारद का भी मार्गदर्शन मिला। हालाँकि हम कोई यथार्थ-वादी दृश्यबन्ध नहीं बना रहे थे, फिर भी यह ज़रूरी था कि रूपरेखा, गुरुता और अनुपात उस युग की विशेषताओं के लिए सही हों।

हर अवसर पर सौतेली माँ अपनी बाँदियों के साथ इसी दरवाज़े से मंच पर प्रवेश करती है। जब वह तुग़लक के साथ अकेली रहना चाहती है तो बाँदियाँ रुख़सत हो जाती हैं।

पृष्ठकेन्द्र से एक चौड़ा ज़ीना दाहिनी ओर के चबूतरे तक जाता है जिस पर ऊँची मेहराब है। यह मंच का सबसे ऊँचा स्तर है, और यह मेहराब मंच का सबसे प्रमुख आकार। इसी की राह से तुग़लक अपने परिसर के साथ दो बार पूरे समारोह से मंच पर प्रवेश करता है—पहली बार पहले दृश्य में जब वह लोगों की भीड़ को सम्बोधन करता है, और दूसरी बार तब जब वह नाटक के उत्तरार्ध में खलीफ़ा के नुमाइन्दे की अगवानी करता है। इन दोनों महत्त्वपूर्ण अवसरों पर तुग़लक चित्र के शीर्ष में स्थित रहता है, सबके ऊपर, बहुत ऊँचे ताकि सबकी नज़रें उस पर टिक सकें। इस मुख्य मेहराब की स्थिति की मदद से ही तुग़लक और उसका परिसर मंच को तिरछे पार करता हुआ अग्रमंच तक पहुँचता है और फिर उसी प्रकार लौटकर मंच को तिरछे पार करता हुआ पृष्ठमंच की दाहिनी ओर से प्रस्थान कर जाता है।

अग्रमंच की बायीं ओर से जो सीढ़ियाँ जाती हैं वे दो चबूतरों पर पहुँचती हैं। निचले चबूतरे से जंगल के खुले स्थान का काम लिया जाता है जब खलीफा अज़ीज़ के हाथ पड़ जाता है। साथ ही वह अज़ीज़ के कक्ष का भी काम देता है जब वह खलीफ़ा के बेश में तुग़लक के दरबार में आता है। उपरला चबूतरा षट्-कोण की शक्ल का है जिसके पीछे ऊँचे-ऊँचे पेड़ हैं और अगल-बगल में जंगली घास छायी है। यह दौलताबाद के किले की फ़सील और कंगूरों का काम देता है जिसका सातवें दृश्य के रातवाले दृश्य में तुग़लक इस्तैमाल करता है।

इस प्रकार कुल मिलाकर यह दृश्यविधान संकेतात्मक और वस्तुपरक है जिसमें अलग-अलग स्तरों पर अभिनय-क्षेत्र हैं जो परस्पर सीढ़ियों से जुड़े हैं। इसकी चित्रात्मकता बड़ी प्रभावशाली हो जाती है और उसमें नम्यता की काफ़ी गुंजाइश रहती है। हमारे पास गहराई की जो सुविधा थी उसका हमने दूरी और परिप्रेक्ष्य की स्थापना के लिए भरपूर उपयोग किया। उदाहरण के लिए, दूसरे दृश्य में जब तुग़लक क़ारी का क़ुरान-पाठ सुनता है[1] तब सौतेली माँ अपनी

१. क़ुरान पाक़ की आयतें सुनने का वर्णन नाटक में नहीं था लेकिन एक सही वातावरण बनाने के लिए हमने इसे इस दृश्य में स्थान दिया।

बाँदियों के साथ मशालों की रोशनी में दरवाज़े के नीचे से आती दिखाई पड़ती है। पहले दृश्य की कोलाहलपूर्ण भीड़ और उग्र समारोह-संगीत के विपरीत इस समय के दृश्य और ध्वनि प्रभाव एकान्त और शान्ति की मन:स्थिति का संकेत कर देते हैं।

पहले से छठे दृश्य के लिए पूरे मंच पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक फर्श बिछा दिया जाता है। इतिहासकार इब्न-बतूता ने तुग़लकाबाद के तत्कालीन वर्णन में लिखा है, 'यहीं पर तुग़लक के महल और खज़ाने थे। और यहीं पर उसका बड़ा महल था जिसको उसने सोने की ईंटों से बनवाया था। सूरज निकलने पर ये ईंटें इतनी चमचमाती थीं कि कोई उनकी तरफ़ टकटकी नहीं लगा पाता था।' ये कीमती फ़र्श (फ़र्श किराये पर बहुत सस्ते मिल जाते है) तुग़लक के दरबार की शान-शौक़त और तड़क-भड़क का वातावरण बना देते हैं और सातवें दृश्य से दौलताबाद की उजाड़ दशा का वैषम्य स्थापित कर देते हैं क्योंकि तब सारे फर्श हटा दिये जाते हैं। इतना ही नहीं, ये फ़र्श एक व्यावहारिक आवश्यकता की भी पूर्ति करते हैं। शुरू के दृश्यों में अधिकांश बहुतेरे लोगों को बैठा दिखाया जाता है। और जैसा कि सभी तत्कालीन तुर्की चित्रों में दिखाया गया है, बादशाह तो तख्त पर बैठता है पर और सभी अमीर-उमरा फ़र्श पर बैठते हैं। इस सरल युक्ति से उपयुक्त वातावरण की रचना करने में तो सहायता मिलती ही है, पात्रों की सुन्दर पोशाकें भी मैली हो जाने से बच जाती हैं।

यह आवश्यक है कि इस नाटक की प्रस्तुति तत्कालीन मुस्लिम दरबार का वातावरण उपस्थित करे। इल्तुमिश और बलबन के ज़माने से ही दरबारी अदब-क़ायदे की बारीकियों का वर्णन मिलने लग जाता है। 'तबक़ात-अल-नासिरी' से लेकर 'आईने-अकबरी' तक के सारे ऐतिहासिक विवरणों में और लघु चित्रों में दरबारी अदब-क़ायदों के संकेत मिलते हैं और हमें अपनी खोज और जानकारी के लिए उनकी मदद लेना ज़रूरी है। यह काम सिर्फ ऊपरी अलंकरण नहीं है; यह तो नाट्यगत अर्थ का घनिष्ठ अंग है और चरित्रों के सम्बन्धों को स्थापित करने में सहायक होता है। उदाहरण के लिए, सौतेली माँ की तरह परदे में रहनेवाली बेगम राजनीतिक मामलों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने का निश्चय करने के बाद मर्दों के बीच किस तरह का आचरण करे? अमीर-उमरा उसके साथ कैसा आचरण करें? तुग़लक उसके साथ कैसा आचरण करे? शाही जुलूस में किसको कहाँ जगह दी जाए? इबादतवाला इतना महत्त्वपूर्ण दृश्य किस तरह पेश किया जाय? अमीरों की पगड़ियाँ कैसी हों? नमाज़ में आगे कौन रहे? जुमे की नमाज़ में आयतें मन ही मन बोली जायें या ज़ोर-ज़ोर से? नाटक के दृश्यों में अमीर-उमरा कब-कहाँ तो जूते पहनें और कब-कहाँ नंगे पैर रहें? ऐतिहासिक नाटक के मंचन में इन सारे विवरणों पर बड़ा ध्यान देना पड़ता है, लेकिन दुर्भाग्य से अपने भारतीय

रंगमंच में इन्हीं बातों की उपेक्षा कर दी जाती है।

उदाहरण के लिए तुग़लक द्वारा शेख इमामुद्दीन को शाही लिबास पहनाने का दृश्य ही ले लीजिए। तुग़लक उसे क्रम से पहले शाही चोग़ा देता है, फिर कमरबन्द, फिर तलवार और फिर पगड़ी ताकि पगड़ी पहनते ही वह हर तरह से तुग़लक जान पड़े। सिर्फ इसलिए नहीं कि वह शेख को इस वेश में मौत के घाट उतरवा देता है, वरन् इसलिए भी कि प्रतीकात्मक रूप में वह अपने व्यक्तित्व के ही एक पक्ष की हत्या कर रहा है।

खलीफ़ा ग़ियासुद्दीन की समारोहपूर्वक अगवानी भी अत्यन्त नाटकीय महत्त्व की है, क्योंकि यही पर पहली बार नाटक के दो प्रमुख सूत्र मिलते हैं : तुग़लक अपने ही विद्रूप के, अपने ही प्रतीक "मै" के आमने-सामने खड़ा होता है।

निर्देशक का यह मूलभूत कर्तव्य है कि वह नाटक के अर्थ को सशक्त दृश्य-बिम्बो के ऐसे क्रम मे जमा दे कि दर्शकों को अनजान में ही उसका ग्रहण सुलभ हो जाय। लेकिन यद्यपि दर्शक तो उस अर्थ को अनजाने ही आयत्त करते हैं, निर्देशक को अपना एक-एक प्रभाव अत्यन्त सावधानी और मनन से नियोजित करना पड़ता है ताकि रूप, रंग, छन्द और ध्वनि परस्पर मिलकर एक सम्पूर्ण परिकल्पना में प्रस्फुटित हो जाएँ। कुछ बातें यदि वह भित्ति-चित्रों की शैली में दूर-दूर और बड़ी-बड़ी रेखाओं में खीचता है तो कुछ अंतरंग दृश्य वह लघु-चित्रों की शैली में नन्ही-नन्ही रेखाओं से अंकित करता है।

वेश-भूषा

दरबार की रंग-व्यवस्था तुर्की लघु-चित्रों में उपलब्ध फीरोज़ी, लाल, हरे और सुनहरे रंगों पर आधारित है। ये रग उस युग की मूलभूत चाक्षुष भावना प्रकट करते हैं। पर इनके अलावा पोशाकों के कटाव, छायाकृति और घेर का भी महत्त्व है।

नाटक में चार प्रमुख समूह हैं : १. भीड़, जो मिट्टी के रंगों में आती है—मुख्यतः भूरे और धूसर रंगों में; २. अमीर-उमरा, जो भूरी और चटख़ गुलाबी पोशाकों में एक सुसम्बद्ध समूह के रूप में तुग़लक के विरुद्ध षड्यंत्र करते हैं; ३. दरबारी औरतें, जो फिरोज़ी, पन्ना और सोने के रंग की पोशाकें, जड़ाऊ टोपियाँ और सलमा-सितारे की चुनरियाँ पहनती हैं। इस व्यवस्था का उद्देश्य है उनके नारी-सुलभ आकर्षण पर बल देना और दरबार की मरदानगी से उनके वैषम्य को उजागर करना; ४. और तुग़लक जो या तो काली और सुनहरी पोशाक पहनता है या सफ़ेद और सुनहरी, और हर दृश्य में शाही अन्दाज़ में औरों से अलग दिखाई देता है। इबादत के दृश्य में वह काली पोशाक पहनता है और सिर को काली और धूसर धारियों वाले रूमाल से ढकता है। उसकी हत्या के प्रयास के बाद जब बन्दी

अमीर और सिपाही एकदम अचल खड़े रह जाते हैं तब एक तुग़लक ही अविचलित भाव से झुकता और उठता, इबादत करता दिखाई देता है।

सिपाहियों को चमड़े के ज़िरहबख़्तर, लोहे के नोकदार कनटोप, लोहे के छल्लों वाली चमड़े की पेटियाँ, बूट, तलवार और भाले दिये गये हैं। ज़ंजीरों की खनखनाहट, तलवारों की झनझनाहट और चमड़े का वज़न और भारीपन मिलकर एक ठोस फ़ौज़ी समा बाँध देते हैं।

संगीत

महीनों तक सुनते रहने के बाद कहीं जाकर मैं वे टुकडे चुन पाया जिनको मिलाकर एक तरह से नाटक के संगीत की रचना की गई। ये टुकड़े मुख्यतः पारंपरिक तुर्की और फारसी संगीत से लिये गये हैं। प्रमुख रूप से इनकी तीन कोटियाँ हैं : १. दरबारी समारोह और जुलूस का संगीत; २. खुद तुग़लक के लिए वस्तुगीत जिसमें दृश्य-विशेष के वातावरण और मनःस्थिति के अनुकूल काफ़ी रद्दोबदल होता रहता है; और ३. स्थिति के अनुसार क़ुरान की आयतों का पाठ। यह पाठ एक मिसरी क़ारी ने किया जिन्हें इस समय दुनिया का सबसे उत्कृष्ट क़ारी माना जाता है। और सब बातों से बढ़कर क़ुरान पाक़ की इन आयतों ने ही नाटक के लिए उपयुक्त मनःस्थिति का निर्माण किया और तुग़लक के निजी वैयक्तिक संघर्ष को धार्मिक महत्त्वाकाँक्षा और आस्था की वृहत्तर पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित किया। क़ुरान पाक़ का यह पाठ कानों में निरन्तर गूँजता रहता है और एक ऐसे अकेले व्यक्ति के प्रयास की असफलता व्यंजित करता है जिसके पास अपने ईश्वर के भरोसे के अलावा और कोई सहारा नहीं हे।

गिरीश कारनाड

तुग़लक

कन्नड़ से अनुवाद : ब० व० कारन्त

पात्र

आज़म	हिन्दू औरत
अज़ीज़ (ब्राह्मण)	हिन्दू औरत का शौहर
मुहम्मद (सुलतान)	काका
सौतेली माँ	बूढ़ा
नजीव (वज़ीरे-आज़म)	एक शख़्स
बरनी (वाक़या-नवीस)	लोग १
शेख़ इमामुद्दीन	लोग २
शहाबुद्दीन	लोग ३
रतनसिंह	अमीर १
ग़ियासुद्दीन	अमीर २
शम्सुद्दीन (इमाम)	ढिंढोरची १
सैयद	ढिंढोरची २
करीम	नक़ीव
बुज़ुर्ग आदमी	ऐलान करने वाला
जवान	दरवान
शरीफ़	चोवदार
मज़हवी आदमी	सिपाही
हिन्दू	और अन्य

दृश्य : १

(ई० १३२७)

दिल्ली की एक अदालत का बाहरी हिस्सा, जहाँ लोगों का मजमा जमा है। मजमे में ज्यादातर मुसलमान हैं।

बुज़ुर्ग आदमी : कौन जाने हमारे मुल्क का अब क्या होगा !

जवान : क्यों बुज़ुर्गवार, कौन-सी आफ़त टूट पड़ी है आप पर ?

बुज़ुर्ग आदमी : एक हो तो बताऊँ ! मेरे सफ़ेद बालों की तरफ़ देखो जमाल, न जाने अब तक मैंने कितने सुलतानों को इस सरज़मीन पर बनते-मिटते देखा है। मगर यक़ीन मानो, ख्वाब में भी यह नहीं सोचा था कि एक दिन किसी ऐसे भी सुलतान को अपनी आँखों देखना पड़ेगा, जो ख़ुद एक मुजरिम की तरह हाथ बाँधे काज़ी के सामने पेश होगा।

जवान : आपका ज़माना लद गया, बुज़ुर्गवार ! वो भी क्या सुलतान हुआ जो रिआया से कोसों दूर किलेनुमा बन्द महल में बैठा हुकूमत करे। हक़ीक़त में सुलतान वो है, जो आम आदमी की तरह ग़लत-सही काम करके भी तरक़्क़ी करे !

शरीफ़ : तुम समझे नहीं जमाल, सुलतान ग़लती करे या न करे... अपनी बला से। लेकिन अपनी ग़लतियों का गली-गली ढिंढोरा पिटवाने के क्या माने ? ऐसे में क्या कल रिआया शाही हुक्मों की क़द्र भी करेगी ? लगान देगी ? जंग में जायेगी ? ये तो वही मिसल हुई कि ख़ुद सुलतान ऐलान करें कि मेरी रिआया बाग़ी हो जाये।

मज़हबी आदमी : और वो भी एक देहाती बिरहमन के हाथों सज़ा क़बूल करे ! अल्लाह् रहम करे, अब तो दीनो-ईमान ग़ारत ही समझो !

जवान : ईमान क्यों ग़ारत होगा जनाब ? शाही फ़रमान से क्या आप आगाह नहीं कि हर मुसलमान हर रोज़ लाज़मी तौर पर पाँच बार नमाज़ पढ़े ? दूसरे कौन से सुलतान के अमल में क़ुरान-शरीफ़ पढ़ने वालों को गली-कूचों में घूमते देखा है ? आप ही फरमाएँ जनाब ! आप पहले कितनी बार नमाज़ पढ़ा करते थे ?

बुज़ुर्ग : महज़ क़ुरान-शरीफ़ लादे घूमने से कुछ हासिल नहीं होता, जमाल ! क़ुरान की तालीम को अमली सूरत दो, तो हम मानें ।

मज़हबी : हाँ, सुनो तो, सुलतान फरमाते हैं कि अब हिन्दू जज़िया न दें ! इससे सिवाय हिन्दुओं के और किसी को कुछ फ़ायदा है ? ख़ैर, छोड़ो एक-न-एक दिन सुलतान खुद समझ जायेंगे ।

हिन्दू : पर मैं कहता हूँ कि इससे हिन्दुओं को रत्ती भर लाभ नहीं होने का । मेरी राय यह है कि मुसलमान मुसलमान ही बना रहे, और हिन्दू हिन्दू ही । लेकिन अपने सुलतान की बातों का तो कोई सिर-पैर ही नहीं मिलता । फ़रमाते हैं...'तुम कोई भी हो...चाहे हिन्दू या मुसलमान...सबसे पहले तुम इन्सान हो ! ' इन्सान ! राम राम ! ये कब क्या कर बैठेंगे, कोई यक़ीन नहीं । जानते हो ताज़ा फ़रमान क्या है ? 'हिन्दू लोग सती-रिवाज को बन्द कर दें ।' अति हो गई । तब फिर हिन्दू-धर्म की ख़ूबी ही क्या रहेगी ?

जवान : कैसे एहसान-फरामोश हैं आप ! सुलतान के हाथ में चाबुक रहे, तभी आप उसकी इज़्ज़त करेंगे ।

ढिढोरची अदालत से बाहर आता है । ढिढोरा पीटता है । खामोशी छा जाती है ।

ढिंढोरची : हाज़रीन ! हाज़रीन, ख़ामोश हो जाएँ ।
हाकिमे-अदालत, काज़ी-ए-मुल्क के बरहक़ फ़ैसले को सुनने के लिए तैयार हो जाएँ ।
गाँव शिकनार की रैयत के फ़रियादी बिरहमन बिष्नु परसाद की इस दरख़्वास्त पर, कि ख़ुदा-बन्द सुलतान

मुहम्मद शाह के हाकिमों ने हमारी जो ज़मीन ज़ब्त कर कर ली थी उसके असली मालिक हम हैं इसलिए वह हमें वापस कर दी जाए, हाकिमे-अदालत काज़ी-ए-मुल्क ने बिरहमन के हक़ में अपना फ़ैसला सुना दिया है।

इकट्ठी भीड़ में ज़रा-सा शोर-गुल शुरू होता है—जिसे ढिंढोरा पीटकर ख़ामोश किया जाता है।

: हाकिमे-अदालत ने फ़रमाया है कि बिष्नु परसाद की दरख़्वास्त बिल्कुल जायज़ है। इसलिए सुलतान मय-जुरमाना वह ज़मीन बिरहमन को वापस कर दें।

ढिंढोरे की आवाज़ के साथ ढिंढोरची चला जाता है, और मजमे में फिर शोर-गुल बढ़ने लगता है।

शरीफ़ : ये तो अँधेर है। इस हंगामे का क्या मतलब ? या अल्लाह, हमारे सुलतान के होशो-हवास सलामत रख !

हिन्दू : मैं कहूँ, इस पर भरोसा ही न करो ! मेरी राय यह है कि इस कांड के पीछे ज़रूर कोई साज़िश है।

नक़ीब : होशियार ! होशियार ! बा-अदब, बा-मुलाहिज़ा होशियार ! ख़ुदा की राह के रहनुमा, रसूल के पैरो, ख़लीफ़ा के मददगार, ख़ुदातर्स सुलतान मुहम्मद बिन तुग़लक तशरीफ़ ला रहे हैं !

शोर थम जाता है, सुलतान मुहम्मद बाहर आता है।

नक़ीब : हक़ के तरफ़दार, अदलो-इन्साफ़ की तसवीर सुलतान मुहम्मद...

सब : सलामत रहें।

मुहम्मद : हमारी अज़ीज रिआया ! हाकिमे-अदालत, काज़ी-ए-मुल्क का फ़ैसला आपने सुना। हमारे चन्द कारिंदों की वजह से एक बिरहमन के साथ जो ज़ुल्म हुआ, आपने देखा। हमने उस जुर्म का इक़बाल करके इन्साफ़-पंसदी और हक़ का रास्ता इख़्तियार किया है। मज़हबी तफ़रीक़ की वजह से, टुकड़ों में बिखरी हुई हमारी सलतनत की तवारीख़ में, आज का यह लम्हा हमेशा ज़िन्दा रहेगा। इस पाक लम्हे को गवाह रखकर हम चन्द अल्फ़ाज़ तवारीख़ के पन्नों पर

दर्ज कराना चाहते हैं। हमेशा से हमारी ख़्वाहिश रही है कि हमारी सलतनत में सबके साथ एक जैसा सलूक़ हो। खुशियाँ हों, शादमानी हो, और हर शख़्स को हक़ और इन्साफ़ हासिल हो। अपनी रिआया के अमनो-अमान ही नहीं, बल्कि ज़िन्दगी के हम ख़्वाहिशमंद हैं...ज़िन्दा-दिली और खुशहाली से भरपूर ज़िन्दगी। हम अपनी अज़ीम सलतनत की भलाई के लिए एक नया क़दम उठाना चाहते हैं। हमारी तजवीज़ है कि इसी बरस हम अपना दारुल-ख़िलाफ़ा दिल्ली से दौलताबाद ले जाएँ!

भीड़ में हलचल, फिर कानाफूसी, जो बढ़ते-बढ़ते शोरगुल की सूरत इख़्तियार कर लेती है। मुहम्मद हाथ के इशारे से आवाज़ को ख़ामोश क़र देता है, और अपनी तक़रीर जारी रखता है।

: हाँ, आप लोगों को हमारी तजवीज़ सुनकर ज़रूर हैरत हुई होगी। लेकिन हम सबको बता देना चाहते हैं कि यह किसी मग़रूर सुलतान का बेमानी ख़ब्त नहीं है। इसकी ठोस वजह है। दिल्ली हमारी सलतनत की उत्तरी सरहद के क़रीब आबाद है, जहाँ हर लम्हे मुग़लों के हमलों का ख़तरा दरपेश रहता है। और आप जानते ही हैं कि हमारी सल्तनत दूर दक्खिन तक फैली हुई है। एक दौलताबाद ही हमारी सलतनत के बारह सूबों के मरकज़ में आबाद है जहाँ से हम अपनी लम्बी-चौड़ी सलतनत के हर कोने पर हुकूमत की मज़बूत गिरफ़्त क़ायम रख सकते हैं। इससे भी अहम बात यह है कि दौलताबाद हिन्दुओं की आबादी है। हम अपने दारुल-ख़िलाफ़े को वहाँ ले जा कर हिन्दुओं और मुसलमानों में एक मज़बूत रिश्ता क़ायम करना चाहते हैं। इस नेक काम की ख़ातिर हम आप सब को दौलताबाद आने की दावत देते हैं। दावत दे रहे हैं, हुक्म नहीं। जिन्हें हमारे ख़्वाबों की सदाक़त पर ज़रा भी यक़ीन हो, वही आएँ। महज़ उनकी मदद से हम एक ऐसी मिसाली हुकूमत क़ायम करेंगे जिसे देखकर सारी दुनिया दंग रह जाये। हमारे ख़्वाबों की ताबीर बनने वालो! खुदा हाफ़िज़।

मुहम्मद भीतर की तरफ़ मुड़ जाता है। क़ाज़ी, सिपाही, सब चले जाते हैं। 'सुलतान सलामत रहें' का नारा दुबारा सुनाई पड़ता है।

शरीफ़ : कैसी खौफ़नाक तजवीज़ है। सुलतान मामूली भूल करे तो फ़रियाद भी की जाए, मगर ऐसी संगीन भूल का दुखड़ा कहाँ रोएँ जनाब ?

मज़हबी : यह तो ज़ुल्म है, सरासर ज़ुल्म ! अपने वालिद के क़त्ल से जी नहीं भरा तो हम पर आफ़त ढाने पर तुले हैं। आख़िर दारुल-ख़िलाफ़े को दिल्ली से उखाड़ कर...

जवान : बस, बस, ख़बरदार जो सुलतान के ख़िलाफ़ एक लफ़्ज़ भी कहा।

मज़हबी : मुझ पर आँखें क्यों तरेरते हो, साहबज़ादे ? सारा जहान जानता है कि तुम्हारे सुलतान ने किस तरीक़े से अपने वालिद और भाई को क़त्ल कराया था। उतने से कलेजा ठंडा नहीं हुआ तो चले दारुल-सलतनत को...

जवान : आप मौजूद थे वहाँ ?

मज़हबी : कहाँ ?

जवान : जहाँ सुलतान के वालिद का इन्तक़ाल हुआ ?

मज़हबी : मेरी मौजूदगी से क्या होता है ? जो मौजूद थे...

जवान : मैं मौजूद था ! सुलतान, उनके वालिद, और भाई लकड़ी के बने मचान पर बैठे शाही फ़ौज का जुलूस देख रहे थे। उसी वक़्त अज़ान की आवाज़ सुनाई दी, और ख़ुदातर्स सुलतान नमाज़ के लिए मचान से बाहर आए। इत्तिफ़ाक़ से जुलूस में से एक मतवाला हाथी अचानक मचान पर चढ़ बैठा। बस, बिजली की कड़क जैसी आवाज़ हुई, और मचान लहराता हुआ एकदम नीचे ज़मीन पर आ गिरा। बेचारे ! सुलतान के वालिद और भाई दोनों मलबे के नीचे दबकर मारे गये। ख़ुदा का करम कि नेक-दिल सुलतान बाल-बाल बच गए।

हिन्दू : **(व्यंग्य से)** अच्छा ! मगर नेक-दिल सुलतान को उसी वक़्त बाहर निकल आने का इलहाम कैसे हुआ ?

जवान : आप नहीं जानते कि हमारे सुलतान नमाज़ के किस क़दर पाबन्द हैं ?

शरीफ़ : हाँ, हाँ, बख़ूबी ! दिल्ली-भर के बाशिंदों को डंडे के ज़ोर

से नमाज़ में हाँक देने का वह पाक काम और कौन कर सकता है ? मगर ताज्जुब तो यह है कि उस हाथी ने नमाज़ की पाबन्दी कब से सीखी !

सब लोग हँसते हैं।

: इसके अलावा वह लकड़ी का मचान भी, सुना है, नेक-दिल सुलतान के हुक्म से ही तामीर हुआ था। (**हँसता है**)

जवान उसे घूरकर देखता है।

बुज़ुर्ग : मुझे मालूम है, जमाल। अब मुझ जैसे बूढ़ों की कोई क़द्र नहीं। मगर उस शेख़ इमामुद्दीन को तो तस्लीम करोगे न ? उनकी मानिंद पाक-दिल, फ़कीराना तबीयत के शख़्स भी क्या बकवास करते फिरते हैं ? शेख़ मोअज्ज़म ने खुले आम फ़रमाया कि सुलतान ने ख़ुद अपने वालिद और भाई को क़त्ल किया। फिर शेख़ ने कोई चोरी-छुपे नहीं, खुले मजमे में यह ऐलान किया कि अपने वालिद और भाई को मरवाकर सुलतान ने कितना संगीन गुनाह किया है।

मज़हबी : आपने तो शेख़ मोहतरिम के दीदार भी किये होंगे ?

बुज़ुर्ग : ख़ुश-किस्मती थी। कानपुर में मैंने उनकी तक़रीर को उनकी ज़ुबाने-मुबारक से सुना था। उनकी वह गूँजती हुई आवाज़, वह तर्ज़े-तक़रीर, एक-एक लफ़्ज़ इस क़दर पुर-असर था कि सीधे रूह की गहराइयों में उतर जाता था। शेख़ ने बेधड़क कहा कि दिल्ली का मौजूदा तख़्त-नशीन सुलतान अपने वालिद का क़ातिल है। गुनहगार है। वो तो और भी जाने क्या-क्या कहना चाहते थे कि अवाम ने ग़ज़बनाक सूरत इख़्तियार कर ली। ग़ुस्से से अन्धे अवाम ने देखते-देखते आधे कानपुर को फूँक डाला।...अब बताओ जमाल, क्या शेख़ ने यह सब गढ़ के कहा ? उन्होंने जो कि...

मज़हबी : कहते हैं कि शेख़ साहब और सुलतान काफ़ी हम-शक्ल हैं।

बुज़ुर्ग : हाँ, पर यह नहीं कि सुलतान से हूबहू मिलते हों। फिर भी शेख़ के खड़े होने का अंदाज़, रोब-दाब, दाढ़ी की बनावट, सब सुलतान की ही याद दिलाते हैं। जब भी शेख़, सुलतान को भला-बुरा कहने लगते तो ऐसा लगता, गोया सुलतान अपने आपको कोस रहे हों !

शरीफ़ : हाँ, तभी तो ! तक़रीर का यह चस्का शायद शेख़

मोअज़्ज़म से ही हमारे सुलतान को लगा होगा। मैंने तो अपनी ज़िन्दगी में पहली बार ऐसा तक़रीर करने वाला सुलतान देखा है।

अदालती दरबान दाख़िल होता है।

दरबान : **(हाकिमाना अंदाज़ से)** हाज़रीन, मुकद्दमा ख़त्म हो चुका ! अब ये लफ़्ज़ी जंग बन्द कीजिए और यहाँ से चलते बनिए। जल्दी...।

सब चले जाते हैं, एक आज़म को छोड़कर।

दरबान : तू क्यों रुका है ? सुना नहीं क्या कहा ?

आज़म : सुन लिया साहब, सुन लिया। लेकिन वो बिरहमन देवता अभी बाहर क्यों नहीं तशरीफ़ लाए ?

दरबान : उससे तुझे क्या ? जा जा, बड़ा आया देवता का बच्चा !

आज़म बड़ी होशियारी के साथ परे सरकने का बहाना करता है और छुपकर एक किनारे खड़ा हो जाता है। थोड़ी देर बाद अदालत के दरवाज़े से ब्राह्मण झाँकता है, फिर अपने को महफ़ूज़ पाकर बाहर निकलता है। बग़ल में एक गठरी दबाये हुए है।

दरबान : ओह ! आख़िर आप तशरीफ़ का टोकरा ले ही आए ! अब चलिए ! हाँ हाँ, यहाँ कोई नहीं, बेधड़क चले आइए ! पहले हंगामा खड़ा करो, फिर ख़ौफ़ खाते फिरो। बस बस, अब रास्ता नापो, मुझे भी काफ़ी परेशान कर दिया।

ब्राह्मण : अच्छा, अच्छा। मैं चला, नमस्कार।

दरबान : **(नकल करते हुए)** नमस्कार !

दरवाज़ा बंद कर दरबान चला जाता है। ब्राह्मण जाने को ज्योंही मुड़ता है, त्योंही पीछे से आकर आज़म उसकी गठरी पर हाथ मारता है। यकायक ब्राह्मण झपट कर गठरी में से ख़ंजर निकाल कर एक ही झपट्टे में आज़म पर हमला करने पर आमादा हो जाता है।

आज़म : **(झटके से पीछे हटकर, ब्राह्मण को घूरता हुआ)** तू ! अज़ीज़ !...धत्तेरे की।

ब्राह्मण : **(आगे बढ़कर)** कौन ? आज़म !

आज़म : शुक्र है अल्लाह का। कैसा अजीब इत्तिफ़ाक़ है! मुद्दत के के बाद मुलाक़ात, वो भी दिल्ली में! मगर यार अज़ीज़, तू बिरहमन कब से बना?

अज़ीज़ : श्श...ख़ामोश।

आज़म : मुझे पहले ही शुबहा हो गया था। जो शख़्स खुली अदालत में सुलतान से नाक रगड़वा सकता है, वह बाहर आने में क्यों शर्मिन्दगी महसूस कर रहा है? ऐसे फ़ख्र के लायक़ काम के बाद भी यों लोगों से क्यों मुँह छुपा रहा है? मैं भी पलत्थी मारकर बैठ ही गया कि आख़िर इस अजूबे का दीदार कर ही लूँ। हं, देखा तो निकले अपने यार जनाबे-आली अज़ीज़!...मगर यार, तुझे इतना भी पता नहीं कि बिरहमन लोग गठरी में ख़ंजर छुपाके नहीं रखते?

अज़ीज़ : **(जल्दी-जल्दी ख़ंजर गठरी में दुबका देता है)** श्श... ख़ामोश! ख़ामोश! अगर कहीं मेरी बिरहमनीयत का राज़ फ़ाश हो गया तो मैं मारा गया। मगर तुम क्या कर रहे थे यहाँ?

आज़म : जहाँ भी हो भीड़-भड़क्का, हाज़िर है ये चोर उचक्का! देख लो न, आज की गाढ़ी कमाई। **(रक़म दिखाता है)**

अज़ीज़ : यानी, साहबज़ादे की बचपने की आदत अभी छूटी नहीं!

आज़म : आदत नहीं यार, पेशा कहो पेशा। **(गर्व से)** इतनी रक़म उड़ाई! मजाल है जो किसी को शक भी हुआ हो। और रक़म रखने के मुक़ामात भी सुनो.. ख़ुदा ने भी नहीं देखे होंगे। पगड़ी के तल्लों में, साफ़ों की सलवटों में, लांग की गाँठ में, आस्तीनों की चोर जेबों में। ख़ैर, मैं तो रहा बटमार का बटमार ही। तुम्हारा क्या शग़ल चल रहा है? मामला तो बड़ा गहरा लगता है। खेड़े का धोबी, दिल्ली में बिरहमन! लम्बा चक्कर होगा।

अज़ीज़ : श्श...किसी से कहना मत।

आज़म : नहीं कहूँगा लेकिन साझेदारी करनी होगी। साझा हो तो अपना मुँह बन्द! वरना...।

दोनों पास के चबूतरे पर बैठते हैं।

: ख़ैर, पहले तुम्हारी कपट कहानी का बयान हो जाय...

अज़ीज़ : चन्द रोज हुए, मैं क़रीब के एक गाँव में मैले-कुचैले कपड़े बटोरने गया हुआ था। बड़ी ख़स्ताहाली का दिन था।

न पेट में दाना, न जेब में कौड़ी, परीशान-सूरत गधे का बोझ लादे हम चले जा रहे थे। उसी वक़्त ढिंढोरे की आवाज़ से मेरे कान खड़े हो गए ! हमारे सुलतान की तख़्त-नशीनी की दूसरी सालगिरह पर शाही ऐलान हो रहा था, कि हक़-पसंद सुलतान की तरफ़ से किसी भी रैयत पर कभी भी कोई ज़ुल्मो-सितम हुआ हो तो हाकिमे-अदालत से फ़रियाद करने की इजाज़त होगी। और फ़रियादी को सही इन्साफ़ मिलेगा। ग़रीब-गुरबा, अमीर-उमरा कोई भी बिला ख़ौफ अपनी फ़रियाद अदालत में पेश कर दे। बस, मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त की मसल सुनी है न, मुझे अपने गाँव के बिष्नु परसाद वाली वारदात याद आ गई, जिसकी ज़मीन को सुलतान के कारिंदों ने कभी ज़ब्त कर लिया था। फिर क्या—फ़ौरन मूँड मुँडा लिया और बन गया बिरहमन ! नाम भी बिष्नु परसाद ही बताया। फिर दूसरे ही दिन असली बिष्नु परसाद से हम नक़ली बिष्नु परसाद ने वह ज़मीन ख़रीद ली।

आज़म : हद हो गई ! ज़ब्त की हुई ज़मीन की ख़रीदारी कैसे ?

अज़ीज़ : यही सवाल उस अहमक़ परसाद ने भी किया था। मैंने उसे कहा...'तुम महज़ अपनी ज़मीन की मिलकियत मुझे बेच दो।' और दस अशर्फियाँ गिन के रख दीं सामने। ग़रीब का मुँह खुले का खुला रह गया। उसी हालत में मैंने उससे मिलकियत लिखा ली। सोचता होगा कि ज़मीन तो गई ही है, अशर्फियाँ क्यों छोड़ूँ ! बस, उसको खुला मुँह वहीं छोड़, उसी दिन दिल्ली दौड़ा आया और अपने इन्साफ़-पसंद सुलतान के ख़िलाफ़ नालिश ठोक दी।

आज़म : मगर ऐ ठगों के उस्ताद, अगर कहीं सुलतान को तुम्हारी इस कपट-कहानी का पता लग जाता, तो...

अज़ीज़ कंधा उचका देता है।

: एक बात अब भी मैं नहीं समझा। आख़िर तुम बिरहमन ही क्यों बने ?

अज़ीज़ : ज़ाहिर है। सुलतान को अपनी इन्साफ़-पसंदी और ग़ैर-जानिबदारी को साबित करना था, अपनी रिआया पर यह ज़ाहिर करना था कि हिन्दुओं के साथ भी बराबरी का सलूक बरतते हैं। अगर मैं मुसलमान होता तो सुलतान

इस सुनहरी मौक़े से महरूम रह जाते। सुलतान भी मुसलमान हो और फ़रियादी भी मुसलमान हो तो सुलतान को अपनी इन्साफ़-पसंदी और ग़ैर-जानिबदारी ज़ाहिर करने का मौक़ा कहाँ मिलता ? अब एक बिरहमन पर सुलतान की दरियादिली की बारिश हुई तो सुलतान खुश, अवाम दंग ! क्यों, तुमने यहाँ इकट्ठे हुए लोगों की तरह-तरह की बातें नहीं सुनीं ?

आज़म : बाप रे ! बड़ा तिकड़मी दिमाग़ है तुम्हारा। ख़ैर, यह सब मैं समझ गया। मगर, यह बताओ, इसमें मेरी क्या साझेदारी रहेगी ?

अज़ीज़ : सुना है कि दिल्ली के अवाम को दौलताबाद रवाना करने के लिए सुलतान को बहुत मुलाज़िमों की ज़रूरत है। मुझे तो मुलाज़िमत मिल भी चुकी है...ख़ालिस हिन्दू हूँ न ! अब तुम भी चलो मेरे साथ ! बिरहमन के साथ मुसलमान को देखकर भोले सुलतान भी बाग़-बाग़ हो जाएँगे।

आज़म : न बाबा, मेरी तोबा ऐसी शाही मुलाज़िमत से !

अज़ीज़ : डरो नहीं, दोस्त ! दिल मज़बूत रक्खो ! फिर देखो, दौलताबाद पहुँचते-पहुँचते तुम्हारे पास दौलत की रेल-पेल हो जाएगी।

आज़म : उसके बाद ?

अज़ीज़ : बाद की बात बाद को। कल की फ़िक्र में आज दुबला होने की क्या ज़रूरत ? चलो दोस्त।

दृश्य : २

शाही महल। मुहम्मद शतरंज पर झुका हुआ बैठा है। सौतेली माँ दाखिल होती है।

सौतेली माँ : मुहम्मद ! मुहम्मद !

मुहम्मद : ख़ूब मौक़े पर आ गई अम्मीजान ! दो लम्हे पहले आ जातीं तो दुनिया के इल्मी ख़ज़ाने का बहुत नुक़सान हो जाता।

सौतेली माँ : ऐसा क्या वाक़या हो गया, दो लम्हों में ?

मुहम्मद : मैं अभी-अभी इल्मे-शतरंज के एक अहम मसले का हल तलाश कर रहा था, जिसमें अल्-अदली, अस्सराबी जैसे पहुँचे हुए आलिम भी नाकाम साबित हुए थे। अब मुझे वह हल मिल गया और किस क़दर आसान है !

सौतेली माँ : पर मैं क्या समझूँ, मुहम्मद ?

मुहम्मद : समझना चाहें तो समझ भी जाएँ। मगर समझने की चाह भी हो तो !

सौतेली माँ : **(चिढ़कर)** बेकार की बात मत करो ! मैं यहाँ शतरंज खेलने नहीं आई। इतनी ग़रज़ है तो बुलवा लो अपने शतरंजी दोस्त आईन-उल्-मुल्क को ! उसे बताओ अपना हल।

सहसा मुहम्मद ठहाके लगाता है।

मुहम्मद : बजा फ़रमाया, अम्मीजान, शतरंज की चाल चलनी है तो सिर्फ़ आईन-उल्-मुल्क के साथ ही।...लेकिन अब ऐसी ही सूरत पेश हुई है, अम्मी ! मगर मोहरे काठ के नहीं रहे। ज़िन्दा फ़ौजी मोहरे बन गए हैं।

सौतेली माँ : कभी-कभी तो तुम पहेलियाँ बुझाने लगते हो, मुहम्मद।

मुहम्मद : **(संजीदगी के साथ)** हाँ, अम्मी, मेरा हमदम, शतरंज का दोस्त आईन-उल्-मुल्क मय-फ़ौज दिल्ली की तरफ़ रवाना हो चुका है।

सौतेली माँ : क्या? क्यों मुहम्मद?

मुहम्मद : **(उदास होकर)** पता नहीं अम्मी। तीन रोज़ से मगज़-पच्ची कर रहा हूँ, लेकिन अभी तक समझ नहीं पाया कि आख़िर मेरे जिगरी दोस्त ने बिला-वजह मेरे ख़िलाफ़ क्यों तलवार उठायी है?

सौतेली माँ : किसी बात पर अनबन तो नहीं हुई?

मुहम्मद : अनबन कहाँ से हो, अम्मीजान! आपको मालूम है कि मेरी तख़्त-नशीनी के दौरान, अवध की हालत किस क़दर ख़राब थी! चारों तरफ़ लूट-मार, कत्लो-ग़ारत जारी थी। मैं इस सूरते-हालात से परेशान हो चुका था। मैंने आईन-उल्-मुल्क को वहाँ भेजा। और उसने जाते ही फ़सादियों का सफ़ाया कर दिया। उसके बाद हमने सुना है कि अवध की रिआया उससे इतनी ख़ुश है कि उसके नाम से दुआ माँगती है। जब दक्खिन में भी बग़ावत की आग भड़क उठी, तो मैंने उससे दरख़्वास्त की कि वह मेरी तरफ़ से दक्खिन जाए...और वहाँ भी अवध की-सी खुशहाली लाए। मैंने उसकी कुमुक के लिए अपनी आधी फ़ौज भी उसके पास भिजवा दी थी। तीन महीने हो गए। आज तक उसका कोई माक़ूल जवाब नहीं आया। तीन रोज़ हुए मेरे मुख़बिर का लिखा एक ख़त मिला जिसमें आईन-उल्-मुल्क की दग़ाबाज़ी की दास्तान दर्ज थी। लिखा था कि दिल्ली की तरफ़ कूच किए उसे आठ रोज़ हो गए हैं।

सौतेली माँ : तो अब तुम क्या करोगे?

मुहम्मद : करना क्या है? बची-खुची फ़ौज लेकर उससे जूझना है।

सौतेली माँ : बची-खुची फ़ौज?

मुहम्मद : हाँ, अम्मी, मेरे पास अब उसकी फ़ौज का आठवाँ हिस्सा भी नहीं है। **(फिर एकदम हँसकर)** देखो न, शतरंज के मसले का हल पाकर मैं किस क़दर खुश था, मगर तुमने आईन-उल्-मुल्क का ज़िक्र छेड़कर वह खुशी ख़ाक में

मिला दी। आपकी तशरीफ़-आवरी का सबब जानना तो मैं भूल ही गया।

सौतेली माँ : अब कोई ज़रूरत नहीं रही।

मुहम्मद : क्यों ?

सौतेली माँ : कोई ख़ास बात नहीं थी। दरअसल मैं यह जानना चाहती थी कि आजकल तुम किस चक्कर में हो। दिन चढ़े तक तुम्हारे कमरे में रोशनी रहती है। रात भर जागते रहते हो। आख़िर अपनी सेहत से ये दुश्मनी क्यों ?

मुहम्मद : **(हैरानी के साथ)** यानी आप समझती हैं कि मैं आईन-उल्-मुल्क की फ़िक्र में घुला जा रहा हूँ ? अम्मी जान, फ़िक्रमंदी या मुहब्बत की हालत में नींद न आने की बातें शायरों की ख़्याली उड़ान ही हैं। अगर मैं इतना फ़िक्र-मंद होता तो शतरंज के मसले में कैसे उलझा रहता ?

सौतेली माँ : तो रात भर क्या करते हो ?

मुहम्मद : **(नाटक के लहजे में)** अल्लाह से दरख़्वास्त करता रहता हूँ कि या ख़ुदा, मुझे नींद न आए ! दिन तो योंही दुनियावी शोरो-गुल में निकल जाता है। मगर ज्यों ही दिन का उजाला रुख़सत हो जाता है, रात की तारीकी को चीर कर मैं आसमान पार पहुँच जाता हूँ, और आसमान के सितारों के इर्दगिर्द मंडराया करता हूँ। फिर इब्न-अल्-मोतज़, दुर्रुम्मान जैसे बावक़ार शायरों का कलाम गुनगुनाया करता हूँ। तब एकाएक दिल में यह ख़्वाहिश जागती है कि मैं अभी और इल्म हासिल करूँ, अभी और तरक़्क़ी करूँ, और ऊपर उठूँ, और...और...। फ़ौरन मेरे तसव्वुर में मेरी रिआया का साया उभरने लगता है, और मेरा जी फिर बेक़रार होने लगता है। जी होता है कि किसी ऊँचे दरख़्त पर चढ़ जाऊँ, और वहाँ से अपनी रिआया को आवाज़ दूँ, चीख-चीख कर उन्हें पुकारा करूँ—'ऐ मेरी अज़ीज़-तरीन रिआया, उठो, उठो, मैं तुम्हें आवाज़ दे रहा हूँ, तुम्हारी राह देख रहा हूँ...आओ, अपनी तमाम परेशानियाँ मुझे बताओ, मैं अपनी तमाम ख़्वाहिशें तुम्हें सुना दूँ, फिर हम सब एक साथ परवर-दिगार की इबादत करें ! चाहे गला ही क्यों न सूख जाए, जिस्म टूट जाए, या ख़ून ख़ुश्क हो जाए। सुनो ! तारीख़ के

नए लिखे जाने वाले वरक़ अपने हैं। आओ, हम चिराग़ बनकर ज़िन्दगी को रोशनी दें। रात बनकर धरती की तमाम सरहदों को मिटा दें। आओ, मैं तुमसे गले मिलने के लिए बेचैन हूँ।' लेकिन ज़मीन में जड़ जमाए बिना सितारों में टहनियाँ कहाँ से फूटें? गुज़रे हुए सुलतानों के ज़ुल्मों की सतायी हुई रिआया में मुझे नई उम्मीदें जगानी हैं। दुखों से भरी ज़िन्दगी से उनकी हिफ़ाज़त करनी है। उनकी ख़्वाहिशों और तमन्नाओं को अमली सूरत देनी है।...या ख़ुदा, मेरे इतने सारे मनसूबे एक ही दौर में पूरे हो जाएँ! ख़ुदा की अज़मत, रिआया की भलाई का ख़्वाब और ज़ाती ख़्वाहिशें...जब तीनों में कशमकश हो रही हो, तो मुझे सोने का वक़्त कहाँ है अम्मी?

अब नाटक का लहजा छोड़कर बच्चों की तरह।

: मगर मेरी बेदारी की आड़ लेकर अपना पुराना राग न छेड़ना कि एक बेगम ले आओ, शादी करो और बाल-बच्चे पैदा करने में जुट जाओ।

सौतेली माँ : ख़ुदा ही बचाए तुम्हारी बकबक से! मुसीबत में भी तुम्हें ख़ब्त ही सूझता है।

मुहम्मद : अम्मी, अब तक शतरंज के हर दाँव में मैंने ही आईन-उल्-मुल्क को मात दी थी! अगर कहीं इस बार वह जीत गया, और मैं लड़ाई में काम आ गया...

सौतेली माँ : मुहम्मद, ख़ुदा के लिए ऐसे अलफ़ाज़ मुँह से न निकालो।

मुहम्मद : अगर इस लड़ाई में मुझे मरना ही है तो ज़िंदगी के आख़िरी आठ दिन क्यों फ़िक्र और परेशानियों में ख़राब करूँ? मुझे दुश्मन की नहीं, अपनी रिआया की फ़िक्र है।

सौतेली माँ : क्या गुज़रे सुलतानों को कोई फ़िक्र ही नहीं थी?

मुहम्मद : उनकी फ़िक्र दूसरी क़िस्म की थी। फिर उनके माथे पर ताज फबता भी नहीं था। और न ख़ुद ताज उतारने की उनमें हिम्मत ही थी। नतीजा यह हुआ, जवानी में ही बेचारे बुढ़ापे का शिकार हो गए या **(माँ को घूरता हुआ)** मारे गए।

सौतेली माँ : **(चीखकर)** मुहम्मद!

मुहम्मद : क्यों, क्या हुआ?

सौतेली माँ : **(हिचकती हुई)** कुछ नहीं, कुछ नहीं।

मुहम्मद : **(माँ को घूरता है, फिर सख्त आवाज में)** दो बरसों के बाद भी आपको उस ख़बर पर यक़ीन नहीं हुआ ?

सौतेली माँ : कौ...कौन, कौन-सी ख़बर ?

मुहम्मद : **(गुस्से को ज़ब्त करने की कोशिश का अन्दाज़, व्यंग्य से)** कौन-सी ख़बर ! यही कि मैंने अपने वालिद और भाई को मौत के घाट उतरवा दिया और उनके क़त्ल से मैंने नमाज़ के वक़्त को नापाक कर दिया था।

सौतेली माँ : मैंने ऐसी अफवाहों पर कभी यक़ीन नहीं किया, मुहम्मद !

मुहम्मद : **(भड़ककर)** क्यों नहीं ? मेरी वालिदा को यक़ीन है, मेरे तमाम मुसाहिबों को है, तमाम अमीरों-वज़ीरों को है, तो सौतेली माँ को ही क्यों नहीं ?

सौतेली माँ : **(चीखकर)** नादान, मुझे सौतेली माँ समझते हो ?

दरबान दाख़िल होता है।

दरबान : सुलतान का इक़बाल बलंद हो ! वज़ीरे-आज़म नजीब और वाक़या-नवीस ज़ियाउद्दीन बरनी हुज़ूर का न्याज हासिल करना चाहते हैं।

मुहम्मद : आने दो।

सौतेली माँ चेहरे पर नकाब डाल लेती है। नजीब और बरनी अन्दर दाख़िल होते हैं।

नजीब, बरनी : अल्लाह सुलतान को सलामत रक्खे !

मुहम्मद : तशरीफ़ लाइए ! अभी अम्मीजान हमसे एक बात पर बहस कर रही थीं। इस सिलसिले में आप दोनों की राय भी...

सौतेली माँ : मुहम्मद, शतरंज की अपनी नई खोज की तफ़सीलें इन्हें भी दो न !

मुहम्मद : **(हँसकर)** इन्हें सुनाने से क्या होगा ? बरनी रहा वाक़या-नवीस। वो तो सिर्फ़ माज़ी की हस्तियों के सायों के साथ ही शतरंज खेल सकता है। और सियासतदाँ नजीब को शतरंज खेलने के लिए चाहिए ज़िंदा शाह-वज़ीर। इन बेजान लकड़ी के टुकड़ों में क्या उसेमिलेगा ? इनके लिए एक आईन-उल्-मुल्क ही काबिल शख़्स है। **(नजीब से)** नजीब, इंतज़ाम कैसा है ?

नजीब : सब ठीक है हुज़ूर। तीन-चार नायब वज़ीरों ने अपनी टुकड़ियाँ भिजवाने का वादा किया है। लेकिन, फिर भी मुझे लगता है कि फ़ौज छः हज़ार से ज़्यादा नहीं जुटेगी।

तीस हज़ार के मुकाबिले में सिर्फ छः हज़ार !

मुहम्मद : नाउम्मीद क्यों होते हो नजीब ? हमारी तरफ़ उसकी फ़ौज की तादाद से एक सिफ़र ही तो कम है। तुम्हें तो खुशी होनी चाहिए।

बरनी : फ़ौज ! कौन-सी फ़ौज ? कहाँ का इन्तज़ाम ? यह सब क्या है खुदाबंद ?

नजीब : **(उसकी परवाह किए बिना)** मगर मैं एक-दूसरे ही सिलसिले में आया हूँ हुज़ूर, जिसका इन्तज़ाम अभी होना है।

मुहम्मद नजीब की तरफ़ देखता है।

: वली शेख़ इमामुद्दीन अब दिल्ली तशरीफ़ लाए हैं हुज़ूर।

मुहम्मद : बड़ी अच्छी ख़बर है। दिल्ली से रवाना होने से पहले शेख़ साहब से हम दुआ माँग लेंगे।

नजीब : शेख़ साहब की तरफ़ से लापरवाह न हों हुज़ूर।

मुहम्मद : लापरवाह ! कहा न कि हम उनका दीदार करेंगे। और सुना है कि शेख़ मोहतरिम हमारे हम-शक्ल हैं। तो हम अपनी ज़ाती शक्लो-सूरत का जायज़ा भी एक बार क्यों न ले लें !

नजीब : बंदा अर्ज़ करना चाहता है कि दीदार तो करें लेकिन काँटा भी निकाल दें।

बरनी : **(दंग रहकर)** किस क़दर ख़ौफनाक सलाह दे रहे हैं, नजीब ! वह भी शेख़ इमामुद्दीन जैसे नेक-दिल शख़्स के ख़िलाफ़ ?

मुहम्मद : **(सब्र के साथ)** क्यों नजीब ? उनसे किस बात का ख़तरा है ?

नजीब : दो महीने पहले ही मैंने हुज़ूर की ख़िदमत में अर्ज़ की थी कि शेख़ कोई मामूली हस्ती नहीं है। एक आग है उनकी आवाज़ में। वो अपनी तक़रीर से भोले-भाले लोगों को भड़काकर बग़ावत पर उकसाते हैं। कानपुर में उन्होंने जो तक़रीर की थी उसी का असर तो था कि अवाम ने तैश में आकर आधे कानपुर को ख़ाक कर डाला। शेख़ साहब बड़े वली और पाक-दिल इन्सान तस्लीम किए जाते हैं। मगर उनकी इस नेक-दिली से ही बाग़ियों की हरकतों को शह मिलती है। हुज़ूर, यक़ीन न हो तो बरनी साहब से सारा हाल मालूम कर लें।

मुहम्मद : मतलब ? बरनी, तुमने उनकी तक़रीर सुनी थी ?

बरनी : (झिझककर) हाँ। हुज़ूर, दो महीने हुए जब मैं दौरे पर था। लेकिन वज़ीर साहब को यह ख़बर कहाँ से मिली ?

नजीब : हम हुकूमत करते हैं। ऐसी बहुत सी तदबीरें हमें करनी होती हैं। आपको यहाँ हाज़िर होने का पैग़ाम इसीलिए दिया गया था।

मुहम्मद : (हँसकर) जहाँ वाक़या तारीखी हो, वहाँ वाक़या-नवीस पर कौन पाबन्दी लगा सकता है ? लेकिन बरनी ऐसी कौन-सी संगीन बातें शेख़े-मुहतरम ने फ़रमाई हैं जो तुम छुपाना चाहते हो ?

बरनी जवाब नहीं दे पाता।

नजीब : हमें खबरें मिली हैं कि हुज़ूर सुलतान पर शेख़ साहब ने इल्ज़ामों की बौछार क़र रक्खी है। उनका कहना है कि सुलतान की तख़्त-नशीनी के बाद दीनो-ईमान ग़ारत हो गया है। सुलतान बहुत बातों के गुनहगार हैं। उन्होंने नमाज़ के वक़्त अपने वालिद और भाई को क़त्ल करवा कर संगीन जुर्म किया है, और पाक इबादत को नापाक किया है।

मुहम्मद : (सख़्ती के साथ) क्या यह सच है, बरनी ?

बरनी : (सर झुकाए ही) हाँ ख़ुदाबन्द !

मुहम्मद : तो क्या वह बेमानी क़िस्सा अब मजमे-मजलिसों में भी छेड़ा जाता है ?

बरनी : ऐसी मामूली-सी बात पर परेशान न हों, ख़ुदाबंद !

मुहम्मद : (फूटकर) मामूली-सी बात ? मैंने वालिद का क़त्ल किया, यह मामूली-सी बात है ? नमाज़ के वक़्त को मैंने नापाक किया, क्या ये भी मामूली-सी बात है ? बरनी, लोग क्या कहते हैं इसकी मुझे परवाह नहीं है। मुझे डर लगता है उनकी ग़लत ज़हनियत से। अगर उन्हें दीनो-ईमान की फ़िक्र होती तो मुझे कोई एतराज़ न होता, या मेरे वालिद से ही उन्हें कोई ख़ास लगाव होता तो भी मैं उज्र नहीं करता। मगर उन सबको महज़ मुझसे अदावत और नफ़रत है। मेरी वालिदा, जिसकी कोख से मैं पैदा हुआ हूँ, जो मेरे वालिद से सख़्त परहेज़ रखती थी, वो भी मुझ से ख़फ़ा है। किसलिए ? इसलिए कि वालिद के साथ

भाई भी मर गया। कमज़ोर भाई! अगर मैं मर जाता और वह बचा रहता तो उँगलियों के इशारे पर नचाया जा सकता था। मगर मैं बच गया...मैं ज़िद्दी ज़िन्दा रह गया। बस, अब इसी गुनाह के लिए वालिदा मेरा मुँह तक नहीं देखतीं। वो ही क्यों, मुझ पर ममता लुटाने वाली ये सौतेली माँ भी उस शको-शुबहा से पाक नहीं!

थोड़ी देर तक खामोशी छाई रहती है।

नजीब : हुज़ूर, आख़िर शेख़ मुअज़्ज़म के बारे में क्या हुक्म है?

मुहम्मद : **(मज़ाकिया ढंग से)** हुक्म क्या है! उनकी आग बरसाने वाली तक़रीर दिल्ली में भी होने दो। सबसे आगे हमीं बैठकर उनकी तक़रीर सुनेंगे। बाक़ी फिर देखा जाएगा।

नजीब : हुज़ूर, पहले से ही हम ख़तरों से घिरे हुए हैं। यह मज़ाक का वक़्त नहीं है। ऐन मौक़े पर मुनासिब कार्रवाई नहीं की गई तो जानते हैं अंजाम क्या होगा? शेख़ साहब से रिआया की अक़ीदत गहरी होती जाएगी और उनकी पाक-दिली यहाँ भी अपना करिश्मा दिखाने लगेगी। दिल्ली में भी कानपुर-वाली वारदात दुहराई जाएगी। फिर वही दंगे, फ़साद, बग़ावत का सिलसिला शुरू हो जाएगा। हुज़ूर! दारुल-सलतनत दिल्ली में बग़ावत हो जाएगी। मुस्तक़बिल की यह तस्वीर कितनी ख़ौफ़नाक है!

बरनी : नहीं, वज़ीरे-आज़म। सुलतान ने ख़ुद ऐलान कर रक्खा है कि कोई भी आकर बिला-ख़ौफ़ सुलतान की नुक्ताचीनी कर सकता है, अगर किसी के साथ ज़ुल्म हुआ हो तो उसका जवाब देने के लिए भी ख़ुदाबंद हमेशा तैयार हैं। अब इन ऐलानों की सचाई को साबित करने का इससे बढ़िया मौक़ा फिर कब मिलेगा? मैं यक़ीनन कहूँगा कि रिआया हमारे सुलतान की दरिया-दिली और इन्साफ़-पसंदी की तहे-दिल से क़द्र करेगी।

नजीब : सियासत में ये दरिया-दिली, ये इन्साफ़-पसंदी, सब बेकार की बातें हैं। यहाँ मतलब की चीज़ एक ही है, बरनी साहब...हुकूमत की ताक़त!

बरनी : तो आपका ख़्याल है कि दुनिया में ईमान की हुकूमत नामुमकिन है? लेकिन ज़रा तवारीख़ पर ग़ौर फ़रमाइए...रसूलिल्लाह के पाक पैग़ाम में अब भी ईमान

की हुकूमत क़ायम करने की ताक़त और क़ुव्वत है।

नजीब : मगर अब तक तो यह शमशीर की बदौलत ही क़ायम हो पाई है।

बरनी : मानता हूँ, मगर तवारीख़ दिन-ब-दिन बढ़ती रहती है, वज़ीरे-आज़म। ये ज़रूरी नहीं कि शमशीर की क़ायम हुई हुकूमत कभी भी दीनो-ईमान का रास्ता अख़्तियार नहीं करेगी। लेकिन आप समझ नहीं सकते। आपके बचपन की हिन्दू तबीयत ने आपके ख़्यालात को एकदम नाक़िस कर दिया है।

नजीब : आपको मालूम है कि मैंने हिन्दू मज़हब को क्यों तर्क किया था? नहीं न! हिन्दू फ़लसफ़े में मुझे दुनिया की भलाई का कोई सहल रास्ता नज़र नहीं आया। वह सिखाता है शख़्सी निजात का रास्ता और दुनियादारी से गोशा-नशीनी! मगर इस दुनिया की ज़िंदगी को कैसे भुला दिया जा सकता है? अलावा इसके मैंने बचपन में हर तरफ़ अफ़रा-तफ़री और तबाही ही पायी। अपने आसपास के बेबस लोगों के लिए एक खुशहाल दुनिया बनाने की उम्मीदें लेकर मैंने इस्लाम क़बूल किया था। मेरा ख़्याल था कि इस्लाम ही हक़ीक़ी तरक्क़ी का इल्म है। दुनिया के लोगों की खुशी को वह बहिश्त में तलाश करने की कोशिश नहीं करता, बल्कि इसी दुनिया में ही वह ख़ुशी खोज लाने का दावा करता है। मगर अब चीज़ें साफ़ हो गई। सुनहरा दौर इस दुनिया में कभी क़ायम नहीं हो सकता, बरनी। यहाँ हैं सिर्फ़ चंद लम्हे जो हम जी रहे हैं! बस, इन पर से हमारी गिरफ़्त ढीली न पड़े।

मुहम्मद : अब मुझसे क्या उम्मीद करते हो, नजीब?

बरनी : उन्होंने बात साफ़ कर दी है, हुज़ूर। वो शेख़ साहब की मौत के ख़्वाहिशमंद हैं। उन्हें क़त्ल कराना चाहते हैं।

नजीब : जी नहीं, क़त्ल करवाने से उन्हें शहादत का रुतबा मिल जायगा। फिर मरे हुए को क्या मारना! उस हालत में आईन-उल्-मुल्क का मुक़ाबिला करने की बजाय उसकी पनाह में जाना ही बेहतर होगा।

बरनी : (**समझ न पाकर**) आईन-उल्-मुल्क? उसका मुक़ाबिला किसलिए, हुज़ूर?

मुहम्मद : अब ऐसी ही नौबत पेश हुई है, बरनी। हमारे बचपन का दोस्त आईन-उल्-मुल्क दिल्ली पर धावा बोलने का मनसूबा लिए आ रहा है। हम से कई गुना ज़्यादा फ़ौज लेकर वह हमारी तरफ़ बढ़ा आ रहा है।

बरनी : नहीं ख़ुदाबंद, मुझे यक़ीन नहीं आता।

नजीब : **(चिढ़ाते हुए)** तो क्या, फ़ौज लेकर वह मेला देखने आ रहा है।

बरनी : लेकिन, लेकिन...उसने ऐसा क्यों किया हुज़ूर ?

मुहम्मद : वो ही जाने ! अपने आख़िरी ख़त में मैंने उसे दक्खिन जाने के लिए लिखा था। कुमक के लिए अपनी फ़ौज भी भिजवायी थी। अब हमारी ही फ़ौज के बूते हमीं पर हमला करने का इरादा किया है। अब बची हुई फ़ौज को लेकर हम क़न्नौज में उसका मुक़ाबिला करेंगे।

बरनी : ख़ुदा के लिए आप जल्दबाज़ी न करें, हुज़ूर। आप आईन-उल्-मुल्क की तबियत और फ़ितरत से वाक़िफ़ हैं। वह दग़ाबाज़ नहीं हो सकता। वह तो सीधा-साधा नेकदिल शख़्स है। आपका दोस्त है।

मुहम्मद : **(जज़्बात को दबाते हुए)** अगर किसी दूसरे मौक़े पर वह ऐसी हरकत करता, तो शायद हमारा एतिक़ाद नहीं डगमगाता। लेकिन, ऐसे नाज़ुक वक़्त पर, जब कि हम दौलताबाद जाने की तैयारी में है, उसकी इन हरकतों का क्या मक़सद है ? क्या वह यह नहीं जानता कि हमारे जाने से पहले दक्खिन में अमन क़ायम होना बहुत ज़रूरी है ? उसी पर हमारे तजुर्बे का दारोमदार है।

बरनी : शायद उसे ग़लतफ़हमी हुई हो, हुज़ूर। आप ज़रा सब्र कीजिए। क़ासिद भेजकर हालात का जायज़ा लीजिए। मैं ख़ुद उसके पास जाऊँगा, हक़ीक़त जानने की कोशिश करूँगा। आईन-उल्-मुल्क हम दोनों का दोस्त है। सुलह से इनकार नहीं करेगा।

नजीब : सुलह से क्या हासिल होगा, हुज़ूर ? सूरते-हाल बहुत संगीन है। इधर शेख़ साहब हैं। अगर उनको यों ही छोड़ दिया गया तो दिल्ली में भी दंगा-फ़साद यक़ीनी है। और उधर सुलह की गई तो यही समझा जाएगा कि सुलतान आईन-उल्-मुल्क से ख़ौफ़-ज़दा हैं। हुज़ूर, आप

बरनी साहब की बातों में न आएँ। यह तो अपनी मौत आप बुलाने जैसा होगा। ऐसा नहीं हो सकता। अब तो शेख़ साहब और आईन-उल्-मुल्क दोनों से छुटकारा हासिल करना ही होगा, ताकि सुलतान के बुलन्द इरादों को कोई चुनौती न दे सके। तख़्ते-शाही के ख़िलाफ़ उठने वाले बाग़ी सिरों को बेमुरव्वती से कुचल दिया जाएगा।

बरनी : यह समझे बिना ही कि आख़िर आईन-उल्-मुल्क ने ऐसा सलूक क्यों किया ?

नजीब : वह तो ज़ाहिर है।

सौतेली माँ : क्या कह रहे हैं, नजीब ?

नजीब : अवध के लोग अब आईन-उल्-मुल्क को अपना सरपरस्त मानते हैं। उसके लिए वो जान क़ुरबान करने को तैयार हैं। ऐसी हालत में जब आईन-उल्-मुल्क को सुलतान की तरफ़ से दक्खिन जाने का फ़रमान मिला, तो उसे शुबहा हो गया कि उसकी मक़बूलियत से सुलतान घबरा गए हैं, और हसद की वजह से वे उसको दूर दक्खिन भेजकर उस से छुटकारा हासिल करना चाहते हैं। इसके बाद जब दिल्ली की आधी फ़ौज भी अवध पहुँच गई, तो उसका शुबहा और मज़बूत हो गया। मैंने तो उसी वक़्त हुज़ूर से अर्ज़ की थी कि फ़ौज अभी न भिजवाई जाए।

मुहम्मद : हमें यह बातें पहले से क्यों नहीं सूझीं !

बरनी : आपको भले ही न सूझी हों, हुज़ूर। मगर वज़ीरे-आज़म को हर बात का इल्म था। फिर भी उन्होंने इस बात को पोशीदा रखा।

नजीब : ज़ाहिर करने का मौक़ा मिलता तो ज़रूर करता। फिर भी आप जैसे तारीख़-नवीस को एक बात जता देना ज़रूरी समझता हूँ बरनी साहब, कि सियासत में गहरी दोस्ती का यही हक़ होता है।

बरनी : आख़िर यह अदावत किस लिए, वज़ीरे-आज़म ?

नजीब : अदावत नहीं, पेशबन्दी है। सियासत की बुनियाद ही पेशबन्दी पर क़ायम है। हम सबको शक की नज़र से देखते हैं।

सौतेली माँ : इसका मतलब यह हुआ कि सुलतान भी शको-शुबहा से

बरी नहीं हैं।

नजीब : गुस्ताख़ी माफ़ हो, बेगम साहिबा। मैं तख़्तेशाही का वफ़ादार पहले हूँ। एक बार जो ग़लती हो जाए वह दुबारा न दोहराई जा सके, यही मेरी वफ़ादारी की कसौटी है।

सौतेली माँ : **(सख़्त आवाज में)** इतनी मजाल ! मुहम्मद ! ऐसे गुस्ताख़ शख़्स के साथ कभी रियायत नहीं बरतनी चाहिए।

मुहम्मद : यह बात हम पर छोड़ें अम्मीजान। नजीब, तुम्हारी राय में हमें क्या करना चाहिए ?

नजीब : एकदम तो कुछ भी अर्ज़ नहीं कर सकता, हुज़ूर फिर भी एक बात है।

मुहम्मद देखता है।

: शेख़ साहब आपके हम-शक्ल हैं, इसे भूलिएगा नहीं।

मुहम्मद घूरकर नजीब को देखता है।

बरनी : शेख़-मोहतरम से इस मामले का क्या वास्ता है ?

मुहम्मद : बरनी, आईन-उल्-मुल्क हमारा शतरंजी दोस्त है। अब जान की बाज़ी लगाकर उसके साथ शतरंज खेलनी होगी। नजीब, शेख़ साहब को इसी वक़्त हमारी तरफ़ से दावत भिजवा दो। परसों शाम को बड़ी मस्जिद के सामने सहन में अज़ीमुश्शान मजलिस होगी। सारे शहर में मुनादी करवा दो कि दिल्ली का हर बाशिंदा मजलिस में हाज़िर हो। उस दिन शेख़ साहब अवाम के सामने अपनी जोशीली तक़रीर करेंगे। उन्हें इस बात की इजाज़त होगी कि हमारे मुताल्लिक़ वो जो चाहें कहें, जी भरकर भला-बुरा कहें, फटकारें, लानत भेजें, बद-दुआ दें। हम ख़ुद हाज़िर होकर वह तक़रीर सुनेंगे। तुमको याद रहे नजीब, उसी रात को हमें कन्नौज के लिए कूच की तैयारी भी करनी है, फ़ौज को आरास्ता रखा जाए।

सौतेली माँ : तुम्हारी ग़ैर-हाज़िरी में दिल्ली में कौन रहेगा, मुहम्मद ?

मुहम्मद : क्यों ? वज़ीरे-आजम जो हैं। इसके अलावा हमने संपन शहर के अमीर के साहबज़ादे शहाबुद्दीन को भी कहला भेजा है। दो-तीन दिनों में वह यहाँ पहुँच जाएगा।

सौतेली माँ : ऐसा क्यों ? दिल्ली में अमीर-उमराओं की कमी है क्या ?

मुहम्मद : **(हँसकर)** नहीं, यह बात नहीं। संपन शहर का अमीर

हमसे कुछ बदगुमान हो रहा है। अब उसी के साहबज़ादे को बुलाकर उसको अपने हक़ में कर लेना चाहते हैं।

बरनी : यह किस लिए, हुज़ूर ?

मुहम्मद : अगर मेरा खेल तुम्हें पसंद नहीं है, तो मुझे माफ़ करो, बरनी। लेकिन मेरे लिए दूसरा रास्ता ही नहीं है। आपका क्या हुक्म है अम्मीजान ?

सौतेली माँ : मुहम्मद, मैं बरनी साहब के साथ कुछ मशविरा करना चाहती हूँ। थोड़ी देर के लिए वो यहाँ रहें।

मुहम्मद : ख़ुशी से।

मुहम्मद और नजीब चले जाते हैं।

सौतेली माँ : शरीफ़ बरनी, समझ नहीं पा रही हूँ...किस तरह से आपसे बयान करूँ। अपने ही बेटे के ख़िलाफ़ कुछ कहना भी तो...

बरनी : बन्दे पर भरोसा करें, बेगम साहिबा !

सौतेली माँ : हमें मालूम है, शरीफ़ बरनी, तभी आपसे रुकने की दरख़्वास्त की थी। (**रुककर**) आप मुहम्मद के मिज़ाज से अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं। वो इस क़दर ज़हीन, आलिम-फ़ाज़िल और जफ़ाकश है कि सब उसे बेनज़ीर तस्लीम करते हैं। लेकिन साथ ही वह इंतिहाई दर्जे का हस्सास और जज़्बाती भी है। कभी-कभी पागलों की-सी हरकतें कर बैठता है। अगर किसी वजह से वह दुःखी हो जाय या ख़फा हो जाय तो कोई बता नहीं सकता कि पल भर में वो क्या क़यामत बरपा कर दे। ऐसे शख़्स के साथ आप जैसे सजीदा-मिज़ाज और धीरज के शख़्स का होना ज़रूरी है। शरीफ़ बरनी ! वादा कीजिए, आप किसी भी हालत में...

बरनी : सुलतान के साथ रहा करूँगा। आप बेफ़िक्र रहें। आपने मुझ बन्दे पर जिस यक़ीन से यह ज़िम्मेदारी सौंपी हैं, उसकी मैं तहे-दिल से क़द्र करता हूँ। यह आपकी ज़र्रा-नवाज़ी है, और मेरी ख़ुशनसीबी।

सौतेली माँ : (**बातों की परवाह किए बिना**) अब देखिए न, पता नहीं, आईन-उल्-मुल्क और शेख़ इमामुद्दीन के बहाने क्या करने पर आमादा है ?

बरनी : गुस्ताख़ी माफ़ हो, बेगम साहिबा, नसीहत करने वाला मैं कौन हूँ, फिर भी आपकी मेहरबानी के भरोसे छोटी-सी

अर्ज़ करना चाहता हूँ। वज़ीरे-आज़म से मुझे कोई रंजिश नहीं, फिर भी सुलतान पर उनका जो असर है उसके ख़्याल से कभी-कभी मेरी रूह काँप जाती है।

सौतेली माँ : **(पूरी कड़वाहट के साथ)** मालूम है मुझे...चन्द रोज़ और इंतज़ार करूँगी...लेकिन अगर बात बरदाश्त की हद से बढ़ गई तो उसकी ऐसी दुर्गत करूँगी कि ख़ुदा भी उसे पनाह नहीं देगा।

बरनी, जो अभी-अभी बेगम साहिबा की इनायत से अपने आपको ख़ुशनसीब समझ रहा था, बेगम के इन भयानक इरादों से एकदम चौंक पड़ता है।

ढिंढोरची : सुनो ऐ दिल्ली शहर के बाशिंदो ! हुज़ूर-आला शाहे-शाहान, वालिए-जहान का ताज़ा फ़रमान सुनो।
आज शाम को, नमाज़ के बाद, वहीं मसजिद के सामने वसी सेहन में एक ख़ास जलसा होगा। इस जलसे में बंगाल के शेख़ इमामुद्दीन, हिन्दुस्तान के आली मर्तबा बुज़ुर्ग, लोगों को ख़िताब करेंगे। अवाम को अपने पाक ख्यालात से नवाज़ेंगे, इन्साफ़-पसंद सुलतान के तर्ज़-अमल का मुफस्सिल तफ्सिरा पेश करेंगे। बादशाह सलामत से सरज़द हुई ग़लतियों, ज़ुल्मों और मज़हबी बेक़ायदगियों का पूरा जायज़ा लेंगे। शेख़ की रहनुमाई हासिल करने के इरादे से नेक-दिल सुलतान बज़ाते-ख़ुद वहाँ मौजूद रहेंगे। शाही हुक्म है कि दिल्ली का हर ख़ासोआम इस जलसे में बिला खटके शरीक हो और शेख़ की नसीहतों से फ़ैज़ हासिल करके अपनी ज़िंदगी को सही तरीक़े से ढालने की कोशिश करे। सुनो, सुनो शहर दिल्ली के बाशिंदो, सुनो...

दृश्य : ३

मसजिद के सामने का सेहन। मुहम्मद और शेख़ ऊँचे चबूतरे पर गद्दियों के सहारे बैठे हैं; दोनों शक्लो-सूरत में एक जैसे हैं। किनारे पर दो-तीन सिपाही हथियारों से लैस खड़े हैं।

मुहम्मद : अभी तक कोई नही आया।

शेख़ : हमसे ज्यादा आप बेसब्र मालूम होते हैं, सुलतान। कोई नहीं आया तो आपको खुश होना चाहिए।

मुहम्मद : नहीं शेख़, ऐसी बात होती तो अपनी तरफ़ से मुनादी न करवाते। हम कोई वली नहीं हैं कि आपके दिल की बातें जान पाएँ। हम यह जानने के लिए बेक़रार हैं कि हमारे मुताल्लिक़ आपके क्या ख्यालात हैं।

शेख़ : मुमकिन है कि मेरी तल्ख़ बातें सुनने पर आपकी ये बेक़रारी सर्द पड़ जाए। क्योंकि मैं ऐसा शख़्स नहीं हूँ कि आपकी मौजूदगी से ख़ौफ़-जदा होकर शीरीं-ज़बाँ बन जाऊँ!

मुहम्मद : हमें मालूम है, शेख़। आपकी साफ़गोई की शोहरत पहले ही दिल्ली पहुँच चुकी है।

ताली बजाकर एक सिपाही को बुला लेता है।

: वज़ीर साहब को हमारा हुक्म सुना दो कि वो अपने तमाम मुसाहिबों के साथ यहाँ अभी हाज़िर हों, और शहर के सारे अमीर-उमरा भी यहाँ फ़ौरन मौजूद हों।

शेख़ : नहीं सुलतान, हम इस हुक्म की मुख़ालिफ़त करते हैं। हुक्म के ज़ोर से हाज़िर होने वाले तमाशाई हमें नहीं चाहिएँ।

मुहम्मद : तो कब तक इंतज़ार किया जाए? हमें चाहिए था कि आज दरबार में ही सबको यहाँ हाज़िर होने का हुक्म दे देते। तब ऐसी सूरत पेश नहीं आती। ऐसी बदतमीज़ी क्यों? एक भी बंदा इस जलसे में शरीक नहीं हुआ।

शेख़ : **(हँसता है)** कहते हैं कि हमारी शक्लो-सबाहत आपसे मिलती है, मगर मिज़ाज और फ़ितरत में किस क़दर फ़र्क है! अगर आपके हुक्म से गुलाम ही आपके जलसे में आने वाले हों, तो मेरा यहाँ तक आने का मक़सद ही ख़त्म हो जाएगा। मुझे ऐसे अवाम चाहिए जिनमें क़ुव्वते-फ़ैसला हो, जो आपकी हुकूमत का तख़्ता ही उलट दें।

मुहम्मद सिपाही को वापस जाने का इशारा करता है।

मुहम्मद : मुमकिन है कि हमने कभी नासमझी की हो। लेकिन हमारा दावा है कि हमने अपना फ़र्ज़ अदा करने में लापरवाही कभी नहीं बरती।

शेख़ : इतना घमण्ड आपको ज़ेब नहीं देता, सुलतान। क़ुरान-शरीफ़ में बताए हुए क़ायदों को आपने तोड़ा है। अगर आप क़ुरान-शरीफ़ की पाक आयतों के मायने नहीं जानते तो इमामों, सैयदों और आलिमों से दरियाफ़्त करना चाहिए था, और उनकी बातों की ताज़ीम करनी चाहिए थी। लेकिन आपने ग़ैर-जानिबदारी और इंसाफ़-पंसदी की आड़ में न जाने कितने इमामों, सैयदों और आलिमों को मौत के घाट उतार दिया है।

मुहम्मद : मगर मज़हब का दायरा छोड़कर उन लोगों ने सियासत में दख़ल देने की जुरअत की थी। मज़हब को मेरी सियासत से क्या वास्ता? मुअज़्ज़म! जब कभी मायूसी की कैफ़ियत मेरे वजूद पर हावी हो जाती है, तब दीन की रोशनी ही मुझे तस्कीन दे पाती है। अपनी ज़िंदगी में मैं बिल्कुल अकेला हूँ, मोहतरम! यहाँ ईमान ही मेरा रहनुमा है। लेकिन मेरी सलतनत महज़ मेरी नहीं है—रियाया की भी है। हाँ, वहाँ गंदगी ज़रूर है। मगर जब

इन्सान की पैदा की हुई गंदगी को साफ़ करना है, तो अल्लाह का नाम लेकर क्यों चीखूँ ?

शेख़ : क्योंकि वही कारसाज़ है। अल्लाह का पाक-कलाम ही दुनिया की ग़िलाज़त को साफ़ करने में मददगार साबित हुआ है। **(आवाज़ में नरमी लाते हुए)** सुलतान ! सात सौ साल से अहले-अरब तब्लीग़े-इस्लाम में मसरूफ़ रहे हैं। अब वह क़ौम थक चुकी है। लेकिन तारीख़े-इस्लाम की जो बुनियाद उसने रखी है, उसी से अब हमें सुनहरा दौर लाने की कोशिश करनी है। और इसे अंजाम देने के लिए एक आलीक़द्र शख़्स की ज़रूरत है। ख़ुदा का करम है कि उसने आपको तमाम हुनर बख़्शे हैं। रोशन दिमाग़ी, क़ुव्वते-बाज़ू, शाही इक़्तदार जैसी आलातरीन ख़ूबियों से आप मालामाल हैं। क्या ख़ुदा की इन इनायतों का आप सिला नहीं देंगे ?

मुहम्मद : घुटनों के बल रेंगकर फ़ासला तय नहीं किया जाता, शेख़ साहिब ! घुटनों के बजाए मैं पंखों पर चलना चाहता हूँ।

शेख़ : इतना ग़रूर अच्छा नहीं, सुलतान ! आपका यह सोचना ग़लत है सुलतान कि आपको अल्लाह के पैग़ाम के अलावा भी इल्म हासिल हुआ है। ऐसी नादानी से बाज़ आइए ! आप इन्सानियत की हद पार करके ख़ुदा बनने की कोशिश में हैं।

मुहम्मद : वह काफ़िर हो जो ख़ुदा बनने की कोशिश में हो। मैं परवर-दिगार का नाचीज़ ग़ुलाम हूँ।

शेख़ : ग़ुलामों ने भी अक्सर आक़ा बनने की जुरअत की है, सुलतान।

मुहम्मद : आपका तंज़ मैं समझता हूँ, मुअज़्ज़म ! मेरे दादा ग़ुलाम थे। मेरे वालिद सुलतान हो गए। मगर यह सियासत का खेल है, शेख़ साहिब।

शेख़ : मज़हबी और सियासी वजूदों को मुख़्तलिफ़ मानकर आप बज़ाते-ख़ुद एक कशमकश को दावत दे रहे हैं सुलतान, अगर कशमकश बढ़ गई तो इनमें से एक को यक़ीनन ख़त्म होना पड़ेगा।

मुहम्मद : **(बड़ी विनम्रता के साथ)** मगर इस बढ़ती हुई कशमकश को कैसे समझ सकूँगा शेख़ ? मुझे याद है, जब मैं यूनान

और चीन के फ़लसफ़ियों की दानाई पर दिन-रात ग़ौर किया करता था, ज़हर पीकर आबे-हयात अता करने वाले सुकरात, आला शायरी करने वाले अफ़लातून को जब याद किया करता था तो मुझे एक अनजानी मसर्रत का एहसास हुआ करता था, इस दुनिया को भूल जाता था। अब उस खोई हुई खुशी को याद करता हूँ तो फिर नादान बचपन में लौटने को जी चाहता है। शायद अब मैं दौलते-इल्म से आहिस्ता-आहिस्ता महरूम होता जाऊँगा। और जो मेरे भीतर जज़्ब हो चुका है उसकी बदौलत अपने ज़मीर का गला भी घोंटता जाऊँगा। मौजूदा कशमकश से अब मुझे कोई निजात नहीं दिला सकता। मगर इस कशमकश से अपनी सलतनत को ज़रूर बचा सकता हूँ। इसलिए मुझे सिर्फ़ अपने आपका ही पूरा भरोसा करना होगा।

शेख़ : **(मुहम्मद की इन बातों से पुर-असर होकर, फिर ज़रा रुककर)** वाक़ई आपकी दानिशमंदी बेनज़ीर है, सुलतान। आप शायद इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी का बोझ उठा लें, लेकिन आपके बाद जो तख़्त-नशीन होगा, उसमें यह सिफ़्त कहाँ से आएगी? आप जैसा ज़हीन शख़्स और कहाँ मिलेगा? कहाँ हैं आपके दिखाए हुए रास्ते पर चलने वाले जाँ-नशीन?

मुहम्मद : कहीं नहीं। इस सेहन की मानिंद सब सूना है।

शेख़ चौंककर चारों ओर देखता है।

: मुअज़्ज़म, हमने सुना था कि आपकी जोशीली तक़रीर सुनकर कानपुर के अवाम इस क़दर बरहम हुए कि बग़ावत की मशाल लेकर उन्हीं ने हमारे हाकिमों की क़यामगाहों को जला डाला। मगर आज दिल्ली में... मसजिद के इस वसी सेहन में, एक परिन्दा भी नहीं फटका। ऐसा क्यों हुआ?

शेख़ जवाब नहीं दे पाते हैं।

: शेख़-मुअज़्ज़म की तक़रीर की जब शाही मुनादी कराई गई, तो अहले-दिल्ली का माथा ठनका। सियासत की करामात! दिल्ली के लोगों को आपकी सदाक़त और ईमानदारी पर शुबहा हो गया कि आख़िर जो शख़्स

सरे-आम सुलतान की नुक्ताचीनी करेगा, उसके लिए सुलतान की तरफ़ से क्यों मुनादी करायी गई ! इस अनोखे तरीक़े ने सबको खौफ़ज़दा कर दिया। उनको एहसास होने लगा कि हो न हो, यह तो सुलतान के दुश्मनों को खोज निकालने की एक महज़ चाल है और इस चाल में हज़रत की हैसियत भी एक मुहरे की है।

शेख़ : **(हैरान होकर)** तो क्या पहले से आप इस अंजाम से वाक़िफ़ थे ?

मुहम्मद : नहीं, लेकिन क़यास था, तभी हमने यह तजुर्बा किया।

शेख़ : तजुर्बा ! लेकिन अब मेरा क्या हश्र होगा ? अब क़यामत तक यह शक मेरे पीछे लगा रहेगा। भोले-भाले अवाम जो अब तक मुझे अक़ीदतमंदी से देखते थे, अब मुझे आपका कठपुतला समझेंगे ? क्या आपको इस बात का इल्म नहीं था कि आप मेरी ज़िंदगी, मेरी हैसियत को इस तरह तबाह करने जा रहे हैं ?

मुहम्मद : मुझे इल्म था। लेकिन आपको भी आज एक नया तजुर्बा हुआ न ! दीनो-ईमान की ख़ातिर जो शख़्स अपनी ज़िंदगी वक़्फ़ कर चुका हो, महज़ इस एक हादसे से उसकी सूरते-हाल इस क़दर बिगड़ जाए...तो इसे क्या कहा जाए ?अब आप जान गए होंगे, आमो-ख़ास की मज़हबी अक़ीदत की जड़ें किस क़दर कमज़ोर हैं ! अवाम का भोलापन फितरती तौर पर शुबहा और वहम से बावास्ता होता है मोहतरम ! पिछले सुलतानों ने अवाम को कुचले जाने वाले कीड़े और अहमक़ ही तस्लीम किया था। मैं इस रविश को बुनियादी तौर पर बदलना चाहता हूँ, हज़रत।

दो लम्हे के लिए सन्नाटा छाया रहता है।

शेख़ : आपका तजुर्बा कामयाब रहा, सुलतान। ख़ूब सबक़ दिया मुझे आपने। अब इसी सबक़ को अमली सूरत देने की कोशिश करूँगा। ख़ुदा हाफ़िज़ ! **(चलते हैं)**

मुहम्मद : कहाँ जा रहे हैं शेख़ इमामुद्दीन ?

शेख़ : आपकी हुकूमत की बद-इंतज़ामी को दूर करने के इरादे से मैंने मौजूदा राहे-अमल को इख़्तियार किया था। लेकिन आज मैं बिलकुल नाकारा साबित हुआ।

मुहम्मद : नहीं शेख़, फ़िलहाल आप ही हमारे लिए एक कार-आमद

नैशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा, दिल्ली द्वारा १९७२ में मंचित तथा इब्राहिम अलकाज़ी द्वारा निर्देशित 'तुग़लक' के दृश्य :

तुग़लक (मनोहर सिंह) और सौतेली माँ (उत्तरा बावकर)
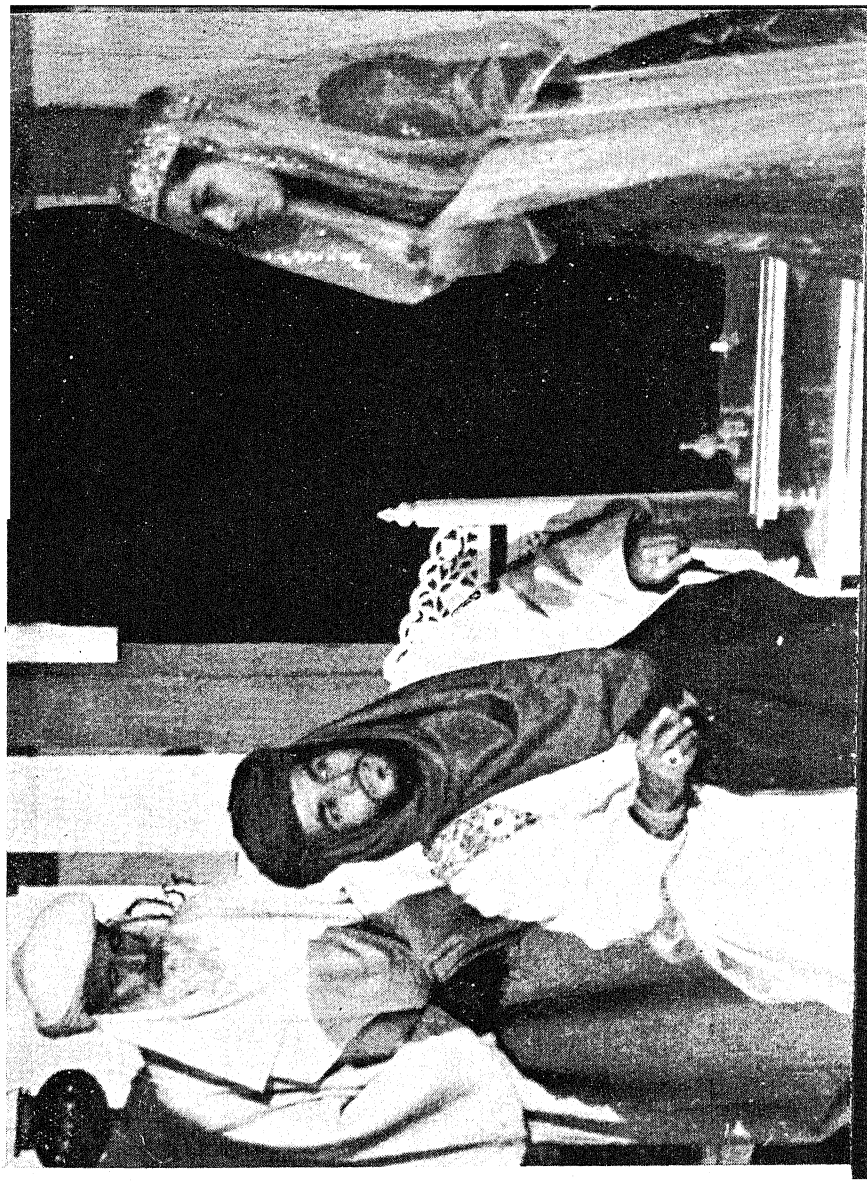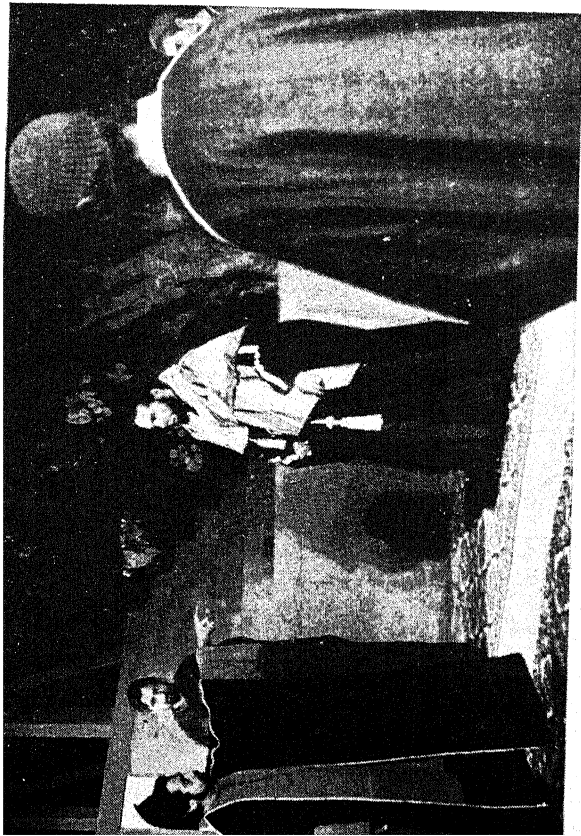
शहाबुद्दीन (शरद व्यास), नजीब (तीर्थराम) और तुग़लक (मनोहर सिंह)

तुग़लक (मनोहर सिंह)

शख़्स हैं।

शेख़ : मज़ाक़ बड़ा तक़लीफ़-देह है, सुलतान ! आप हमें इजाज़त दें।

मुहम्मद : शेख़ मोहतरिम, अवध के अमीर आईन-उल्-मुल्क ने दिल्ली पर चढ़ाई करने का फ़ैसला किया है।

शेख़ : आपके दोस्त आईन-उल्-मुल्क ने ! क्यों ?

मुहम्मद : यह अभी तक राज़ है, शेख़ साहब।

शेख़ : लेकिन मुझे यह बताने से क्या हासिल होगा, सुलतान ? आपने तो बाग़ी दक्खिन का ग़रूर तोड़ा है, आपके लिए यह कोई मुश्किल नहीं। और मेरी क्या बिसात ?

मुहम्मद : अपनी अज़ीन-तरीन रिआया की भलाई की ख़ातिर हम अमन चाहते हैं। इसलिए हम सुलह चाहते हैं। लेकिन उल्-मुल्क को हमारे इरादों पर कैसे यक़ीन होगा ? अगर हम क़ासिदों के ज़रिए सुलह का पैग़ाम भेजेंगे, तो उल्-मुल्क हरगिज़ एतबार नहीं करेगा। लेकिन वह आपकी ताज़ीम करता है। आपकी नेक-नीयती पर उसे भरोसा है। इसलिए मैं आपसे इल्तिजा करता हूँ कि आप हमारे पैग़ाम-रसाँ की हैसियत से सुलह के नेक काम को अंजाम दें। अपनी ख़ातिर नहीं, उन बेक़सूर मुसलमानों की ख़ातिर जो बिला-वजह मुसलमानों के हाथों मारे जाएँगे, यह ज़िम्मेदारी मैं आपके सुपुर्द करता हूँ।

शेख़ : **(दो लम्हे सोचकर)** मैं यक़ीन करूँ कि इसके पीछे कोई सियासी चाल नहीं है ?

मुहम्मद : यक़ीनन नहीं है, शेख़ साहब !

शेख़ : **(फिर दो लम्हे रुककर)** तो हमें कोई एतराज़ नहीं।

मुहम्मद : वाक़ई आप पैगाम-रसाँ की हैसियत से आईन-उल्-मुल्क के पास जाने को राज़ी हैं ? इसे हम आपका क़ौल तसलीम करें ?

शेख़ : हाँ।

मुहम्मद : **(ताली बजाकर सिपाही को बुलाता है)** जाओ, वज़ीर साहब के यहाँ से एलचियों के लाइक़ शाही लिबास लेकर आओ।

ख़ादिम बा-अदब चला जाता है।

शेख़ : शाही लिबास पहले से ही तैयार रखा हुआ था ?

मुहम्मद : मुझे यक़ीन था कि हालात की संगीनी देखकर आप इस ज़िम्मेदारी से इनकार नहीं करेंगे ।

शेख़ : **(हँसकर)** आपकी हिकमते-अमली हर तरह से क़ाबिले-तारीफ़ है, सुलतान । लेकिन आप अपने तजुरबे के अंजाम से बेख़बर लगते हैं। अगर आईन-उल्-मुल्क भी मुझे आपका एक मोहरा तसलीम करे तो ?

मुहम्मद : वो अहले-दिल्ली की मानिंद अहमक़ नहीं है । मेरी फ़ितरत और तबियत से वह अच्छी तरह वाक़िफ़ है । आख़िर हम दोनों जिगरी दोस्त हैं । इसके अलावा आज के इस हादसे की ख़बर अभी उस तक पहुँच भी नहीं सकती। हमें यहाँ से कुछ ही देर में कूच करना है । उल्-मुल्क अपनी फ़ौज लेकर पहले ही रवाना हो चुका है । हमें कन्नौज के क़रीब उसका मुक़ाबला करना है ।

ख़ादिम शाही लिबास लिए दाख़िल होता है। मुहम्मद चोग़ा हाथ में लिए शेख़ की तरफ़ बढ़ता है ।

शेख़ : **(रोकते हुए)** जब आपको जंग करना ही नहीं है तो मुक़ाबले की जगह की पाबंदी के माने ?

मुहम्मद : यह सच है कि हम ख़ून-ख़राबा नहीं चाहते। मगर कही उल्-मुल्क की ललचाई हुई नज़र दिल्ली के शाही तख़्त पर जमी हो, तो हमें आगे बढ़कर उसका मुक़ाबला करना ही है । हम सुलतान हैं शेख़ मुअज़्ज़म, अपनी सलतनत और रिआया की सलामती हमारी ज़िम्मेदारी है ।

शेख़ : **(प्रभावित होकर)** सुलतान ! इतनी देर के बाद मैं समझ पा रहा हूँ, आपमें इस क़दर खुद-एतमादी क्यों है !

मुहम्मद : अब आप शाही लिबास पहनने के लिए रज़ामंद हैं ?

शेख़ : ये ख़ातिरदारी, यह इज़्ज़त...लेकिन किस क़दर अजीब हालत में !

मुहम्मद शेख़ को शाही लिबास पहनाता है, सर पर साफ़ा रखता है । दोनों आमने-सामने खड़े होते हैं । लिबास के लिहाज़ से दोनों एक जैसे लगते हैं ।

शेख़ : सुलतान ! मुझे अभी तक यक़ीन नहीं आ रहा कि इसके पीछे कोई सियासी चाल नहीं है ।

ढिढोरची : सुनो ऐ दिल्ली शहर के बाशिंदो ! सुनो, शाहे-शाहान का फ़रमान सुनो।

रहम-दिल सुलतान की मेह्रबानी के मोहताज, अवध के हाकिम आईन-उल्-मुल्क ने खिलाफ़े-उम्मीद दिल्ली पर चढ़ाई करने का मनसूबा बनाया है। आईन-उल्-मुल्क से मिलने के वास्ते, अमन-पसंद सुलतान बज़ाते-खुद कन्नौज की तरफ़ रवाना हो गये हैं। सुलतान बाग़ी आईन-उल्-मुल्क को यह जता देना चाहते हैं कि इस क़िस्म की बग़ावत महज़ अहमकाना हरकत है, और यह कामयाब नहीं होगी। सुलतान मुल्क के अमनो-अमान में ख़लल नहीं पड़ने देंगे। इस नेक मक़सद के लिए खुदातर्स सुलतान की इमदाद के इरादे से बंगाल के क़ाबिले-ताज़ीम शेख़ इमामुद्दीन भी शाह के हम-सफ़र हैं।

जब तक सुलतान दारुल-सलतनत दिल्ली से बाहर रहेंगे, तब तक के लिए उनकी जगह संपन शहर के दिलेर शहाबुद्दीन नायब सुलतान की हैसियत से हुकूमत की कार्रवाइयों को अंजाम देंगे। इस दरमियान दिल्ली के अवाम से यह उम्मीद की जाती है कि नायब सुलतान के हुक्मों की तामील करें। आगे फ़रमान यह है कि सुलतान की फ़तहयाबी के लिए मुसलसल इबादत जारी रहे। सुनो...सुनो...।

स्टेज पर अँधेरा। फिर थोड़ी देर के बाद।

सुनो ऐ दिल्ली शहर के बाशिंदो ! सुनो...नायब सुलतान शहाबुद्दीन का ताज़ा फ़रमान सुनो।

सुलतान ने बाग़ी आईन-उल्-मुल्क के साथ सुलह करने की जो-जो तदबीरें इख्तियार की थीं, सब बेकार साबित हो गईं। नतीजा यह है कि सुलतान को कन्नौज के मैदाने-जंग में बाग़ियों का मुक़ाबला करना पड़ा। बाग़ियों की फ़ौज ग़ाज़ियों की बनिस्बत कई गुना ज़्यादा थी। फिर भी हौसलामंद सुलतान और उनके जाँ-बाज़ सिपाहियों ने बड़ी बहादुरी से लड़ाई की और बाग़ी आईन-उल्-मुल्क की फ़ौज को करारी शिकस्त दी है। एहसान-फ़रामोश आईन-उल्-मुल्क अब हमारे मेहरबान सुलतान के हाथों गिरफ़्तार हो गया है। मौजूदा फ़तहयाबी की खुशी में, जो अल्लाह के फ़ज़ल से इनायत हुई है, बड़ी मसजिद में आज शाम को बड़े पैमाने पर इबादत की जाएगी। इस इबादत में तमाम् अक़ीदत-मद मुसलमान शरीक हों और अल्लाह-ताला के हुज़ूर में नमाज़े-शुक्रगुज़ारी अदा करें!

दृश्य : ४

महल का दूसरा कोना। नायब सुलतान शहाबुद्दीन ख़तूत पढ़ने में मसरूफ़ हैं। दरबान दाख़िल होता है।

दरबान : नायब सुलतान सलामत रहें। मादरे-सुलतान, नायब सुलतान से मुलाक़ात की ख़ातिर तशरीफ़ लाई हैं।

शहाबुद्दीन : मादरे-सुलतान ? कौन ?

दरबान : सुलतान की वालिदा हुज़ूर।

शहाबुद्दीन : उन्हें बा-इज़्ज़त अन्दर ले आओ।

दरबान चला जाता है, शहाबुद्दीन ख़तों को किनारे रख देता है। दरबान के साथ सौतेली माँ दाख़िल होती है। शहाबुद्दीन उठकर बंदगी करता है।

शहाबुद्दीन : बड़ी बेगम साहिबा का साया हम पर रहे। पैग़ाम भिजवातीं तो हम ख़ुद ख़िदमत में हाज़िर हो जाते।

सौतेली माँ : न जाने क्यों यकायक खौफ़ महसूस होने लगा और बेसब्री बढ़ती गई, इसलिए मैं ख़ुद यहाँ आ गई। सुलतान की कोई नई ख़बर मिली है ?

शहाबुद्दीन : नहीं बेगम साहिबा, हम ख़ुद हैरान हैं कि अब तक कोई ख़बर-रसाँ क्यों नहीं आया ? आठ रोज़ पहले जो जंग हुई थी और सुलतान ने आईन-उल्-मुल्क को जिसमें हरा दिया था, उसके बाद कोई इत्तिला नहीं मिली। सुलह

क्यों नहीं हुई, और सुलह कराने के वास्ते जो शेख़े-मोहतरिम साथ गए थे, उनका क्या हुआ...इसके मुताल्लिक़ कुछ ख़बर नही मिली। माफ़ करें बेगम साहिबा, मैं भी आप की तरह अँधेरे में हूँ।

सौतेली माँ : माफ़ी किस बात की नायब सुलतान ? सुलतान की ग़ैर-हाज़िरी में भी यहाँ इंतज़ाम बर-क़रार रहा, इसके लिए हम आपके शुक्र-गुज़ार हैं।

शहाबुद्दीन : मेरी क्या हस्ती है, बेगम साहिबा ? अगर वज़ीरे-आज़म मुहम्मद नजीब जैसे दूरंदेश सियासत-दाँ की मदद न होती तो शायद...

सौतेली माँ : आप उसका नाम न लीजिए। मुझे उससे कोई दिलचस्पी नहीं। मैं उससे इंतिहाई नफ़रत करती हूँ। ग़नीमत है कि आपके आने पर मुझे नजीब के साथ गुफ़्तगु करने की नौबत नहीं आई।

शहाबुद्दीन : यह आपकी ज़र्रा-नवाज़ी है कि आपने मुझे इस क़दर क़ाबिले-एतबार समझा।

सौतेली माँ : मेरे एतबार की बात नहीं। मौजूदा हालात में आपको अपने शहर से बुलाकर आपको हुकूमत की ज़िम्मेदारी जो सुपुर्द की गई है, इसी से साबित होता है कि सुलतान के मोतबिरों में आपका क्या दर्जा है ! वरना, दिल्ली क्या अमीर-उमराओं से ख़ाली हो गई थी ? उनकी जगह...

दरबान अन्दर आता है।

दरबान : बेगम हुज़ूर और नायब सुलतान सलामत रहें। रतनसिंह तशरीफ़ लाए हैं।

शहाबुद्दीन : फौरन भेज दो...

दरबान जाता है।

सौतेली माँ : रतनसिंह कौन है ?

शहाबुद्दीन : मेरा दोस्त...दोस्त से भी ज़्यादा मेरा भाई है। मेरे वालिद के हाथ उसके अब्बा का क़त्ल हुआ था। लेकिन... **(रतनसिंह दाखिल होता है)** आपस में हम भाई-भाई हैं। ...क्या ख़बर है रतनसिंह ? सुलतान कहाँ हैं ?

रतनसिंह : अभी-अभी दिल्ली तशरीफ़ लाये हैं। शाही महल के सदर मुक़ाम की तरफ़ गये हैं।

सौतेली माँ : क्या ? तब तो मुझे वहाँ जाना चाहिए।

रतनसिंह : गुस्ताख़ी माफ़ हो बेगम साहिबा, सुलतान के साथ बंदा भी मौजूद था। सुलतान ख़ुद आपसे और नायब सुलतान से मिलने के लिए इधर ही तशरीफ़ ला रहे हैं। मैं यही पैग़ाम आपको देने आया था।

सौतेली माँ : लेकिन, बिना इत्तिला दिए कैसे वापस आ गये ? इस क़दर जल्दबाज़ी में ? हम किस क़दर बेताबी के साथ सुलतान का इंतज़ार कर रहे थे ! वापसी की ख़बर मिल जाती तो सारा शहर इस्तक़बाल के लिए आरास्ता किया जाता। हर रास्ते, हर मोड़ को सजाया जाता ! आख़िर क्या बात थी कि सुलतान ने अपनी वापसी की ख़बर देना भी गवारा न किया ?

रतनसिंह : (**ज़रा-सी झिझक के साथ**) सुलतान बेहद अफ़सुर्दा हैं, बेगम साहिबा ! शेख़ इमामुद्दीन का इंतिक़ाल हो गया।

सौतेली माँ : क्या ? शेख़ इमामुद्दीन का इंतिक़ाल हो गया ?

रतनसिंह : आपको ख़बर नहीं है. बेगम साहिबा ? मैदाने-जंग में शेख़ मोहतरिम वफ़ात पा गये !

शहाबुद्दीन : क्यों ? क्या हुआ था ? मैदाने-जंग में वो क्यों गये थे ?

रतनसिंह : मैं नहीं जानता शहाबुद्दीन ! उस वक़्त मैं दूसरे मुक़ाम पर लड़ रहा था।

शहाबुद्दीन : लड़ाई का अंजाम क्या हुआ ?

रतनसिंह : हमारी तरफ़ से सिर्फ छः सौ सिपाही खेत रहे, और दुश्मन की फ़ौज का तीन-चौथाई हिस्सा साफ़ हो गया।

शहाबुद्दीन : यानी हमारे जाँ-बाज़ों ने बेमिसाल बहादुरी दिखाई होगी !

सौतेली माँ उदास हो जाती है। उसी वक्त चोबदार की आवाज।

चोबदार : बा-अदब बा-मुलाहिज़ा होशियार ! खुदावंद, खुदातर्स सुलतान तशरीफ़ ला रहे हैं।

मुहम्मद, नजीब, बरनी दाखिल होते हैं। रतन-सिंह बंदगी करता है।

शहाबुद्दीन : (**झुककर**) सुलतान का इक़बाल बलंद हो। खुदा आपका हर कदम फ़तह की जानिब ले जाये !

मुहम्मद : बंदगी नहीं शहाबुद्दीन, गले मिलो (**गले मिलता है**)। मेरी ग़ैर-मौजूदगी में तुमने जो हुकूमत की बागडोर सँभाली है, उसके लिए हम तहे-दिल से तुम्हारा एहसान

मानते हैं ।

शहाबुद्दीन : मैं सुलतान का ख़ादिम हूँ, खुदावंद ।

सौतेली माँ : मुहम्मद, शेख़े-मुअज़्ज़म के मुताल्लिक़ यह कैसी ख़बर आई है...?

मुहम्मद : **(चेहरा एकदम फ़क़ पड़ जाता है)** क्या यह अभी दरियाफ़्त करना था, अम्मी ? मुअज़्ज़म की मौत का तसव्वर भी करते हैं, तो रूह काँप जाती है । किस क़दर बद-शक्ल हो गई थी उनकी लाश ! **(जैसे अपने आप से बोले जा रहा हो)** शेख़ का बेजान जिस्म ख़ेमे में लाया गया । सर से पैर तक तीरों से छिदा हुआ था । ज्योंही मेरी नज़र उस पर गई, लम्हे भर के लिए मुझे एहसास हुआ कि गोया वे तमाम तीर मेरे जिस्म में बिंध गए हों । मुझे लगा, मेरे सामने की लाश शेख़ की नहीं, बल्कि खुद मेरी हो । उनकी डरावनी सूरत मेरे सीने में घुस गई थी । दिल में आया कि वहाँ से बेतहाशा भाग जाऊँ और कहीं अथाह गहराइयों में छुप जाऊँ ! या अपने सारे वुजूद को उस बेजान जिस्म में डाल दूँ ।

बरनी : हुज़ूर, शेख़ की मौत की वजह से आप क्यों ग़मगीन हैं ? उनकी मौत का बायस...?

सौतेली माँ : उस ग़द्दार आईन-उल्-मुल्क का क्या किया ? उसे मौत के घाट नहीं उतारा ?

मुहम्मद : **(धीमी आवाज़ में)** उसे मैंने आज़ाद कर दिया !

सभी ताज्जुब से आँखें फाड़कर देखने लगते हैं ।

सौतेली माँ : आज़ाद कर दिया ? उसकी बेवफ़ाई पर इनाम अता किया ? उस बदकार को तो फ़ौरन ख़त्म करवा देना चाहिए था ।

नजीब : बेगम साहिबा बजा फ़रमा रही हैं, हुज़ूर ! अवध में आईन-उल्-मुल्क के बेशुमार हिमायती हैं । उसको आज़ाद करने का मतलब है, बाग़ियों के हाथ जलती मशाल थमा देना ।

बरनी : आपका यह ख़्याल बिल्कुल ग़लत है, वज़ीरे-आज़म ! सुलतान जैसी हस्ती के लिए यही वाजिब था । अपनी इन्साफ़-पसंदी से सुलतान ने यह साबित कर दिया कि दोस्ती सियासत से ज़्यादा अज़ीज़ है ।

नजीब : (बेरुखी से) फिर वही राग...।

मुहम्मद : (हँसता हुआ) शायद आप सबका ख़्याल है कि मैंने आईन-उल्-मुल्क खुदा के रहमो-करम पर छोड़ दिया। आईन-उल्-मुल्क को मैंने सिर्फ़ आज़ाद ही नहीं किया, बल्कि उसे अवध का राज भी वापस कर दिया।

नजीब : अगर ख़ुद तबाही को दावत देना चाहें तो हमारी क्या मजाल है हुज़ूर, कि कुछ कहें!

सौतेली माँ : ऐसा कौन-सा बड़ा काम उसने किया था जिसके लिए उसके साथ ऐसा सलूक किया गया?

मुहम्मद : (कहानी सुनाने के रंग में) वह एक लम्बी दास्तान है। कन्नौज जाने से पहले, जिस शतंरजी मसले का हल हासिल किया था, उसमें एक भूल रह गई थी। आईन-उल्-मुल्क को जब मेरे सामने पेश किया गया, तो मैंने उससे कहा---'उल्-मुल्क! मैंने शतरंज में एक मुश्किल मसले का हल तलाश कर लिया है। देखोगे?' वह राज़ी हो गया। मैंने शतंरज बिछाकर खेल बताया। वह मुतास्सिर होकर बोला—'कमाल का हल पाया है, सुलतान', और पल भर खामोश रहा...फिर एकाएक बोल पड़ा...'नहीं सुलतान, इसमें एक भूल है' और योहीं लम्हों में उसने वह भूल दिखा दी जिसका मुझे ज़रा भी इल्म नहीं था। तो हमने उसकी तमाम सियासी ग़लतियों को माफ़ कर दिया।

बरनी : वाक़ई आप बलंद हैं हुज़ूर।

मुहम्मद : और तुम नेक-दिल हो बरनी। आख़िरकार नेक-दिली की ही क़द्र होती है। वज़ीरे-आज़म के चेहरे की शिकनों को ज़रा ग़ौर से देखो। लगता है कि हमने उल्-मुल्क को आज़ाद करके जो दरिया-दिली दिखाई, गोया उस पर उसे ज़रा भी यक़ीन नहीं। शायद इसमें भी उसे सियासी चालें नज़र आ रही होंगी।

नजीब : अपनी फ़ितरत से मजबूर हूँ, और इत्तिफ़ाक से मेरा काम भी उसी क़िस्म का है।

मुहम्मद : शहाबुद्दीन, अब हम रुख़सत होते हैं। आज ही शहर भर में मुनादी करा दो कि शेख़ मोहतरिम की शहादत के बोझ से नजात हासिल करने के लिए सब लोग आज शाम

को परवर-दिगार से दुआएँ माँगें ।

बरनी : उनकी शहादत का बोझ दिल्ली पर क्यों नाजिल होगा, हुज़ूर ?

मुहम्मद : बरनी, शेख जैसे मर्दे-खुदा की मौत हो, और हम लोग जिन्दा रहें, यही गुनाह है। अब हम जाएँगे। शहाबुद्दीन भी चंद लम्हों के लिए फ़राग़त महसूस करें ।

सिवाय शहाबुद्दीन और रतनसिंह के सब चले जाते हैं।

शहाबुद्दीन : रतन, सुलतान की इस संजीदगी की क्या वजह है ?

रतनसिंह : मैं बहुत थका हुआ हूँ, शहाबुद्दीन । मैं सोना चाहता हूँ।

शहाबुद्दीन : इस कदर बेरुख़ी क्यों रतन ? यह तो बताओ, आख़िर शेख़े-मोहतरम पर क्या गुज़रा था ?

रतनसिंह : तुम्हारे सुलतान इस हद तक धोखेबाज़ हो सकते हैं, यह मैंने ख़्वाब में भी नहीं सोचा था ! एक ओर क़त्ल कराते हैं, दूसरी ओर उस क़त्ल को शहादत का रंग देते हैं ।

शहाबुद्दीन : क़त्ल ? किसका ? क्या बक रहे हो ?

रतनसिंह : हाँ, मैं बक रहा हूँ ! मैं खब्ती हूँ न !

शहाबुद्दीन : ग़लत मत समझो रतन । मैं कई बार तुमसे कह चुका हूँ कि बिला-वजह सुलतान की शिकायत करना सरासर नाजायज़ है। आख़िर कोई वजह भी तो हो। हिन्दुओं की तरक़्क़ी और भलाई के लिए सुलतान ने क्या नहीं किया ? नफ़रत के जोश में इस सच्चाई को भी नज़र-अंदाज़ कर दोगे ?

रतनसिंह : सुलतान की नेक-नीयती का मैं हमेशा से कायल रहा हूँ। मगर उनकी यह नेक-नीयती भी बड़ी बे-मुरव्वत है, शहाबुद्दीन ! उनकी इसी नेक-नीयती ने मुसलमानों की तरह हिन्दुओं पर भी सितम ढाये हैं। दोआब के खौफ़नाक क़हत के शिकारों में सिर्फ़ मुसलमान ही नहीं...।

शहाबुद्दीन : क़हत कुदरती बला है। उसके लिए सुलतान के बलंद ख़्यालों पर शक करना हद दरजे की नासमझी है। तुम्हारी ऐसी ही बातें मुझे बकवास लगती हैं ।

रतनसिंह : बकवास है या नासमझी, यह तुम्हारा ज़ाती नज़रिया है। मगर सच्चाई ये है कि दोआब की ज़मीन की ज़रखेज़ी पर सुलतान का जी ललचा गया और बिना सोचे-समझे

मालगुज़ारी पहले से दस गुना ज़्यादा बढ़ा दी। अब खुदा की क़ुदरत, गये साल बारिश ही नहीं हुई। मगर क्या इस क़ुदरती बला का इंतिक़ाम रिआया से लेना चाहिए था? मालगुज़ारी न देने वालों पर जुल्म ढाना चाहिए था? उनको उनकी मौरूसी ज़मीन और जायदाद से बेदख़ल कर देना चाहिए था? तब क़हत क्यों नहीं पड़ता!

शहाबुद्दीन : मैं मानता हूँ कि वहाँ ज़्यादती हुई है। मगर ये ज़्यादतियाँ सुलतान के हाकिमों की हैं।

रतनसिंह : यानी, तुम्हारे नुक़्तए-नज़र से सुलतान बेदाग़ है। किसी भी वारदात के लिए वो ज़िम्मेदार नहीं है। तो फिर शेख़ इमामुद्दीन की मौत का कौन जवाब-देह है? आईन-उल्-मुल्क है? तुम्हारे वही हाकिम है?

शहाबुद्दीन : आख़िर तुम साफ़-साफ़ क्यों नहीं बताते? शेख़े-मोहतरिम के साथ क्या वारदात हुई?

रतनसिंह : मैं डरता हूँ शहाबुद्दीन, तुम्हारे सुलतान से नहीं, बल्कि तुमसे! मुझे अंदेशा है कि शेख़ इमामुद्दीन की मौत की हक़ीक़त सुनने के बाद भी तुम पर कोई असर न हो।

शहाबुद्दीन : यह सरासर ज़्यादती है रतन कि तुम यों हमारी नीयत पर शक करो। जैसी तुम्हारी मर्ज़ी!

रतनसिंह : तुम्हारी इस तरह की जज़बाती हरकतों से मैं बेज़ार हो जाता हूँ। **(फिर रुककर)** मुझे तो इतना याद है कि इस हादसे में मेरी मौत नहीं हुई...बस, यही ग़नीमत समझो।

शहाबुद्दीन : अब कब तक राज़दारी करते रहोगे रतन? जो हादसा हुआ है, आख़िर उसे बयान क्यों नहीं करते?

रतनसिंह : अगर इतना इसरार है तो सुनो...। सुलतान ने तुम्हें तो दिल्ली बुला लिया। और मैं कन्नौज जाकर उनसे मिला, अर्ज़ की कि मैं शहाबुद्दीन की तरफ़ से आया हूँ...और जंग में सुलतान की मदद के लिए तैयार हूँ। लेकिन मुझे लगा कि मेरी आमद पर सुलतान को कोई खुशी नहीं हुई, और वो कुछ बातें मुझसे पोशीदा रखना चाहते हैं। अगली सुबह को ही मेरा शुबहा सही साबित हुआ।

शहाबुद्दीन : क्यों, क्या हुआ?

रतनसिंह : उस दिन शेख़ मोहतरम, आईन-उल्-मुल्क के साथ सुलह कराने के इरादे से अपने मुक़ाम से रवाना होने वाले थे।

उनके साथ एक दस्ता भी जाने के लिए तैयार किया गया। और इस दस्ते की अगली क़तार में रहने के लिए ही मुझे हुक्म दिया गया। मुझे अहसास था कि अगर जंग छिड़ जाती तो दस्ते की पहली क़तार ही यक़ीनन ख़त्म होती !

लम्हे-भर के लिए सन्नाटा ।

शहाबुद्दीन : तो फिर ?

रतनसिंह : शेख़ इमामुद्दीन हाथी पर सवार थे। बेचारे ! अपने को बाक़ायदा शाही सफ़ीर समझ रहे थे। उनके सर पर सुलतान का इसरार से दिया हुआ इमामा सजा था। सुलतान के ही हाथों इसरार से पहनाया हुआ शाही लिबास उनके जिस्म पर था। और बिला-शुबहा, दूर से शेख़े-मुअज़्ज़म बज़ाते-खुद सुलतान ही लगते थे।

शहाबुद्दीन : उस वक़्त सुलतान अपने ख़ेमे में थे ?

रतनसिंह : नहीं, वो चार हज़ार की फ़ौज लेकर नज़दीक के पहाड़ के पीछे छुपे खड़े थे।

शहाबुद्दीन : छुपे हुए ?

रतनसिंह : शेख़ इमामुद्दीन हमारे दस्ते के आगे-आगे आईन-उल्-मुल्क की फ़ौज की तरफ़ बढ़े। उनका हाथी उल्-मुल्क की फ़ौज से पाँच सौ गज़ के फ़ासले पर खड़ा हुआ। शेख़े-मोहतरिम हाथी के हौदे पर से खड़े होकर आईन-उल्-मुल्क को कुछ बताना चाहते ही थे कि एकाएक हमारी तरफ़ से किसी ने जंगी तुरही बजा दी। इसी को इशारा मानकर मेरे इर्द-गिर्द खड़े सिपाहियों ने दुश्मनों पर तीरों की बौछार शुरू कर दी। बाज़ सिपाहियों ने दुश्मनों पर हमला बोल दिया। जंग छिड़ गई। लेकिन शहाबुद्दीन, जंगी कार्रवाइयाँ पहले हमने शुरू की थीं, उल्-मुल्क ने नहीं।

शहाबुद्दीन : और सुलतान ?

रतनसिंह : मैं कुछ समझ नहीं पाया। शेख़ की तरफ़ निगाह उठाई, मारे दहशत के उनका चेहरा बिगड़ चुका था। परीशाँ-सूरत शेख़ चिल्लाने लगे...'रुक जाओ, रुक जाओ'!

शहाबुद्दीन : या ख़ुदा !

रतनसिंह : मगर नक़्क़ारखाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है ? मैं

भी बे-जिगरी से जूझता रहा। एकाएक 'सुलतान को बचाओ, सुलतान को बचाओ,' कहकर एक साथ कई चीखें सुनाई पड़ीं। मैंने नज़र उठाकर शेख़ साहब की जानिब देखा, वो...।

रुकता है, कमरे की ख़ामोशी चीखती हुई-सी लगती है।

रतनसिंह : शेख़े-मुअज़्ज़म पहले की तरह बेहिस खड़े थे, और मुसलसल तीरों की बौछार उनके जिस्म को बींधे जा रही थी। तीरों से बचने की कोशिश में शेख़ ने अपना मुँह ढाँप लिया। अब वो काँटों का एक लंबा बुत-सा नज़र आने लगे। फिर देखते-देखते शेख़े-मोहतरम का जिस्म हाथी के हौदे पर से ज़मीन पर धड़ाम से आ गिरा। हम सब घबराकर तितर-बितर हो गये। बेतहाशा पीछे की तरफ़ भागने लगे। भागते ही रहे, भागते ही रहे। हम सब इंतिहाई दहशत में थे। हमने अपने आपको घोड़ों की मर्ज़ी पर छोड़ दिया...।

शहाबुद्दीन : और सुलतान ने कोई क़दम नहीं उठाया ?

रतनसिंह : **(व्यंग्य से, हँसकर, धीरे से)** हाँ, ज़रूर उठाया। सिपाहियों ने यही समझा कि ख़ुद सुलतान मारे गए। अंधे दुश्मन, फ़तह का नारा लगाते हमारे दस्ते का पीछा करते हुए, मैदाने-जंग की सरहद तक बढ़ आये। उधर पहाड़ के पीछे सुलतान बदस्तूर अपने चार हज़ार सिपाहियों के साथ मुस्तैद खड़े थे। अब दुश्मनों की फ़ौज तबाही के जाल में फँस गई। जंग ख़त्म होते-होते दुश्मनों की तीन-चौथाई फ़ौज का सफ़ाया हो चुका था, और **(व्यंग्य से)** हम फतहयाब हो गए। **(रुककर)** क्या अब भी सुलतान को गुनहगार मानने से इनकार करोगे ? क्यों, अब भी तुम्हें मेरे अलफ़ाज़ पर एतबार नहीं हुआ ?

थोड़ी देर ख़ामोशी, फिर।

शहाबुद्दीन : **(धीमी आवाज़ में)** हाँ, सुलतान शायद क़सूरवार हैं, ज़रूर हैं लेकिन यह क़सूर महज़ सुलतान का नहीं। इसमें अहले-दिल्ली भी शरीक हैं। बड़ी उम्मीदें लेकर उस दिन शेख़े-मोहतरम दिल्ली आये होंगे। उनको यक़ीन रहा होगा कि अहले-दिल्ली उनको सुनेंगे। मगर किसी को भी उस

जलसे में पहुँचने की फ़ुरसत नहीं मिली। अगर चंद शख़्स भी उस जलसे में मौजूद रहते तो यह खौफ़नाक हादसा कभी न होता।

रतनसिंह : **(ठहाके के साथ)** शाबाश! ये हैं दोस्ती का बेमिसाल नमूना। मगर तुम्हें मालूम भी है कि ख़ुद अहले-दिल्ली इस हादसे के मुताल्लिक़ क्या सोचते हैं?

शहाबुद्दीन : मुझे क्योंकर मालूम हो?

रतनसिंह : मालूम करने की कोशिश भी की है?

शहाबुद्दीन : क्या मतलब?

रतनसिंह : दिल्ली के बाज़ उमरा, ताजिर, इमाम वग़ैरह फ़िलहाल पोशीदा तौर पर कोई तजवीज करना चाहते हैं। यह कोई पहली बार नहीं कि सुलतान ने इस क़िस्म की फ़रेब-कारी की हो। गये दो सालों से उनसे ऐसी बेशुमार हरकतें सरज़द होती रही हैं। इसलिए सुना है कि अब सुलतान की इन नाक़ाबिले-बरदाश्त हरकतों को हमेशा के लिए ख़त्म करने की तदबीरें निकाली जाएँगी।

शहाबुद्दीन : तुम्हें कैसे पता लगा?

रतनसिंह : दिल्ली की सियासती चालों के लिए तुम अभी नौसिखुए हो, शहाबुद्दीन! जिस रोज़ मालूम हुआ कि सुलतान ने जंगी दस्ते की अगली क़तार में भिजवाकर मुझे मरवा डालने की साज़िश की थी, उसी रोज़ से कई अमीर-उमरा मेरे पीछे पड़े हैं। आज ही, अभी कुछ ही लम्हे पहले जब मैं इस तरफ़ आ रहा था, सुलतान के बिलकुल बीस गज़ पीछे एक अमीर ने अपनी खुफ़िया बैठक में आने की दावत दी है। मुमकिन हो तो तुम्हें भी वहाँ ले आने को कहा है। लेकिन मैंने जवाब में कहा था कि मैं ज़रूर बैठक में मौजूद रहूँगा, मगर शहाबुद्दीन के मुताल्लिक़ वादा नहीं करता। अगर वह राजी हुआ तो ज़रूर लेता आऊँगा। बोलो... चलोगे?

शहाबुद्दीन : हुं...।

दृश्य : ५

दिल्ली शहर की ही एक क़याम-गाह। चार-पाँच अमीर, इमाम बैठे हैं। दूसरी तरफ़ शहाबुद्दीन और रतनसिंह भी मौजूद हैं।

शहाबुद्दीन : मैं यह साफ़ बता देना चाहता हूँ कि मैं सुलतान का कोई ख़ास दोस्त नहीं हूँ, और न उनसे मेरी कोई ख़ास बाबस्तगी है। लेकिन यहाँ सवाल मेरे ताल्लुक़ात या दोस्ती का नहीं है, बल्कि आपका अपना ज़ाती मामला है। अगर सुलतान का तर्ज़-अमल आपको पसंद नहीं है, तो यह आपका सरदर्द है। मैं तो चन्द रोज़ के बाद अपने सूबे वापस जा रहा हूँ। ऐसी सूरत में मुझे ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ता।

अमीर १ : हाँ, हाँ, वही तो इस मामले का ख़ास नुक़ता है। आप सुलतान के ख़ास मोतबिरों में से एक हैं। दूसरों की बात हम नहीं कहते मगर आपके साथ कभी वो बे-एतबारी नहीं बरतेंगे।

शहाबुद्दीन : (**हँसता है**) मैं सुलतान का मोतबिर हूँ, महज़ इसी बिना पर आप मुझसे सुलतान की हुकूमत की बदख़ोई करवाना चाहते हैं। मैं तो दिल्ली का बाशिंदा भी नहीं हूँ...।

अमीर २ : दिल्ली की आबो-हवा की यही तो ख़ास सिफ़त है कि यहाँ अहले-दिल्ली, अहले-दिल्ली का एतबार नहीं करते। दिल्ली-वालों को हमेशा से बाहरी रहनुमाई ही रास आई

है। (फिर दबी आवाज़ में) हम सब घर की मुर्ग़ियाँ जो हैं !

इस पर सब दबे-दबे हँसने लगते है।

शहाबुद्दीन : ऐसा कौन-सा ख़तरा दरपेश है यहाँ पर...मुझे तो कुछ नज़र नहीं आता।

अमीर १ : आप...बराहे-मेहरबानी ज़रा ग़ौर तो फरमाइए। यह दौलताबाद जाने का एक नया बखेड़ा क्यों खड़ा किया गया, इसीलिए न कि हम जैसे बा-इज़्ज़त व बा-ईमान अमीरों को बिला-वजह परेशान किया जाए। यहाँ दिल्ली में हमारी अपनी ज़मीन-जायदाद है, अपनी ज़ात-बिरादरी है, यानी हम यहाँ के पुश्त-दर-पुश्त जमे हुए बाशिंदे हैं ! अब हमें यहाँ से बेदख़ल करने की साज़िश की जा रही है, और दौलताबाद ले जाने की तैयारियाँ हो रही हैं ! मगर दौलताबाद से हमारा क्या वास्ता है ? यहाँ से एक-दम उलटा हाल है वहाँ का ! इस पर वहाँ के बाशिंदे भी हिन्दू हैं, जो हमें देखते ही लाल-पीले हो जाएँगे। सुल-तान के पास तो मुसल्लह फ़ौज है जिसके बूते पर वो हिन्दुओं को अपने क़ाबू में दबाए रख सकते हैं। मगर हमारा क्या होगा ? न दोस्त-हिमायती हैं, न ज़ात-बिरादरी है। मजबूर होकर भले ही सुलतान की क़दम-बोसी किया करो। मैं ग़लत-बयानी तो नहीं कर रहा हूँ ? दर-हक़ीक़त जनाब, हम हमेशा वहाँ मुब्तलाए-आफ़त रहेंगे। यही मक़सद है सुलतान की इन हरकतों का !

अमीर २ : अब आपसे क्या छुपाएँ ? देख लीजिए न...यहाँ दिल्ली में भी हमारी क्या दुर्गत हो गई है। जब से ये मौजूदा सुलतान तख़्त-नशीन हुए हैं, तभी से हम पर बेतहाशा महसूल बढ़ाए जाते रहे हैं। ज़मीन, मकान, खाना-पहनना, सब पर महसूल लगा है। अगर ये रफ़्तार यहीं तक रुक जाती तो भी कुछ ग़नीमत थी। मगर अब फ़रमाते हैं कि जुआ खेलने का महसूल भी पहले अदा करो, ऐसी सूरत में हम अमीर-उमरा ज़िन्दा कैसे रहें ? ये तो हद दर्जे का सितम है कि बिना सुलतान को इत्तिला दिए कुछ भी न करो।

शहाबुद्दीन : बजा है, लेकिन सुलतान की तख़्त-नशीनी के बाद ही देहातों-कस्बों में कितने मकतब-मदरसे खुले हैं ? पुल-नहरें

बनी हैं ? दवाख़ाने क़ायम हुए हैं ? अब इन सबके इंतज़ाम के लिए रक़म भी तो चाहिए !

सैयद : लेकिन ग़ैर-दीनी तरीक़ों से रक़म कमाना इस्लाम में बिल्कुल मना है शहाबुद्दीन ! क़ुराने-पाक में सिर्फ़ चार क़िस्म की ज़कातें तसलीम की गई हैं। मगर सुलतान को इनकी परवाह ही कहाँ है ? अलावा इसके इस्लाम में यह भी तसलीम-शुदा रिवाज रहा है कि जंगी आमदनी का अस्सी फ़ी-सदी हिस्सा सीधे इमाम को पहुँचे। लेकिन मौजूदा सुलतान सिर्फ़ बीस फ़ी-सदी मुहैया करते हैं। अगर यही सूरते-हाल क़ायम रही तो हम इमाम-सैयदों की क़द्र ही क्या रहेगी ! मौजूदा सुलतान की बे-इन्साफी का एक और ताज़ा सबूत पेश करता हूँ। मामला क़ाबिले-ग़ौर है। कहते हैं कि अब से हिन्दू लोग...।

रतनसिंह को देखकर चुप हो जाता है।

रतनसिंह : कहते जाइये सैयद, मेरी मौजूदगी का लिहाज़ न कीजिएगा। हम भी मौजूदा ख़ब्ती सुलतान से तंग आ चुके हैं।

शहाबुद्दीन : **(उबलते गुस्से को रोकता हुआ)** आप कहना क्या चाहते हैं ?

सैयद : हाँ, यही कि मैं अर्ज़ करना चाहता था कि...हिन्दू लोग जज़िया दें, जरूर दें। नहीं देते है तो देने के लिए उन्हें मजबूर कर दें। मगर सुलतान फ़रमाते हैं कि हिन्दू-मुसलमान बराबर हैं। दोनों कौमें इन्सान की नस्ल हैं, हिन्दुओं का जज़िया देना इन्सानियत की बेक़द्री है। इससे बद-तरीन ग़ैर-आईनी हरकत और क्या होगी ?

शहाबुद्दीन : **(सख़्त नाराज़गी के साथ)** बस, बस, बहुत हो चुका। आप लोगों के साथ मैं कभी इत्तिफ़ाक़ नहीं कर सकता। और यह मेरा हर्फ़े-आख़िर है। आप लोग सुलतान के पाँव की गर्द तक छूने के क़ाबिल नहीं। चलो रतनसिंह, हम एक पल यहाँ नहीं ठहरेंगे। अलविदा...।

सब भौंचक्के से खड़े हो जाते हैं। एक-दूसरे को सवालिया नज़र से देखने लगते हैं।

रतनसिंह : ठीक है, चलो !

उसी वक्त एक बुज़ुर्ग इमाम, जो अब तक एक

कोने में ख़ामोश बैठे थे, बोलते हैं।

इमाम : क़ाबिले-ताज़ीम शहाबुद्दीन !

शहाबुद्दीन : (**पीठ फेरे**) आपने सुना नहीं, मेरा फ़ैसला...?

इमाम : शहाबुद्दीन, हमने ज़िन्दगी भर सिवाय अल्लाह्-ताला के किसी दूसरी हस्ती के आगे हाथ नहीं फैलाए थे। मगर आज आपके आगे हाथ फैलाते हैं। दो-ज़ानू होकर इल्तिजा करते हैं कि खुदा के वास्ते दीनो-ईमान की सलामती की ख़ातिर आप रुक जाएँ।

शहाबुद्दीन : (**इमाम की वेदना से गदगद होकर**) क्या मैं जान सकता हूँ कि मैं किससे मुख़ातिब हूँ ?

सैयद : (**हिक़ारत से**) मोअज़्ज़म शेख़ शम्सुद्दीन तजुद्दारफ़ीम !

शहाबुद्दीन : मोअज़्ज़म शेख़ शम्सुद्दीन ! आली क़द्र ! आप यहाँ इस आलम में क्या कर रहे हैं, इन लोगों के बीच ?

शम्सुद्दीन : बजा फ़र्माते हैं शरीफ़ शहाबुद्दीन ! हमारी भी रूहानी ख़्वाहिश यही थी कि कि मीनारे-मस्जिद में बैठे उस परवर-दिगार की इबादत में हम मशगूल रहते। अल्लाह्-ताला की राह में हमारी ज़िन्दगी वक्फ़ हो। मगर दीनो-ईमान का वुजूद सिर्फ़ मेरे वास्ते नहीं, बल्कि उन सबके वास्ते है जो उसके मोतक़िद हैं। जब अल्लाह् के बन्दे जुल्म के शिकार हों, तब मैं अकेला आशियाने में कैसे पड़ा रहूँ ? शायद आप आगाह नहीं हैं कि गुज़िश्ता एक हफ़्ते के दरमियान यहाँ क्या-क्या वाक़ये हो चुके हैं। शेख़ हैदर को हिरासत में ले लिया गया। शेख़ दूद को जिला-वतन कर दिया गया।

शहाबुद्दीन : मुझे मालूम है। लेकिन शेख़-सैयदों ने भी सियासत में दख़ल देने की कोशिश की थी।

शम्सुद्दीन : शेख़-सैयदों ने अगर अपने लोगों की भलाई का ख़्याल रखा तो क्या गुनाह किया ? दारुल-सलतनत को दिल्ली से दौलताबाद ले जाने की ग़लत तजवीज़ की अगर मुख़ालिफ़त की तो कौन-सा जुर्म किया ? अह्ले-दिल्ली की मुश्किलात का इज़हार कर दिया तो कौन-सा क़सूर हुआ ? फिर नेक-दिल शेख़ इमामुद्दीन ने कौन-सा गुनाह किया था जिनको मैदाने-जंग में क़ुरबानी का बकरा बनाया गया ?

शहाबुद्दीन : **(ज़रा रुककर)** यह सही है कि शेख़ इमामुद्दीन ने कोई गुनाह नहीं किया था। मगर इस मामले में सिर्फ़ सुलतान ही नहीं बल्कि दिल्ली का हर मुसलमान गुनहगार है। यों तो कोई भी हक़ीक़त ही कहेगा कि शेख़ मोहतरिम सुलतान के साथ खुदकशी के लिए ही अवध गए थे। वो अहले-दिल्ली से ना-उम्मीद हो गए थे। मोअज्ज़म दिल्ली आए थे दिल्ली के अवाम को बेदार करने के वास्ते, उनमें जोश की रवानी को बहाल करने के वास्ते। वो अवाम के आगे एक नया नज़रिया पेश करना चाहते थे। मगर अफ़सोस! बड़ी मसजिद के वसी सेहन में जब तक़रीर सुनाने शेख़ मोहतरिम तशरीफ़ लाये, तो वहाँ सिवाय सुलतान के कोई शख़्स मौजूद नहीं था। सब अपनी-अपनी क़याम-गाहों में मुँह छुपाए बैठे थे। क्या सुलतान का ख़ौफ़ सबके ज़ह्नों पर बैठ गया था? दिल्ली के बाशिंदों की इस बुज़दिली, इस बेरुख़ी से ही शायद शेख़ साहब का हौसला पस्त हो गया होगा। अब महज़ सुलतान को कोसने से क्या फ़ायदा?

सबके चहरों पर ताज्जुब की शिकनें नज़र आती हैं।

शम्सुद्दीन : यानी अंदरूनी हरकतों से आप बिल्कुल वाकिफ़ नही हैं?

शहाबुद्दीन : अन्दरूनी हरकतें?

सब लोग इस तरह मुँह बनाते हैं, जैसे शहाबुद्दीन की नासमझी पर तरस खा रहे हों।

शम्सुद्दीन : हाँ, शरीफ़ शहाबुद्दीन! जिस रोज़ शेख़ इमामुद्दीन की तक़रीर होने वाली थी, उसी रोज़ की सुबह दिल्ली-भर में शाही ऐलान हुआ था कि शहर का हर ख़ासो-आम जलसे में शरीक हो। लेकिन उसी दोपहर को सुलतान के फ़ौजी घर-घर जाकर धमकियाँ दे रहे थे कि जो भी जलसे में शरीक होगा उसके लिए नतीजा अच्छा नहीं होगा।

सन्नाटा! शहाबुद्दीन जवाब नहीं दे पाता।

शहाबुद्दीन : क्या सुलतान फ़ौजियों की इन हरकतों से वाकिफ़ थे?

शम्सुद्दीन : यक़ीनन थे! सुलतान ने फ़ौजियों को खुद हुक्म दिया था कि जलसे में पहुँचने की हर कोशिश को नाकाम कर दिया जाए। जिस वक़्त शेख़ के आगे सुलतान अपनी तशवीश

ज़ाहिर कर रहे थे, कि अभी कोई क्यों नहीं आया, उस वक़्त शहर के मकानात के इर्द-गिर्द उनके सिपाही जलसे में शरीक होने के ख्वाहिशमंद लोगों को ज़बरदस्ती भीतर ढकेल रहे थे। आपको अब भी यक़ीन नहीं हो रहा है, तो यहाँ देखिए। (**क़मीज़ की ऊपरी गुंडी खोलकर दिखाता है**) सिपाहियों के हुक्म की जो ना-फ़रमानी मैंने की थी, उस पर यह फ़ौजी इनाम मुझे मिला है! वरना मेरे साथ सख़्ती बरतने की उनको क्या ज़रूरत पड़ी थी?

रतनसिंह : शहाबुद्दीन, अब तो समझ गए होगे कि सुलतान की ग़ैर-हाज़िरी में तुम्हीं को यहाँ क्यों बुलाया गया था, जबकि गुज़िश्ता मौक़ों पर दिल्ली के उमरा ही सब कारोबार सँभालते थे। (**हँसकर**) इसी लिए तो सुलतान ने तुम्हारा एतबार किया!

शहाबुद्दीन : हो सकता है। मगर इससे कोई ज़ाती हक़-तलफ़ी नहीं हुई।

रतनसिंह : अगर होती तो उसे मालूम करने के लिए अब तक तुम ज़िन्दा भी नहीं रहते।

शम्सुद्दीन : आप भी दुनिया का नफ़ा-नुकसान सोचते रहेंगे तो अवाम की रहबरी कौन करेगा, शरीफ़ शहाबुद्दीन? आप इस हक़ीक़त को नहीं देखते कि दिल्ली के ये बदनसीब अवाम, जो सुलतान के नित नए तजुर्बों से परेशान हैं, सुलतान के ज़ुल्म की वजह से तबाह हो गये हैं। ये दौलताबाद जाने से एकदम लाचार हैं। यह न भूलें कि वो किस क़दर कमज़ोर हैं। आप मौजूदा हालात की संगीनी को कब तक नज़र-अंदाज़ करेंगे? शाहे-सुलतान की ग़ैर-मज़हबी हरकतें—और कब तक जारी रहेंगी? तब तक शेख़ इमामुद्दीन जैसे और कितने बेगुनाह शहीद होंगे?

शहाबुद्दीन ख़ामोश रहता है।

अमीर १ : इजाज़त हो तो हम एक तजवीज़ पेश करें। जबसे आईन-उल्-मुल्क का बखेड़ा खड़ा हुआ है, तब से दिल्ली में शाही फ़ौज की चहल-पहल कम हो गई है। बाज़ लोगों का अंदाज़ है कि दिल्ली में फ़िलहाल फ़ौज है ही नहीं, अगर हो भी तो वो बहुत ज़्यादा नहीं है। तमाम फ़ौज

अवध में उलझी हुई है। अगर कुछ करना है, तो इन्हीं सात-आठ दिनों में अंजाम देना होगा। तब तक शायद आप भी दिल्ली में ही मौजूद रहेंगे। अगर आप सुलतान की मुख़ालिफ़त करने के लिए राज़ी नहीं हैं तो न सही। मगर कम-से-कम इतनी तो आप से उम्मीद कर सकते हैं कि अगर हमने मौजूदा हुकूमत के ख़िलाफ़ बग़ावत कर दी, तो आप सुलतान की जानिब से किसी भी हालत में हमारा मुक़ाबला करने की पेश-क़दमी नहीं करेंगे।

शहाबुद्दीन : इससे तो यही बेहतर है कि मैं सीधे तौर पर आपकी साज़िश में शरीक हो जाऊँ!

रतनसिंह : तो क्यों नही शरीक होते? शेख़ शम्सुद्दीन, शेख़ इमामुद्दीन जैसी पाक हस्तियों के साथ जो बदसलूकी हुई है, उससे मुझ जैसे काफ़िर का ख़ून खौल उठा है। और तुम ख़ामोश रहो! तुम कहते हो कि दिल्ली के अवाम बुज़-दिल हैं? मगर मैं कहता हूँ कि तुम बुज़दिल हो! सुलतान को क़ातिल क़रार देने की हिम्मत भी तुम में अब नहीं रही। वाक़ई सुलताने-आला की तक़दीर क़ाबिले-रश्क है! सुलतान के ज़ुल्मो-ज़्यादती के बावजूद तुम्हारी वफ़ादारी बरक़रार है।...अब क्यों ख़ामोश खड़े हो? चलो, अपने दौलत-ख़ाने की तरफ़, मेहरबाँ सुलतान के मेहमान-ख़ाने की तरफ़। वहाँ तुम सही सलामत रहोगे, इंसाफ़ और बे-इन्साफ़ी का झंझट भी नही होगा।

शहाबुद्दीन : **(थोड़ी देर तक ख़ामोश रहकर)** मुझे मंज़ूर है। अपनी ख़ातिर नहीं, बल्कि आप लोगों की ख़ातिर, शेख़ शम्सुद्दीन की ख़ातिर। मैं आपका शरीके-हाल हो जाता हूँ।

सब शुक्रिया अदा करते हैं।

अमीर २ : आफ़रीं! आफ़रीं! शरीफ़ शहाबुद्दीन, हमारी तरफ़ से दिली मुबारक-बाद क़ुबूल कीजिएगा।

शहाबुद्दीन अपने ख़्यालों में खोया हुआ है।

शम्सुद्दीन : शरीफ़ शहाबुद्दीन, आपके मौजूदा एहसान को इस्लाम कभी फ़रामोश नहीं करेगा।

शहाबुद्दीन : आप लोग मुझसे क्या उम्मीद रखते हैं? मैं किस तरह आपके काम में कारामद साबित हो सकूँगा? मेरे वालिद

के पास बेशक बहुत बड़ी फ़ौज है, और सुलतान मेरे वालिद से भीतर-ही-भीतर ख़ौफ़-ज़दा भी हैं। मगर आप लोग इस मामले को जल्द-से-जल्द निपटाना चाहते हैं। फ़रमाइए, मेरे लिए क्या हिदायतें हैं? (**रूहानी तकलीफ़ को दबाते हुए**) क्या आप चाहते हैं कि मैं सुलतान को धोखे से क़त्ल करूँ?

रतनसिंह : (**चिढ़ाते हुए**) क्यों, अब तक की बातों से इतना भी नहीं समझ पाये!!! (**दूसरों की तरफ़ मुड़कर**) शहाबुद्दीन यों नहीं मानेंगे, उनकी चालाकी में भी एक डंक रहता है। चूँकि उनके वालिद...।

शहाबुद्दीन : रतन...।

रतनसिंह : (**अपनी बात जारी रखता हुआ**) उनके वालिद ने मेरे वालिद के साथ दग़ाबाज़ी या इसी तरह की कुछ जाल-साज़ी की थी, और मेरे वालिद के सूबे को हड़प लिया था। तब से उस जुर्म के कफ़्फ़ारे के तौर पर शहाबुद्दीन मेरे साथ बिरादराना सलूक करते रहे हैं। इस वाक़या के बाद से दग़ाबाज़ी का लफ़्ज़ भी उन्हें नागवार गुज़रता है। (**शहाबुद्दीन से**) मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था, 'शहाबुद्दीन, लफ़्ज़ दग़ाबाज़ी से ता-ज़िंदगी ख़ौफ़ खाते फिरोगे?' फिर सुलतान ने ही शेख़ साहब के साथ कौन-सी नेक-नीयती बरती थी कि तुम पर दग़ाबाज़ी का ख़ौफ़ इस क़दर हावी हो जाए?

शहाबुद्दीन अब भी ख़ामोश हैं।

: बिला खटके मौक़े के लिहाज़ से कोई उमदा तजवीज़ पेश की जाए।

अमीर २ : मैं भी कब से मगज़-पच्ची कर रहा हूँ, मगर सिवाय सर-दर्द के कुछ भी हासिल नहीं हुआ है।

रतनसिंह : अपनी तरफ़ से एक तजवीज़ पेश करूँ, बिला-शक कारामद साबित होगी।

शहाबुद्दीन : बताओ!

रतनसिंह : आप सबको मालूम है कि सुलतान नमाज़ के किस क़दर पाबन्द हैं। सख़्त शाही हुक्म है कि हर मुसलमान हर रोज़ पाँच मरतबा नमाज़ पढ़े।

सैयद : सुलतान की यही तो एक सिफ़त है।

रतनसिंह : हाँ, गुनहगार को अगर सज़ा देनी है तो उसकी सिफ़त का ही फ़ायदा उठाना चाहिए। शाही हुक्म है कि नमाज़ के वक़्त हर फ़ौजी-सिपाही भी लाज़मी तौर से इबादत करे और इबादत के वक़्त कोई हथियार पास न रखे। इसका मतलब यह है कि हर सिपाही बग़ैर हथियार रहेगा। खुद सुलतान उस वक़्त ग़ैर-मुसल्लह होंगे।

अमीर २ : **(बड़ी बेसब्री और बेताबी के साथ)** फिर...?

रतनसिंह : आम-तौर से आपके दरबारे-ख़ास की बैठक हफ़्तावार होती है। अगली मरतबा आप लोग अपनी कोशिश से इस बैठक को तब तक जारी रखें जब तक नमाज़ की अज़ान न सुनाई पड़े। सुलतान को नमाज़ पढ़ने के वास्ते मसजिद न जाने दें। शाही महल के बाहर इर्द-गिर्द पहले से ही सौ दो-सौ मुस्तैद सिपाहियों को तैनात किया जाए। ज्यों ही मुअज़्ज़िन की अज़ान सुनाई पड़े, उसी को इशारा तसलीम किया जाए। आपके बाज़ सिपाही, दरवाज़े पर तैनात पहरेदारों पर हमला करके उनका सफ़ाया कर दें और रफ़्ते-रफ़्ते भीतर चले आएँ और आप सब लोग सुलतान की ख़बर लें।

लम्हे भर के लिए ख़ामोशी।

सैयद : **(ख़ौफ़ज़दा आवाज़ में)** लेकिन इबादत जैसे पाक वक़्त पर एक मुसलमान का क़त्ल !

अमीर १ : वह भी मुसलमान के हाथों ?

रतनसिंह : आप ही ने तो फ़रमाया था कि जो शख़्स रिआया पर ज़ोरो-ज़बर्दस्ती करता है, वह मुसलमान कहलाने का हक़ नहीं रखता, और क्या आप लोग इस हक़ीक़त को नज़र-अंदाज कर देंगे कि इबादत के पाक वक़्त पर ही सुलतान ने अपने वालिद का क़त्ल कराया था ?

अमीर १ : लेकिन...?

रतनसिंह : **(चिढ़ कर)** ठीक है, आपका जो जी चाहे करें। मेरी तजवीज़ में ख़ता होने की गुँजाइश नहीं है और तरकीब भी आसान है। अगर इससे भी बेहतर तरकीब आपके पास हो तो पेश करें।

अमीर २ : आप बजा फ़रमाते हैं, लेकिन...शाही महल के अन्दर हथियार कैसे ले जाएँगे ? दरवाज़े पर ही तहक़ीकात की

जाती है।

अमीर १ : हथियार पहुँचाने का ज़िम्मा मैं लेता हूँ।

अमीर २ : तब तो कोई फ़िक्र नहीं है। (**फिर जल्दी से**) यही बेहतरीन तरकीब है। ऐसा ही होगा।

सब लोग कुछ कहना चाहते है। शहाबुद्दीन ख़ामोश खड़ा है, उसी वक्त शम्सुद्दीन खड़े हो जाते हैं।

शम्सुद्दीन : (**बलन्द आवाज़ में**) नहीं, हरगिज़ नहीं। यह नामुमकिन है।

सब लोग चुप हो जाते हैं।

शहाबुद्दीन : क्यों शेख़े-मोहतरिम ?

शम्सुद्दीन : इबादत का वक़्त निहायत पाकीज़ा होता है। ऐसे मुक़द्दस मौक़े पर इस तरह की हरकतों की इजाज़त नहीं। आप कोई और तदबीर अख़्तियार कर लें, मगर इबादत के वक़्त को नापाक करना गुनाहे-अज़ीम तस्लीम किया जाएगा।

अमीर २ : एक मरतबा इबादत का वक़्त नापाक हुआ तो क्या हुआ ? उसी रात को दुबारा इबादत करके कफ़्फ़ारा कर लिया जाए।

शम्सुद्दीन : कफ़्फ़ारा इबादत नहीं होता। आप अपने पाक मक़सद को नज़र-अन्दाज़ न करें कि सुलतान को क़त्ल करने की तजवीज़ ज़ाती मतलब की ख़ातिर नहीं, बल्कि दीन की ख़ातिर की गई है।

अमीर १ : दीन को बचाने की ख़ातिर बे-दीनी की इजाज़त क्यों नहीं दी जाती ?

शम्सुद्दीन : (**काँपती हुई आवाज़ में**) शरीफ़ शहाबुद्दीन, इन लोगों में आप ही एक अक़्ले-सलीम के मालिक हैं। मुझे यक़ीन है कि आप इस तरह की ग़ैर-मज़हबी हरकतों के लिए कभी राज़ी नहीं होंगे। इनकी कभी इजाज़त नहीं देंगे।

शहाबुद्दीन : (**गोया सब कुछ गँवा चुका हो**) आपका दीनो-मज़हब सिर्फ़ इबादत के वक़्त ही बा-ईमान होता है। लफ़्ज़े-दग़ाबाज़ी से जिसे सख़्त नफ़रत थी, आज उसके मज़बूत फ़ैसले को आपने तोड़ दिया, क़ाबिले-एहतिराम शम्सुद्दीन ! सुलतान की तरफ़ मेरी जो वफ़ादारी थी, आज आपकी नसीहतों की बदौलत ख़त्म हो गई। जिस चीज़ को न करने की मैंने

क़समें खायी थीं आज उसी पर मैं आमादा हो गया हूँ। ऐसा मैंने क्यों किया? महज़ आपकी ख़ातिर...! जब इतना बड़ा गुनाह मुझसे सर-ज़द होने को है, तब इबादत के वक़्त को नापाक करने के मामूली जुर्म से क्यों घबराऊँ? (**दूसरों से**) अगर सुलतान का क़त्ल करने की तजवीज़ तय-शुदा है, तो रतनसिंह की बनायी हुई तरकीब बेहतरीन है। अब महज़ यह तय करना रह गया है कि हम आपस में कौन-कौन-सी ज़िम्मेदारियाँ सँभालेंगे। (**बहुत दुख भरी आवाज़ में, भीतरी चोट से तिलमिलाता हुआ**) रतन, ये...ये...सब हमें करना ही होगा!

दृश्य : ६

शाही महल। नजीब और बरनी बैठे हैं। मुहम्मद परेशानी की हालत में चहल-क़दमी कर रहा है। सन्नाटा छाया हुआ है।

बरनी : **(गोया ख़ामोशी से घबरा गया हो)** हुज़ूर! आप दोनों इस क़दर ख़ामोश क्यों हैं?

नजीब : **(चिड़चिड़ाहट भरी आवाज़ में)** तो क्या इल्मे-दीन पर तक़रीर की जाए?

मुहम्मद : **(जैसे 'ख़ामोश रहो' कह रहे हों)** नजीब!

फिर ख़ामोशी। थोड़ी देर के बाद दरबान दाख़िल होता है।

दरबान : सुलतान का इक़बाल बलन्द रहे! दरबारे-ख़ास के लिए उमरा ज़ाते-पाक की इजाज़त का इन्तज़ार कर रहे हैं।

मुहम्मद : **(नजीब की तरफ़ देखता हुआ)** हाज़िर हों!

दरबान जाता है। बरनी, नजीब खड़े हो जाते हैं। शहाबुद्दीन के साथ उमरा दाख़िल होते हैं। रसमी सलाम-आदाब चलते हैं।

उमरा : अल्लाह सुलतान को सलामत रखे!

नजीब इस पर मुसकरा देता है।

मुहम्मद : **(खुशी ज़ाहिर करते हुए)** तशरीफ़ लाइए। तशवीश हो रही थी कि कहीं आप लोगों की आमद में देरी न हो।

अमीर १ : क्यों हुज़ूर!

मुहम्मद : आज दरबार की कार्रवाइयाँ जल्द ख़त्म करनी हैं। हमने इमाम को कहला भेजा है कि आज की नमाज़ के लिए हम मसजिद आ रहे हैं। **(उमरा ज़रा चौंक पड़ते हैं, फिर एक दूसरे को देखते हैं)** आप लोगों को कोई ख़ास सलाह-मशविरा करना है ?

शहाबुद्दीन : ऐसा कोई ज़रूरी मसला पेश नहीं है हुज़ूर !

बाकी : हाँ, हुज़ूर।

मुहम्मद : ठीक है ! लेकिन हम दो मामलों के मुताल्लिक़ आप लोगों को आगाह करना चाहते हैं। यों तो बहस-मुबाहिसे के मामले ये नहीं हैं। फिर भी आम ऐलान करने से पहले हम चाहते हैं कि आप लोगों को भी मालूम हो जाय कि हमने अब्बासी ग़ियासुद्दीन मुहम्मद को अपने दरबार में आने के लिए दावत-नामा भेजा है।

अमीर १ : ये कौन हज़रत हैं हुज़ूर ?

अमीर २ : ख़्याल नहीं होता हमने कभी यह नाम सुना हो।

मुहम्मद : इसके लिए शर्मिंदगी महसूस करने की कोई ज़रूरत नहीं है। अब्बासी ग़ियासुद्दीन कोई मशहूरो-मारूफ़ हस्ती नहीं है। वो ख़लीफ़ा-ए-अब्बासी ख़ानदान के नुमाइंदे हैं। कम-से-कम इस बिना पर वो तमाम मुसलमानों के लिए क़ाबिले-एहतिराम हस्ती हैं।

बरनी : ये तो बड़ी ख़ुश-ख़बरी है आलीजाह। ख़लीफ़ा ख़ानदान के मर्दे-मुजाहिद हमारे मुल्क में तशरीफ़ ला रहे हैं !

शहाबुद्दीन : सुलतान की होशियारी क़ाबिले-तारीफ़ है।

मुहम्मद : आपके लफ़्ज़ हमेशा गहरी चोट करते हैं। ख़लीफ़ा खान-दान की एक हस्ती को अगर हमने दावत-नामा भेजा है तो तुम्हें उसमें हमारी मज़हबीयत, अक़ीदत या ईमान नज़र आना चाहिए था। इसमें तुम्हें हमारी होशियारी कैसे नज़र आ गई ? अगर तुम यह सोचते हो कि हमने महज़ नाख़ुश इमामों को ख़ुश करने के लिए यह दावत-नामा भेजा है, तो यह तुम्हारा ग़लत ख़्याल है।

शहाबुद्दीन : मेरा मंशा यह नहीं था...।

मुहम्मद : जब से शेख़ इमामुद्दीन का इंतक़ाल हुआ है, उसी रोज़ से एक सवाल ने मुसलसल मुझे परीशान कर रक्खा है। हम सुलतान हैं। शाही लिबास पहनते हैं। ऐलानिया अपने को

सुलतान भी करार दिया है। लेकिन क्या महज़ इस जाहिरदारी से हम सुलतान कहलाने के हक़दार हो जाते हैं ?

सब ताज्जुब जाहिर करते हैं ।

हम सुलतान के फ़रजंद हैं, क्या इसीलिए हम सुलतान कहलाएँ ? रिआया, सिपाही सब लोग हमारे हुक्म की तामील करते हैं, महज़ इसी बूते पर हम अपने को सुलतान समझ लें ? महज खुद-इत्मीनानी हमको सुलतान साबित कर सकती है ? मेरे मोतबिर अमीरो, आप ही फ़रमाएँ मुझे क्या करना है ! आपकी नज़र से मैं सुलतान कब से बनूँगा, कैसे बनूँगा ? कोई रविश बताएँ...।

सब खामोश हैं ।

नजीब : **(भौं चढ़ाकर)** हुज़ूर...।

मुहम्मद : आप सब खामोश हैं । कोई जवाब नहीं देता । बाक़ी तमाम लोग मुझे इस बात की नसीहत देते हैं कि मुझे क्या नहीं करना है, कोई यह हिदायत नहीं देता कि मुझे क्या करना है ! अब जब तक मेरे सवाल का जवाब नहीं मिलेगा तब तक हमें तख्ते-शाही को सँभालना ही होगा । शहाबुद्दीन, मगर इतने-भर से हमें तसल्ली नहीं होती । इसी वास्ते हमने दीन की ओर रुख़ किया है । ख़लीफ़ा की ख़ाके-पा की बदौलत शायद हमें वह सुकून हासिल हो जिसकी हमें अरसे से तलाश है ।

सुलतान की बातों से शहाबुद्दीन के चेहरे पर कभी ताज्जुब और कभी इज्जत के भाव उभरने लगते हैं ।

अमीर २ : बहरहाल, ऐसे पाकीज़ा गौहर की आमद से दिल्ली की ख़ाक पाक हो जाएगी, हुज़ूर ।

मुहम्मद : आपके ये बलन्द ख्याल सुनकर दिल भर आता है, मगर दिल भर आने से पहले ही इस बात से आपको आगाह कर दूँ कि ख़लीफ़ा के नुमाइंदे दिल्ली तशरीफ़ नहीं फरमाएँगे, वो तशरीफ़ लाएँगे दौलताबाद में ।

शहाबुद्दीन : आलीजाह, मेरी एक दरख्वास्त है ! दारुल-सतलनत के तबादले की तजवीज़ को आप तर्क कर दें । दिल्ली के अवाम में इससे बड़ी बेचैनी पैदा हो रही है ।

मुहम्मद : लेकिन हम क्या करते शहाबुद्दीन ? मैंने तमाम दलीलें पेश कर दी हैं। कितना समझाया है कि जब तक हम दिल्ली में रहेंगे, तब तक सलतनत को खतरा रहेगा। अगर दारुल-सलतनत मुल्क के मरकज़ में हो तो हुकूमत की कार्रवाइयाँ बड़ी आसानी से अंजाम दी जा सकेंगी। लेकिन जिनकी ज़ेहनीयत पर ज़ंग लग चुका हो, उनको इल्म की रोशनी दिखाना बे-फ़ायदा है ! ख़ैर, अब वो मसला ना-क़ाबिले बहस है। अब हमने इससे भी ज़्यादा इंक़िलाबी क़दम अख़्तियार करने की तजवीज़ की है। और इस मसले पर हम आप लोगों से भी राय तलब करेंगे। **(दूसरों को कुछ कहने का मौक़ा न देकर)** आइन्दा हमारी सलतनत में चाँदी के सिक्कों के साथ-साथ तांबे के सिक्के भी जारी होंगे।

अमीर १ : तांबे के सिक्के, हुजूर ! वह किस काम आएँगे ?

मुहम्मद : जिस तरह चाँदी के सिक्के काम आते हैं। एक तांबे का सिक्का एक चाँदी के सिक्के के बराबर होगा।

शहाबुद्दीन : पर तांबे की कीमत चाँदी की बराबरी कैसे करेगी, हुज़ूर ?

मुहम्मद : हमें यहाँ ताँबे-चाँदी की क़ीमतों पर बहस नहीं करनी है। हमारे सामने सिर्फ़ सिक्कों का मसला है। सिक्का महज़ क़ीमत का पैमाना है जिसकी कोई ज़ाती क़ीमत नहीं होती। क़ीमत होती है शाही क़ानून की और शाही मोहर की। चाहे तांबा हो चाहे चाँदी, उसकी क़ीमत उसके अदा करने वाले पर मुनहसिर होती है। और ये बात महज़ क़ीमत की नहीं, बल्कि अक़ीदत की है। लोग जब पत्थर के टुकड़े को भी अक़ीदत की नज़र से देखते हैं, तो उसे ख़ुदा तक तसलीम करने को तैयार होते हैं, उसके लिए शानदार इबादत-गाह बनाते हैं और खुद पथरीली-बंजर ज़मीन पर सो जाते हैं। आप लोगों ने ग़ौर नहीं फ़रमाया था कि...।

अमीर १ : **(दूसरे के कान में)** मैंने कहा नहीं था कि सुलतान यक़ीनन ख़ब्ती हो गए हैं !

मुहम्मद : कानाफूसी किस बात पर हो रही थी, अमीर !

अमीर १ : कुछ नहीं आलीजाह ! मैंने अर्ज़ किया कि ये बात बड़ी मुश्किल से लोगों के पल्ले पड़ेगी...।

मुहम्मद : अगर इतनी-सी बात थी तो साफ़ क्यों नहीं बताते ?

(अमीर १ खामोश रहा) लोगों को यक़ीन नहीं होगा, वे नहीं मानेंगे तो क्या आप लोग भी मेरा यक़ीन नहीं करते ? आप चाहे मुझे अहमक़ क़रार दें, मेरी शदीद नुक़ताचीनी करें, लेकिन मुझे ना-क़ाबिले एतिबार न समझें। मैं शाही हुक्म के ज़रिए लोगों की वफ़ादारी हासिल कर सकता हूँ, मगर यक़ीन को कैसे हासिल करूँ ? तरीक़ा है, सबके आगे हाथ फैलाकर भीख माँगूँ। **(आजिज़ी के साथ)** मुस्तक़बिल के मुताल्लिक़ मैंने अपने ख़्वाबों में एक नयी दुनिया का तसव्वुर किया है जिसको हक़ीक़त में तबदील करना है। उसके लिए मैं आप लोगों की मदद चाहता हूँ। आपका एतिबार चाहता हूँ। अगर मेरी कारगुज़ारियाँ आप नहीं समझ पाते, तो मुझसे दरियाफ़्त कीजिएगा। मेरी बातों का मतलब नहीं समझ पाते, तो ज़रा सब्र कीजिएगा। मैं आप लोगों के आगे दो-ज़ानू होकर हाथ फैलाए इल्तिजा करता हूँ, मेरा साथ न छोड़िएगा।

दो-ज़ानू होकर बैठ जाता है।

शहाबुद्दीन : **(कुछ कह नहीं पाता)** हुज़ूर, आपकी ख़ातिर हम सब कुछ करने को तैयार हैं। आप हमें हुक्म दें, यों इल्तिजा न करें।

मुहम्मद : क्या यह सच है ! आप सब यही कहते हैं ?

बाकी : हाँ हुज़ूर, हम सबका यही कहना है।

मुहम्मद : मैं यह सच मान लूँ तो आपको इस बात पर एतराज़ नहीं होना चाहिए कि क़ुराने-पाक छूकर क़सम खाएँ कि ता-ज़िंदगी मुझे आपकी मदद हासिल होती रहेगी।

दमघोट ख़ामोशी। मुहम्मद उठता है, तख़्त के पास जाता है, फिर क़ुराने-पाक को हाथ से उठा कर सवालिया नज़र से सबको देखता है।

शहाबुद्दीन : आलीजाह, हम भी आपके लिए इस क़दर नाक़ाबिले-एतिबार हैं कि जब तक हम क़ुराने-पाक की क़सम नहीं खाएँगे तब तक हमारे वादे की सचाई का आपको यक़ीन नहीं होगा ?

मुहम्मद आँखें तरेरकर उसकी ओर देखता है, फिर सहसा उसके चेहरे की शिकनें नई सूरत अख़्तियार कर लेती हैं। चुपचाप क़ुराने-पाक को लेकर तख़्त के पास जाता है, और उस पर रख

देता है। उसी वक्त एक सिपाही दाख़िल होता है।

सिपाही : सुलतान सलामत रहें, नमाज़ का वक़्त हो गया !

सब तन जाते हैं।

मुहम्मद : **(धीरे से)** हम लोग यहीं नमाज़ पढ़ेंगे।

सिपाही : जो हुक्म !

भीतर से मुअज़्ज़िन की आवाज़ सुनाई पड़ती है।

आवाज़ : अल्लाहो अकबर ! अल्लाहो अकबर !
अल्लाहो अकबर ! अल्लाहो अकबर !
अशहदो ला इलाहा इल्लिल्लाह।
अशहदो ला इलाहा इल्लिल्लाह।
अशहदो अन्न मोहम्मदिन रिसूलल्लाह।
अशहदो अन्न मोहम्मदिन रिसूलल्लाह।
हैया इलस्सतात् ! हैया इलस्सतात् !
हैया इलल् फ़लाह ! हैया इलल् फ़लाह !
अल्लाहो अकबर ! अल्लाहो अकबर !
ला इल्लाह इल्लिल्लाह...।

मुअज़्ज़िन की अज़ान ज्यों ही शुरू होती है, मुहम्मद अपनी तलवार खोलकर तख़्त पर रख देता है। सिपाही किनारे जाकर इशारा करता है। फ़ौरन तीन-चार चाकर पानी के बरतन सब के आगे पेश करते हैं। सब रस्मी तौर पर वज़ू करने लगते हैं। उसी दौरान बाहर से शोर-गुल, फिर मारकाट की आवाज़ें सुनाई पड़ती हैं। फ़ौरन शहाबुद्दीन और अमीर लोग उठते हैं, अपने-अपने लिबास के भीतर छुपाए हुए हथियार बाहर निकाल लेते हैं।

बरनी : **(घबराकर उठता है)** या अल्लाह, यह क्या हो रहा है ?

अमीर लोग, बरनी और नजीब को धकेलते हुए तख़्त की ओर बढ़ते हैं। उसी वक्त तख़्त के पीछे से परदा सरका कर पन्द्रह-बीस हिन्दू सिपाही हाथ में भाले लिए दाख़िल होते हैं। अमीर लोग घिर जाते हैं, जिनमें से दो-एक भागने की कोशिश करते हैं। तब तक और भी सिपाही दाख़िल होते

हैं। अमीर लोग खड़े हो जाते हैं। ज्यों-ज्यों सिपाही भाला थामे नज़दीक आते हैं, अमीर अपनी कटारों को नीचे फेंक देते हैं। सिपाही उन्हें पकड़ कर बाहर ले जाते हैं। शहाबुद्दीन को नहीं हटाते, उसके हाथ से हथियार छीनकर उसके बाज़ुओं को थामे वहीं खड़े हो जाते हैं। मुहम्मद की नमाज़ इस सारे हंगामे के दौरान जारी रहती है। आखिर नमाज़ खत्म होती है, मुहम्मद सीढ़ियाँ उतरकर शहाबुद्दीन की तरफ़ बढ़ता है। थोड़ी देर तक कोई कुछ नहीं कहता।

शहाबुद्दीन : तुम्हें कैसे पता लगा ?

मुहम्मद : हक़ीक़त सुनोगे ?

शहाबुद्दीन : (**व्यंग्य से**) क्या तुम्हें ख़ौफ़ लगता है कि सुनाने पर मुझे सदमा पहुँचेगा ?

मुहम्मद : आज शाही महल के चिट्ठी-रसाँ ने एक अजीब ख़त हमारे हवाले किया था। बाकी ख़तों में हमारे लिए एक महज़ गाली-गलौज ही लिखा गया था, मगर एक ख़त में आप लोगों की आज की इस साजिश की तफ़सील दर्ज थी। यों तो हम कोई खत नहीं पढ़ते। मगर यह ख़त एक और ही बात के लिए इतना अहम था क्योंकि यह गुमनाम नहीं था। लिखने वाले का नाम ख़त में नीचे साफ़ दर्ज था... रतनसिंह !

शहाबुद्दीन : (**हँस कर**) मुहम्मद, तुम्हारे दिमाग़ को कोई नई तदबीर हाथ नहीं लगी। चाहो तो बरनी से दरियाफ़्त कर लो, तवारीख़ में ऐसी घिसी-पिटी हरकतें हज़ारों सुलतानों ने हज़ारों मरतबा की होंगी। रतनसिंह की फ़ितरत से मैं तुम से ज़्यादा वाक़िफ़ हूँ। यह मत समझो कि मैं तुम्हारे ख्याली क़िस्से पर यक़ीन करूँगा।

मुहम्मद : मौत के मुंतज़िर को झूठा क़िस्सा सुनाने की क्या ज़रूरत पड़ी है ?

शहाबुद्दीन के चेहरे पर से हँसी ग़ायब हो जाती है। मुहम्मद कमीज़ के भीतरी हिस्से से एक खत निकाल कर उसकी आँखों के आगे कर देता

है, जिसे देखकर शहाबुद्दीन एकदम पस्त हो जाता है।

शहाबुद्दीन : (**भर्राई आवाज़ में**) ये भी दर्ज किया है कि उसने ऐसा क्यों किया ?

मुहम्मद : नहीं।

नजीब : (**चिढ़ाने के लहजे में**) वजहों की क्या कमी है ? उसने शायद इसलिए ऐसा किया होगा कि शहाबुद्दीन के वालिद ने उसके वालिद को क़त्ल करा दिया था ! या इसी बात पर बरहम होकर उसने यह इंतिक़ाम लिया होगा कि शहाबुद्दीन ने उसके साथ बिरादराना सलूक करके उसके भीतरी दुश्मनी के जज़्बे को बेकार बनाने की कोशिश की है।

मुहम्मद : हमने उसके लिए अपने सिपाहियों को भिजवाया था, मगर वह फ़रार हो चुका है। (**ज़रा रुक कर**)अब हम एक सवाल पूछ सकते हैं ? आख़िर,.. आख़िर तुम भी क्यों मेरे ख़िलाफ़ बाग़ी हो गए ? मैंने क्या गुनाह किया था ?

शहाबुद्दीन : 'क्यों' का कोई जवाब नहीं। अगर मैं बताऊँगा भी तो तुम उसे समझ नहीं सकते।

मुहम्मद : (**रुक-रुक कर**) मैं समझ नहीं सकता या तुम समझा नहीं सकते ?

शहाबुद्दीन : (**झुँझलाहट बढ़ती है**) क्यों बे-मतलब बातें बना रहे हो, मुहम्मद ? मुझे ख़त्म करने के लिए तुम्हारे हाथ नहीं उठते ? सुनो मुहम्मद, तुम मुझे ज़िन्दा नहीं छोड़ सकते। मैं कोई आईन-उल्-मुल्क नहीं हूँ कि ता-ज़िंदगी सर झुकाए तुम्हारे रहमो-करम पर पड़ा रहूँ !

मुहम्मद धीरे-धीरे म्यान से कटार निकालता है।

शहाबुद्दीन : (**घबराहट से जूझता हुआ**) तलवार के एक ही वार से तमाम सवालों का हल निकालने की आदत जो ठहरी, लेकिन इस बग़ावत की आग को तुम अब दबा नहीं सकते। मेरे वालिद को पहले ही तुम पर एतबार नहीं था। अब तो मैंने सारा हाल मुफ़स्सिल बता दिया है।

नजीब : (**चिढ़ाने के लहजे में**) बेकार ज़हमत उठायी। तुमने अपने वालिद को जो भी ख़त लिखे थे, सब को रतनसिंह ने शाह सुलतान के पास पहुँचा दिया है।

शहाबुद्दीन : **(चीखता हुआ)** मगर तुम्हारा सुलतान मेरी मौत को कैसे दबा सकेगा ? मेरी रूह की आवाज़ को कोई क़त्ल नहीं कर सकता। यह आग अब भड़क कर रहेगी। तुम चाहे मुझे क़त्ल कर दो, लेकिन तुम्हारी तबाही भी लाज़मी है।

काँप जाता है। मौत के मुताल्लिक़ सोचने से बचने के लिए ज़ोर-ज़ोर से बोलता जाता है।

मुहम्मद : **(धीमी आवाज़ में)** एक लफ़्ज़ से तेरा क़िस्सा पाक किया जा सकता है। लेकिन...।

कटार भोंकता है। पहली ही चोट से शहाबुद्दीन बेजान हो जाता है। इसे जानते हुए भी मुहम्मद लगातार कटार से चोट करता ही जाता है। चेहरे पर, सीने पर, हाथों पर, पाँवों पर... चोटों का सिलसिला जारी रखता है। शहाबुद्दीन की लाश खून से लथपथ हो जाती है। उसको थामे हुए सिपाही भी ताब न ला सकने की वजह से मुँह फेर लेते हैं।

बरनी : **(इस क्रूरता को न सह सकने की स्थिति में)** सुलतान ! वो मर चुका है।

मुहम्मद बेदार-सा होकर पीछे हटता है, फिर एकाएक नफ़रत से भर कर हथियार फेंक देता है।

मुहम्मद : **(शदीद ग़मगीन होकर)** ऐसा क्यों होता है बरनी ! जिन पर हम यक़ीन करते हैं आख़िर वे ही लोग बाग़ी क्यों हो जाते हैं ? तवारीख़ की यह कैसी उलझी हुई पहेली है ? बरनी, क्या हमारी हुकूमत का यही अंजाम होगा कि वो रात की तारीकी को चीरकर खो जाने वाली ख़ौफ़-ज़दा चीख बनकर रह जाए ?

उसके हाथ काँपने लगते हैं। नजीब सिपाहियों को इशारा करता है, जो शहाबुद्दीन की लाश को चटाई पर लिटा कर चले जाते हैं। मुहम्मद शहाबुद्दीन की लाश पर नज़र गड़ाये खड़ा रहता है।

मुहम्मद : नजीब, इस साज़िश में शरीक तमाम लोग सूली पर चढ़ा दिए जाएँ। कल सुबह तक उनकी लाशों में भुस भरकर

उन्हें शाही महल के आगे लटका दिया जाए और आठ दिनों तक वह इसी तरह टँगी रहें। उसके बाद शहर के शाही रास्तों के बीच उन लाशों की नुमाइश की जाए। अवाम को यह अच्छी तरह मालूम हो जाए कि बाग़ियों की क्या सज़ा होती है! इस बग़ावत से तअल्लुक़ रखने वाले हर शख़्स को मौत के घाट उतार दो! शेख़ शम्सुद्दीन को भी माफ़ न किया जाए।

बरनी : इससे क्या फ़ायदा होगा हुज़ूर? क्या हासिल होगा?

नजीब : पहली मरतबा बरनी ने कोई समझदारी की बात कही है, हुज़ूर! शहाबुद्दीन के वालिद को हम नज़र-अंदाज़ नहीं कर सकते! आख़िर उसके साथ किस तरह का सुलूक होगा? अगर वो हमारे ख़िलाफ हो गया तो बाक़ी सरदार भी उसके साथ हो जाएँगे।

मुहम्मद : शहाबुद्दीन के वालिद को कुछ बताने की ज़रूरत नहीं है, नजीब। कल ही शहर भर में मनादी करवा दो कि शाही महल में एक नाकाम दंगा हुआ, जिसमें बाज़ अमीरों ने इबादत करते हुए सुलतान को क़त्ल करने की कोशिश की! लेकिन वफ़ादार शहाबुद्दीन ने अपनी जान पर खेलकर सुलतान की जान बचा ली और सुलतान की सलामती की ख़ातिर अपनी ज़िंदगी क़ुरबान कर दी! फिर शहाबुद्दीन के वालिद को हमारी तरफ़ से शाही दावत-नामा भिजवा दो कि वो अपने दिलेर फरज़ंद शहाबुद्दीन के जनाज़े में शरीक होने के लिए दिल्ली तशरीफ लाएँ। शाही रस्म के साथ मरहूम को दफ़्न किया जाएगा। इस मौक़े पर वो ज़रूर हाज़िर हों, और नजीब, उनके आने पर दिल्ली में उनका बड़ा शानदार इस्तिक़बाल हो, उनके बेटे का जनाज़ा बड़ी धूम-धाम से उठे। रिआया को यक़ीन हो जाए कि मेरी जान बचाने की कोशिश में ही शहाबुद्दीन का इंतिक़ाल हुआ है।

बरनी : मरे हुए लोग भी आपकी सियासी शतरंज के कार-आमद मोहरे बन जाते हैं सुलतान!

नजीब : आलीजाह, यहाँ के वाक़यात को पोशीदा रखने के वास्ते यह ज़रूरी है कि यहाँ पर तैनात हर सिपाही का मुँह बन्द किया जाए। उस सूरत में शायद लाशों का अंबार लग

जाए। लेकिन आप बेफ़िक्र रहें। हमारे पास न सूलियों की कमी है, न जगह की। सिर्फ़ आपके हुक्म की देर है...।

मुहम्मद : और भी दो काम अंजाम देने हैं, नजीब। फ़ौरन ऐलान कर दो कि दिल्ली की रिआया दौलताबाद जाने के लिए तैयार हो जाए। एक महीने के अन्दर-अन्दर तमाम दिल्ली ख़ाली हो जाए। कोई भी शख़्स यहाँ पीछे न रह जाए। अब कोई भी यहाँ हमारे रहमो-करम से फ़ैज़याब नहीं होगा। ऐलान कर दो कि दिल्ली के किसी भी घर की खिड़की से रोशनी नज़र न आए! किसी भी घर की चिमनी से धुंआँ न निकले। ये दिल्ली वीरान हो जाए, तभी मुझे तसल्ली होगी...।

बरनी : या ख़ुदा, अहले-दुनिया को सलामत रख!

मुहम्मद : ख़ुदा की इबादत अभी कर लो, बरनी। फिर मौक़ा नहीं मिलेगा।

बरनी चौंककर देखता है।

: बड़ी-बड़ी उम्मीदें बाँधी थीं कि तख़्त-नशीन होंगे तो मिसाली हुकूमत क़ायम करेंगे। चाहते थे हमारी सलतनत में हर काम एक इबादत होगा, हर इबादत इल्म की एक सीढ़ी होगी और हर सीढ़ी ख़ुदा को पाने का ज़रिया होगी...लेकिन यहाँ इबादत में भी सियासत की बू आती है, बरनी (**जैसे जज़्बात की गिरफ्त में मसला गया हो**) अब इस ना-पाक इबादत को ही जिला-वतन कर दूँगा (**ज़रा रुककर, फिर सख़्त आवाज़ में**) नजीब, अब से हमारी सलतनत में इबादत बन्द हो जाए। ऐलान कर दो कि आज से इबादत करने की सज़ा मौत होगी। इबादत की क़ाबलियत हम खो चुके हैं। सबको ख़बरदार करो कि आइन्दा इबादत की घड़ी मुल्क की शाह-राहों में ख़ामोशी ओढ़े आए और बग़ैर अपना निशान छोड़े चली जाए।

नजीब : लेकिन ख़ुदावंद अगर हमेशा के लिए इबादत की मनाही कर दी गई तो मुल्क के सैयदों और इमामों को बग़ावत करने का एक बहाना मिल जाएगा। इसके बदले में ऐलान करा दूँगा कि जब तक हमारी सलतनत में ख़ुश-क़दम ख़लीफ़ा ग़ियासुद्दीन अब्बासी की मुबारक आमद नहीं होती, तब तक इबादत नहीं होगी। इबादत के पाक वक़्त

को जो ना-पाक किया गया है, उसका कफ़्फ़ारा इसी तरह चुकाया जाएगा। (हँसकर) अब कौन जानता है कि मुअज़्ज़म ग़ियासुद्दीन कब तशरीफ़ लाएँगे। पता नहीं उनको यहाँ पहुँचते-पहुँचते कितने दिन गुज़र जाएँगे और इससे एक अजीबो-गरीब वाक़या पेश होगा।

मुहम्मद जवाब नहीं देता। नजीब बन्दगी करने के बाद चला जाता है। बरनी सुबकने लगता है। मुहम्मद शहाबुद्दीन की लाश पर नजर गड़ाए खड़ा रहता है। बरनी उठता है, तख़्त पर रखे क़ुरान-शरीफ़ पर डाले गए रेशमी कपड़े को उठाता है और उससे शहाबुद्दीन की लाश को ढक देता है, लेकिन मुहम्मद उसे हटा फेंकता है।

मुहम्मद : नहीं बरनी, लाश खुली रहे, ज़ख़्मों से गुलनार यह हसीन जिस्म सबको देखने दो।

ढिंढोरची १ : सुनो, सुनो, दिल्ली के वाशिंदो...! सुनो...। खुदावंद शाहे-शाहान बड़े अफ़सोस के साथ ऐलान करते हैं कि कल शाम को शाही महल में बग़ावत हो गई। बाज़ बे-दीन, बेईमान अमीरों ने इबादत के वक़्त मेहरबान सुलतान को क़त्ल करने की कोशिश की, लेकिन संपन शहर के जाँ-बाज़ शहाबुद्दीन ने अपनी जान पर खेल कर सुलतान की जान बचा ली। इस पर बद-नीयत अमीरों ने वफ़ादार शहाबुद्दीन को धोखे से मार डाला। अमीरों की बग़ावत तो नाकाम हो गई...मगर वफ़ादार और बे-नज़ीर शहाबुद्दीन की मौत से हक़-पसन्द सुलतान और उनकी रिआया निहायत ग़मगीन है। कल सुबह के वक़्त शहाबुद्दीन को शाही एहतमाम के साथ दफ़्न किया जाएगा। ऐसे मौक़े पर शाहे-सुलतान उम्मीद करते हैं कि दिल्ली का हर ख़ासो-आम वहाँ मौजूद होगा और मरहूम की जानिब अपनी अक़ीदतमंदी का इज़हार करेगा।

इसके साथ ही सुलतान ने ऐलान किया है कि जाँ-बाज़ शहाबुद्दीन को दफ़्न करते वक़्त जो इबादत होगी वह हमारी सलतनत में होने वाली आख़िरी इबादत मानी जाएगी। सुलतान फ़रमाते हैं कि इबादत के वक़्त को ना-पाक करने की वजह से हमारी सलतनत को बद-दुआ लग गई है। अब जब तक इस बद-दुआ का असर हम पर रहेगा तब तक इबादत करना जुर्म माना जाएगा। जब तक क़ाबिले-एहतिराम ख़लीफ़ा ख़ानदान के नुमाइंदा

हमारे मुल्क में आकर हमें बद-दुआ के असर से निजात नहीं दिलाएँगे तब तक हम खुदा का रहमो-करम हासिल करने के लायक़ नहीं हैं। इस दरमियान जो भी इबादत करेगा, उसे सज़ाए-मौत दी जाएगी। सुनो ! सुनो...।

ढिंढोरची २ : सुनो...सुनो...दिल्ली के बाशिंदो ! सुनो। खुदावंद शाहे-शाहान का फ़रमान सुनो !

दिल्ली का हर बाशिंदा अभी से दौलताबाद जाने के लिए तैयार हो जाए। एक महीने की मोहलत दी जाएगी, उसके बाद दिल्ली में एक भी इन्सान नज़र नहीं आएगा। जो शख़्स यहीं रहने की या दौलताबाद की बजाए दूसरे सूबे में जाने की कोशिश करेगा, उसे सख़्त-से-सख़्त सज़ा दी जाएगी। दौलताबाद जाने वालों को रास्ते-भर हर सहूलियत मुहैया की जाएगी। रास्ते में जगह-जगह पर दवाखाने खोले जाएँगे। खाने-ठहराने के वास्ते सराय होंगी, पहनने के लिए कपड़े दिए जाएँगे। अब इतनी सहूलियतें मिलने के बाद भी अगर उनका सही फ़ायदा नहीं उठाया गया तो इसे सुलतान की तौहीन माना जाएगा। ऐसे लोगों को अगर सज़ा दी गई तो ग़ैर-मुनासिब नहीं होगी। इसलिए हक़-पसंद सुलतान रिआया से दरख़्वास्त करते हैं कि कोई भी शख़्स ना-फ़रमानी की जुर्अत न करे और महीने के अन्दर-अन्दर दौलताबाद पहुँचने की कोशिश करे।

सुनो...! सुनो...!

दृश्य : ७

दिल्ली से दौलताबाद जाने का रास्ता। आज़म और अज़ीज़ एक खेमे के सामने बैठे हैं। अज़ीज़ अब भी बिरहमन की सूरत बनाये हुए है। एक औरत अज़ीज़ के पाँव पकड़े रो रही है।

हिन्दू औरत : अल्लाह तुम्हें बरकत दे, मुझ पर ज़रा तो रहम करो। मुझे लम्हे-भर के लिए जाने दो! बच्चा मरा जा रहा है। सिर्फ़ आज के लिए इजाज़त दो।

अज़ीज़ : क्या किया जाए? हम भी मजबूर हैं। सुलतान का हुक्म है कि दौलताबाद पहुँचने तक किसी को इधर-उधर मत जाने दो। अब तुम चाहती हो कि हम ना-फ़रमानी करें?

हिन्दू औरत : वादा करती हूँ, कल ही मैं वापस आ जाऊँगी। मेरी क़सम ले लो, बच्चे की क़सम ले लो। मुझे जाने दो वरना बच्चा मर जाएगा! तुम मालिक हो...एक दिन की इजाज़त दे दो। बच्चे को जल्द-से-जल्द औलिए को दिखा लाऊँगी।

अज़ीज़ : बेकार परेशान कर रही हो! औरत, अगर तेरा बच्चा मर रहा है, तो हम क्या कर सकते हैं। उस खेमे में जाओ, हकीम बैठे हैं, जो भी ज़रूरी है दवा-दारू करेंगे। मगर तुम नहीं मानतीं और अपनी रट लगाए बैठी हो। अब हम क्या कर सकते हैं? **(आवाज़ को दबाकर)** सुना नहीं, हमारे जो बड़े कारिंदा हैं, उनको दो-तीन अशर्फ़ियाँ चढ़ा दे तो सब काम बन जाएँगे।

हिन्दू औरत : लेकिन मैं अशर्फ़ी कहाँ से लाऊँ सरकार ? जो चार पैसे पास हैं, अगर उन्हें दे दिया तो औलिया को कहाँ से दूँगी ? अपना गुज़ारा कैसे करें ? इधर मेरा आदमी भी बीमार पड़ा है ।

अज़ीज : तो फिर कुछ नहीं हो सकता...हरगिज़ नहीं हो सकता। अब बस, अब चली जाओ, हमारे बहुत काम पड़े हैं। ये चीख-पुकार अपने ख़ेमे में जारी रख ।

औरत सुबकती चली जाती है।

आज़म : बेचारी ! अरे यार, इस क़दर संग-दिल हो ! जाने क्यों नहीं देते ? बेचारी रो-रोके कह रही है कि बच्चा मरा जा रहा है। शायद औलिया कुछ कर दे ।

अज़ीज़ : तुमने देखा है बच्चे को ? मैं बच्चे की बीमारी से वाक़िफ़ हूँ। मेरा छोटा भाई ऐसी ही बीमारी का शिकार था। लाख कोशिश करो, कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। अब हराम-ज़ादा औलिया संत-मेंत करके पैसा अपनी अंटी में भर लेगा। बच्चा तो बचेगा नहीं। तब औलिया को क्यों मिले पैसा ? हम ही क्यों न लें ? अगर हम नहीं लेते तो पैसा औरत के पास ही रहने दो।

आज़म : तुम भी हद करते हो। ज़रा-से दो पैसे के पीछे पड़े हो...।

अज़ीज़ : कान खोलकर सुनो आज़म। चार-पाँच रोज़ में तुम्हें पता लग जाएगा कि एक-एक पैसे की क्या क़ीमत है !

ग़लीज़ कपड़ों में उतरती उम्र का एक शख़्स अपनी औरत और आठ-बच्चों के साथ दाख़िल होता है, जिन्हें देखते ही अज़ीज़ अपने सामने की फ़ेरिहस्त पर सिर झुका लेता है।

अज़ीज़ : अभी कौन-कौन बाकी हैं... और तीन घर... पता नहीं, ये कब मरेंगे ! (**सिर उठाकर शख़्स की तरफ़ घूर कर देखने लगता है**)...ओह, आख़िर आ गऐ ! जानते हो कितनी देर हुई ? तुम्हें पता नहीं था कि शाम होने से पहले इस मुक़ाम पर पहुँचना है ।

शख़्स : अब मैं क्या करता हुज़ूर, आधे रास्ते में दो लाशें मिलीं। बेचारे चलते-चलते मर गए होंगे। उन्हें दफ़ना के आ गया।

आज़म : न जाने किस की लाशें थीं...मुसीबतज़दों की...।

अज़ीज : दफ़्न करने से पहले देखा भी था या नहीं कि लाश हिन्दू की थी या मुसलमान की ?

शख्स : अब देखने की फ़ुरसत किसे थी हुज़ूर, जो हो सका सो किया !

अज़ीज़ : यानी तू हमें मुसीबत में फँसा देगा। अगर वो लाशें हिन्दू की साबित हुई तो...? क्या तुझे शाही हुक्म का पता नहीं कि हिन्दू-मज़हब के साथ कोई बेइन्साफ़ी नहीं होनी चाहिए ?

शख्स : पता नहीं था, हुज़ूर ! ग़लती हो गई ! मुझे ख्याल ही नहीं आया। मैंने सोचा कि दिल्ली में रहते जो गुनाह किये थे, उनका बोझ कुछ तो हल्का हो जाए।

अज़ीज़ : दिल्ली में क्या करते थे ?

शख्स : कुफ़्र का धन्धा हुज़ूर ! सुलतान के हुक्म से जिनको सूली पर चढ़ा दिया जाता था, उनकी लाशों को शाही महल के फाटक पर लटका दिया जाता था। मैं उनकी चौकसी करता था हुज़ूर। जब नई लाशें आतीं, तो पुरानी लाशों को वहाँ से हटाकर शहर के बाहर नहर में फेंक आता था। वहाँ भी इन लाशों की रखवाली करनी पड़ती थी। मालिक, नहीं तो मरने वालों के रिश्तेदार आते, लाशें चुरा ले जाते।

आज़म : **(मुँह बनाते हुए)** लाशें चुराना...छी...!

शख्स : आप नहीं जानते हुज़ूर ! सुलतान का हुक्म है कि बग़ैर रक़म लिए किसी को लाश न दी जाए। अगर सब हुक्म की तामील करते तो हम भी मकान बनवाते और मज़े से रहते। मगर ये रिश्तेदार बड़े कंजूस होते हैं हुज़ूर ! रक़म देते उनकी नानी मर जाती है। इसलिए अँधेरी रात में लाशें चुराते हैं। बड़े-बड़े पैसे वालों का भी यही हाल है हुज़ूर। धत ! ये इन्सान एक मरतबा अगर चोरी शुरू कर दे तो फिर किसी का लिहाज़ नहीं करता है हुज़ूर। तभी तो बुज़ुर्ग लोग कहते हैं कि चोरी और सीना-ज़ोरी हम-साया हैं।

अज़ीज़ आज़म की तरफ़ देख कर मुसकुराता है।
आज़म नाक-भौं सिकोड़ता है।

अज़ीज़ : खैर, तेरे आठों बच्चे सलामत हैं कि नहीं ?

शख़्स : हैं, हुज़ूर।

अज़ीज़ : तो चलो अपने ख़ेमे में और कोई चाहे जिये या मरे, तुम जैसे को नहीं मरना चाहिये। सुलतान को तुम जैसी हस्तियों की निहायत ज़रूरत है। लेकिन जब तक सुलतान दौलताबाद नहीं पहुँचेंगे तब तक तुम क्या शुग़ल करोगे? और भी एक-दो बच्चे...।

शख़्स : नहीं हुज़ूर, उससे पहले मैं इस औरत से शादी कर लेना चाहता हूँ।

आज़म : (नफ़रत से) क्या?

शख़्स : हाँ, हुज़ूर, दिल्ली में मौक़ा ही नहीं मिला।

आज़म : (दोनों हाथ उठाकर) अच्छा, अच्छा, अब चलो अपने डेरे पर। (सब चले जाते हैं) किस क़दर ग़लीज़ इन्सान है ये? और दो-तीन लम्हे बातें करता तो शायद मुझे क़ै हो जाती!

अज़ीज़ : मैं तो ऐसे लोगों का लोहा मानता हूँ। हक़ीक़त में ऐसे ही लोग सही मानों में संजीदा होते हैं।

आज़म : मुझे बेचारी वो औरत याद आ रही है। महज़ दो पैसे के लालच में उसे औलिया के पास जाने से रोक दिया। अगर रक़म के इस क़दर लालची हो तो मुझे बताओ, अभी मैं जाकर किसी मालदार मुर्ग़े पर हाथ साफ़ कर देता हूँ। मेरे हाथ भी तब से खुजला रहे हैं।

अज़ीज़ : अरे यार, किसी भी सूरत में यहाँ चोरी मत करना। अगर कहीं फँस गए तो हमारी क़िस्मत ही चौपट हो जाएगी।

आज़म : अरे हटो, हमारी भी कोई क़िस्मत है? आज यहाँ तो कल वहाँ। चोरी करते अगर रंगे हाथ पकड़े भी गए तो हाथ ही तो कटेंगे। तब भीख माँग के गुज़ारा कर लेंगे।

अज़ीज़ : तुम्हारी अक़्ल पर मुझे तरस आता है। इतने रोज़ तुम दिल्ली में रहे तब भी चोरी की हद से आगे नहीं बढ़े। अब मेरी तरफ़ देखो, दिल्ली में गुज़ारे गये इन तीन महीनों में मैंने क्या-क्या नहीं देखा और मेरे साथ क्या-क्या नहीं बीता? अब तो ज़िन्दगी की रविश ही बदल गयी। देहात में मैले-कुचैले कपड़े उठाए, दर-दर फिरा करता था। वो भी कोई ज़िन्दगी थी! न कोई तमन्ना...न ख़्यालात, बस घिसटती-फिसलती ज़िन्दगी बीत रही थी।

मगर यहाँ दिल्ली में आकर मेरे होश उड़ गये। मैं जादू सीख गया आज़म, चार हरफ़ों का जादू...सि...या...स...त! सियासत! कैसी जादुई दुनिया छुपी हुई है इन चार हरफ़ों में! सच कहता हूँ आज़म, यह दुनिया सिर्फ़ अक़्लमंदों के लिए होनी चाहिए थी मगर अफ़सोस, यह अहमक़ों से भरी पड़ी है। वहाँ देहात में फटे-चीथड़ों के पीछे जो होशियारी लगाई जाती थी, बस उतने-भर का तुम यहाँ इस्तेमाल कर लो तो क्या से क्या हो जाओगे। बड़ी-से-बड़ी हैसियत हासिल कर सकोगे! अज़ीम-से-अज़ीम रुतबा तुम्हारी मुट्ठी में होगा।

आज़म : बस बस, ख़ुद बचाए यहाँ की सियासत से। चोरी में अगर कुछ ख़ता हुई तो सिर्फ़ हाथ कटेंगे। मगर इस सियासत में सर की ही ख़ैर नहीं।

अज़ीज़ : सर की ख़ैर चाहते हो तो सर बचाने का हुनर भी जान लेना चाहिए। मगर अपना सर इस फ़ासले पर रखो कि छः कदम वो आगे रहे।

आज़म : छः कदम!

अज़ीज़ : इसलिए कि अगर तुम्हारे पीछे वाले की लाश ही गिर जाए तो वो तुम पर न गिरे!

आज़म : ओह!

अज़ीज़ : ओह क्या, आँखें खोले रखो आज़म! चोरी, उठाई-गीरी का धन्धा अब छोड़ दो। उसमें कोई मज़ा नहीं। वो तो पागलपन है...निरा पागलपन।

आज़म : सिर्फ़ चोरी करो तो पागलपन कहते हो। मेरी दादीजान को तुम नहीं जानते, साठ पर पहुँचते-पहुँचते क़रीब बीस लोगों को कुल्हाड़ी से हलाक कर दिया था।

अज़ीज़ : (**ऊब कर**) देहात वाले चुप रह गये?

आज़म : नहीं, बड़ी हिम्मत कर के दादी को पकड़ने के लिए आए, एक-दो आदमी नहीं, पूरे छः लोग, हट्टे-कट्टे। घर के दरवाज़े तक आ पहुँचे। ज्यों ही घर के भीतर क़दम रखा तो दादीजान के सर पर चुड़ैल सवार हो गई। हाथ में कुल्हाड़ी सँभाले बाहर आ गईं। दादीजान की इस डरावनी सूरत को देखकर सब डर कर तितर-बितर हो गए। लेकिन हमारी दादीजान क्यों रुकतीं? नदी के

किनारे तक उन लोगों का पीछा किया। बेचारे डर के मारे नदी में कूद पड़े। दादीजान तैरना नहीं जानती थीं सो सब बच गये।

अज़ीज़ : तो फिर तुम्हारी दादीजान का क्या हुआ ?

आज़म : तब फिर मेरी दादी माँ ही क्यों कहलातीं ? उन छः लोगों के पीछे वो भी कूद पड़ीं। फिर अब तक वापस नहीं आईं !

अज़ीज़ : यानी तुम्हारे ख़ानदान में बड़े-बड़े छुपे रुस्तम हैं।

आज़म : अरे सुनो तो, मेरे एक काका औलिया क़िस्म के आदमी थे और मौलवी भी हो गए। कभी दूसरे के ज़ेवरों को उन्होंने हाथ नहीं लगाया। मैं गये साल उनसे मिलने गया था, घंटे भर नसीहत पिलाते रहे, और नसीहतें देने के दौरान उनके दोनों हाथ मेरे दाएँ हाथ को कसकर पकड़े हुए थे।

अज़ीज़ : इसका मतलब है, तुम पर उनकी बड़ी शफ़क़त रही है।

आज़म : ख़ाक शफ़क़त ! उनको इस बात का अंदेशा हो गया था कि तकिया के नीचे छुपायी हुई रक़म को कहीं मैं उठा न ले जाऊँ। उन्हें यह मालूम था कि तकिया के नीचे वाली रक़म की बात मुझे मालूम है।

अज़ीज़ : बड़ा शातिर है !

आज़म : **(ठहाका लगाते हुए)** शातिर ! शातिर तेरा सिर ! जब मैं उसके घर से बाहर निकला, तो मेरे हाथ उनकी रक़म का थैला लग चुका था। क्यों ? बाएँ हाथ से चुरा लिया था...बाएँ हाथ से !

औरत के रोने की आवाज़।

आज़म : हाय बेचारी ! लगता है बच्चा चल बसा। अब अगर दौलताबाद पहुँचने के बाद उसने तुम्हारे ख़िलाफ़ फ़रियाद कर दी तो, तुम क्या जवाब दोगे ? शायद उस हालत में तीन रोज़ इसी ग़लीज़ काफ़िर के साथ काटना पड़े।

अजीज़ : **(इर्द-गिर्द देखकर)** सुनो, दौलताबाद पहुँचने से पहले ही हमें सुलतान की ये मुलाज़िमत छोड़ देनी पड़ेगी, समझे ? दिल्ली में मुझे ख़बर मिली थी कि सुलतान चाँदी के सिक्के की बजाए तांबे के सिक्के चलाना चाहते हैं। एक तांबे के सिक्के की क़ीमत एक चाँदी के सिक्के के बराबर ही तसलीम की जाएगी। क्यों ? क्या सोच रहे हो ?

आज़म : बड़ी बुरी ख़बर है। तांबे के सिक्के चुराने में अब क्या मज़ा आएगा ?

अज़ीज़ : पूरी बात तो सुन लो। दौलताबाद पहुँचते ही हम यह मुलाज़िमत छोड़कर सिक्का बनाने का हुनर सीखेंगे। अपने हाथों की खुजली का वहाँ इलाज करना। एक दो महीने में ही इसके मुताल्लिक़ शाही फ़रमान का ऐलान होने वाला है। तब जुट जाना जाली सिक्के बनाने में। दौलत ही दौलत बटोरते रहोगे। (**पीछे से चहल-पहल की आवाज़**) अब सँभल जाओ, बाक़ी लोग भी आ गये।

दृश्य : ८

(ई० १३३१)

दौलताबाद के क़िले का ऊपरी हिस्सा जहाँ दो पहरेदार तैनात हैं—एक जवान, दूसरा उतरती उम्र का। रात का वक्त है।

जवान : अब क्या वक़्त होगा, काका ?

काका : होगा, कोई रात का दूसरा पहर !

जवान : बस ? अभी दूसरा ही पहर ! पहरेदार होने से पहले रात कितना जल्द भागती थी ! शाम को दिया जलाने से लेकर सुबह को मुर्गे की बाँग होने तक वक़्त छलाँग लगाए खिसक जाता था। लेकिन अब यह मनहूस रात कटती ही नहीं।

काका : जिसे सुबह का इंतज़ार हो, उसे रात लम्बी लगेगी ही। दो-चार दिन और बेटे, तब शायद तुम्हें रात-दिन के अलगाव का एहसास भी न हो। असल पहरेदार वो है जिसके ख़ून में ही सुबह की उम्मीद ख़त्म हो गई हो।

जवान : **(क़िले की दीवार के किनारे तक जाकर)** बाप रे ! कितना ऊँचा क़िला है ! सर चकरा जाता है।...काका, क्या वही है दौलताबाद से दिल्ली जाने का रास्ता जो यहाँ से सफेद रस्सा जैसा नज़र आता है ?

काका : हाँ।

जवान : हक़ीक़त में अजगर-सा चौड़ा रास्ता होगा, लेकिन यहाँ से बिलकुल पतला साँप-सा दिखाई देता है।

काका : चार बरस हो गये, न जाने तब इस अजगरी रास्ते ने कितनी जानें हज़्म कर ली होंगी ! अब बिलकुल ख़ामोश पड़ा है।

जवान : यह क़िला भी शानदार है। सुना है कि ग़ैर-मुल्कियों की राय में यह क़िला दुनिया भर में अपना कोई सानी नहीं रखता। और कहा जाता है कि इस क़िले को कोई फ़ौज तोड़ नहीं सकती।

काका : हाँ, कोई फ़ौज नहीं तोड़ सकती। अगर टूटेगा तो अपनी अन्दरूनी कमज़ोरियों से ही। लेकिन बेटे, क़िला चाहे जितना भी ऊँचा हो, चाहे जितना भी मज़बूत हो, मगर हम चिपके रहेंगे मिट्टी से ही। इस दम-घोट घोंसले में ज़्यादा दिन हम नहीं रह सकेंगे।

जवान : तुम दिल्ली के रहने वाले हो, काका ?

काका : हाँ।

जवान : तुम सब अराम से पहुँच गये थे यहाँ पर !

काका : मैं पहुँच गया, पर आराम नसीब हुआ मेरे घर वालों को! सब-के-सब रास्ते में ही अल्लाह को प्यारे हो गये।

जवान : (**हमदर्दी के साथ**) क्यों ? खाने-पीने-पहनने का कोई इंतज़ाम नहीं था या उसमें कुछ कोताही थी ?

काका : (**मायूसी भरी हँसी के साथ**) न, न, रहम-दिल सुलतान ने अपनी तरफ़ से कोई कोताही नहीं की थी। काफ़ी अच्छा इन्तज़ाम था। मगर हम बदनसीब मिट्टी के पुतले हैं न ! मेरे बूढ़े बाबा, जिन्होंने अपनी सारी ज़िन्दगी दिल्ली में गुज़ारी थी, दिल्ली-दिल्ली कहते हुए दिल्ली से कुछ ही फ़ासले पर वफ़ात पा गये। बेटा इस्माइल, छः बरस का था, ज़िन्दा होता तो अब दस-बरस का होता...आँखों के आगे राह की उड़ती हुई मिट्टी, हवा के ज़र्रे-ज़र्रे में बिखरी हुई और पर्दे की तरह छाई हुई मिट्टी, रेशमी कफ़न की मानिंद सर पर लहराती हुई मिट्टी, हर तरफ़ से उठने वाली मिट्टी...इस घेरे में मेरा बेटा भी मिट्टी हो गया। फिर बेटे की जुदाई ने उसकी माँ को भी...।

चुप हो जाता है।

जवान : **(बात बदलते हुए)** ख़ैर जाने दो काका, मुझे इस क़िले के मुताल्लिक़ बताओ ! मैंने सुना है कि क़िले के नीचे एक अजीबो-ग़रीब तहख़ाना है जहाँ हमेशा अँधेरा रहता है ! और कहते हैं कि तहख़ाने के दरवाज़े जाने कहाँ-कहाँ काले-कोसों खुलते हैं ।

काका : तहख़ाना क्या है, एक अजूबा है,...बहुत लम्बा-चौड़ा जो खोखले अजगर की तरह कुँडली मारे क़िले के पेट में बैठा है । **(कड़वाहट के साथ)** अगर यह अजगर क़िले का पेट चीरकर बाहर आता और तमाम मख़लूक़ को निगल लेता, सबको आराम मिल जाता ।

बाहर शोर-ग़ुल ।

जवान : **(भाला सँभाल कर)** कौन है ?

मुहम्मद : **(भीतर से ही)** हम मुहम्मद ।

जवान : मुहम्मद ? कौन-सा मुहम्मद ?

काका : ख़ामोश हो बेवक़ूफ़, सुलतान आ रहे हैं !

मुहम्मद उनींदी हालत में आता है ।

दोनों : ख़ुदा सुलतान को सलामत रखे ।

मुहम्मद लम्हे भर बेदम-सा खड़ा रहता है, फिर ।

मुहम्मद : **(बूढ़े पहरेदार से)** शरीफ़ बरनी को यहाँ आने के लिए कहो ।

काका बंदगी करता हुआ जाता है ।

जवान : गुस्ताख़ी माफ़ हो खुदावंद, अनजाने में भूल हो गई ।

मुहम्मद : कोई बात नहीं, वो तुम्हारा फ़र्ज़ था ।

दीवार के किनारे तक जाता है ।

जवान : गुस्ताख़ी माफ़ करें सुलतान ! अर्ज़ करता हूँ कि क़िले के किनारे पर उतनी दूर न जाएँ ।

मुहम्मद : **(हँसकर)** तुम यहाँ के लिए नये हो ?

जवान : हाँ, हुज़ूर । अब तक फ़ौज में था । कल रात यहाँ आया । बन्दे से कुछ ग़लती हुई तो माफ़ करें, हुज़ूर !

मुहम्मद : बात-बात पर माफ़ी मत माँगो । और दो महीने यहाँ रहोगे तो तुम्हें भी सब के सामने लार टपकाने की आदत हो जाएगी । कम-से-कम तब तक बेबाक बने रहो ! तुम्हारी उम्र क्या होगी ?

जवान : उन्नीस का हूँ, हुज़ूर।

मुहम्मद : उमंगों—भरी उम्र है, पूरे आलम को फ़तह करने के ख़्वाब देखने की उम्र है। मैं भी जब पहली मरतबा दौलताबाद आया था, तब इक्कीस बरस का था, इस क़िले की तामीर में लगा था। एक रात मैं अकेला इसी जगह पुराने क़िले के बुर्ज़ पर खड़ा था। क़रीब ही मशालची के हाथ में मशाल अपने सुनहले पंखों को फड़फड़ा रहा था। क़िले का एक आधा बना हुआ गुम्बद आसमान को अपने सीने में समो लेने की कोशिश कर रहा था। उसी वक़्त यकायक कुछ हो गया...गोया किसी ने जादू कर दिया। मैं, मशाल, आसमान, क़िला सब पिघल गये...एक हो गये। बाहर की तारीकी मेरी रगों में रच गई थी। चमकते तारों की टिमटिमाहट मेरी नब्ज़ में धड़क रही थी। लम्हे का दायरा टूट गया था। तमाम सवाल-जवाब ख़ामोश थे। मैं मिट्टी बना हुआ था, सब्ज़ा बना हुआ था. धुआँ था, आसमाँ था। उसी वक़्त दूर से किसी पहरेदार ने आवाज़ दी, 'होशियार!' मैं होश में आ गया...अध-जला मशाल, अध-बना गुम्बद, सब जुदा हो गये।

सिपाही, यह मत सोचो कि तुम्हारी नौजवानी से मैं रश्क करता हूँ। जूझने के लिए अभी बहुत ज़िंदगी पड़ी है तुम्हारे पास। मुझे देखो, मुद्दत बाद फिर यहाँ आया हूँ। उसी खोई हुई रात की तलाश में निकला हूँ। मुझे दौलताबाद आए चार साल हो गये। इसी अरसे में यहाँ आकर मैंने क्या देखा...क्या पाया...? क़िले के बाहर भूत-सा खड़ा हुआ यह बीहड़ जंगल! क्या सुना? जंगली सियारों की हूल! शहर के कुत्तों का शोर! बीस साल और गुज़र जाएँ, तो उस वक़्त तुम मेरे बराबर के हो जाओगे, और मैं तब इस जंगल के नीचे दफ़्न रहूँगा। उस वक़्त... **(जवान चुप है)** क्या तुम मुझे याद करोगे? ख़ामोश क्यों हो?

जवान : **(डरते हुए)** ख़ुदावंद, मुझे माफ़ करें। मैं बिलकुल नहीं समझा!

मुहम्मद : **(चीखकर)** नहीं समझा! नहीं समझा! तो ज़िंदा क्यों हो! क्यों बेकार साँस लेते हो? क्यों हवा को ना-पाक

करते हो ? (**फिर एकदम धीमा पड़कर**) खैर, जाने दो ! तुम्हारा क्या क़सूर है ? आख़िर तुम भी तो उन्हीं में से एक हो ! जाओ, मेरी बातें भूल जाओ ।

सन्नाटा ! दो-तीन लम्हों के बाद बरनी आता है ।

बरनी : अल्लाह्-ताला खुदावंद सुलतान को सलामत रखे ।

सुलतान इशारे से पहरेदारों को हटा देता है ।

: सुलतान ने मुझे याद फ़रमाया ?

मुहम्मद : शाही महल की गुमसुम दीवारें नाक़ाबिले-बरदाश्त हो गईं तो मैं यहाँ भाग आया । यहाँ आने पर मैंने महसूस किया कि कोई यहाँ मौजूद हो, ताकि मैं उससे मुसलसल गुफ़्तगू कर सकूँ । इसलिए तुम्हें बुला भेजा । सो गये थे ?

बरनी : मैं अबू हनीफ़ा की किताब पढ़ रहा था ।

मुहम्मद : खुसनसीब हो । नींद न आए तो किताबें पढ़ सकते हो । लेकिन मैं...इसरार करता हूँ कि नींद आये...पर नहीं आती । पढ़ने-पढ़ाने का इश्तियाक़ भी अब न रहा । रूमी के दीवान के पीछे मैं दीवाना रहता था, दिन-रात जब जी में आया पढ़ने बैठ जाता था । मगर अदब में अब वो सारी दिलचस्पी ही ख़त्म हो गई । शेरो-शायरी अब महज़ लफ़्फ़ाज़ी लगती है । अब पिछले के उन दिनों को याद करता हूँ तो यक़ीन नहीं होता, जबकि मैं अल्लाह से इल्तिजा किया करता था कि या अल्लाह, मुझे नींद से बचा ले ।

बरनी : आप शाही हकीम से मशविरा क्यों नहीं करते हुज़ूर ?

मुहम्मद : इसमें हकीम क्या करेंगे बरनी ! तुम वाक़या-नवीस अगर कुछ इलाज कर सको तो, तुम्हारा एहसान मानूँगा । तुम्हें मालूम है कि बंगाल में फ़ख़रुद्दीन ने बग़ावत खड़ी की है ? आज ही ख़बर मिली है ।

बरनी : (**अचरज से**) आप क्या फ़रमा रहे हैं, हुज़ूर !

मुहम्मद : दक्खिन में फिर बाग़ी ताक़तों ने सिर उठाया है । मालाबार में एहसानशाह ने खुद को सुलतान ऐलान किया है । दूसरी तरफ़ बहाउद्दीन गुरशास्प भी मेरे ख़िलाफ़ फ़ौज इकट्ठी कर रहा है । दो-आब का क़हत अब हर सूबे में फैलता जा रहा है । सारा मुल्क ही बद-हाली की लपटों में

झुलसा जा रहा है। तमाम कारगर काम-धंधे चौपट हो हो गए हैं। सिर्फ़ एक धन्धा आज तरक़्क़ी पर है...वह है राइज सिक्कों की जगह जाली सिक्कों को जारी करना। गोया सलतनत का हर घर जाली कारखाना हो। आस-पास अगर मैं किसी को भरोसे के लायक़ पाता हूँ तो सिर्फ़ दो शख़्स नज़र आते हैं अपनी वसी सलतनत में... सिर्फ़ दो, एक शहाबुद्दीन के वालिद और दूसरा आईन-उल्-मुल्क ! बाक़ी सब इसी इन्तज़ार में है कि कब मेरी आँखें बन्द हो जाएँ ! अब इन सबसे मैं कैसे निबटूँ ? क्या करूँ ! तमाम मुल्क महज़ बलाओं का घर बना हुआ है। एक बीमारी को रफ़ा करता हूँ तो दूसरी आ घेरती है !

बरनी : ख़फ़ा न हों ख़ुदावंद, आपने दरियाफ़्त किया है, इसलिए चंद बातें अर्ज़ करना चाहता हूँ। आप आलिम-फ़ाज़िल हैं। आपकी बलंद-ख़याली, ख़ुश-बयानी सब सियासत के बियाबाँ में ज़ाया हो रही हैं। आप को तो आलिमों के बीच होना चाहिए था। मेरी राय में आप सलतनत की बाग-डोर फ़िरोज़शाह के हवाले कर दें और हुकूमत के जंजाल से निकल जाएँ।

मुहम्मद : अगर तदबीर इतनी सहल होती तो अब तक क़िस्मत-आज़माई कर लेता। मैंने ख़ुद कई मरतबा अपने आपसे यह सवाल किया था कि तवारीख़ किस की है ? क्या मेरी हो सकती है ? और क्या उस तवारीख़ में मेरी हस्ती कभी क़ायम हो सकती है जहाँ हर लम्हा शिद्दत के साथ वहशी टकराहट हुआ करती है ? ऐसे फ़ानी का कहाँ तक एतबार किया जाए ? आख़िर इस बवाले-जाँ से कब निजात हासिल होगी ? अन्दर-ही-अन्दर एक ख़्वाहिश उभरती है कि इस कशमकश को तोड़कर हज पर रवाना हो जाऊँ। 'क़ाबा' के सामने अपनी ज़िंदगी बिछा दूँ और रूहानी सुकून हासिल कर लूँ। मगर हक़ीक़ते-हाल निहायत संगीन है, बरनी ! ला-इलाज बीमार शख़्स को मैदान में खुले फेंक देने का मतलब है, नई बीमारियों को दावत देना। **(आवाज़ को ऊँचा करते हुए)** बरनी, हज़ारों ख़ूँख़्वार गिद्ध सर पर मंडरा रहे हैं जिनकी ख़ूनी नज़रें मुझ पर जमी हुई हैं। मैं अपनी बदनसीब रिआया को

किसके भरोसे छोड़ दूँ ! मैं अपनी रिआया से जुदा नहीं हूँ। बरनी, ऐसी सूरत में तख़्त छोड़ने का मतलब खुद-कुशी करना है। अगर इन खूँरेज़ गिद्धों का ये अटूट ताँता मेरे इतने क़रीब न मँडराता मैं ज़रूर कोई-न-कोई तदबीर निकालता। घुटने-कोहनी के बल रेंगता हुआ चला जाता। मगर अब मैं क्या करूँ ? ख़ौफ़ के मारे नींद की पलकें जवाब दे रही हैं। न जाने मेरी रगे-ख़ून कब फट जाएगी। (**चीख कर**) बरनी, दोज़ख़ की ये पोशीदा ताक़तें मुझसे इस क़दर क्यों इन्तक़ाम लेना चाहती हैं ? क्यों ये खौफ़नाक शक्लें मेरे इर्द-गिर्द मँडराती रहती हैं ?

बरनी : (**ख़ौफ़-ज़दा होकर**) मालिक !

मुहम्मद : जानते हो, मेरी रिआया ने मुझे कौन-सा प्यारा नाम अता किया है ! सनकी सुलतान ! सनकी सुलतान !! (**फिर एकाएक आजिज़ी के साथ**) बरनी, मैं किस तरह समझदार बनूँ ?

बरनी : खुदावंद, वो भी दिन थे, जब आपके पास मुहब्बत और ज़िंदगी के बलंद ख़्याल थे, सुकून की शदीद तड़प थी। लेकिन अब ?...सिवाय क़त्ले-आम के कुछ सोचते ही नहीं, जो आपका रोज़मर्रा का काम हो गया है। ज़रा-ज़रा-सी बात पर सख़्त सज़ा सुनाते हैं ! ज़रा-ज़रा-सी भूल के लिए सूली पर चढ़वा देते हैं, हुज़ूर ! ये बे-रहमी अब बन्द कर दें, अपनी रूह के सुकून के वास्ते ! जो-जो आपकी सलतनत छोड़कर चले गये हैं, जो जिला-वतन कर दिए गये है, उन सबको माफी बख़्श दें, उन्हें वापस बुला लें। तब यक़ीनन मुल्क-भर में अमन-चैन और मज़बूती पहले की तरह क़ायम हो जाएगी।

मुहम्मद : (**बड़ी तशवीश के साथ**) लेकिन उससे पहले मुझे ये यक़ीनी तौर पर इल्म होना चाहिए कि मेरा मक़सद ही ग़लत था। मेरे इरादे ही नाक़िस थे। तब शायद तुम्हारा यह इलाज मुफ़ीद साबित हो। लेकिन जब तक वो लम्हा नहीं आएगा, तब तक इसी पर अमल करूँगा। मैंने जो सीखा है या जाना है, उसी को जारी रखूँगा, उसी से रिआया को रूशनास कराता रहूँगा। मैं यह कभी गवारा नहीं करूँगा कि तवारीख़ को फिर अन्धों की तरह अपने-

आपको दुहराने का मौक़ा मिले। ये मजबूरी है कि अपने पास मौजूदा एक ही ज़िंदगी पड़ी है, इसलिए मैं इसे नाकाम नहीं होने दूंगा। **(एक-एक हर्फ़ पर जोर देकर)** लोग जब तक मेरी बातों पर ग़ौर नहीं करेंगे, तब तक यह क़त्ले-आम मुसलसल जारी रहेगा। दूसरा कोई चारा नहीं है बरनी।

बूढ़ा पहरेदार दौड़ा हुआ आता है।

बूढ़ा : सुलतान सलामत रहें। गज़ब हो गया हुज़ूर! वज़ीर साहब ने पैग़ाम भेजा है...।

मुहम्मद : क्या?

बूढ़ा : वज़ीरे-आज़म नजीब का खून हुआ है। अभी-अभी उनकी लाश उनकी आराम-गाह में बरामद हुई है।

मुहम्मद बेदम-सा खड़ा हो जाता है।

दृश्य : ९

पहाड़ी गुफ़ा। आज़म और अज़ीज़ लेटे हुए हैं।

आज़म : **(जम्हाई लेते हुए)** बेहद गर्मी है। मुझे नींद आती है... मगर नींद से ज़्यादा ज़िंदगी से बेज़ार हूँ! लानत है ऐसी ज़िंदगी पर...!

अज़ीज़ : तो जाओ, ख़ुद-कुशी कर लो!

आज़म : एक बार कोशिश की थी, पर नाकाम रहा...। अब दुबारा कामयाब हो जाऊँगा, ऐसी उम्मीद नहीं है।

अज़ीज़ चुप रह जाता है कि कहीं आज़म अपना क़िस्सा शुरू न कर दे, मगर आज़म हार नहीं मानता।

: तब मैं क़रीब चौदह बरस का था! ख़्याल आया कि अपना ख़ात्मा कर लूँ। आधी रात में कुएँ के पास गया, किनारे पर खड़ा हुआ, फिर आँखें बन्द की, कान भी... कूद पड़ा कुएँ में। तभी याद आया कि मैं गर्दन से पत्थर बाँधना भूल गया था। लेकिन अब जब कि कूद चुका था, क्या करता? गिरा तो था, पर डूबा नहीं। इस पर, कम्बख़्त तैरना अलग जानता था। बचपन की तबियत थी। पानी के लगते ही, बेतहाशा जोश आ गया। दो घंटे ख़ूब तैराकी की, फिर ऊपर चढ़ा, और घर आकर सो गया। उसके बाद फिर कभी कुएँ का रुख़ नहीं किया।

अज़ीज़ : तुम जैसे अनाड़ी से और क्या उम्मीद की जा सकती है।

कोई भी काम सफ़ाई से करना जानते हो ?

आज़म : क्यों, चोरी-उठाईगिरी में कमाल की सफ़ाई दिखा सकता हूँ। कभी चूक नहीं हुई थी। मगर अज़ीज़, ये मुझे अभी तक पता नहीं कि मैं चोर क्यों हुआ। वरना मैं भी आम इन्सान की तरह घर बसाता, मज़े करता, मगर चोरी-चकारी...।

अज़ीज़ : मैं कहता हूँ, तुम बेवकूफ़े-आज़म हो। ज़िंदगी में कम-से-कम एक बार इन्सान को ग़लती करनी ही चाहिए, लाज़मी तौर पर। तभी उसकी ख़ूबियाँ रोशन होती हैं।

आज़म : क्या बेतुकी बक रहे हो ?

अज़ीज़ : ज़रा ग़ौर से सुनो ! शरीफ़ आदमी को लोग जल्दी भूल जाते हैं। अगर तुमने शराफ़त को धता बता दी, और एक बार चोरी कर ली तो फौरन लोग कहने लगते है, 'हाय बेचारा, कितना शरीफ़ लड़का था। अब बिगड़ गया।' उसके बाद एक खून भी करो तो लोग कहेंगे, 'इससे तो पहले ही अच्छा था, बेचारा सिर्फ़ चोरी ही करता था पर अब देखो जानो-माल पर...।' अब तुम पराई औरत की इज़्ज़त पर हाथ लगाओ तो लोग आह भर-भरकर कहने लगेंगे, 'हाय, हाय ! वली-क़िस्म का शख़्स था...अब शैतान...।'

आज़म : तुम्हारा मतलब क्या है ? चोरी की, ख़ून भी किया तो अब क्या किसी औरत की इज़्ज़त पर नज़र लगी है ?

अज़ीज़ : ज़रूर है; मगर सीढ़ी-दर-सीढ़ी...काम बनेगा...। इसका भी एक फ़लसफ़ा बनाना होगा। बग़ैर तजुरबा के आती-जाती औरत के साथ बद-सलूकी करो तो कुछ हाथ नहीं लगेगा ! सबसे पहल इक़तदार हासिल करना है, सुलतान बनना है। तब ज़्यादती, सितम, मौज-मज़ा, ऐशो-आराम... सब लफ़्ज़ों के ख़ास मानी निकलने लगते हैं !

आज़म : मगर तुम सुलतान बनने से रहे। ऐसे हवाई क़िले...।

अज़ीज़ : उसकी फ़िक्र मत करो, एक नुजूमी ने मुझसे कहा था...।

आज़म : **(एकाएक उछल कर)** अज़ीज़, न, न, इन नुजूमियों के जाल में कभी न आना ! इनकी बदौलत हमारे काका ने अपनी ज़िंदगी तबाह कर डाली।

अज़ीज़ : फिर छेड़ दिया अपने कुनबे का क़िस्सा !

आज़म : क़िस्सा नहीं दोस्त, हक़ीक़त बयान कर रहा हूँ। एक मरतबा मेरे काका ने किसी एक नुजूमी को अपना हाथ दिखाया। नुजूमी ने ऐसी ऊँची-ऊँची बातें कीं कि काका अपने को बादशाह समझ बैठे! और आठ रोज़ के बाद अपनी बीवी को भी नुजूमी के पास ले गये, हाथ दिखाने के लिए, कि बीवी की क़िस्मत में भी बेगम बनने की गुंजाइश है या नही। अब बेचारा नुजूमी अपनी इल्म की इस तरह कद्र होते देखकर बोला...'काकी बड़ी औलाद वाली होगी, उनके नौ बच्चे होंगे।' मगर हमारे काका इस पर इस क़दर बरहम हो गए कि अपनी बीवी और उस नुजूमी का एक ही चुटकी मे ख़ात्मा कर डाला।

अज़ीज़ : क्यों, तुम्हारे काका के सिर पर कुछ आ गया था?

आज़म : भूल उस नुजूमी की थी। अगर ऐसा भुलक्कड़ था तो नुजूम का पेशा क्यों अख़्तियार किया था! क्योंकि पिछली मरतबा काका के हाथ देखकर नुजूमी ने फ़रमाया था कि उनके कुल पाँच बच्चे ही होंगे।

फिर ठहाका लगाता है।

अज़ीज़ : ठीक है, अब जितना चाहो ठहाका मारो। अभी अपने करीमख़ान को आने दो। तब तुम्हें पता लगेगा कि मैं सुलतान बनूँगा या डाकू ही रहूँगा।

आज़म : **(संजीदगी के साथ)** मगर अज़ीज़, ताक़त की और क्यों हविस रखते हो? अब जैसी हालत है, तुम काफ़ी साहिबे-इक़बाल हो! मुल्क के सुलतान न सही, डाकुओं के बादशाह तो हो। मुसाफ़िर-राहगीरों को लूट-लूट कर काफ़ी दौलत बटोर ली है। और भी बटोरी जा सकती है, फिर भी क्यों लालच करते हो?

अज़ीज़ : मगर लोगों को धोखे से लूटने में मज़ा नहीं है, आज़म! लूट के माने लूट ही रहते हैं। उसमें ख़ास माने तब आते हैं जब सब के सामने खुल्लम-खुल्ला लूट-खसोट करो और लोग कहें कि ये हुकूमत है। तुम शतरंज का खेल जानते हो?

आजम सिर हिलाकर नहीं करता है।

: शतरंज में एक प्यादा होता है, सबसे कमज़ोर, हमेशा टेढ़ी चाल चलता है। उसकी न कोई सिफ़त है, न रुतबा।

फिर भी कहीं मार खाये बिना सात क़तारों को पार कर आठवी में अगर क़दम रख दे तो घुड़सवार से लेकर वज़ीर तक कुछ भी बन सकता है। यानी सीधे बादशाह की नाक के नीचे पहुँच सकता है। अब मैं भी उस प्यादे का रास्ता क्यों न अख़्तियार कर लूँ ?

आज़म : यानी तुम्हारे मनसूबे सुलतान बनने के हैं ! तब मेरी क्या हैसियत होगी ?

अज़ीज़ : मेरे दरबार के अमीर बन जाना !

आज़म : नहीं दोस्त ! लगता है, कि चोर से ऊँचा रुतबा मुझे हज़्म ही नहीं होगा।

अज़ीज़ : तुम्हारे मनसूबों में ही कंगाली है तो...। (**बाहर से क़दमों की आहट सुनाई पड़ती है**) लो, करीमख़ान आ गया।

करीमख़ान एक आदमी को बाँधे लाता है, जिसके हाथ बँधे हैं, मुँह और जिस्म ऊपर से ढके हुए हैं। साथ ही एक बड़ी गठरी भी लाया है।

: बड़ी देर कर दी, करीमख़ान ? मैंने जो हिदायत दी थी...तो यही शख़्स है ?

करीम : हाँ हुज़ूर !

अज़ीज़ : ठीक है। (**पैसे का थैला थमा देता है**) फिर जब ज़रूरत होगी बुलवा लूँगा, अब जाओ।

करीमख़ान चला जाता है।

आज़म : यह कौन-सा जानवर है ?

अज़ीज़ : बताता हूँ, पहले खोलो उसे।

आज़म खोल देता है। अज़ीज़ क़ैदी का मुँह घूर कर देखता है।

: लाहौल ! अहमक़ करीमख़ान किसी और को ले आया है !

आदमी : हाँ, हमने तुम्हारे उस आदमी को साफ़-साफ़ बताया था कि हम कौन हैं। फिर भी उसने बद-तमीज़ी की। सुलतान को ये बात मालूम हो, तब देखना...तुम सबकी चमड़ी न उधेड़ दी जाए तो मेरा नाम नहीं।

दोनों : सुलतान !

अज़ीज़ : हमें माफ़ करें हुज़ूर। मैंने तो और किसी मालदार को पकड़ लाने की हिदायत दी थी। ग़लती से करीमख़ान

आपको पकड़ लाया। माफ़ करें हुज़ूर ! लेकिन गुस्ताखी न मानें...आपकी तारीफ़ ?

आदमी : **(बड़े रोब से)** हम ग़ियासुद्दीन अब्बासी हैं। ख़लीफ़ा खानदान के नुमाइंदा हैं, सुलतान मुहम्मद बिन तुग़लक के मेहमान हैं।

आज़म : हमें माफ़ कर दें, हुज़ूर !

अज़ीज़ : हमसे ग़लती हो गई, हुज़ूर।

ग़ियासुद्दीन : बेशक ग़लती है। दूर-दराज़ अरबिस्तान से हम रवाना हुए। इतना लम्बा सफ़र किया। मगर इस दरमियान एक भी शख़्स को हमें हाथ लगाने की जुर्रत नहीं हुई। हमारी तारीफ़ और रुतबे से ज्योंही वाकिफ़ होते, फ़ौरन ताज़ीम से झुककर चले जाते ! हो सकता है, पहले यक़ीन न भी किया हो, मगर सुलतान का इजाज़त-नामा देखते ही ताज़ीम के साथ हमारा इस्तक़बाल किया। और तुमने इस क़दर हमारी तौहीन की !

अज़ीज़ : खफ़ा न हों, जनाबे-आला। ग़लतफ़हमी इसलिए हुई कि शाही मेहमान होते हुए भी आप इस तरह अकेले-अकेले...।

ग़ियासुद्दीन : वो सारी तफ़सीलें तुझे क्यों दें, बेवक़ूफ़ ? हम अकेले हैं तो क्या हुआ ! सिर्फ़ सुलतान को ख़बर करने की देर है। ज्यों ही उनको हमारी आमद की इत्तिला मिलेगी फ़ौरन उनके नुमाइंदे दौलताबाद के क़रीब पहुँच जाएँगे, और हमारा इस्तक़बाल करने के वास्ते बा-अदब तैयार रहेंगे !

अज़ीज़ : तो फिर आपकी इजाज़त हो तो हम भी आपके साथ चलें और ब-हिफ़ाज़त आपको दौलताबाद पहुँचा दें। इससे कम-से-कम इतनी तो तसल्ली होगी कि हमने अपनी ग़लतियों की इस्लाह कर ली।

ग़ियासुद्दीन : **(हिक़ारत से)** चोर होने के बावजूद लगता है कुछ हद तक शराफ़त से भी वाक़िफ़ हो। ठीक है। हमें भी सही रास्ता मालूम नहीं है। इसके अलावा ये हिन्दुस्तानी ग़ैर-मुल्कवालों को बड़ी हिक़ारत से देखते हैं।

अज़ीज़ : यानी आप पहली बार यहाँ तशरीफ़ ला रहे हैं ? सुलतान से पहले मुलाक़ात नहीं हुई ?

ग़ियासुद्दीन : **(बड़े रोब से)** नहीं, पर इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है ? ये इजाज़त-नामा और अँगूठी तो है, जो सिर्फ़ ख़लीफ़ा

खानदान के नुमाइंदे पहनते हैं। और किस चीज़ की ज़रूरत है ?

अज़ीज़ : यानी आपका मतलब है कि बिना इजाज़त-नामा और अँगूठी के कोई यहाँ आपको पहचान नहीं सकता ?

ग़ियासुद्दीन : हाँ, नामुमकिन ही समझो। **(फिर एकाएक शक की निगाह से)** लेकिन तुम ये सब क्यों पूछ रहे हो ?

अज़ीज़ : **(उछलकर)** आज़म, एकदम फँस गया। मुझे ख़बर मिली थी कि जनाबे-आला यहाँ मौजूद हैं। इसी वास्ते करीमख़ान को भिजवाया था।

ग़ियासुद्दीन : क्या बक रहे हो ? क्या मतलब है इसका ?

अज़ीज़ : सिर्फ़ चन्द लम्हे, और उसके बाद हर मतलब बे-मतलब साबित होगा !

आज़म : अज़ीज़, इनका क़त्ल मत करो। न, न, न, मेरी बात मानो...।

ग़ियासुद्दीन : **(ख़ौफ़-ज़दा होकर)** क्या ? मेरा क़त्ल करोगे ? क्यों करोगे ? मेरे क़त्ल से क्या हासिल होगा ? सुनो, मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है। जो भी होगी, तब होगी, जब सुलतान अता करेंगे। ये बात सही है कि मैं ख़लीफ़ा ख़ानदान का नुमाइंदा हूँ, ख़लीफ़ा का पड़पोता हूँ, मगर फ़िलहाल मैं खाली हाथ हूँ। मुफ़लिस हूँ। मुझ-जैसे के क़त्ल से तुम्हें क्या मिलेगा ?

अज़ीज़ ख़ामोश है, जिससे ग़ियासुद्दीन और घबरा जाता है।

: सच कहता हूँ, मेरी मुफ़लिसी ही मुझे यहाँ ले आयी। एक कौड़ी भी पास होती तो आज मैं यहाँ मौजूद न होता रास्ते भर में न जाने कितने बटमारों-लुटेरों से साबिक़ा पड़ा। लेकिन मुझे ख़ाली जेब पाकर सब ने मुझे छोड़ दिया। अब आपको ही मुझसे क्या मिलेगा ?

अज़ीज़ : बहुत मिलेगा। तुम नहीं रहोगे तो तुम्हारी जगह मैं दौलताबाद जा सकूँगा।

आज़म : अज़ीज़, मेरी बात मानो। सुनो...।

अज़ीज़ : चुप रहो। क्यों फ़िज़ूल गला सुखाते हो ? ज़रा समझ से काम लो। ऐसा मौक़ा फिर कब मिलेगा ? हाँ, ये हैं ख़लीफ़ा ख़ानदान के नुमाइंदे। न मालूम ऐसे कितने

नुमाइंदे अरबिस्तान में पड़े हों, उन्हीं में से एक ये दरवेश पड़पोता भी होगा। दौलताबाद में कोई इससे वाक़िफ़ नहीं। अगर होंगे भी तो अब उन्हें याद नहीं होगा। फिर फ़ुरसत ही किसे है कि वाक़फ़ियत साबित करते फिरें, जब कि दौलताबादी ख़ुद भुखमरी से तबाह हो रहे हैं। सारी ज़िम्मेदारी मुझ पर छोड़ दो। और तुम ताब नहीं ला सकते तो चुपचाप बाहर चले जाओ।

आज़म चला जाता है।

ग़ियासुद्दीन : या अल्लाह! नहीं! मेरा क़त्ल मत करो। ख़ुदा के वास्ते मुझे छोड़ दो। चाहो तो ये तुम्हीं ले लो,...ये अँगूठी, ये इजाज़त-नामा! इन्हें जो चाहो करो। मुझे जाने दो। मैं यहाँ से सीधे अरबिस्तान वापस चला जाता हूँ। आइन्दा कभी हिन्दुस्तान का रुख़ भी नहीं करूँगा। तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ। मुझे छोड़ दो, मेरा क़त्ल मत करो।

अज़ीज़ के पाँव मज़बूती से थाम लेता है।

अज़ीज़ : (**अपलक**) नहीं, नहीं, नहीं!

ग़ियासुद्दीन : (**अधमरा-सा, गोया अपने आपसे बड़बड़ा रहा हो**) नहीं, नहीं, नहीं; हाँ, मैं जानता था कि मेरा नसीब कभी बेदार नहीं होगा! मुझे एहसास था कि मेरी जिंदगी में कभी बरकत नहीं होगी। जब से पैदा हुआ, तभी से मुफ़लिसी का साथ रहा। दर-दर ख़ाक छानता रहा। उसी दौरान न जाने कहाँ से यह कंबख़्त ख़त आ टपका। मैंने समझा, मुझ पर ग़ैबी ताक़तों की इनायत हुई है, ज़रा-सी उम्मीद बँधी कि अब हम ख़स्ता-हाल नहीं रहेंगे। आइन्दा शायद हम भी ऐश कर सकेंगे। और हम बद-बख़्त चले हिंदुस्तान की तरफ़। उसी वक़्त मेरे ज़मीर ने मुझे चिताया कि अबे अहमक़, तेरी ज़िंदगी में कभी करिश्मे नहीं होंगे। नहीं, नहीं, नहीं!

अज़ीज़ ग़ियासुद्दीन की बातों में खो जाता है। एकाएक ग़ियासुद्दीन अज़ीज़ को धक्का देकर नीचे गिरा देता है, और बाहर भाग जाता है।

अज़ीज़ : (**गिरे-गिरे**) आज़म, पकड़ो बदमाश को। बाँध दो उसे।

तेज़ी से उठकर बाहर चला जाता है, और थोड़ी देर तक मुठभेड़ की आवाज़ें आती हैं।

अज़ीज़ : (**आवाज़**) शाबाश ! कस लो गिरफ़्त में ।

ग़ियासुद्दीन : (**आवाज़**) या ख़ुदा, मुझे अपनी हिफ़ाज़त में ले ।

भीतर से तलवार से मारने की आवाज़। ग़ियासुद्दीन की चीख। आज़म भागता हुआ स्टेज पर आता है, कपड़ों पर ख़ून के धब्बे। सारा जिस्म काँप रहा है, चेहरा पसीने-पसीने है। उसी के पीछे अज़ीज़ भी ख़ून से रंगी तलवार लिए आता है। सर पर ग़ियासुद्दीन का इमामा है। जिस्म ख़ून से रंगा है।

अज़ीज़ : (**ठहाका मारते हुए**) क्यों दोस्त ! सुबक रहे हो ?

आज़म : (**चिढ़कर**) मत बोलो मुझसे ? या अल्लाह ! मैंने उन्हें क्यों रोका ? क्यों पकड़ा ?

अज़ीज़ वहीं पड़ी ग़ियासुद्दीन की गठरी को खोलता है।

अज़ीज़ : तुम भी एक क़िस्म के अजूबे हो। न जाने कितने मुर्दे तुम्हारे हाथों से गुज़र चुके होंगे ! तुमने ख़ुद कितने ही मुर्दों में घास-फूस भरी है, और उन्हें कहाँ-कहाँ लादे फिरे हो। अब एक मामूली शख़्स की मौत बर्दाश्त नहीं कर सके।

गठरी से चोग़ा निकालता है, फिर ख़ुद पहन लेता है।

: इधर देखो आज़म, कैसा लगता हूँ, ख़लीफ़ा का पड़पोता !

आज़म मुँह नहीं फेरता, अज़ीज़ उसकी पीठ पर एक घूँसा मारकर।

: अबे हँस, बेवक़ूफ़ हँस, ठहाका मार। च्च च्च ! रोता है। अबे, सामने देख आज़म, शाही महल का बंद दरवाज़ा खुल गया। अब नाचो, नाचो (**गाने लगता है**) !
बड़े ख़लीफ़ा का पड़पोता..
बड़े ख़लीफ़ा का पड़पोता...

आज़म बड़ी नाराज़गी से देखता है, मगर अज़ीज़ को नाचते और गाते देखकर, आज़म के चेहरे पर धीरे-धीरे हँसी खुलती है।

दृश्य : १०

शाही महल में मुहम्मद की आराम-गाह। मुहम्मद खिड़की से बाहर देख रहा है। सौतेली माँ का प्रवेश।

सौतेली माँ : मुहम्मद, देखो, बाहर क्या हँगामा हो रहा है !

मुहम्मद : (**सर्द आवाज़ में**) हुं।

सौतेली माँ : इस सबका क्या मतलब है मुहम्मद ?

मुहम्मद : और किया ही क्या जाए, अम्मीजान ! मैंने ख़ुद ऐलान किया था कि तांबे के सिक्के की क़ीमत चाँदी के सिक्के के ही बराबर है। अब अपने हुक्म की तामील मुझे तो करनी ही होगी।

सौतेली माँ : हद दर्जे की नादानी है। वज़ीरे-नायब फ़रमाते हैं कि बाहर खड़ी पाँच सौ गाड़ियों में से तीन-चौथाई तो जाली सिक्कों की हैं। अगर इन्हें यों ही वापस लोगे तो शाही ख़ज़ाने का क्या होगा ?

मुहम्मद : मैं लाचार हूँ अम्मी जान ! जाली सिक्कों के मुताल्लिक़ मुझे तभी क़ियास कर लेना चाहिए था जब मैंने तांबे के सिक्के जारी किए थे। मगर तब मैंने अंजाम नहीं सोचा, जो मेरी बहुत बड़ी भूल थी। अब एक तरफ़ क़हत की मार, दूसरी तरफ़ जाली सिक्कों का ज़ोर, और नतीजा यह है कि पूरे मुल्क की तिजारत की हालत चौपट हो गई है। अम्मी, जो हो, अब इन सिक्कों को वापस लेना ही होगा।

सौतेली माँ : दस-बीस नहीं, पाँच सौ गाड़ियाँ ! अगर पहले रोज़ का यह हाल है, तो आइन्दा क्या होगा ? इसका भी अंदाज़ा लगाया है। रिआया की बेईमानी की ख़ातिर तुम्हारा ख़ज़ाना ख़ाली हो जाए, यह कहाँ का इंसाफ़ है ?

मुहम्मद : (**बेज़ारी से**) मैंने कितनी बार कहा है कि ख़ज़ाने में जमा रक़म मेरी नहीं, रिआया की है ।

सौतेली माँ : लेकिन खज़ाने में जाली सिक्के भरने से रिआया को तो कुछ फ़ायदा नहीं होगा ।

मुहम्मद : वो ख़ज़ाने में नहीं जाएँगे, अम्मी । मैंने दूसरा इंतज़ाम सोच लिया है । उन तमाम ढेर-के-ढेर सिक्कों को अपनी आराम-गाह के पास के बाग़ीचे में रखवा दूँगा, क़तार में, ताकि हर घड़ी मैं उनका दीदार कर सकूँ ।

सौतेली माँ : या अल्लाह ! ख़ज़ाने के साथ अब अपने चमन को तबाह करने पर तुले हो ? आख़िर ये पागलपन क्यों कर रहे हो, मुहम्मद ?

मुहम्मद : जब मैंने चमन बनवाया था, तब तसव्वुर किया था कि हमारा चमन शायर सादी के तख़य्युल की तस्वीर होगा । हमारी दिली ख़्वाहिश थी कि हर गुलाब एक हसीन शायरी हो, हर काँटा एक शदीद एहसास हो । लेकिन अब मेरी सलतनत के लिए किसी ख़ास अलामतो-निशान की ज़रूरत नहीं रही अम्मी ! हालात सब कुछ ख़ुद कह रहे हैं । जहाँ हर रोज़ जनाज़े के जुलूस जारी हों, वहाँ दूसरी अलामत की क्या ज़रूरत ?

सौतेली माँ : तो फिर इस जनाज़े के जुलूस को बन्द क्यों नहीं करते ? मैंने इन दिनों तुम्हारे मुताल्लिक़ बेशुमार नाक़ाबिले-एतिबार बातें सुनी हैं । सुना है कि तुम वज़ीरे-आज़म के क़ातिलों की खोज निकालने के बहाने शहर-भर के सरदारों, इमामों, अमीरों के पीछे हाथ धो के पड़े हो, और उनके ख़ानगी मुलाज़िमों को अपना ख़ुफ़िया बना लिया है । घर में कही हुई हर बात तुम्हारे कानों में पहुँचाई जा रही है और सुना है कि इसी वजह से आजकल तमाम अमीर-उमरा-इमाम-सरदार लोगों पर तुम्हारी जासूसी का ख़ौफ़ इस तरह छाया हुआ है कि बेचारे अपने ही घर पर अपने मुँह पर ताला लगाए बैठे रहते हैं । क्या

यह सब सच है ?

मुहम्मद : हाँ मुमकिन है।

सौतेली माँ : क्या ये भी सच है कि तुम्हारे शक्की पंजे से खौफ़ खाकर पाँच सरदार फ़रार हो गए हैं ?

मुहम्मद : सिर्फ़ चार लोग फ़रार हैं अम्मी, पाँचवें ने तो खुदकुशी कर ली।

सौतेली माँ : कौन ? किसने खुदकुशी की ?

मुहम्मद : अमीर जलालुद्दीन ने...।

सौतेली माँ : आख़िर क्यों, मुहम्मद ?

मुहम्मद : अमीर जब अपनी बीवी को बता रहा था कि नजीब के क़ातिल को वह जानता है, तो उसी के मुलाज़िम ने मुझे इसकी ख़बर दी। मैंने उसे पकड़ लाने के लिए सिपाहियों को भेजा ! मगर जैसे ही सिपाहियों को आते हुए देखा, अमीर ने खुदकुशी कर ली।

सौतेली माँ : **(खौफ़-ज़दा होकर)** अब बाज़ आओ, मुहम्मद। एक वज़ीर की मौत पर इतना तरद्दुद ज़ाहिर करना एक सुलतान को ज़ेब नहीं देता। और इससे तुम्हारे तमाम मोतबिर अमीर-उमरा तुम्हारे ख़िलाफ़ बग़ावत कर देंगे, बेहद संगीन सूरते-हाल पैदा हो जाएगी। बाज़ आ जाओ, मुहम्मद !

मुहम्मद : लेकिन नजीब के क़ातिल का नाम छिपाने की ख़ातिर खुदकुशी करने की नौबत क्यों आई ? वो भी अमीर जलालुद्दीन जैसी बड़ी हस्ती को ! आख़िर कौन है ये मख़्सूस क़ातिल ?

सौतेली माँ : मुहम्मद, नजीब की मौत हुई है तो ये ठीक ही हुआ। वो तुम्हारा दीन बिगाड़ना चाहता था।

मुहम्मद : लेकिन नजीब के क़ातिलों को दीन की फ़िक्र क्यों होने लगी ?

सौतेली माँ : चाहे दीन की हो, चाहे अमन की ! लेकिन नजीब-जैसे एक अदना शख़्स का तुमने जो एतिबार किया, अपने उमराओं की जो लापरवाही की, उसी से यह हंगामा हुआ है। तुम्हें पता भी है कि सैयद-इमाम तुम्हारे ख़िलाफ़ बयान देते हैं, सरदार तुम्हारे ख़िलाफ़ साज़िश करते हैं, इसलिए कि नजीब इस हंगामे की जड़ था। अब वो मर गया है तो अच्छा ही हुआ।

मुहम्मद : नजीब मेरा वफ़ादार नहीं था, लेकिन तख्ते-शाही का सच्चा वफ़ादार था। उसकी वफ़ादारी ने निज़ामे-सलतनत के सामने एक मिसाली पैमाना पेश किया था। अगर नजीब किसी रोज़ मेरे ख़िलाफ़ तलवार उठाता तो मैं यक़ीनन तसलीम कर लेता कि मुझसे कोई संगीन भूल हो गई है।

सौतेली माँ : बहरहाल, अब तो उसे भूल जाओ। अगर इस तरह बेतहाशा सबको परेशान किया करोगे तो तुम्हारा तख्ते-शाही कभी मुस्तक़िल नहीं होगा। अगर तुम्हारे ख़िलाफ़ ये सरदार-उमरा बग़ावत खड़ी कर दें तो तुम क्या करोगे ?

मुहम्मद : जूझता रहूँगा।

सौतेली माँ : मुहम्मद, कब तक अपने आपको यों ज़रर पहुँचाते रहोगे ?

मुहम्मद : इससे कोई छुटकारा नहीं है, अम्मीजान !...लेकिन अब शायद, ज़्यादा इंतज़ार नहीं करना पड़े !

सौतेली माँ : क्या मतलब ?

मुहम्मद : अमीर जलालुद्दीन ने ख़ुदकुशी कर ली। उसका भाई किसी से मुलाक़ात करने के बहाने दिल्ली से ग़ायब है। शायद उसे भी क़ातिल का नाम मालूम हो। इस सिलसिले में मैं जल्द ही ऐलान कराने की सोच रहा हूँ। अगर वो अपनी ख़ैरियत चाहता है तो क़ातिल का नाम हमें बता दे, वरना...।

सौतेली माँ : वरना ?

मुहम्मद : उसके वालदैन और बीवी-बच्चों को, जो अभी दिल्ली में बसे हुए हैं, क़त्ल करा दूँगा !

सौतेली माँ : **(काँपती है)** मुहम्मद, अंजाम दहशतनाक है। तुम्हारी जान की भी ख़ैरियत नहीं रहेगी !

मुहम्मद : मुझे अपनी ख़ैरियत की परवाह नहीं है।

सौतेली माँ : या अल्लाह ! मुझे ख़ौफ़ लग रहा है। मुहम्मद, मुझ पर दहशत छा रही है ! ये तलाश बंद करो मुहम्मद, मुझ पर मेहरबानी करो ! बंद करो। **(ख़ामोश)** इस हौलनाक पागलपन से बाज़ नहीं आओगे ? **(मुहम्मद अब भी ख़ामोश है; फिर ज़रा रुककर)** तो सुनो, मैंने ही नजीब का क़त्ल करवाया था।

सन्नाटा।

मुहम्मद : **(काँपती हुई आवाज में)** जानती भी हो तुम क्या कह रही हो ? नही अम्मी, मज़ाक़ का ये वक़्त नहीं ! अमीर-सरदारों की बग़ावत से मुझे बचाने की ख़ातिर झूठ मत बोलो ! ये कोई मामूली वाक़या नहीं है।

सौतेली माँ : मुझे मालूम है। इसीलिए कहती हूँ, मैंने ही उसे ज़हर दिलवाकर मरवाया है !

मुहम्मद : नहीं, नहीं ! ये ग़ैर-मुमकिन है। अम्मी, तुम मेरी जान क्यों खा रही हो ? समझ नहीं सकतीं ? आपका यह मज़ाक़ मेरे लिए किस क़दर तकलीफ़-देह है !

सौतेली माँ : **(सर्द होकर)** ग़ैर-मुमकिन क्यों है, मुहम्मद ? वालिद और भाई को मरवाने से ये ज़्यादा आसान है ! इमामुद्दीन की मौत से ज़्यादा जायज़ है !

मुहम्मद : मैंने अपने वालिद का क़त्ल किया है लेकिन तब मैं अपने बलंद ख़्यालों के पागलपन में अन्धा था ! क्या मैं इस हक़ीक़त से बेख़बर हूँ ? तुम नहीं देखतीं कि इससे मेरा ज़मीर किस क़दर ज़ख़्मी हुआ है ? तुम महसूस नहीं करतीं कि उस बद-दुआ की तपिश किस क़दर मुझे जलाए जा रही है ! मेरी सगी माँ मुझसे ख़फ़ा होकर तनहाई में ज़िंदगी काट रही है। इसी डर से मैंने शीशे में अपना चेहरा तक देखना छोड़ दिया कि कहीं अपने वालिद का चेहरा नज़र न आए, कहीं शेख़ इमामुद्दीन की शक्ल दिखाई न पड़े। मेरे क़रीब के सिर्फ़ तीन शख़्स रह गए थे। तुम, नजीब और बरनी। फिर अब तुम्हारे ही हाथों नजीब का क़त्ल होना था। क्यों ? क्यों ? आख़िर तुम्हें क्या पड़ी थी कि...?

सौतेली माँ : बचपन में तुम्हारा जोश-ख़रोश देखकर मुझे बड़ी तसल्ली हुआ करती थी कि तुम्हारी सलतनत में हर तरफ़ अमन-चैन क़ायम रहेगा, हुकूमत पायदार होगी। लेकिन तुम्हारी तख़्त-नशीनी के सात सालों में ही मुल्क का यह हाल हो गया। वालिद, भाई, शेख़ इमामुद्दीन जैसे एक के बाद एक तुम्हारे सनकी ख़्यालों के शिकार होते गए। उसके बाद तो जैसे मरने वालों का ताँता कभी टूटा ही नही। गोया सारा मुल्क क़साईख़ाना बन गया हो, और इस मुकम्मिल

तबाही का ज़िम्मेदार था तुम्हारा बदकार नजीब। वो तुम्हें भी अपने साथ घसीटे लिए जा रहा था जो मेरे लिए नाक़ाबले-बर्दाश्त था। उसके काले कारनामे...।

मुहम्मद : मेरे कारनामों की बुनियाद की तफ़तीश करनी थी तो उसके लिए नजीब का ख़ात्मा करने से क्या हासिल हुआ ? इस तरह की ज़्यादती करने से...।

सौतेली माँ : ये ज़्यादती नहीं है, मुहम्मद !

मुहम्मद : सरासर ज़्यादती है। जो अपनी ही बेवक़ूफ़ी से बेख़बर हों, वो क्या समझेंगे कि नजीब के ख़्यालात क्या थे ? गये छः महीनों से उसने बार-बार मुझसे अर्ज़ किया था कि अपने ख़ूँख़्वार अमल से मुझे बाज़ आना होगा। तख़्ते-शाही की सलामती के लिए तशद्दुद का रास्ता छोड़ देना होगा।

सौतेली माँ : मगर उसकी मुख़ालिफ़त उसके भरोसे से भी ज़्यादा ख़तरनाक साबित होती। मुहम्मद ! याद नहीं, उसने कहा था कि सियासत की बुनियाद पेशबंदी पर क़ायम है।

मुहम्मद : **(अपनी बातें जारी रखते हुए)** मेरे हाथों मारे जाने वालों के सब नाम तुमने गिना दिए। लेकिन संपन शहर के शहाबुद्दीन को भूल गई। हक़ीक़त में वही मेरी तमाम कारगुज़ारियों का सबसे बड़ा सबूत था। मैंने उसकी लाश में खंजर कई मरतबा भोंका था ताकि लोगों पर ये ज़ाहिर हो कि बाग़ियों के साथ जूझता हुआ वो मारा गया। लेकिन हर बार, जब-जब खंजर से लाश को चीरता था, मेरे रोंगटे खड़े हो जाते थे ! अजीब ख़ुशी की सनसनी मेरे जिस्म में दौड़ती थी ! ऐसी वहशी ताक़त का एहसास होता था, जो पहले कभी महसूस नहीं हुई थी ! तब मैं जान गया...यकायक समझ गया कि मेरी ख़ूँख़्वारी का वजूद मेरे दिमाग़ में नहीं, मेरी रगों में हैं। तशद्दुद मेरी रग-रग, रेशे-रेशे में रचा हुआ है। मुहब्बत-सुकून, अदलो-अमन वग़ैरह तमाम मुक़द्दस लफ़्ज़ उस वक़्त सिर्फ़ हर्फ़ों का पुलंदा नज़र आये और अपने अन्दर झाँका तो मैंने पाया कि मेरे पास अलावा ख़ूँख़्वारी और तशद्दुद के और कुछ नहीं है। सबसे पहले मैंने तीन आदमियों का क़त्ल किया। अपने वालिद, अपने भाई, और मोहतरिम शेख़

इमामुद्दीन का जो कि तीनों मेरे हम-शक्ल थे। इन तीनों हम-शक्लों की मौत हुई, इसे तुम क्या महज़ इत्तिफ़ाक़ समझती हो ? ग़द्दार आईन-उल्-मुल्क को मैंने अवध का राज वापस कर दिया। इससे मेरी दरिया-दिली सब पर ज़ाहिर हुई। लेकिन आज उसी की रिआया उसे शेख़े-मोहतरिम का क़ातिल मानती है, और गाहे-बगाहे उसकी मलामत करती है, उसके मुंह पर थूकती है। क्या इसे भी इत्तिफ़ाक़ समझती हो ? नहीं अम्मी, नहीं, दर-असल ख़ूँख्वारी और तशद्दुद की मुझे बेहद ज़रूरत थी और अब भी है ताकि तीर की मानिंद गुज़रती हुई मेरी ज़िंदगी को कोई ठोस निशाना मिले, ज़िंदगी को कार-आमद बनाने के लिए ठोस यक़ीन हासिल हो सके। वरना मेरा ज़ाहिरा आलम काफ़ूर हो जाएगा; और ये व तन्हाई मुझे खा जाएगी। लेकिन इसके लिए तुमने नजीब को ज़िबह क्यों किया ?

सौतेली माँ : तुमने अपने एतिक़ादों के लिए कितनों को बे-मतलब मरवा डाला ! तो क्या तुम्हारे लिये मैं एक का क़त्ल भी नहीं करवा सकती थी ?

मुहम्मद : **(चीखकर)** ग़लत ! ग़लत! ! ग़लत ! ! मेरी कार-गुज़ारियाँ बे-मतलब नहीं हैं। इन्ही कार-गुज़ारियों की वजह से मुझे ज़िंदगी का ख़ास इनाम मिला है...इक़्तदार ! मुझे अपने ख़्यालों को अमली-सूरत देने के लिए इक़्तदार चाहिए था, ताक़त की ज़रूरत थी। लेकिन तुम इस क़त्ल से क्या चाहती थीं ? **(फिर माँ की ओर देखकर जैसे एक नया ख़्याल आ गया हो)** औरत ! औरत ! आख़िर तुम भी तो औरत ही हो। सौतेले बेटे पर बे-ग़रज़ ही शफ़क़त बरतती रहीं। ग़लत ! मेरी अपनी वालिदा जिस बात के लिए मुझसे ख़फ़ा हैं कि मैं उनका कठपुतला नहीं बना, आख़िर तुम भी तो वही चाहती हो। नजीब के चंगुल से छुड़ाकर अपने जाल में फँसाने की तरकीब...।

सौतेली माँ : नहीं मुहम्मद ! ख़ुदा की क़सम। अगर इक़्तदार हासिल करने का मेरा इरादा होता तो मैं ख़ुद कभी मौजूदा वाक़ये का इक़बाल न करती।

मुहम्मद : तुम नहीं बतातीं तो जलालुद्दीन का भाई बता देता। अगर

वो भी राज़ नहीं खोलता तो सरदार-लोग बग़ावत करते। चालाक औरत, काफी होशियारी बरती है तुमने, लेकिन तुम इस ग़फ़लत में मत रहना कि तुम मेरी माँ हो, इस लिए सज़ा से बरी कर दूँगा। तुम्हारे प्यार की मैं रत्ती-भर क़द्र नहीं करूँगा...। **(एकाएक टूटकर)** हाय, अम्मी-जान! तुमने यह क्यों किया? इक़्तदार की अगर ख़्वाहिश थी तो दूसरा रास्ता अख़्तियार कर लेतीं। ये क्यों किया तुमने आख़िर?

सौतेली माँ : **(बेटे के कन्धे पर हाथ रखती हुई)** मेरी बात सुनो मुहम्मद!

मुहम्मद : **(छिटक कर हट जाते हुए)** हटा लो अपने हाथ! गद्दारी की एक ही सज़ा है...सजाए-मौत!

दो बार ताली बजाता है।

सौतेली माँ : अल्लाह तुम्हें सब्र अता करे! जल्दबाज़ी से काम न लो, मुहम्मद। मैं इल्तिजा करती हूँ, अपने लिए नहीं, तुम्हारे लिए। मुझे मरवा कर तुम ख़ुश नहीं रह सकोगे। अभी तुम्हारे वालिद का भूत तुम पर ग़ालिब है। शेख़ इमामुद्दीन का भूत तुम्हारे सीने पर सवार है! अब क्या मेरे भूत से भी अपनी ज़िंदगी को दूभर कर लेना चाहते हो?

मुहम्मद : शायद वो लोग मेरी बे-इन्साफ़ी की वजह से मारे गए मगर तुम महज़ इन्साफ़ की रूह से मारी जाओगी!

दो सिपाही दाख़िल होते हैं।

: तूने ज़िना-कारी से भी बदतर गुनाह किया है। हुकूमत के क़ानून में तेरे जैसे मुजरिमों के लिए एक ही सज़ा दर्ज है कि बाज़ार के बीचों-बीच तुझे खम्भे से बाँध दिया जाय और आते-जाते लोग पत्थर फेंक-फेंक कर तेरी जान ले लें!

माँ बेचैन हो जाती है, कुछ कहने की कोशिश करती है, मगर ना-कामयाब रहती है, जैसे दम घुट गया हो। 'ले...ले...लेकिन...' भर कह पाती है।

मुहम्मद : **(सिपाहियों से)** ले जाओ इसे क़ैदख़ाने में।

सिपाही परेशान खड़े रहते हैं।

: **(गरजकर)** शाही हुक्म दुहराया नहीं जाता।

सिपाही उसे बाजुओं से पकड़ते हैं, माँ छुड़ाने

को कोशिश करती है।

: वज़ीरे-नायब को हमारा हुक्म पहुँचा दो कि कल सुबह इसे बाज़ार के बीच खम्भे से बँधवाकर मरवा दिया जाए।

सौतेली माँ : (**फूटकर**) मुहम्मद, और किसी तरीक़े से मुझे मरवा दो, लेकिन सबके सामने...।

सिपाही उसे खींचकर ले जाते हैं। मुहम्मद अकेला बेहोश-सा खड़ा रहता है। फिर एकाएक घुटनों के बल झुक जाता है, खौफ़-ज़दा होकर आँखें बन्द कर लेता है, हाथ ऊपर फैलाता है।

मुहम्मद : ऐ मेरे आक़ा, मेरे हाथ थाम ले। मैं नहीं जानता कि मेरे जिस्म की रगों में अपना ख़ून कौन-सा है और बेगाना कौन-सा? मैं भटक गया हूँ, मेरे मालिक! तू ही बता, आँखों के आगे ये क्या है? बियाबाँ है या सब्ज़बाग़? ये बन्दा तेरी राह का मुसाफ़िर है आक़ा, उसे क्यों इस तरह रेगिस्तान में अकेला भटकने देते हो? वो तेरे सहारे का मुंतज़िर है, दलदल में कीड़े की मानिंद कुलबुला रहा है। मालिक, उसे सहारा दे, उसे बीनाई दे! ख़ून से रंगी अपनी उँगलियों से तेरे ग़ैबी लिबास का दामन थामे वो घिसटता जा रहा है। मेरे आक़ा, मेरी फ़रियाद सुन ले, मुझ पर रहम कर। मैं बे-सहारा हूँ, ख़ुदावंद, तू पनाह दे, तू पनाह दे, तू पनाह...।

बरनी दाखिल होता है।

बरनी : अल्लाह सुलतान को...(**ख़ामोश हो जाता है**)।

मुहम्मद : (**सिर उठाकर हड़बड़ाकर उठ जाता है**) आओ बरनी, बड़े मौक़े पर आ गए। तुम्हारा बहुत-बहुत शुकरिया! तुमने मुझे ग़द्दारी से बचा लिया। मैं इबादत करने लग गया था, कितना बड़ा जुर्म मुझसे सर-ज़द होता! मैंने ऐलान किया था कि ख़लीफ़ा ख़ानदान का नुमाइंदा जब तक यहाँ क़दम नहीं रखेगा तब तक इबादत करने की सख़्त मनाही है, और आज ख़ुद शाही हुक्म की ना-फ़रमानी करने पर उतारू हो गया था। कितनी शर्मनाक बात हो जाती, लेकिन...मैं क्या करूँ, बरनी, न मालूम, कहाँ से यकायक कमज़ोरी ने मुझे आ घेरा!

बरनी : अब परेशान न हों, हुज़ूर! वज़ीरे-नायब तांबे के सिक्कों

की देख-रेख में मसरूफ़ थे। इसीलिए मैं खुद ख़िदमत में एक ख़ुश-ख़बरी सुनाने हाज़िर हो गया हूँ।

मुहम्मद : ख़ुश-ख़बरी? मुद्दत हो गई यह लफ़्ज़ सुने हुए!

बरनी : अभी ख़त आया है हुज़ूर, कि ख़लीफ़ा ख़ानदान के नुमाइंदा ग़ियासुद्दीन अब्बासी दौलताबाद तशरीफ़ ला रहे हैं। एक-दो महीने में आली-क़द्र यहाँ पहुँच जाएँगे।

मुहम्मद : (**गहरी साँस भरते हुए**) अब उनके आने से भी क्या होगा बरनी? अभी-अभी इबादत की कोशिश में था! लबों पर सीखे हुए लफ़्ज़ गोया उछल-उछल पड़ते थे लेकिन दिल में उनकी गूँजे बिलकुल सुनाई नहीं पड़ीं। चाहे मैं पागल भी हो जाऊँ मगर अब अल्लाह-ताला का पागलपन मुझे हरगिज़ नहीं होगा। (**ऊँची आवाज़ से**) वो लियाक़त मुझे कैसे हासिल होगी बरनी? मैंने अपनी अज़ीज़ अम्मीजान को सज़ाए-मौत दी है। लेकिन मुझे एतिबार नहीं होता कि मेरी अम्मीजान गुनहगार हैं।

ढिंढोरची : सुनो, सुनो, दौलताबाद के बाशिंदो ! सुनो। ख़ुदातर्स, ख़ुदावंद, ख़लीफा के बन्दे तुग़लक मुहम्मद फ़रमाते हैं...। बगदाद के क़ाबिले-एहतिराम किर्दगार ख़लीफा अब्बासी-अल्-मुस्तानसीर के फर्ज़ंदे-अर्ज़मन्द अब्दुल अज़ीज़ के फर्ज़ंदे-अर्ज़मंद युसूफ़ के फर्ज़ंदे-अर्ज़मंद ग़ियासुद्दीन मुहम्मद कल दोपहर दौलताबाद तशरीफ़ ला रहे हैं। इस पाक मौक़े पर सुलतान अपनी रिआया से उम्मीद करते हैं कि दौलताबाद का हर खासो-आम क़ाबिले-एहतिराम के इस्तक़बाल के लिए मौजूद होगा। कल का दिन दायमी मसर्रत का दिन है, मुबारक दिन है। मख़्दूम ग़ियासुद्दीन की दुआए-खैर पाकर दौलताबाद का तख़्ते-शाही पाक हो जाएगा। शाहे-सुलतान ख़लीफ़ा-ए-मुअज्ज़म की दुआएँ लेकर मुल्क की रहनुमाई हस्बे-साबिक करते रहेंगे।

शाहे-सुलतान आगे फ़रमाते हैं...। इस रोज़े-मुबारक के मौक़े पर उमूमी इबादतें, जो पाँच बरस बन्द थीं, अगले जुमा से फिर जारी होंगीं। इस जुमा से हर रोज़ पाँच बार नमाज़ पढ़ी जाए। क़ुरान-शरीफ की शरीयतों की बा-क़ायदा तामील की जाए।

सुलतान इसरार करते हैं कि कल दोपहर को ख़लीफ़ा-ए-मोहतरम के इस्तक़बाल के लिए दौलताबाद के तमाम बाशिंदे हाज़िर हों। सुनो ! सुनो ! सुनो !

दृश्य : ११

दौलताबाद के क़िले का बंद दरवाज़ा। सामने शाही रास्ते पर लोगों की भीड़-भाड़ जमा है।

पहला : कहते हैं, अगले जुमा से इबादत शुरू करो। अब किसे पड़ी है इबादत की !

दूसरा : इबादत से पहले रोटी तो मिले।

पहला : अरे, रोटी का नाम मत लो भैया, इबादत करो। बस, उसी को खाओ, उसी को बिछाओ, उसी को ओढ़ लो। जो कुछ अनाज है, वो शाही महल के अन्दर है।

दूसरा : क्यों, अमीरों के यहाँ भी अनाज भरा हुआ है।

पहला : पहले हमें रोटी दो, इबादत की बात फिर देखी जाएगी। अज़ाब-सबाब का हिसाब-किताब मुल्लाओं पर छोड़ दो।

तीसरा : लेकिन मैंने सुना है कि सुलतान ने दो खलिहान खुलवाए और लोगों में गल्ला बँटवाया है।

दूसरा : कहाँ का खलिहान ? कहाँ है अनाज ? सारे-के-सारे खलिहान ख़ाली पड़े हैं। गेहूँ का दाना तक नहीं !

पहला : इस पर फ़रमाते हैं, इबादत करो। अब किसे पड़ी है इबादत की ?

तीसरा : परसों ही मेरे क़स्बे से मेरा छोटा भाई आया है। कहता है हमारा हाल फिर भी बेहतर है, मगर उनका तो बहुत बुरा हाल है। उसी ने बताया कि दो मुट्ठी गेहूँ लेना हो तो बीस रत्ती चांदी दो।

दूसरा : (**चिढ़कर**) हुं !

तीसरा : कहता था कि रास्ते में क़दम-क़दम पर मुर्दे पड़े हुए थे। एक को मेरे भाई ने अपनी आँखों एड़ियाँ रगड़-रगड़ कर मरते देखा।

दूसरा : ऐ, बस करो।

तीसरा : कहते हैं कि दो-आब पर तो बद-हाली इस क़दर छाई हुई है कि इन्सान और गिद्ध साथ-साथ रहने लगे हैं। आदमी घास-पत्ती खाने लगे हैं। भुखमरी के शिकार एक घोड़े की खाल चबाते औरतें देखी गई हैं।

दूसरा : अब बस भी करोगे या नहीं ?

तीसरा : सुना है बरन शहर का भी यही हाल है। हमारे सुलतान के दोस्त ग़ियासुद्दीन बरनी वहीं के रहने वाले हैं। वहाँ की यह ख़बर है कि बरन के लोग सूखी खाल को उबालकर खाने लगे हैं।

दूसरा : मैं कहता हूँ, ख़ामोश हो जाओ।

लेकिन बाक़ी लोगों की दिलचस्पी तीसरे शख़्स की बातों से बढ़ती जाती है।

तीसरा : (**दूसरे को चिढ़ाते हुए**) हमारी हालत तो फिर भी ग़नीमत है। लेकिन सुना है, दो-आब का सबसे ज़्यादा बुरा हाल है। मेरा भाई कहता था कि किसी एक शहर में क़साई की दुकान के आगे छोटे-बड़े सब क़िस्म के लोग बड़ी तादाद में जमा थे। अब मेरे भाई ने नज़दीक जाकर देखा तो उसे मालूम हुआ कि क़साई जानवरों को जब काटता था तब जो ख़ून इधर-उधर छिटकता था उसी को चाट लेने के वास्ते वो भीड़ वहाँ जमा थी।

दूसरा : अरे बूचड़ खाँ, अगर ख़ुद चुप नहीं होता तो लो मैं चुप करा देता हूँ।

दोनों में हाथापाई शुरू होती है। तीसरे के सीने पर दूसरा चढ़ बैठता है, फिर मुक्का मारता है। मुक्के मारते-मारते ख़ुद रोने लगता है। बाक़ी लोग बे-जान-से खड़े देखते रहते हैं।

पहला : अब यहाँ किसे इबादत की पड़ी है ?

एक सिपाही दौड़ा आता है।

सिपाही : ये क्या हो रहा है ? ऐसे रोज़े-मुबारक पर शाही क़िले के

दरवाज़े पर ही दंगा-फ़साद ! अव्वल दर्जे के अहमक़ हो। **(दोनों को घसीटता हुआ)** ऐसे बे-अक़्लों की गर्दन उड़ा देनी चाहिए।

सिपाही दोनों को किनारे हटा देता है, तब सातवें दृश्य वाली औरत अपने शौहर के साथ दाख़िल होती है।

ऐलान करने वाला : होशियार, होशियार ! बा-अदब, बा-मुलाहिज़ा होशियार ...शाहे-शाहान सुलतान मुहम्मद बिन तुग़लक़ तशरीफ़ ला रहे हैं !

उसी वक्त दूसरी तरफ़ से भी।

: होशियार ! होशियार ! दीने-आलम के नुमाइंदा, खलीफ़ा-ए-बग़दाद अब्बासी अल्-मुस्तानसीर पाक खानदान के क़ाबिले-एहतिराम अमीर-उल-मोमीनीन ग़ियासुद्दीन मुहम्मद तशरीफ़ ला रहे हैं !

अज़ीज़, उसके पीछे आज़म, और उन दोनों के पीछे सुलतान के सफ़ीर दाखिल होते है। अज़ीज़ ग़ियासुद्दीन के भेस में है, अंगूठी पहने हुए है।

उसी वक्त क़िले के भीतर से सीढ़ियाँ उतरता हुआ मुहम्मद दाखिल होता है। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है। मुहम्मद लम्हे-भर अज़ीज़ को घूर कर देखता है, जैसे उसे कुछ वहम हुआ हो, जिससे पल-भर के लिए अज़ीज़ के चेहरे पर परेशानी दौड़ जाती है।

सातवें दृश्य वाली हिन्दू औरत अज़ीज़ को देख कर 'ओह' कहती है, फिर ठीक से शनाख़्त करने के लिए एक क़दम आगे बढ़ती है।

औरत का शौहर : **(बढ़ती हुई औरत को रोक कर)** ऐ, कहाँ जा रही हो ?

औरत : वो देखिए ! उसकी आँखें देखिए।

उसी वक्त अज़ीज़ मुहम्मद को गले लगा लेता है।

मुहम्मद : **(गले लगने के बाद, ज़रा पीछे हट कर, भरी आवाज़ में)** खुशामदीद, आली-क़द्र, आपके वुजूदे-मुबारक से मेरी सलतनत पाक हो गई। मुद्दत से आपके दीदार का मैं मुंतज़िर था। मुद्दत हुई कि दौलताबाद के गली-कूचे

सजदा-गुज़ारी की सुहानी सदा नहीं सुन पाए। जब तक आपके क़दमे-मुबारक दौलताबाद में दाख़िल नहीं होते, तब तक आपके ताबेदार इबादत करने के क़ाबिल ही कहाँ थे ? अपने ही गुनाहों के काले साए से हमारे पाँव उलझे हुए हैं। अज़ाब के ज़ोर से क़हत व सूखे ने खेत के दाने-दाने को जलाके रखा है, इबादत पर गूँगापन काबिज़ हो गया है। अब जैसे आला-मरतबे की मौजूदगी से हमारी सलतनत में रौनक़-अफ़ज़ाई हुई है। **(आवाज़ बलंद करके)** वली-उल्लाह, आपकी ख़ाके-पा की इनायत हो, आपके हुक्म की बसरोचश्म हम तामील करेंगे। मरतबे-आला, हमें अपनी हिफ़ाज़त में लें।

मुहम्मद यह कहते हुए अज़ीज़ के आगे लेट जाता है। इकट्ठी भीड़ दंग रहती है, फिर ज़रा देर के बाद भीड़ भी सजदा करती है।

अज़ीज़ : हक़-पसन्द सुलतान, आप जैसी मज़हब-परस्त हस्ती जब दावत-नामा भेजे, तो हम कैसे इनकार करते ? अल्लाह-ताला हमेशा आपको आपनी हिफ़ाज़त में रखे।

हिन्दू औरत : उसे देखो, वही आवाज़ ! वही नज़र !

मुहम्मद : **(घुटने टेक कर)** आज के रोज़े-मुबारक की याद में अगले जुमा से हम उमूमी इबादतें जारी करना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि अब ब-दस्तूर दौलताबाद की गली-सड़कों में दीनो-ईमान के काम बिला-झिझक हों।

फिर अज़ीज़ और सुलतान गले लगते हैं। आज़म अन्दर-ही-अन्दर हँसना चाहता है, मगर अपनी तरफ़ सुलतान को आते देख कर हँसी को जबरन दबा लेता है। सुलतान आज़म के गले लगते हैं।

ऐलान करने वाला : क़ाबिले-एहतिराम नुमाइंदा-ए-ख़लीफ़ा...!

सिपाही : ज़िन्दाबाद !

ऐलान करने वाला : मज़हब-परस्त, ख़ुदातर्स सुलतान...!

सिपाही : ज़िन्दाबाद !

बार-बार नारे लगते हैं, मगर लोग हारे हुए-से चुप हैं। ज्यों-ज्यों सिपाही लोग इशारा करने लगते हैं, और लोग भी जल्द-जल्द रसमी तौर

पर नारे लगाते हैं। मुहम्मद फ़र्शी सलाम करते हुए अज़ीज़ और आज़म को भीतर ले जाता है। एक को छोड़ कर बाक़ी सिपाही भी भीतर चले जाते हैं।

हिन्दू औरत : वही है, वही है।

शौहर : कौन है ? कहाँ है ?

हिन्दू औरत : वही है क़साई, जिसने मेरे बच्चे की जान ली थी। वही निगाह, वही आवाज़। दिल्ली से आते हुए आधे रास्ते में उसने मेरे बच्चे को मारा। हाँ, वही है। (**चीखकर**) देखो, देखो, मेरे बच्चे का क़ातिल है, उसी ने मेरे बच्चे को मार डाला, मुझे बाँझ बना दिया। (**शौहर उसे रोकने की कोशिश करता है**) वो मेरे बच्चे का क़ातिल है, मैं उसे कच्चा चबा जाऊँगी। उसने मेरे बच्चे को मारा है।

पहला : क्या कहती है ? कौन है ? किसने बच्चे को मारा ?

दूसरा : मैंने भी अच्छी तरह नहीं सुना, शायद सुलतान के मुताल्लिक़ कह रही होगी।

तीसरा : सुलतान के अलावा और कौन होगा ! और कौन उसके बच्चे को मार सकता है ?

चौथा : हाँ, हाँ, मार दिया होगा ! ज़रूर क़त्ल किया होगा। 'रोटी मत खाओ, और जीते रहो' के मानी ही क़त्ल हैं। मेरी बेटी भी इसी तरह मर गई।

दूसरा : और कब तक यों छटपटाते रहेंगे, रोटी के लिए तरसते रहेंगे ?

तीसरा : (**भरी आवाज़ में**) उस वक़्त अगर सिर्फ़ एक मुट्ठी अनाज मिल जाता तो मेरी बच्ची...।

पहला : ऐ रहमदिल सुलतान ! हमें रोटी दो। इबादत वापस लो, हमें रोटी दो...।

सब : हमें रोटी दो, खलिहान खोलो, रोटी दो।

सिपाही : ख़ामोश रहो। (**भीड़ को हटाने के लिए बढ़ता है**)

एक : मारो, मारो मुझे, मैं भूख से नहीं मरूँगा। तुम्हारे भाले से मरना ज़्यादा पसंद करूँगा। मारो, मारो !

तीसरा : कौन मारेगा ? कौन किसको मारेगा ? हम भी देखें कहाँ है मारने वाला ?

भीड़ : हाँ, मारो। रोटी न दे सको तो हमें मारोगे ? हमारा गला

घोंटोगे? चलो देख लें। मारो उसे, उसकी चमड़ी उधेड़ दो।

हंगामा। सब सिपाही को घेर कर मारते हैं। थोड़ी देर के बाद उसको छोड़ते हैं। खून से लथपथ जख़्मी सिपाही लुढ़क जाता है। उसी वक्त और सिपाही आते हैं।

दृश्य : १२

शाही महल का एक कोना। अज़ीज़ चहल-क़दमी कर रहा है, उसी वक्त आज़म दाखिल होता है।

आज़म : अज़ीज़ !

अज़ीज़ : श्श...श्श...अहमक़ कहीं के ! कितनी बार मैंने कहा कि पिछला नाम मत लो ! इज़्ज़त के साथ गुफ़्तगू करो। वरना सारा खेल चौपट हो जाएगा !

आज़म : मैं तंग आ गया हूँ अज़ीज़। मैं जा रहा हूँ। इसी की ख़बर देने तुम्हारे पास आया था।

अज़ीज़ : जा रहा हूँ ! क्या माने ? कहाँ चले ?

आज़म : महल के दो मुलाज़िमों को रक़म दे दी है, दो घोड़े लाने के लिए। एक-आध घंटे में घोड़े लेकर वे यहाँ पहुँच जाएँगे। अब चलो, रवाना होने की तैयारी करो।

अज़ीज़ : अव्वल क़िस्म के बेवक़ूफ़ हो तुम। इतना आगे बढ़ने के बाद अब पीछे हटने की सोचते हो ? मैंने कितनी बार तुम्हें समझाया कि यहाँ किसी बात का डर नहीं। अब तुम्हारी नादानी की वजह से महल के उन मुलाज़िमों को हम पर शुबहा हुआ होगा। तुम तो जान-बूझकर क़साई के हाथों में अपनी गर्दन दे रहे हो। और आठ-एक रोज़ लिए सब्र करो। फिर देखो...।

आज़म : ख़ुदा जाने, तब तक क्या होगा। तुम शहर के लोगों से मिले हो ? उनका हाल देखा है ? बर्दाश्त के बाहर है।

कहीं लोगों की भीड़ पागल कुत्तों की तरह चीख रही है। कही बीमार लोग उल्लुओं की तरह कराह रहे हैं। कहीं आतश-ज़नी हो रही है, कहीं से जंगली जानवरों की तरह अजीबो-ग़रीब आवाज़ें आ रही हैं। तुम कभी बाहर गये हो ?

अज़ीज़ : नहीं।

आज़म : मैं गया था, छुपे-छुपे !

अज़ीज़ : छुपे-छुपे ? क्या बकते हो ? अगर किसी ने देख लिया होता तो...? सुलतान के मेहमान छुपे-छुपे जा रहे हैं ! कभी अंजाम भी सोचा है ! आख़िर तुम्हारे दिमाग़ में कूड़ा तो नहीं भरा है ? कितनी शान से कहता है कि छुपे-छुपे गया था।

आज़म : महल से बाहर जाने का एक ख़ुफ़िया रास्ता है। जिस रोज़ मैं यहाँ आया, उसी रोज़ उसे खोज निकाला था। और ख़ुफ़िया रास्ता बाहर जहाँ खुलता है, वहाँ कोई सिपाही तैनात नज़र नहीं आया। मैं दो मरतबा हो आया हूँ।

अज़ीज़ : **(परेशान होकर)** दो मरतबा ! दो मरतबा !

आज़म : जो देखा, उसे बयान नहीं कर सकता अज़ीज़ ! मेरा दिल भर आया। शहर के उत्तरी हिस्से में पतली उँगलियों की तरह जो सड़कें हैं, क़िले-नुमा जो इमारतें हैं, उनके पीछे एक बहुत बड़ा राज़ है। उन इमारतों में लोगों को लूट-लूट कर बटोरी गई दौलत दफ़्न है। उनके साथ कई मुर्दे भी ज्यों-के-त्यों पड़े हैं। लाशों का जमघट लगा है ! ये लाशें कितनी हैं, उनमें सिपाहियों की कितनी हैं, आम लोगों की कितनी हैं, कुछ पता नहीं चलता...। मुर्दों और मक्खियों का मेला-सा लगा है ! और इन लाशों के नीचे दौलत छुपा रखी है।

अज़ीज़ : लेकिन इस सब की ख़बर मुझे पहले क्यों नहीं दी ?

आज़म : क्योंकि मुझे शक था, कि शायद तुम मुझे बाहर जाने से रोक लो। अज़ीज़, अब मेरी हिम्मत पस्त हो गई है। मैं यहाँ नहीं रह सकता ? आज ही मैं यहाँ से निकल जाना चाहता हूँ। कहते हैं कि शहर के लोग आज बहुत थके हुए हैं, इसलिए यहाँ से भाग निकलने का यही एक अच्छा

मौक़ा है ।

अज़ीज़ : आज़म, तुमने यह भी सोचा कि जिन मुलाज़िमों को तुमने घोड़े लाने के लिए रक़म दी है, वे तुम्हारे साथ वफ़ादारी बरतेंगे ? इसका क्या यक़ीन है ?

आज़म : लेकिन अज़ीज़, वे लोग सुलतान से बेहतर हैं। सुलतान पर जुनून सवार है, हथियार चलाने का ! मैंने-तुमने ही, सुलतान के हाथों मारे गये लोगों की कितनी लाशों में घास-फूस नहीं ठूँसी है ? ऐसे मालदार सुलतानों से तो ये मुलाज़िम अच्छे हैं। अज़ीज ! इस सनकी सुलतान की सलतनत में अगर कोई महफ़ूज़ जगह है तो यही शाही महल जो बिलकुल सुलतान की नाक के नीचे है। मुझे क्या बता रहे हो अज़ीज़ ? मैंने जो कुछ देखा है, वो तुमने नहीं देखा। तुम्हें मालूम है कि मेरे कमरे के बाहर जो खुली जगह है, वहाँ तांबे के सिक्कों के कई अंबार लगे हैं।

अज़ीज़ : (**हँसकर**) तो उससे डर गये। उनमें ढेर-के-ढेर सिक्के तो हमारे ही बनाये हुए हैं।

आज़म : जिस दिन यहाँ आया था, उस रोज़ रात में मुझे नींद ही नहीं आयी। मैं खिड़की के पास खड़ा बाहर देख रहा था। चाँदनी फैली हुई थी। सिक्कों के वे अंबार साँपों के बड़े-बड़े घरौंदे-से लग रहे थे। ज़रा भी हवा नहीं थी। तभी मैंने देखा, उन अंबारों के बीच कुछ हरकत-सी हुई, एक साया हिलता नज़र आया। मैंने आँखें खोल-खोलकर देखा। कोई अकेला सिक्कों के अंबारों के बीच टहल रहा था। फिर वो साया एक अंबार के पास बेहिस बैठा रहा, आधे घंटे तक। फिर हाथों से खोद-खोदकर अपनी मुट्ठियों में सिक्के भरने लगा, खड़ा हुआ, और मुट्ठियों से मुसलसल उन सिक्कों को गिराता रहा। मुझे किसी भूत का ख़्याल आया ! जानते हो वो कौन था ? वो हमारे सनकी सुलतान थे। ऐसी रात एक नहीं, तीन-चार रातें देखीं। मैंने तुमसे यह बात नहीं कही कि शायद कहीं तुम मेरा मज़ाक न उड़ाओ !

अज़ीज़ : बस ! इतने से डर गये...बुज़दिल ? वो मक़सद भूल गये, जिसकी तलाश में हम यहाँ आए थे ?

आज़म : उसकी फ़िक्र मत करो। यहाँ इनाम-तोहफ़े के नाम पर जो कुछ हीरे-मोती मिले हैं सबकी गठरी बना के रखा है।

अज़ीज़ : अहमक़ ! किसी ने उस गठरी को देख लिया हो तो ?

आज़म : रक़म छुपाने के तरीक़े अगर मैं नहीं जानता तो पेशेवर चोर कैसे तसलीम किया जाता ? मैंने वो सब ठीक कर लिया है।

अज़ीज़ : तुम चले जाओगे तो मेरा क्या होगा आज़म ? अगर सुलतान दरियाफ़्त कर बैठें कि आपके मुरीद आज़म कहाँ चले गये तो क्या जवाब दूँगा ?

आज़म : तभी तो कहता हूँ कि तुम भी मेरे साथ चलो, अज़ीज़। दो घोड़े मँगवा लिए हैं। तुम समझदार हो। तुम मौत से खौफ़ नहीं खाते लेकिन मैं सचमुच अहमक़ हूँ। मेरा दिमाग़ बिलकुल खाली है, खोखला है फिर भी मैं तुम्हें अपना अज़ीज़ मानता हूँ।

अज़ीज़ : बे-वफ़ा, दग़ा-बाज़, चले जाओ...जाओ !

आज़म : **(आजिज़ी के साथ)** मैं क्या करूँ अज़ीज ? तुम भी मेरे साथ चलो ! अब इस दौलत से बाज आओ। हम क्यों वज़ीर-सुलतान के बखेड़ों में पड़े ? चलो, मेरे साथ, घोड़े आने ही वाले हैं।

अज़ीज़ चुप है।

: आओ, अज़ीज़, मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ।

अज़ीज़ अब भी चुप है। आज़म भरी आवाज़ में।

: तो मैं चला, अज़ीज ! अल्लाह तुम्हें सलामत रखे।

चला जाता है।

अज़ीज़ : **(दाँत भींचकर)** अहमक़ ! बेवकूफ़ ! बुज़दिल !

दृश्य : १३

महल। पिछले दृश्य के आधे घंटे के बाद।

मुहम्मद : बरनी, मैं पूछ सकता हूँ, क्यों ?

बरनी : अर्ज़ किया न हुज़ूर, बरन शहर से ख़त मिला है। मेरी अम्मीजान का इंतक़ाल हो गया। उनकी ज़िंदगी के आख़िरी लम्हों में मैं उनके क़रीब नहीं रह सका। कम-से-कम मातम में तो शरीक हो सकूँगा।

मुहम्मद : **(हमदर्दी से)** यकायक ऐसा क्यों हुआ, बरनी ?

बरनी : मैं नहीं जानता हुज़ूर। मुझे जो ख़त मिला उसमें सिर्फ़ उनके इंतक़ाल की ख़बर थी।

मुहम्मद : अब चले जाओगे तो फिर मेरे दरबार में लौटने का इरादा है ?

बरनी : **(मजबूर होकर)** मैं नहीं जानता हुज़ूर !

मुहम्मद : अगर सिर्फ़ माँ की मातमदारी में शरीक होना है तो फिर वापस आने में क्या एतराज़ है ?

बरनी : मैं नहीं जानता हुज़ूर !

मुहम्मद : **(झुंझलाकर)** मैं जानता हूँ, बरनी, तुम्हारी माँ की मौत का बायस, तुम्हारे इतना ही मैं भी जानता हूँ। दौलताबाद के दंगा-फसाद की ख़बर पाकर बरन शहर में भी हंगामे हुए थे। इसकी मुझे ख़बर है, और मुझे यह भी ख़बर मिल चुकी है कि मेरे सिपाही यहाँ की तरह वहाँ भी औरतों-बच्चों की तमीज़ किए बिना सबको बे-रहमी से

मौत के घाट उतारते गये । बरनी, मुमकिन है कि ये सब मेरी ही ग़लतियों का नतीजा हो। इस पर तुम चाहे जितनी मेरी मलामत करो, मैं बर्दाश्त कर लूँगा । लेकिन, लेकिन क्या मेरी सूरते-हाल इस क़दर बद-तरीन हो गई है कि तुम्हें भी मुझसे झूठ बोलना पड़े !

बरनी : (**आँसू भरकर**) मैं पाँव पड़ता हूँ, हुज़ूर, मैं कुछ नहीं जानता, मुझसे कुछ न पूछिए ।

एक सिपाही भागा हुआ आता है ।

सिपाही : सुलतान सलामत रहें । ग़ज़ब हो गया हुज़ूर ! इजाज़त हो तो आज के हौल-नाक वाक़ये को बयान करूँ ।

मुहम्मद : बताओ, क्या है ?

सिपाही : ख़ुदावंद, मोहतरम गियासुद्दीन के हम-क़दम आज़मजहाँ का क़त्ल हो गया ।

बरनी : क़त्ल ! आज़मजहाँ का क़त्ल हो गया ?

मुहम्मद : (**बग़ैर बेसब्री के**) क्या हुआ ?

सिपाही : मैं हुज़ूरे-वाला का ख़ुफ़िया पहरेदार हूँ मालिक । शाही महल का जो ख़ुफिया रास्ता है, उसके दरवाजों पर मैं तैनात हूँ । पहले भी दो-एक बार आज़मजहाँ को वहाँ से आते-जाते देखा । लेकिन मुअज़्ज़म की ताज़ीम के ख़्याल से चुप रहा । आज, अभी आधी घड़ी पहले भी आज़मजहाँ उसी रास्ते से बाहर आए । मैं बदस्तूर अपनी जगह बैठा रहा । मोहतिरम ने कुछ आवाज़ लगाई जिसे सुनकर दो बदमाश चार घोड़े लेकर उनके क़रीब आए और आज़म-जहाँ ने भीतर से एक भारी गठरी लाकर घोड़े की पीठ पर रखी । तब मुझे शुबहा हुआ । मैं बलंद आवाज़ में कुछ पूछना चाहता था कि उनमें से एक ने आज़मजहाँ पर तलवार से वार कर दिया । जब तक मैं अपने हम-पुश्तों को लेकर मौक़े पर पहुँचा तब तक बदमाश उस भारी गठरी के साथ घोड़ों पर सवार होकर फ़रार हो गए थे । कुछ सिपाही उन बदमाशों की तलाश में रवाना हो चुके हैं । बाक़ी सिपाही आज़मजहाँ की लाश को महल के अंदर ला रहे हैं । इसी वाक़ये की ख़बर देने की ख़ातिर मैं सुलतान के हुज़ूर में भाग आया । मेरी जो भी ग़लती हुई है, मुझे माफ़ कर दें हुज़ूर ।

मुहम्मद : मरने से पहले आज़मजहाँ ने कुछ कहा था ?

सिपाही : नहीं हुज़ूर। हमारे पहुँचने तक उनमें थोड़ी-सी जान रह गई थी। उनको देखने से लगा कि गोया अपने आप पर हँस रहे हों। अब मैं सही तौर से बता नहीं सकता कि वो हँसते थे या कराहते थे ख़ुदावंद। ये मेरी ग़लती थी कि मैंने पहले से उन्हें रोका नहीं था।

मुहम्मद : उसका ख़्याल मत करो मगर एक बात याद रखो। आज के वाक़ये की ख़बर शाही महल में किसी तक न पहुँचे। ख़बरदार!

सिपाही : जो हुक्म।

मुहम्मद : तुम जाओ। जाते-जाते दरबान से कह दो कि वो मुअज़्ज़म ग़ियासुद्दीन को फ़ौरन यहाँ पेश करे।

सिपाही : अभी हुक्म बजा लाता हूँ हुज़ूर।

मुहम्मद : लेकिन ख़बरदार, उनको भी इस वाक़ये का सुराग़ न मिले।

सिपाही : जो हुक्म।

सिपाही चला जाता है।

बरनी : यह क्या नया हादसा पेश हुआ, हुज़ूर। मैं तो कुछ भी नहीं समझ पाया।

मुहम्मद : **(झुंझलाकर)** अगर नहीं समझते तो यहाँ से रवाना होने की बे-क़रारी को थोड़ी देर के लिए ज़ब्त कर लो, और यहाँ होने वाली हर बात को ग़ौर से अपनी आँखों देखो। तुम्हारे जैसे वाक़या-नवीस को ऐसे मौक़े बार-बार नहीं मिलते।

बरनी : ख़ुदावंद, मैं ग़रीब हूँ, ना-समझ हूँ, आप जैसा चाहें मेरा मज़ाक़ करें, आपको पूरा हक़ है। लेकिन मैं अर्ज़ करता हूँ हुज़ूर, कि मैं जो यहाँ से जा रहा हूँ, उसका ग़लत मतलब न लगाएँ। मैंने आपके दरबार में सात साल गुज़ारे हैं। कौन ऐसा बदनसीब वाक़या-नवीस होगा जो यहाँ बिताये गये सात साल के अरसे के लिए अपनी ज़िंदगी निछावर न कर देगा! इसके लिए मैं ता-ज़िंदगी आपका एहसान-मंद रहूँगा, हुज़ूर।

मुहम्मद : विदाई के मौक़े पर भी क्या तक़रीर की ज़रूरत होती है, बरनी? तुम्हें यहाँ से जाना है, जाओ। मेरे दरबार को

छोड़कर जाने वालों में तुम कोई पहले आदमी नहीं हो। बहुत लोग चले गये, कोइ सीधे रास्ते से, कोई उल्टे रास्ते से, अब तुम भी आराम से अपने रास्ते चले जाओ! मतलब-बेमतलब की बेकार हुज्जत में क्यों पड़ें !

तकलीफ़-देह सन्नाटा।

बरनी : आप मुअज़्ज़म ग़ियासुद्दीन से बाद में मुलाक़ात नहीं कर सकते हैं हुज़ूर ? आज जुमा है, थोड़ी ही देर के बाद आज उमूमी इबादत शुरू की जाएगी। (**एकाएक**) लेकिन आज़मजहाँ की मौत का जो काला साया पड़ा है, उसका क्या होगा ? इबादत को बन्द नहीं करेगें ?

मुहम्मद : (**व्यंग्य से**) नहीं, नहीं, ये पाँच बरसों की ख़ामोशी के बाद आने वाली पहली उमूमी इबादत है। हज़रत ग़ियासुद्दीन जैसी पाकीज़ा हस्ती ने दौलताबाद में अपने क़दमे-मुबारिक रखे हैं ! उस पाक लम्हे की खुशी में आज यह इबादत शुरू हो रही है। इसे अब आजमजहाँ की मौत की वजह से क्यों मुलतवी करें, बरनी ? नहीं, बरनी नहीं। (**ठहाके के साथ**) इस वक़्त यहाँ नजीब को होना चाहिए था। वो इस मज़ाहिया खेल का तह तक मज़ा लेता !

अज़ीज़ सिपाहियों के साथ आता है। मुहम्मद और बरनी झुक कर बंदगी करते हैं। सिपाही चले जाते हैं।

अज़ीज़ : (**दुआएँ देते हुए**) अल्लाह सुलतान को सलामत रखे !

मुहम्मद : मोहतरिम, ख़ैरियत से तो हैं ?

अज़ीज : आपकी सख़ावत और फ़ैयाज़ी के रहते किस बात की तकलीफ़ होती, हुज़ूर !

मुहम्मद : शहर में जो दंगे-फसाद हुए, उससे शायद हज़रत को बड़ी तकलीफ़ हुई होगी। इस हंगामे के बीच मैं आपकी ख़िदमत में हाज़िर न हो सका। मोहतरिम मुझे माफ़ करें।

अज़ीज़ : हमें इस बात का बड़ा अफ़सोस है कि हमारे आने के बाद ही ये हंगामे शुरू हुए हैं। जो हमारी बंदगी करने आए थे, वे ही लोग आपके खिलाफ़ खड़े हो गये, दंगा करने पर उतारू हो गये। कहना ही होगा कि दीनो-ईमान का इक़बाल मद्धम पड़ता जा रहा है। ये दुनिया की बद-नसीबी है। हमारी बद-नसीबी है।

मुहम्मद : आपको एक ऐसी दहशत-नाक ख़बर दे रहा हूँ कि शायद सुनकर गहरा सदमा पहुँचे। अभी एक पहरेदार से ख़बर मिली कि आज़मजहाँ की लाश शाही महल के बाहर पड़ी मिली है। उसने बताया कि मोहतरिम का किसी ने खून कर दिया।

अज़ीज़ : या ख़ुदा ! अहले-जहाँ पर ये क्या बीत रहा है ! आज़म जहाँ जैसे बेक़सूर शख्स का खून करने से उन्हें क्या मिला ?

मुहम्मद : **(सहसा)** कौन हो तुम ?

लम्हे भर कोई नहीं बोलता। अजीज की आँखों में दहशत छा जाती है।

: कौन हो तुम, बदमाश इस नक़ली भेस में और कब तक शाही महल में रहने का इरादा है ?

बरनी : ये आप क्या फ़रमा रहें हैं हुज़ूर !

मुहम्मद : **(चीखकर)** बताओ, मेरी कुव्वते-बरदाश्त को आज़माने की नादानी मत करो।

अज़ीज़ : **(घबराए बिना)** मैं एक धोबी हूं हुज़ूर। मेरा पहला नाम अज़ीज़ है। उसके बाद बीसों नाम मिले।

बरनी : **(जैसे होश-हवाश क़ायम नहीं रख रहा है)** तो हज़रत ग़ियासुद्दीन साहब कहाँ हैं ?

मुहम्मद : ग़ियासुद्दीन जैसे नेक-कर्दार, पाक-दिल के क़ातिल को कौन-सी सज़ा मिलेगी, जानते हो ? तुम्हें पता भी है कि हमें और हमारी रिआया को धोखा देने वाले दग़ा-बाज़ को कौन-सी सज़ा मिलेगी !

अज़ीज़ : मैं नहीं जानता हूँ हुज़ूर। फिर सुलतान की कुव्वते-तसव्वुर को मैं किसी भी हालत में कमतर नहीं समझता। लेकिन ख़ुदावंद आप मुझे सज़ा देंगे तो आपको अपने ही साथ बे-इन्साफ़ी करनी पड़ेगी।

बरनी : **(चिढ़कर)** बदकार के मुँह से इन्साफ़ की बात !

अज़ीज़ : पाकदिल, यह लफ्ज़ सिर्फ़ शेख़ इमामुद्दीन को ज़ेब देती है हुज़ूर। ग़ियासुद्दीन को अगर आप देख लेते तो शायद ही आप उनको नेक-कर्दार या पाक-दिल तसलीम करते। मैं धोबी ख़ानदान का नुमाइंदा हूँ। और वो खलीफ़ा ख़ानदान के नुमाइंदा थे। बात सही है। लेकिन **(धीमे से)** ये बात खुद सुलतान भी समझते हैं कि बड़प्पन और

ख़ानदान का कोई बाहमी वास्ता नहीं होता।

बरनी : गुस्ताख़ ! तू सुलतान की तौहीन करता है ?

मुहम्मद : तुझे भी बड़प्पन का दावा है ? किस बूते पर तू यह दावा कर रहा है ?

अज़ीज़ : हुज़ूर, मेरी साफ़-गोई को माफ़ करें। जब से आप तख़्त-नशीन हुए हैं, मैंने आपके हर काम पर ग़ौर किया है। आपकी हर बात तहे-दिल से सुनी है। निज़ामे-सलतनत की हर कारगुज़ारी को समझने की मैंने कोशिश की है, आपका असल मोतक़िद बनने की जद्दो-जहद की है।

मुहम्मद : क्या अब खुशामद पर उतर आए ?

अज़ीज़ : अगर मैं आपका मोतक़िद कहलाऊँ तो दाद मुझे मिलनी चाहिए हुज़ूर, आपको नहीं। जबसे आप तख़्त-नशीन हुए, तब से मैं देख रहा हूँ कि आप हर मौके पर अपने ख़्यालों और मक़सद को समझाने की कोशिश करते रहे है। लेकिन कितने लोगों ने आपकी बातों पर ग़ौर किया है ? जब से मैंने होश सम्भाला...।

मुहम्मद : **(बेज़ार होकर)** उफ़्फ़ोह, अब क्या हमें तेरी ख़ुद-बयानी सुननी होगी ?

अज़ीज़ : हाँ, हुज़ूर, हक़ की ख़ातिर सुननी होगी।

बरनी : ख़ुदावंद, एक बार मेरी आख़िरी दरख़्वास्त सुन लीजिए ! ये बड़ा ख़तरनाक़ शख़्स है। ये आपके चारों ओर अपनी ऐयारी का जाल बिछा रहा है। इससे बातें करने से क्या हासिल होगा हुज़ूर ! इसे सज़ा का हुक्म दीजिए, सज़ाए-मौत...।

अज़ीज़ : जनाब बरनी, सुलतान मुझे सज़ाए-मौत नहीं दे सकते। आप शायद नहीं जानते कि मुझे सज़ाए-मौत देने पर सुलतान की सूरते-हाल क्या होगी !

मुहम्मद : **(भौंहें चढ़ाकर)** मेरी सूरते-हाल !

अज़ीज़ : साफ़गोई के लिए फिर माफ़ी माँगता हूँ हुज़ूर। आपने मुझे खलीफ़ा ख़ानदान का नुमाइंदा तसलीम किया है। अवाम के सामने मेरा इस्तक़बाल किया है। फिर मेरे नाम पर पाँच बरस से बंद इबादत को दुबारा शुरू करने वाले हैं। सबके सामने आप मेरे पाँव पकड़ चुके हैं। अब अगर लोगों को ये मालूम हो जाए कि मैं हज़रत ग़ियासुद्दीन

नहीं हूँ, महज़ खेड़े का एक धोबी हूँ तो लोग मज़ाक़ नहीं उड़ाएँगे !

बरनी : कमीना...।

अज़ीज़ : और अब आज़मजहाँ के क़त्ल के बाद सुलतान मेरा क़त्ल पोशीदा तौर पर भी नहीं करवा सकते। एकाएक दोनों मुअज़्ज़म मेहमान शाहीमहल से ग़ायब हो जाएँ, तो क्या लोगों को शको-शुबहा नहीं होगा, आप ही बताइए। **(मुहम्मद की तरफ़ मुखातिब होते हुए)** लेकिन मैं उस बूते पर यहाँ नहीं खड़ा हूँ हुज़ूर। आपने हमेशा हिम्मत और ज़िंदा-दिली की क़द्र की है। मुझे यक़ीन है कि आप मेरी ज़िंदा-दिली की तारीफ़ चाहे न करें, मगर उसे हक़ीर नहीं समझेंगे।

मुहम्मद : **(लम्हे-भर चुप रहकर)** तुम्हें कहना क्या है ?

अज़ीज़ : अपनी कहानी। मैं एक ग़रीब धोबी के ख़ानदान में पैदा हुआ था। बड़ी बदहाली में मेरे दिन कट रहे थे। उसी वक़्त आप तख़्त-नशीन हुए, हिन्दू-मुसलमानों की बराबरी का ऐलान किया। उन्हीं दिनों मुझे ख़बर मिली कि आपके कुछ कारिंदों ने एक बरहमन की ज़मीन-जायदाद ज़ब्त कर ली है। मैंने उस बरहमन से ज़मीन की मिल्कियत ख़रीद ली। खुद बिरहमन बना और आपके खिलाफ़ अदालत में फ़रियाद की। आप हक़-पसंद हैं ही। आपने वो ज़मीन-जायदाद वापस करा दी, जुरमाने के तौर पर रक़म भी दिलायी और अपने ही दरबार में आपकी ख़िदमत करने का मुझे मौक़ा भी अता किया।

बरनी : ये ठगी की कहानी तब से शुरू हुई है !

मुहम्मद : लेकिन उसके लिए तुम्हें बिरहमन का भेस ही भरना था ?

अज़ीज़ : हाँ, हुज़ूर।

अज़ीज़ इस ख़्याल से कि शायद सुलतान कुछ आगे भी पूछ ले, थोड़ी देर चुप रहता है। फिर अपनी बातें जारी रखता है।

अज़ीज़ : मैं और आज़म, आपकी ख़िदमत करते हुए दौलताबाद पहुँचे। वहाँ आपने तांबे के सिक्के जारी किए। फ़ौरन आपकी मुलाज़िमत छोड़ दी, और जाली सिक्के बनाने में जुट गये।

बरनी : लाहौल !

अज़ीज़ : उस धंधे में हमने ख़ूब रक़म कमायी। तांबे के सिक्के बनाते-बनाते हाथ बेहिस हो गए। तब हम दो-आब रवाना हुए। वहाँ हमने ज़मीन खरीद ली, खेती करने के वास्ते।

बरनी : सूखे में खेती !

मुहम्मद : तुम इसकी दलील नहीं समझे बरनी। क़हत और सूखे की वजह से इन लोगों को गोया मुफ़्त में ज़मीन मिली होगी। इसके अलावा मैंने ऐलान करवाया था कि जो कोई दो-आब की सूखी ज़मीन में भी खेती करने की कोशिश करेगा, उसकी माली मदद की जाएगी। इन बदकारों ने मेरे उस ऐलान का भी मनमाना फ़ायदा उठाया। लेकिन खेती-बाड़ी नहीं की। जो माली मदद मिली, उसे भी बटोर ले गये। उसी रात को शायद हमारे कारिंदों को इनकी बद-नीयती का सुराग़ मिल गया होगा। इसलिए कारिंदों के हाथों से बचने के लिए फिर भेस बदलकर भाग आए होंगे। और नया धंधा, डाकू-लुटेरों का, चालू किया होगा। **(अज़ीज़ से)** यही है न तुम्हारी ज़िंदा-दिली की तफ़सील !

अज़ीज़ : आपकी रोशन-दिमाग़ी की शोहरत हर जगह फैली है हुज़ूर। उससे इनकार करने की जुर्अत मैं कैसे कर सकता हूँ ? आपने जो कुछ फ़रमाया वो सही है लेकिन आपने एक ख़ास मंजिल छोड़ दी। हमने दो-आब से भागने की कोशिश की थी, मगर आपके हाकिमों के चंगुल से निकल भागना आसान नहीं था। एक बार अगर किसी के पीछे पड़ जाएँ तो बस शिकारियों का जुनून उन पर चढ़ जाता है। अगर कहीं पकड़े जाते तो फिर जान की ख़ैर नहीं थी। अब एक ही रास्ता था, आपकी फ़ौज में भरती होना। फ़ौज की छावनी दो-आब में ही थी। हमें वहाँ फौरन मुलाज़िमत मिल गई। हम दोनों का काम था, उन लोगों की लाशों में घास भरना जो आपके खिलाफ़ बग़ावत करने की वजह से मौत के घाट उतार दिए गये थे। हम लोग घास-फूस भरने के बाद उनको शाही महल के बाहर लटका देते थे। इस तरह कई महीनों तक अपनी रोज़ी

चलाते रहे। वे दिन भी कैसे कमाल के थे ! हर रोज़ किसी-न-किसी सरदार या अमीर की लाश हमारे हाथ से गुज़रती थी। उन्हीं दिनों वहाँ रहते मुझे एक नई बात का इल्म हुआ कि इन्सान की ज़िंदगी की कोई क़द्र नहीं, मौत से डरना सबसे बड़ी ना-समझी है। ज्यों ही इस सच्चाई का इल्म हुआ मेरे दिल को बहुत सुकून मिला। उसी दिन फ़ौज से विदा लेकर डाकू बन गया।

मुहम्मद : (**व्यंग्य से**) सचमुच ही ख़ास मंजिल थी। अब अगली मंज़िल में क्या हुआ ?

अजीज़ : आपकी मेहरबानी थी कि खौफ़ मुझसे दूर भाग गया। अब मैं डाकुओं का शहनशाह था। दूसरे डाकू मेरे नाम से काँपते थे। और वाक़ई मैंने चोर-डाकुओं की अलग सलतनत क़ायम की। इसी अरसे में मुझे कहीं से ख़बर मिली कि कोई दरवेश मुसाफ़िर हमारी सलतनत में आया हुआ है जो अपने को ख़लीफ़ा का नुमाइंदा और सुलतान का मेहमान बताता है। लेकिन उसकी जेब में एक कौड़ी भी नहीं थी। मैंने इसे अपने लिए सुनहरा मौक़ा माना। ग़ियासुद्दीन का क़त्ल किया और आपका दीदार करने सीधे आपकी ख़िदमत में हाज़िर हुआ। यह हक़ीक़त है कि मैंने ग़ियासुद्दीन का क़त्ल किया और आपको **धोखा** दिया। फिर भी मैं ख़ुद को आपका मोतक़िद मानता हूँ हुज़ूर ! इन पाँच बरसों में जो भी काम मैंने हाथ में लिया, शुरू करने से पहले ज़रूर आपको याद किया। ख़ुदावंद, आपके पास अक़्ले-सलीम है। आप ही बता दें, आपकी सलतनत में और कौन ऐसा शख़्स होगा जिसने मुसलसल पाँच बरसों तक इस क़दर वफ़ादारी बरती हो कि वो अपने हर काम का आपके काम से मुक़ाबला करता रहा हो !

बरनी : (**गुस्से में आकर**) हुज़ूर, हुज़ूर ये ज़हरीला साँप है ! फ़ौरन इसे जल्लादों के हवाले कर दीजिए।

अज़ीज़ : बरनी साहब, बिला-शक आप मुझे क़ुसूरवार मान लें। लेकिन इस सूरत में आप ये नहीं भूलिएगा कि मेरे ही बराबर सुलतान भी कुसूरवार हैं।

मुहम्मद : (**एकदम फूटकर**) बन्द करो अपनी बद-ज़बानी को !

इतनी जुर्अत कि हमारे ही मुँह पर बे-लगाम हो जाओ। बेवक़ूफ़, अपनी हद में रहो। मेरा मोतक़िद कहलाने का दावा करते हो, मगर तुमने मेरे एतिक़ाद की सख़्ती को कभी आज़माया भी है? लोगों के डर से क़दम पीछे हटाते कभी मुझे देखा है? अब लोगों के मज़ाक़ से मैं डर जाऊँगा? एक ज़लील कमीने की इतनी मजाल कि मुझ पर अपनी होशियारी का जाल फैला दे? सूली से दो गज़ नीचे जब तेरी ज़बान लटकने लगेगी तब तेरी ख़बासत की ख़बर लूँगा। मैंने अपने वालिद की परवाह कहीं की। दीनो-ईमान का ख़्याल नहीं किया। सैयद-इमामों को दर-किनार कर दिया, यहाँ तक कि अपनी रिआया पर भी मैंने रहम नहीं किया तो अब तेरी हक़ीर हरकतों से घबरा जाऊँगा? आख़िर खलीफ़ा का भेस भरने वाले एक नाचीज़ धोबी की औक़ात ही क्या है?

अज़ीज़ : (**धीमे से**) मैंने अपना पेशा ख़ूब निभाया है हुज़ूर। गंदगी धोने का काम मैंने इस लम्हे तक जारी रखा है। इस लिहाज़ से किसी ख़लीफ़ा से मेरी हैसियत कम नहीं है।

मुहम्मद एकाएक हँस पड़ता है।

मुहम्मद : मरहबा! (**हँसकर, बरनी से**) इस गुस्ताख़ की जुर्अत मुझे बहुत पसंद आयी। बरनी, ऐसे बेबाक शख़्स को हमने कभी नहीं देखा था। अज़ीज़, अब तुम ही बताओ, तुम्हें क्या सज़ा दी जाए?

अज़ीज़ : अपने किसी सूबे का सूबेदार बना दें, हुज़ूर।

मुहम्मद : सूबेदार! सज़ा तुझे मिल रही है अहमक़, हमें नहीं।

अज़ीज़ : ख़ादिम को ग़लत न समझें हुज़ूर। अब तक बग़ैर किसी मक़सद और रहनुमाई के मनमाना मैं करता रहा। बिना सोचे-समझे हस्बे-मौक़ा काम को अंजाम देता रहा। और मुझे अपनी इन कारगुज़ारियों पर फ़ख़ भी नहीं है हुज़ूर। अब हुज़ूर, मैं अर्ज़ करता हूँ कि आप मुझे मौक़ा दें ताकि मैं आपके साथ वफ़ादारी बरतूँ। आपके वास्ते मैं अपनी ज़िंदगी वक़्फ़ करने को तैयार हूँ।

मुहम्मद : शाबाश! शाबाश! न मालूम मैं भी अहमक़ाना हरकतें क्यों करने लगा। नहीं, शायद तेरे लिए सूबेदारी ही माकूल सजा है। आज़मजहाँ को दफ़्न करने के बाद तू

अरबिस्तान वापस जा। फिर आधे रास्ते में ग़ायब हो जाना। मंजूर है ?

अज़ीज़ : ग़ायब होने के फ़न में मैं खासा माहिर हूँ हुज़ूर।

मुहम्मद : दक्खिन के लिए हमें कुछ सरदारों की ज़रूरत है। हम तुझे सरदार का ओहदा अता करते हैं। तुम बिलकुल पोशीदा तौर पर दक्खिन जाओ। वहाँ के सिपहसालार खुशकामलिक को अलग से हम ख़त भिजवा देंगे। वो तुम्हारा इस्तक़बाल करेगा। तुम वहाँ के सरदार बना दिये जाओगे।

अज़ीज़ : हुज़ूर, ख़ादिम क्या अर्ज़ करे ! आपकी फ़ैयाज़ी का शुकरिया मैं कैसे अदा करूँ ! क़ुरान-शरीफ़ की क़सम खाकर क़हता हूँ...।

मुहम्मद : बस, बस, अब बेकार स्वाँग मत भरो। तुम्हारे लिए हुक्मनामा अलग से भिजवा देते हैं। अब तुम यहाँ से जाओ। इबादत का वक़्त हो रहा है। अभी तुम मुअज़्ज़म ग़ियासुद्दीन हो, ख़बरदार।

अज़ीज़ : जानता हूँ मालिक। और आपकी इजाज़त हो तो आपके हक़ में सैयद-इमामों के ख़िलाफ़ एक ज़ोरदार बयान दूँ।

मुहम्मद : (**बैचेनी के साथ**) नहीं, तुम उसके क़ाबिल नहीं हो। अब जाओ यहाँ से।

अज़ीज़ : (**झुककर बंदगी करता हुआ**) आपने मुझ पर जो एतिबार किया, जो रहम किया उसके लिए ता-ज़िंदगी एहसानमंद रहूँगा हुज़ूर।

चला जाता है। वहाँ थोड़ी देर सन्नाटा छा जाता है। मुहम्मद आहिस्ते से तख़्त की तरफ़ जाता है। अब उसकी चाल में एकाएक थकावट नजर आती है। लगता है उसके हवास अब कम-ज़ोर हो चले हैं।

बरनी : ख़ुदावंद, आपने उस बदमाश का इस हद तक एतिबार किया कि उसे इनामो-इकराम बख़्शा। आख़िर ऐसी कौन-सी ख़ुसूसियत आपको उसमें नज़र आई हुज़ूर ?

मुहम्मद : आज उस बदमाश ने मुझे एक नई बीनाई दी, बरनी। उसने ऐसी सचाई से मुझे रूशनास किया जिसका एहसास मुझे पहले कभी नहीं हुआ था। उसी बदमाश से मुझे यह

सबक़ मिला कि हमारे कट्टर दुश्मन वो हैं जो हमें और हमारे ख़्यालों को समझने का दावा करते हैं।

बरनी : मैं ख़ुदा की क़सम खाकर कहूँगा कि वो बदमाश कभी आपके साथ वफ़ादारी नहीं करेगा। मैं यक़ीनी तौर से कहता हूँ कि दक्खिन में सरदार होने के दो महीने के अंदर ही आपके ख़िलाफ़ बग़ावत खड़ी कर देगा और वो कामयाब हो गया तो अपने सूबे को दोज़ख़ बना देगा। आप क्यों नहीं समझते हुज़ूर ?

मुहम्मद : जब मैंने आईन-उल्-मुल्क को माफ़ किया था, उस वक़्त भी सब लोगों ने मेरी नुक्ताचीनी की थी, अकेले तुमने मेरी हिमायत की थी। लेकिन आज तुम मेरी फ़ैयाज़ी की इस तरह मुख़ालिफ़त क्यों करने लगे ?

बरनी : उल्-मुल्क से इस बदमाश धोबी का क्या मुक़ाबला है हुज़ूर ? ये तो उल्-मुल्क की दोस्ती की तौहीन है।

मुहम्मद : पिछले हफ़्ते उल्-मुल्क का एक ख़त आया था।

बरनी : क्या लिखा था हुज़ूर ?

मुहम्मद : दौलताबाद के बाशिंदों की बद-हाली की ख़बर सुनकर उसने यहाँ की रिआया को अपने सूबे में आने की दावत दी है। उसने लिखा है कि हमारे लिए एक नया शहर आबाद किया गया है। रसद-कपड़े का ख़ासा इंतज़ाम है। उल्-मुल्क ने दरख़्वास्त की है कि हम अपनी रिआया के साथ अवध चले जाएँ और उसकी मेज़बानी को क़बूल करें।

बरनी : इससे तो उल्-मुल्क की नेक-नीयती और दरिया-दिली ही ज़ाहिर होती है हुज़ूर।

मुहम्मद : तो तुम समझते हो कि ये उल्-मुल्क की दरिया-दिली की निशानी है ? लेकिन तुम नहीं जानते बरनी, जबसे शेख़ इमामुद्दीन की मौत हुई है, तभी से अवध की रिआया उल्-मुल्क की बहुत मलामत करती रही है। रिआया पर अब उल-मुल्क की वैसी पकड़ नहीं रही। हमें ख़बर मिली है कि उल्-मुल्क के ख़िलाफ़ साज़िशें हो रही हैं। इसलिए वो हमारी फ़ौज की कुमुक चाहता है। हमारी दोस्ती चाहता है ताकि उसके वुजूद को हमारी हिमायत मिल जाए। क्या यह दावत-नामा उल्-मुल्क की इसी सूरते-हाल

का नतीजा नहीं ?

बरनी : यानी...आप अवध नहीं जाएँगे ?

मुहम्मद : हाँ, बरनी। मै वापस दिल्ली जाना चाहता हूँ। अपनी रिआया के साथ। दारुल-सलतनत जब दिल्ली जाएगा, तो रिआया कैसे पीछे रहेगी ?

बरनी : (**ग़मगीन आवाज़ में**) हुज़ूर, आख़िर अपने आपको यों क्यों सताते हैं ? साथ अपनी रिआया को भी क्यों परेशान करते हैं ? आपकी रिआया आपके लिए परेशान हो, तकलीफ़ें उठाए, मौत का सामना करे। और वो कमीना धोबी आपसे इनाम हासिल करे...ये कहाँ का इंसाफ़ है ? हुज़ूर, अगर किसी को मौत के घाट उतारना है, तो उसका पहला हक़दार ये धोबी है। उसकी गुस्ताख़ी और बदतमीज़ी के लिए जो भी सख़्त सज़ा दी जाए वो थोड़ी हैं। उसकी आँखों में गरम सलाखें रख दी जायें। उसे बोरे में डालकर दौड़ते घोड़े के पैरों में बाँध दिया जाए। उसे खौलते तेल में डुबो दिया जाए, या उसके जिस्म के टुकड़े...टुकड़े...।

मुहम्मद : बरनी। शाबाश तुमने तो उस धोबी को मात दे दी। शायद उसने भी इस तरह की संगीन सज़ाओं का ख़्याल नहीं किया होगा।

बरनी एकाएक जैसे चाबुक की मार खाकर तिलमिला जाता है।

: अगर सचाई इतनी सहल होती तो ज़िंदगी बहुत आराम-देह साबित होती बरनी। जब से तख़्त-नशीन हुआ, तब से मैं ऐसे लफ़्ज़ों के मानों की तलाश करता रहा हूँ। ज़िंदगी के मानों की तलाश में मैंने अपने को बहुत थका लिया है। बरनी, अब सारे माने ऐसे बेमानी हो गए है कि धोबी और उल्-मुल्क में कोई कुछ भी करे, उससे मेरा क्या वास्ता ! जो चाहे मेरी दरिया-दिली, मेरी सख़ावत, मेरी ज़िंदा-दिली, सब कुछ लूट के ले भागे...फिर भी मैं रहूँगा, बरनी, मेरे साथ मेरा अपना 'मैं' रहेगा और मेरी सनक रहेगी। मगर याद रखना, अपनी सनक में मैं अकेला नहीं हूँ। मेरे साथ और भी एक मौजूद है। वो ख़ुदावंद अल्लाह-ताला !

फिर थकी आवाज में।

: मेरे बारे में फ़ैसला करते वक़्त अल्लाह को न भूलना।

बरनी : (**काँपती हुई आवाज में**) हुज़ूर, मैं फ़ैसला आपके बारे में नहीं, खुद अपने बारे में देना चाहता हूँ। इसी वास्ते मैं यहाँ से विदा लेना चाहता हूँ और अभी जाना चाहता हूँ, वरना न जाने मैं कहाँ खो जाऊँ। अभी-अभी जो मैंने इस धोबी के लिए सज़ाएँ सुनाईं उन्हें याद करता हूँ तो मेरा खून सूख जाता है। दिमाग़ चकरा जाता है। मैं कमज़ोर हूँ, बे-मक़दूर हूँ, हुज़ूर। अगर एक लम्हा भी और यहाँ रह गया, तो शायद तशद्दुद की बबा मुझे अपने आगोश में दबोच ले। नहीं हुज़ूर, मुझे अपनी हिफ़ाज़त करनी है। तशद्दुद के साथ चाहे आप छेड़छाड़ कर सकें, लेकिन मैं नहीं कर सकता। अगर मै एक बार फँस गया तो शायद ज़िंदगी-भर न निकल सकूँ। आपने मुझे फिसलते-फिसलते बचा लिया। आपका एहसान-मंद हूँ। मैं रुखसत होता हूँ हुज़ूर! इजाज़त दें।

मुहम्मद आँखे मूँदे चुपचाप तख़्त पर बैठा है।

: हुज़ूर!

मुहम्मद : (**आँखें खोलकर**) क्या बरनी?

बरनी : आपकी तबियत नासाज़ है हुज़ूर।

मुहम्मद : कुछ थकावट महसूस कर रहा हूँ और न जाने एकाएक नींद मुझे कहाँ से घेरने लगी है। पाँच बरस से जो मुझसे भाग रही थी, वो नींद आज एकाएक मुझ पर हावी हो रही है। तुम जा रहे हो बरनी, तो जाओ। (**हँसकर**) लेकिन जाने से पहले हम सबके लिए इबादत करते जाओ।

आँखें बंद कर लेता है। बरनी ख़ामोशी के साथ चला जाता है, लगता है कि वो रो रहा है। मुहम्मद सोया हुआ है। स्टेज पर सन्नाटा हो जाता है। तब एक दरबान आता है।

दरबान : अल्लाह सुलतान को सलामत...।

मुहम्मद को सोया हुआ देखकर पीछे हटता है। फिर चला जाता है। मुहम्मद गहरी नींद में डूबा हुआ-सा, सिर आगे सीने पर झुका लेता है। नींद से ज्यादा थकावट की अलामत नजर

आती है। थोड़ी देर के बाद दरबान आता है, रेशमी शाल मुहम्मद पर डाल देता है और चुप-चाप सीढ़ी से उतरता है। उसी वक्त अज़ान सुनाई पड़ती है।

अज़ान : अल्लाहो अकबर ! अल्लाहो अकबर !
अल्लाहो अकबर ! अल्लाहो अकबर !
अशहदो ला इलाहा इल्लिल्लाह।
अशहदो ला इलाहा इल्लिल्लाह।
अशहदो अन्न मोहम्मदिन रिसूलल्लाह।
अशहदो अन्न मोहम्मदिन रिसूलल्लाह।
हैया इलस्सतात् ! हैया इलस्सतात् !
हैया इलल् फ़लाह ! हैया इलल् फ़लाह !
अल्लाहो अकबर ! अल्लाहो अकबर !
ला इल्लाह इल्लिल्लाह...।

मुअज़्ज़िन की अज़ान सुनते ही दरबान सुलतान को जगाने के लिए आगे बढ़ता है, लेकिन और कुछ सोचकर वहाँ से चला जाता है। मुअज़्ज़िन की अज़ान ख़त्म होती है। स्टेज पर सन्नाटा छाया रहता है। फिर एकाएक मुहम्मद की आँखें खुलती हैं। इधर-उधर देखने लगता है, जैसे उसे कुछ भी मालूम न हो, और उसकी आँखों में सिर्फ़ वहशत और खूँख़्वारी चमकती रहती है।

• • •

एवम् इन्द्रजित्

निर्देशक का वक्तव्य

श्यामानन्द जालान

बादल सरकार के नाटकों के मंचन को देखकर मन में कहीं एक विद्रोह जागता था। लगता था, ये नाटक एक उन्मुक्तता माँगते हैं जो कि इन्हें मिल नहीं पा रही है। और उसी विद्रोह का फल 'एवम् इन्द्रजित्' का मेरा प्रस्तुतीकरण था। मंचन के बन्धनों को तोड़कर हमने इस नाटक की आत्मा को लोगों के सामने रखने की कोशिश की। लोग बैठे रहे, देखते रहे, इससे लगता है कि शायद हम किसी हद तक सफल भी हुए। पहले लगता था कि आम दर्शक शायद इसे झेल न पाएँ। पर देखा कि बहुत-से तथाकथित आम दर्शकों ने भी इसे पसन्द किया, समझा या नहीं—यह तो नहीं मालूम, पर उन्होंने इसे अनुभव किया ऐसा कुछ अवश्य लगा।

मैं भी नाटक को पहले केवल भाँपता हूँ। समझने की कोशिश नहीं करता। जल्दी से पढ़ता हूँ फिर आँखें बन्दकर लेट जाता हूँ। कुछ अटपटे विचार, कई-एक विचित्र-से खाके चेतना में उभरते हैं। और यदि उसके बाद उसे खेलने की बहुत 'इच्छा' होती है तो उसके प्रस्तुतीकरण में जुट जाता हूँ। फिर भी बार-बार नहीं पढ़ता। साथी चुनकर सब एक साथ बैठकर पढ़ते हैं, उसे अनुभव करने की, समझने की भी कोशिश करते हैं। फिर उसे लेकर खेलने लगते हैं। एक दृश्य छोटा-सा किया, कुछ संवाद बोले, एकाध मुद्राएँ परखीं और पढ़ते रहे। एक खेल-सा हो जाता है हमारे लिए। और नाटक जब तक याद होता है, तब तक हमारे दिमाग़ों में उसकी एक हलकी-गहरी आकृति तैयार हो जाती है।

नाटक समझना हम तब शुरू करते हैं जब हम उसका पूरा रिहर्सल करने लगते हैं। तब भी एक मोटे तौर पर ही समझ पाते हैं।

"यह ज़रूरी नहीं है कि आशारहित स्वीकार के पीछे कोई एक पहचानी हुई

भावना हो —मन:स्थिति (emotion) हो—मसलन निराशा या वैराग्य। बीतता हुआ समय और उस समय की परिस्थितियाँ नई मन:स्थितियों का निर्माण करती हैं। चार सौ वर्ष पहले कोई 'प्रेम' शब्द को उस अर्थ में नहीं लेता था जिस अर्थ में आज, या यों कहिए कि आज से चालीस या पचास वर्ष पहले। यौन-भावनारहित प्रेम का उस समय कोई मायना ही नहीं था।''

नाट्यकार बादल सरकार के इन शब्दों ने सहसा 'एवम् इन्द्रजित्' के रहस्य को हमारे सामने खोल दिया।

जीवन की संध्या में पहुँचा
मन मेरा यह भूल न जाए
दीक्षा के उस मूल मंत्र को...
तीर्थ नहीं, है केवल यात्रा
लक्ष्य नहीं, है केवल पथ ही
इसी तीर्थ-पथ पर है चलना
इष्ट यही, गन्तव्य यही है।

ये थीं 'एवम् इन्द्रजित्' की अंतिम पंक्तियाँ। और बादल सरकार के उक्त मनोभाव को अभिव्यक्त करने के लिए इन शब्दों का चुनाव, विशेषकर 'मूल मंत्र' का, तब भी खटका था, आज भी कहीं कष्ट देता है। पर जहाँ उन्होंने यह सब कह-कर हमें दिशा दी, वहीं एक भारी प्रश्न भी सामने खड़ा कर दिया। उस मूल भाव को कैसे व्यक्त किया जाए? अपने अन्दर से कैसे अचीन्ही, बिना नाम की भावना को जगाया जाए? और अनुभव कर लेने से ही तो काम ख़त्म नहीं होता, अनुभव कराना ही तो उद्देश्य था। और यही कारण है कि हम बार-बार फ़िसल जाते थे, अब भी फिसल जाते हैं। कभी मानसी रो पड़ती है, कभी इन्द्रजित्। कभी लेखक में ही गुरुआई जाग उठती है।

फिर सवाल रंगमंच का, दर्शकों का भी तो था। तटस्थ हो जाने से तो काम नहीं चल सकता। आध घंटे बाद जम्हाई लेता हुआ दर्शक इधर-उधर यदि देखने लग जाए तो तटस्थ होकर संवाद या स्थितियाँ कैसे बोली जाएँ? उनमें रंग तो उभारने ही होंगे।

इन्हीं सब समस्याओं के बीच रास्ता ढूँढता हुआ मेरा प्रस्तुतीकरण था। इस अर्थहीन जीवन की अर्थहीनता को भुलाकर और इसे पहचानते हुए भी अपने-आपको धोखा देकर कोई रह कैसे सकता है भला! तो क्या करे वह? मर जाए, आत्महत्या कर ले? जैसा कि इन्द्रजित् सोचने लगा था। या इस आशा में अपने को धोखा दे कि अभी तो सूरज उगेगा। पर सोचने वाले संवेदनशील व्यक्ति के जीवन से आशा तो आज खत्म हो चुकी है। चाँद और सूरज तो कोई पहेली नहीं रहे। न स्वर्ग रहा, न नरक। ज़मीन के अन्दर, पाताल के नीचे तो पाताल है और

उसके नीचे फिर ज़मीन। सर के ऊपर हवा है और फिर शून्य, और फिर ऊपर उठते-उठते घूमकर शायद फिर वही हवा और फिर वही ज़मीन। पत्थर को ढकेलकर पहाड़ की चोटी पर ले जाने की चेष्टा से पहले ही हम जान गये हैं कि पत्थर तो वहाँ टिकेगा नहीं, लुढ़क ही जाएगा। और यदि कहीं टिक ही गया तो भी क्या? क्या लेकर जिए ऐसा व्यक्ति—जो कि आज का आदमी है—अणुबम की अनुपम भेंट?

तो क्या करे वह? मर जाए?

फिर? मरने से भी क्या? यदि न मरने से कुछ है न जीने से, तो जीओ ही क्यों न...? शायद...।

पर नहीं, शायद भी तो नहीं रहा; इसका खोखलापन भी हम जान गए हैं, हमें कोई आस्था नहीं है...।

खोखला शायद ही सही, शायद तो है, स्वप्न तो है।

'एवम् इन्द्रजित्' के मंचन में इसके मूल कथ्य को प्रकाशित करने के लिये जिन विधाओं का व्यवहार हमने किया था, उनमें सबसे प्रमुख थी मंचन की मिश्रित शैली। नाटक के विभिन्न स्थलों में हमने विभिन्न शैलियाँ अपनायी थीं—कहीं यथार्थवादी, कहीं अतिरंजना की। समय, स्थान और चरित्र की इकाइयों में यह नाटक बँधा नही था, न हमने प्रस्तुतीकरण को ही उनमें बाँधा। हर स्थल पर, हर वाक्य और चरित्र में हम मूल कथ्य की अभिव्यक्ति खोजते थे और वह जहाँ, जिस रूप में अधिक प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हो सकती थी, उसी रूप में हमने उसे प्रस्तुत किया। मैंने यह मान लिया था कि यह सारी कहानी 'लेखक' की अपनी कहानी है और इन्द्रजित् ही नाटक के अंत में जाकर 'लेखक' बन जाता है। हमने कथ्य को प्रकाशित-भर ही किया, उस पर टिप्पणी नहीं की। न ही हमने साधारण मनुष्य की साधारणता की खिल्ली ही उड़ाई। सारे नाटक में संवेदनशीलता के वातावरण को बनाये रखने की हमारी चेष्टा रही।

नाटक और चरित्र की गतियाँ भी हमने इन बातों को ध्यान में रख कर निर्धारित की थीं। हमारी चेष्टा थी कि हम शब्दों का सहारा छोड़कर सीधे स्वरों और दृश्यों से दर्शक को छू सकें। इसीलिए हमने वृत्ताकार गतियों का बहुत जगहों पर सहारा लिया।

दृश्य-बंध बहुत साधारण-सा था। हमें कुछ विभिन्न स्तर चाहिए थे। और उन्हीं स्तरों का निर्माण करके श्री खालेद चौधुरी ने दृश्य के माध्यम से भी नाटक के मूल को प्रकाशित करना चाहा था। सुनहरे दरवाज़े, सुनहरा अर्धवृत्त और गुफ़ा। दरवाज़ों पर दरवाज़े! सीढ़ियों पर सीढ़ियाँ! किन्तु अन्त में वही ज़मीन!

संगीत में हमने चेष्टा की थी कि वह संगीत न रहकर नेपथ्य-ध्वनि हो—

केवल शब्द, केवल नाद—जो नाटक के कुछ विशेष स्थलों का वातावरण संजोये, और नाटक की कुछेक गतियों को थोड़ा-सा सहारा दे सके।

जहाँ तक वेषभूषा का संबंध है, इसमें हमने अमल, विमल और कमल को इकाई के रूप में ही रखा था। उनको हमने एक ढंग की पोशाक नहीं पहनायी थीं। साधारण जीवन की विभिन्न पोशाकों को ही उन्होंने पहना। फ़र्क़ केवल इतना था कि प्रथम अंक में एक पोशाक को जो पहनता था, उसी को दूसरे अंक में दूसरा पहनता था और तीसरे अंक में तीसरा। इस तरह वे परस्पर अपनी पोशाकें बदलते रहते थे। मानसी को हलकी गुलाबी रंग की साड़ी और इन्द्रजित् को हमने काले और गहरे नीले रंग के कपड़े दिये थे। लेखक की पोशाक में हमने भूरा रंग व्यवहार किया था—उसे नाटक के वातावरण का एक अंग बनाने के लिये।

बादल सरकार

एवम् इन्द्रजित्

बँगला से अनुवाद : प्रतिभा अग्रवाल

पात्र

मौसी
लेखक
मानसी
अमल
विमल
कमल
इन्द्रजित्

अंक : १

टेबुल पर ढेर-सा कागज़ फैला है। सामने कुर्सी पर दर्शकों की ओर पीठ किए लेखक बैठा लिख रहा है। शायद बहुत देर से लिख रहा है। मौसी का प्रवेश। वैसे कुछ नाम देने के लिए मौसी कह दिया गया है—माँ भी हो सकती है, बूआ, चाची, बड़ी दीदी, इनमें से भी कोई हो सकती है। मौसी हैरान आ गई हैं, बेटे का हिसाब-किताब कुछ समझ में ही नहीं आता। वैसे न समझ में आना ही मौसी-लोगों का धर्म है !

मौसी : यह तेरा क्या ढंग है, मेरी तो समझ में ही नहीं आता।

लेखक निरुत्तर।

: मैं पूछती हूँ खाना खाएगा या नहीं ? हद हो गई, मुझसे अब और नहीं होता।

लेखक निरुत्तर।

: बोलता क्यों नहीं ?

लेखक : अभी आता हूँ।

मौसी : यह तो तू तीन बार कह चुका है। मैं अब और पुकारने नहीं आऊँगी, हाँ !

लेखक : मौसी, तुम भी तो यह बात तीन बार कह चुकी हो।

मौसी : जो मर्ज़ी आए सो कर। रात-दिन लिखना, लिखना, लिखना। न खाना, न पीना, खाली लिखे जाना। भगवान् जाने इतना लिख-लिखकर क्या होगा।

मौसी बड़बड़ाते हुए चली जाती है। लिखना

कुछ देर पहले बन्द हो चुका है। लेखक उसे पढ़ता है, पढ़ते-पढ़ते उठकर आगे आता है। एक लड़की का प्रवेश। इसे मानसी नाम दिया जा सकता है।

मानसी : पूरा हो गया ?

लेखक : ना !

मानसी : क्या लिखा ? मुझे नहीं सुनाओगे ?

लेखक : कुछ नहीं लिखा।

कागज फाड़कर फेंक देता है।

मानसी : अरे, फाड़ डाला ?

लेखक : कुछ भी तो नहीं बना। मेरे लिखने के लिए कुछ भी नहीं है।

मानसी : कुछ नहीं है ?

लेखक : क्या लिखूँ ? किसे लेकर लिखूँ ? कितने आदमियों को मैं पहचानता हूँ ? कितने लोगों की बातें मुझे पता हैं ?

मानसी : (**दर्शकों को दिखलाकर**) क्यों, इतने सारे लोग तो हैं। इनमें से किसी को नहीं पहचानते ? किसी की बातें तुम्हें नहीं मालूम ?

लेखक : ये लोग ? हाँ, इनमें से शायद दो-चार को पहचानता होऊँ, अपने ही जैसे दो-चार लोगों को। पर उन्हें लेकर नाटक नहीं लिखा जा सकता।

मानसी : चेष्टा करके देखो न !

लेखक : बहुत चेष्टा कर चुका हूँ।

कागज के टुकड़े फेंककर लेखक वापस टेबुल के पास जाता है। कुछ देर रुककर मानसी लौट जाती है। अचानक घूमकर लेखक सामने की ओर बढ़ जाता है। प्रेक्षागृह में ठीक उसी समय देर से आये चार सज्जन अपनी सीट खोज रहे हैं। लेखक उन्हें पुकारता है।

लेखक : ज़रा सुनिए तो।

दर्शकगण पहली बार पुकारने से समझ नहीं पाये कि उन्हें ही पुकारा गया है।

लेखक : अरे ओ साहब, सुनिए न !

दर्शक १ : हमें कुछ कह रहे हैं ?

लेखक : जी हाँ, ज़रा दया करके इधर आइएगा।

दर्शक २ : हम सब !

दर्शक ३ : स्टेज पर ?

लेखक : हाँ, आपसे एक ज़रूरी काम है। कुछ ख़याल न कीजिएगा।

चारों स्टेज के पास आते हैं।

दर्शक १ : ऊपर किधर से आऊँ ?

लेखक : यह...यह रही सीढ़ी, चले आइए।

चारों मंच पर पहुँच जाते हैं।

लेखक : आपका नाम जान सकता हूँ ?

दर्शक १ : अमल कुमार बोस।

लेखक : आपका ?

दर्शक २ : विमल कुमार घोष।

लेखक तीसरे दर्शक की ओर देखता है।

दर्शक ३ : कमल कुमार सेन।

लेखक : और आप ?

दर्शक ४ : निर्मल कुमार...।

लेखक : (अचानक चीखकर) नहीं।

स्तब्धता। चारों आश्चर्य-चकित-से रह जाते हैं। एकदम स्थिर।

लेखक : अमल, विमल, कमल और निर्मल...यह नहीं हो सकता। आपका अवश्य ही कोई दूसरा नाम है। होना ही होगा। ठीक-ठीक बताइए, क्या नाम है आपका ?

मंच पर अंधकार हो जाता है। अमल, विमल और कमल पीछे हटकर खड़े हो जाते हैं। मंच के बीच में चतुर्थ दर्शक रह जाता है। अंधकार में लेखक का कंठस्वर सुनाई पड़ता है।

: क्या नाम है आपका।

दर्शक ४ : इन्द्रजित् राय।

लेखक : तब निर्मल क्यों बताया था ?

इन्द्र : डर के मारे।

लेखक : डर ? किस बात का ?

इन्द्र : अशांति का। नियम के विपरीत कुछ कहने से ही अशांति पैदा हो जाती है न !

लेखक : आप क्या हमेशा ही निर्मल नाम बतलाते आये हैं ?

इन्द्र : नहीं, आज ही, अभी ही पहली बार बतलाया है।

लेखक : क्यों ?

इन्द्र : अब उम्र हुई न ! उम्र होने पर आनन्द से डर लगता है, सुख से भी डर लगता है। इस उम्र में शान्ति की इच्छा होती है। इन्द्रजित् को अब घने मेघ के अंतराल की आवश्यकता है।

लेखक : आपकी उम्र क्या होगी ?

इन्द्र : एक सौ वर्ष। दो सौ वर्ष। पता नहीं। मैट्रिकुलेशन के सर्टीफ़िकेट के अनुसार पैंतीस वर्ष।

लेखक : जन्म स्थान ?

इन्द्र : कलकत्ता।

लेखक : शिक्षा-दीक्षा ?

इन्द्र : कलकत्ता।

लेखक : कर्म-स्थान ?

इन्द्र : कलकत्ता।

लेखक : विवाह ?

इन्द्र : कलकत्ता।

लेखक : मृत्यु ?

इन्द्र : अभी होनी बाकी है।...

कुछ देर तक शान्ति रहती है, फिर अंधकार में इन्द्र का स्वर उभरता है।

: ना...ठीक से तो नहीं मालूम।

धीरे-धीरे मंच पर प्रकाश होता है पर पूरे पर नहीं। इन्द्रजित् और उसके पीछे लाइन से मूर्ति की तरह अमल, विमल, और कमल खड़े हैं। उनकी शून्य दृष्टि प्रेक्षागृह की पीछे की दीवार पर स्थिर है। लेखक दर्शकों की ओर मुड़ता है। एक बार सबकी ओर देखता है, फिर थके हुए अध्यापक की तरह एक स्वर में बोलना शुरू करता है।

लेखक : १९६१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार कलकत्ता की जनसंख्या है... २,९२, १२,८९१। इनमें से प्रायः ढाई प्रतिशत लोग ग्रेजुएट या और उच्च शिक्षित हैं। विभिन्न नामों से ये परिचित हैं। ये सभी मध्यवित्त हैं, यद्यपि इनके मध्यवित्त का पर्याप्त अन्तर है। ये सब बुद्धिजीवी हैं, यद्यपि बुद्धि ही जीविका का साधन होती तो इनमें से अधिकांश भूखों मर गये होते। ये शिक्षित हैं...यदि डिग्री को

शिक्षा माना जाए तो। ये सब उच्च श्रेणी के हैं क्योंकि छोटे लोगों से अपना व्यवसाय ये अच्छी तरह समझते हैं। ये हैं अमल, विमल, कमल...

तीनों मंच छोड़कर चले जाते हैं, मानो मुक्ति मिली हो।

: एवम् इन्द्रजित्।

इन्द्रजित् एक बार लेखक की ओर देखता है, फिर अमल आदि के पीछे-पीछे चला जाता है। उसकी दृष्टि में पीड़ा और चाल में क्लांति है।

: संभव है इनके जीवन में नाटक हो। छोटे-छोटे नाटक, ढेर सारे नाटक। यह भी संभव है कि आगामी युग में कोई शक्तिशाली नाट्यकार इन नाटकों की रचना करे।

मौसी का प्रवेश।

मौसी : तू अब भी खाने आएगा या नहीं ?

लेखक : नहीं।

मौसी का प्रस्थान। मानसी का प्रवेश।

मानसी : लिखा ?

लेखक : नहीं।

मानसी का प्रस्थान।

लेखक : मैंने कई नाटक लिखे हैं। मैं और बहुत-से नाटक लिखना चाहता हूँ। पर...मैं दुःखी-पीड़ित जनसाधारण की कहानी नहीं जानता। खेतों में काम करने वाले किसानों को भी मैं नहीं पहचानता। साँप खेलानेवाले सँपेरे, संथाल मुखिया, मछुए...इनमें से किसी से भी तो मेरा परिचय नहीं है। अपने चारों ओर मैं जिन्हें देखता हूँ उनमें न रूप है, न रंग, न वस्तु। ये सब अनाटकीय हैं। ये तो अमल, विमल, कमल, और इन्द्रजित् हैं।

मंच पर एकदम अंधकार हो जाता है।

: मैं अमल, विमल, कमल और इन्द्रजित् हूँ।

अन्धकार में समवेत स्वर फुसफुसाहट के रूप में उभरता है।

कंठस्वर : अमल, विमल, कमल एवम् इन्द्रजित्।
अमल, विमल, कमल एवम् इन्द्रजित्।
विमल, कमल एवम् इन्द्रजित्।
कमल एवम् इन्द्रजित्।

एवम् इन्द्रजित् ।
इन्द्रजित् ।
इन्द्रजित् ।
इन्द्रजित् ।

तेज़ वाद्ययंत्र में कंठस्वर डूब जाता है। तेज़ रोशनी हो जाती है...ऐसी रोशनी जिसमें कोई भी छाया सौन्दर्य की सृष्टि न कर रही हो। मंच खाली है। वाद्ययंत्र जैसे अचानक शुरू हुआ था, वैसे ही अचानक बन्द हो जाता है। कॉलेज का घंटा बजता है। इन्द्रजित् का प्रवेश। उसके ३५ वर्ष के चेहरे पर कोई मेक-अप नहीं है किन्तु चालढाल से वह कम उम्र का लगता है। पीछे-पीछे अमल का प्रवेश। उसमें अध्यापक का-सा गांभीर्य है। अब से अमल, विमल और कमल कुछ-कुछ कठपुतली-से चलते हैं। भूमिका के अनुरूप भावभंगिमा और कंठस्वर है। फिर भी यांत्रिकता-सी है...हास्यकर है, फिर भी करुणा उत्पन्न करती है।

अमल : रोल नम्बर थर्टी फोर !

इन्द्र : यस सर।

अमल : एवरी बॉडी कंटीन्यूज़ इन इट्स स्टेट ऑफ़ रेस्ट ऑर ऑफ़ यूनिफ़ॉर्म मोशन इन ए स्ट्रेट लाइन अनलेस इट इज़ कम्पेल्ड बाई एन एक्सटर्नल इम्प्रेस्ड फ़ोर्स टु चेंज दैट स्टेट।[1]

घंटा बजता है। अमल का प्रस्थान · इन्द्र खड़ा रहता है। विमल का प्रवेश।

विमल : रोल नम्बर थर्टी फोर !

इन्द्र : यस सर।

विमल : पोयट्री इन ए जनरल सेंस में बी डिफ़ाइन्ड टु बी दि एक्सप्रेशन ऑफ द इमैजिनेशन।

घंटी बजती है। विमल का प्रस्थान। कमल का प्रवेश।

कमल : रोल नम्बर थर्टी फोर !

इन्द्र : यस सर।

कमल : निबन्ध-साहित्य के मूल उपादान हैं: तर्क, भाव-भाषा और विचारों

की परिच्छिन्नता, चिन्तन की श्रृंखला और तत्त्व तथा तथ्य का उपयुक्त समावेश।

घंटी। कमल का प्रस्थान।

इन्द्र : तत्त्व एवं तथ्य का उपयुक्त समावेश। तत्त्व एवं तथ्य का उपयुक्त समावेश। एक्सप्रेशन ऑफ़द इमैजिनेशन एक्सप्रेशन ऑफ़ द इमैजिनेशन। स्टेट यूनिफ़ॉर्म मोशन। स्टेट ऑफ़ रेस्ट ऑर ऑफ़ यूनिफ़ार्म मोशन।[२]

हल्ला करते हुए अमल, विमल एवं कमल का प्रवेश। तीनों इन्द्रजित् को घेरकर खड़े हो जाते हैं। तीनों इस समय तरुण हैं।

अमल : खिलाड़ी ही नहीं है ? दो रन में आउट हो जाने से क्या खिलाड़ी ही नहीं रहा ?

विमल : पर इसका मतलब यह तो नहीं कि ऐसा खेल खेलेगा। फिर दूसरे टैस्ट में भी क्या करके निहाल किया था ?

कमल : देखो भाई क्रिकेट है...गेम ऑफ़ ग्लोरियस अन्सर्टेंटी...[३] क्यों इन्द्र ?

इन्द्र : हाँ, बिलकुल।

अमल : यानी, कुशलता कोई चीज़ ही नहीं है ? वाह, तुम्हारे कहने से ही।

इन्द्र : कुछ नहीं है, यह किसने कहा ?

विमल : जो भी कहो, फ़ुटबाल कहीं अधिक एक्साइटिंग है।

इन्द्र : हाँ, सो ठीक है।

कमल : एक्साइटिंग तो टेक्सास-मार्का फ़िल्म भी होती है। तब फिर अच्छी फ़िल्में क्यों देखते हो ?

विमल : अमल, तुमने यूल बर्नर की कोई फ़िल्म देखी है ?

अमल : सब-की-सब देखी हैं। भाई, कमाल का काम करता है। चाहे जितना मार्लेन ब्रैंडो की तारीफ़ करो, यूल बर्नर के सामने वह कुछ भी नहीं है। इन्द्र, तुमने देखी है ?

इन्द्र : हाँ, दो देखी हैं।

कमल : धत्तेरे की...मूड़मुँड़ा।

अमल : जी हाँ, मूड़मुँडा ! अरे, खोपड़ी ऐसी खोपड़ी है इसलिए मुँड़ाकर रखने की हिम्मत करता है।

विमल : पर भाई, खोपड़ी ऐसी खोपड़ी है कहने से तो कुछ और ही अर्थ निकलता है।

कमल : माने, जैसे आइन्स्टाइन जैसी खोपड़ी !

इन्द्र : आइन्स्टाइन की थ्योरी पर एक किताब देख रहा था। कुछ भी पल्ले नहीं पड़ा।

अमल : आइन्स्टाइन ने कहा है कि डाइमेंशन तीन नहीं चार होते हैं।

विमल : चौथा डाइमेंशन टाइम बतलाया है न ?

कमल : क्या पता, बाबा ! कालेज की फ़िज़िक्स ही नहीं पार पड़ रही है...ऊपर से फोर्थ डाइमेंशन। अमल, तुम्हारी प्रैक्टिकल बुक सब तैयार हो गई ?

अमल : भैया की कापी पड़ी है...नकल मार दूंगा। कब सबमिट करनी है ?

विमल : तेरह तारीख़ के भीतर-भीतर। मैंने अभी शुरू ही नहीं की है। इन्द्र, तुम्हारी गाड़ी कहाँ तक पहुँची ?

इन्द्र : कल शुरू की है। एक बड़ी अच्छी किताब हाथ लग गई थी, सो कोर्स की किताब दो दिनों से छू ही नहीं पाया।

कमल : कौन-सी किताब ?

इन्द्र : बर्नार्ड शॉ के कम्प्लीट प्लेज़।

अमल : बर्नार्ड शॉ ? वाह, क्या चाबुक मारता है ! तुमने 'मैन एण्ड सूपर मैन' पढ़ा है ?

विमल : मैंने केवल प्लेज़ 'प्लेज़ेंट' पढ़ा है।

कमल : हम लोगों के प्रमथ बिशी ने भी कुछ इसी ढंग पर लिखना शुरू किया था।

अमल : अरे, हटाओ, कहाँ कौन, कहाँ कौन ? कहाँ जी० बी० एस० और कहाँ प्र० ना० वि० !

विमल : प्रमथ बिशी पॉलिटिक्स घुसा देते हैं।

कमल : तो इसमें क्या बुराई है ? साहित्य में पॉलिटिक्स तो रहेगी ही ...उसका रहना ज़रूरी है।

अमल : बिलकुल नहीं। साहित्य सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का प्रतीक है। पॉलिटिक्स जैसी गन्दी चीज से साहित्य का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता।

विमल : देखो भाई, 'गन्दी चीज़' शब्द पर मुझे आपत्ति है। गन्दगी भी यदि सत्य हो तो उसे बाद देकर साहित्य रचना करना एस्केपिज़्म है। साहित्य होगा...जीवन की प्रतिच्छवि, रियलिस्टिक। इन्द्र, तुम्हारा क्या ख़याल है ?

इन्द्र : मुझे कुछ ठीक से समझ नहीं आता। यह तो मानता हूँ कि साहित्य रियलिस्टिक होना चाहिए पर वह जीवन का नग्न चित्र होगा, यह भी...।

कमल : (**अचानक**) अरे, कितना बज गया, जानते हो ? साढ़े सात !

अमल : माइ गॉड ! प्रैक्टिकल बुक तैयार करनी है। चलो, चलो।

विमल : हम लोगों का रास्ता तो उल्टी ओर है।

कमल : चलो, अमल।

अमल और कमल का प्रस्थान।

विमल : इन्द्र, घर नहीं जाओगे ?

इन्द्र : मुझे...मुझे कुछ और काम करते हुए घर जाना है।

विमल : किधर जाना है ?

इन्द्र : उधर।

विमल : उधर जाना था तो उन लोगों के साथ क्यों नहीं गये ?

इन्द्र : उस समय याद नहीं आया।

विमल : धत्तेरे की। अब अकेले-अकेले जाना होगा।

विमल का दूसरी ओर प्रस्थान। अब तक तबले का एक एकरंग बोल बज रहा था। अब ज़रा द्रुत हो गया। लेखक का प्रवेश।

लेखक : अरे इन्द्र, तुम अभी तक बैठे हो ?

इन्द्र : हाँ।

लेखक : क्या सोच रहे हो ?

इन्द्र : कुछ नहीं।

लेखक : वे लोग आज नहीं आये ?

इन्द्र : आये थे।

लेखक : कौन-कौन ?

इन्द्र : अमल, विमल और कमल।

लेखक : क्या किया तुम लोगों ने ?

इन्द्र : गप्पें मारीं।

लेखक : क्या गप्पें मारीं ?

इन्द्र : इधर-उधर की, बहुत तरह की।

लेखक : क्रिकेट, सिनेमा, फिज़िक्स, राजनीति, साहित्य ?

इन्द्र : ऐं ?...हाँ, क्रिकेट, सिनेमा, फिज़िक्स, राजनीति, साहित्य ! पर तुम्हें कैसे पता चला ?

लेखक उत्तर नहीं देता। जेब से मूँगफली निकाल

कर देता है।

लेखक : लो, खाओ।

इन्द्र : क्या किया जाए, बोलो तो ?

लेखक : किसका क्या किया जाए ?

इन्द्र : पढ़ाई-लिखाई और अच्छी नही लगती।

लेखक : तो फिर क्या करना चाहते हो ?

इन्द्र : सो मालूम नहीं। कभी-कभी मन करता है, सब छोड़-छाड़कर भाग जाऊँ !

लेखक : कहाँ ?

इन्द्र : पता नहीं कहाँ। कहीं बहुत दूर। वहाँ क्या होगा, यह भी पता नहीं...जंगल, मरुभूमि, बरफ का ढेर; कुछ पक्षी...पेंगुइन, ऑस्ट्रिच; कुछ जानवर...कंगारू, जगुअर; कुछ मनुष्य...बेदुइन, एस्किमो, माउरी।

लेखक : सीधी-सी बात...सरल भूगोल परिचय...डी० पी० आई० द्वारा छठी श्रेणी के लिए निर्धारित !

इन्द्र : भूगोल से बाहर भी एक दुनिया है...वह दुनिया यहाँ नहीं है... कही और है...कहीं बहुत दूर...कहीं बाहर !

लेखक : क्रिकेट, सिनेमा, फिज़िक्स, राजनीति, साहित्य...इन सबसे बाहर ?

इन्द्र : हाँ, इन सबसे बाहर।

लेखक : तो चलो।

इन्द्र : कहाँ ?

लेखक : तुम्हीं ने कहा न कि सब छोड़-छोड़कर भाग जाना चाहते हो ?

इन्द्र : अभी ही ?

लेखक : नही तो फिर कब ?

इन्द्र : छोड़ो, फालतू की बातें मत करो...तुमसे कहकर ही भूल की।

लेखक : तुम्हारे पॉकेट में कितने पैसे हैं ?

इन्द्र : आठ आने होंगे। क्यों ?

लेखक : मेरी पाकेट में सवा रुपया है। एक रुपये बारह आने में हावड़ा स्टेशन से जितनी दूर जा सकते हैं, चले जायेंगे, उसके बाद पद-यात्रा !

इन्द्र : यह जानता कि तुम इस तरह मज़ाक उड़ाओगे तो तुमसे इन बातों की चर्चा ही नहीं करता।

लेखक : मैं एकदम सीरीयस हूँ।

इन्द्र लेखक के मुख की ओर देखता है। वह सच-मुच सीरियस है। इन्द्र दुविधा में पड़ जाता है।

इन्द्र : पर माँ ?

लेखक : हाँ, सो तो है। माँ !

इन्द्र : इसके अलावा परीक्षा एकदम सर पर है।

लेखक : ठीक। परीक्षा के बाद बात करेंगे। लो, थोड़ी-सी और बची हैं।

बाकी मूँगफली देकर बाहर निकल जाता है। इन्द्रजित् शून्य दृष्टि से देखता खड़ा रहता है। नेपथ्य से मौसी का स्वर सुनाई पड़ता है...

मौसी : इन्द्र

इन्द्र : आया, माँ !

किन्तु हिलता नहीं। मौसी का प्रवेश।

मौसी : क्यों रे, खाएगा नहीं ? मैं कब तक चौका लिये बैठी रहूँ ?

इन्द्र : अच्छा माँ...।

मौसी : क्या ?

इन्द्र : अच्छा...मैं यदि...माने मुझे यदि कहीं चला जाना पड़े...।

मौसी : तेरी तो सारी बातें ऐसी ही अटपटी होती हैं। चल, खाना खा ले, रसोई पड़ी-पड़ी ठंडी हुई जा रही है।

मौसी का प्रस्थान। नेपथ्य से पहले धीरे, फिर तेज़ स्वर में समवेत संगीत उभरता है। जिधर मौसी गई थीं, उधर ही इन्द्रजित् का प्रस्थान।

गाना : एक दो तीन
एक दो तीन दो एक तीन। एक दो तीन दो एक तीन।
चार पाँच छः।
चार पाँच छः पाँच चार छः। चार पाँच छः पाँच चार छः।
सात आठ नौ
सात आठ नौ आठ सात आठ नौ। सात आठ नौ आठ सात आठ नौ।
नौ आठ सात छः पाँच चार तीन दो एक।

गाने के बीच में लेखक का प्रवेश। गाने की अन्तिम पंक्ति के स्वर के साथ स्वर मिलाकर गाते हुए लेखक सामने पाद-प्रदीप के पास आकर एक ओर खड़ा हो जाता है।

लेखक : **(गाना रुकते ही)** अनाटकीय...एकदम अनाटकीय। इन लोगों को लेकर नाटक नहीं लिखा जा सकता...कभी नहीं। ऐ अमल,

विमल, कमल··· ।

हो-हल्ला करते हुए तीनों आकर लेखक को घेर लेते हैं ।

अमल : अरे कवि ! क्या हालचाल है ?

लेखक : अच्छा ।

विमल : नया क्या लिखा, सो बतलाओ ।

लेखक : कुछ खास नहीं ।

कमल : अरे छिपाते क्यों हो, ब्रदर ? डरते हो कि हम लोग नकल कर लेंगे ? चिन्ता मत करो, हम लोग वह भी न कर सकेंगे, लिखने में वर्तनी की भूल कर बैठेंगे !

तीनों ज़ोर से हँस पड़ते हैं ।

लेखक : केवल एव छोटी-सी कविता लिखी है ।

अमल : देखो, निकली न । सुनाओ, सुनाओ ।

विमल : काव्य-काकली शुरू करो, हे कवि शिरोमणि !

कमल : यदि हम लोगों की समझ में आ जाए तो फाड़ डालना और न आए तो किसी मासिक पत्रिका को भेज देना ।

तीनों का अट्टहास ।

लेखक : सुनोगे ?

अमल
विमल, कमल : (**एक साथ**) हाँ हाँ, ज़रूर !

लेखक : (**कविता-पाठ करते हुए**)

एक दो तीन
एक दो तीन दो एक तीन
चार पाँच छ:
चार पाँच छ: पाँच चार पाँच छ:
सात आठ नौ
सात आठ नौ आठ सात आठ नौ ।

अमल : आगे ?

लेखक : नौ आठ सात छ: पाँच चार तीन दो एक ।

विमल : बोले जाओ...बोले जाओ ।

लेखक : और तो नहीं है ।

कमल : बस इतना ही ?

लेखक : हाँ, बस इतना ही ।

ज़रा देर चुप रहने के बाद तीनों का अट्टहास ।

अमल : वाह, बहुत अच्छी कविता है !

विमल : अरे भाई, मँजा हुआ हाथ है कवि का।

लेखक : समझ में आई ?

कमल : गणित के क्लास में सुनाने से समझता। कविता है न, कैसे समझ आएगी।

तीनों का अट्टहास।

लेखक : एक नाटक लिखने का इरादा कर रहा हूँ।

अमल : अचानक कविता छोड़कर नाटक ?

लेखक : अचानक नहीं, मैं काफी दिनों से सोच रहा हूँ।

विमल : लिख डालो, लिख डालो। बीशु दा को पकड़ करके यदि री-यूनियन में लगवा दो तो...।

कमल : बीशु दा बड़े नुक़्ताचीन हैं। सनत चौधरी...फोर्थ ईयर का... पहचानते हो न ? उसने काफी अच्छा नाटक लिखा था...पर बीशु दा को पसन्द ही नहीं आया। बोले—ड्रामाटिक क्लाइमेक्स ठीक से नहीं उभार पाए हो।

अमल : क्या नाटक लिखोगे ? सामाजिक ?

लेखक : सामाजिक माने ?

विमल : सामाजिक नहीं जानते ? तब फिर क्या लिखोगे ?

कमल : सामाजिक माने...आज के युग का...माने हम लोगों के समय का...।

लेखक : हाँ, हम लोगों को लेकर ही लिखूंगा।

अमल : प्लॉट क्या सोचा है ?

लेखक : प्लॉट नहीं है।

विमल : ओहो, अच्छा थीम बतलाओ न।

लेखक : थीम...माने यही हमलोग।

कमल : अच्छा, हमलोग से मतलब ?

लेखक : मतलब...माने तुम लोग, इन्द्रजित्, मैं...।

अमल : हम लोगों को लेकर नाटक लिखोगे ? तब हो चुका तुम्हारा नाटक लिखना।

विमल : हम लोगों के जीवन में नाटक है क्या ?

कमल : अरे नाट्यकारजी, हमलोगों को लेकर नाटक तो स्त्री-चरित्र-वर्जित हो जाएगा।

तीनों का अट्टहास।

अमल : झूठ क्यों बोलते हो, कमल ? पास के मकान वाली तुम्हारी नायिका...?

विमल : हाँ, मैं तो भूल ही गया था। कहाँ तक बात बढ़ी, कमल ?

कमल : अरे, मेरा तो खिड़की-काव्य दूर से ही रचा जा रहा है। अमल कितना बड़ा छिपा रुस्तम है, यह खबर है तुम लोगों को ? पिछली पूजा में पुरी में क्या हुआ था, पूछो इससे।

विमल : क्यों अमल ? यह खबर तो हम लोगों के कानों तक पहुँची ही नहीं !

अमल : अरे छोड़ो...वह सब...।

कमल : बोलो न राजा बेटा...ऐसे क्यों करते हो... ?

तीनों खिसककर एक ओर होकर धीरे-धीरे बातें करते हैं। लेखक सुनता है, मगर थोड़ी दूर से। मानसी एक ओर से प्रवेश करती है और दूसरी ओर चली जाती है। तीनों गर्दन घुमाकर उसे देखते हैं। फिर तीनों सिर-में-सिर जुटाकर न जाने क्या कहते हैं। बात पूरी होने पर हँसी। मानसी का पुन: प्रवेश...इस बार दूसरी लड़की की भूमिका में है...हाथ का बैग, चलना-फिरना सब भिन्न है। फिर वही मूक अभिनय और तनिक और मज़ा लेते हुए ज़ोर की हँसी। इसके बाद एक और सीधी-सादी लड़की के रूप में मानसी का प्रवेश। इस बार इन्द्रजित् साथ है। सब चुप रहते हैं। दृष्टि में कौतूहल और ईर्ष्या का भाव उभरता है। मानसी और इन्द्रजित् बातें करते हुए चले जाते हैं।

अमल : देखा ?

विमल : तभी मैं कहूँ कि इन्द्र कई दिनों से बदला-बदला क्यों लगता है।

कमल : सिंकिंग, सिंकिंग, ड्रिंकिंग, वाटर।[४] ए कवि, देखा ?

लेखक : देखा।

अमल : क्या समझे ?

लेखक : कि नाटक स्त्री-चरित्र-वर्जित नहीं होगा।

विमल : इन्द्र को हीरो बना डालो और हम लोगों को मरे सैनिक !

कमल : हिरोइन कौन थी, बता सकते हो ?

अमल : क्या पता, भाई ! इन्द्र तो हमें कुछ बताता नहीं।

विमल : हाँ, बड़ा चुप्पा लड़का है।

कमल : चुप्पा नहीं घमंडी है। अपने को ऊँचे स्तर का समझता है। मैं ऐसे
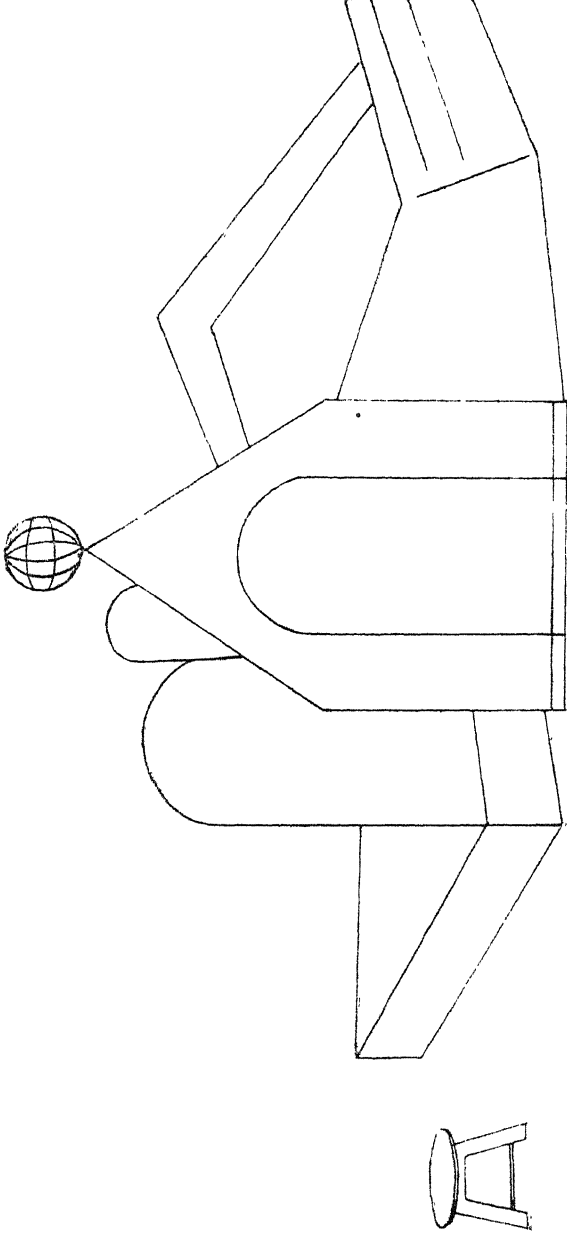
‘एवम् इन्द्रजित्’ का दृश्यबन्ध।

लोगों की नस-नस पहचानता हूँ।

अमल : कवि, तुम पहचानते हो ?

लेखक : किसे ?

विमल : क्या हुआ, मूड आ गया क्या ?अरे, अपने नाटक की हिरोइन को ?

लेखक : उसका नाम मानसी है।

कमल : यह लो। कवि को मालूम है न। इन्द्र ने परिचय करवा दिया लगता है ?

लेखक : ना।

अमल : हमें घिस्सा दे रहे हो, कवि ?

लेखक : विश्वास करो, मैंने उसे पहली बार देखा है।

विमल : अच्छा छोड़ो, इन्द्र ने तुम्हें क्या-क्या बतलाया है, सो बोलो।

लेखक : उसने कुछ नहीं बतलाया है।

कमल : हाँ न । पहली बार देखा है, इन्द्र ने कुछ बतलाया नहीं है, बस नाम मानसी है।

लेखक : उसका नाम मुझे नहीं पता। मेरे मन में आया कि उसका नाम मानसी है, सो कह दिया ।

अमल : बा...बा...! यह कवि कब कविता करता है और कब स्वस्थ रहता है, भगवान् जाने।

लेखक : अच्छा, नाटक का नाम क्या रखा जाए ?

विमल : सबसे पहले नाम ही ?

कमल : नाम पहले ही तो रहता है। तुम्हीं बोलो न, तुममें तो नामकरण करने का अच्छा नैक है।

लेखक : मैं सोचता हूँ...'अमल-विमल-कमल-इन्द्रजित् और मानसी' नाम दे दूँ।

अमल : ओह, जिल्द पर अटेगा ही नहीं।

विमल : हम लोगों को इसमें क्यों घसीटते हो ? हम लोग तो मरे सैनिक हैं।

कमल : और क्या ? इससे तो अच्छा है...इन्द्रजित् और मानसी।...उठो भाई, जाना नहीं है ?

अमल : कहाँ ?

विमल : कमल, चाय पिलाओगे ?

कमल : पिलाऊँगा। चलो।

तीनों का प्रस्थान।

लेखक : इन्द्रजित् और मानसी। इन्द्रजित् और मानसी।

दर्शकों को सम्बोधित करते हुए भाषण देने की

मुद्रा में।

: आप लोग जानते ही हैं कि इन्द्रजित् और मानसी को लेकर नाना देशों में, नाना युगो में, अनेक नाटक लिखे गये हैं...पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सुखान्त, दुखान्त। न जाने कितने नामों में, कितने रूपों में समाज के विभिन्न स्तरों से इन्द्रजित् और मानसी आये हैं, उन्होंने एक-दूसरे को प्यार किया है। न जाने कितने सुख-दुख, मिलन-विरह, ईर्ष्या-अभिमान और कितने ही जटिल मानसिक घात-प्रतिघातों के बीच इनका नाटक विकसित हुआ है। इन्द्रजित् और मानसी का प्रेम...एक चिरंतन नाटकीय उपादान।...इन्द्रजित्।

इन्द्रजित् का प्रवेश।

इन्द्र : क्या हुआ ? चीख क्यों रहे हो ?

लेखक की नाटकीय वक्तृता और अतिनाटकीय पुकार के बाद इन्द्रजित् का स्वर जैसे बड़ा बेसुरासा लगा। लेखक फिर भी नाटकीतया बनाये रखने की चेष्टा में है।

लेखक : बोलो, इन्द्रजित् !

इन्द्र : क्या बोलूँ ?

लेखक : अपनी कहानी। जो कहानी चिर-पुरातन है फिर भी चिर-नवीन, जो महाभारत के युग से आरम्भ करके...।

इन्द्र : कविता छोड़कर सीधी सरल भाषा में अपनी बात कहोगे ? तुम क्या जानना चाहते हो ?

लेखक का आवेग तब तक काफी हद तक शान्त हो चुका है

लेखक : तुम्हारी और मानसी की कहानी।

इन्द्र : मानसी ? मानसी कौन ?

लेखक : जिसके साथ तुम्हें उस दिन रास्ते में जाते देखा था।

इन्द्र : ओ ! देखा था ?...पर उसका नाम तो मानसी नहीं है ? उसका नाम है...।

लेखक : उसके नाम की जरूरत नहीं है। मैंने उसका नाम मानसी रखा है।

इन्द्र : तुम्हारे नाम रखने का क्या मतलब है ? उसके माँ-बाप ने उसका नाम...।

लेखक : माँ-बाप कुछ भी नाम रखा करें, उससे क्या बनता-बिगड़ता है ? तुम बताओ न !

इन्द्र : क्या बतलाऊँ ?

लेखक : अपनी और उसकी बातें ! वह तुम्हारी कौन है ?

इन्द्र : बहन है।

लेखक : (**ज़रा रुककर**) बहन ?

इन्द्र : हाँ, मौसेरी बहन।

लेखक : मौसेरी बहन ? क्यों ?

इन्द्र : क्यों माने ? उसकी माँ मेरी मौसी हैं, इसलिए।

लेखक : नहीं, नहीं...पर वह तुम्हारे साथ क्यों ?

इन्द्र : घर आई थी, उसे पहुँचाने जा रहा था। ऐसे तो बराबर ही जाता हूँ।

लेखक : ओ...तो फिर...तो फिर उसका नाम मानसी नहीं है ?

इन्द्र : कह तो चुका हूँ कि नहीं।

लेखक : मुझे ऐसा लगा था कि तुम दोनों आपस में बातें कर रहे थे।

इन्द्र : बातें तो कर ही रहा था।

लेखक : खूब घनिष्ठता से बातें कर रहे थे।

इन्द्र : (**हँसकर**) तुम्हें ऐसा लगा था ? सो, हो सकता है करता रहा होऊँ। उससे बातें करना मुझे बड़ा अच्छा लगता है। अक्सर सीधे रास्ते से उसे घर पर न पहुँचाकर...।

लेखक : अच्छा, उससे बातें करना अच्छा लगता है ? क्यों ?

इन्द्र : अब, इस क्यों का मैं कैसे उत्तर दूँ ! सारे दिन जैसी बातें होती रहती हैं उनसे भिन्न तरह की बातें होती हैं...शायद इसीलिए।

लेखक : क्रिकेट, राजनीति, साहित्य, इनकी बातें नहीं ?

इन्द्र : ना। क्रिकेट, राजनीति, साहित्य नहीं। कम-से-कम हर समय तो नहीं।

लेखक : तो फिर क्या बातें होती हैं ?

इन्द्र : बहुत-सी बातें होती हैं। मैं अपनी बातें करता हूँ, अपने परिचितों की बातें, अपने दोस्तों की बातें। वह...वह भी अपने घर की बातें, अपनी सहेलियों की बातें, कालेज की बातें करती है।

लेखक : और ?

इन्द्र : और क्या ? तुम्हारे साथ क्या बातें होती हैं ?

लेखक : क्रिकेट, सिनेमा, राजनीति...।

इन्द्र : ना...हर समय तो नहीं। और बहुत-सी बातें भी होती हैं। तुम्हारे लेखन की बातें, लोगों की बातें, भविष्य की बातें...,तरह-तरह की इच्छा-अनिच्छा की बातें !

लेखक : हाँ, वही पेंगुइन-कंगारू, एस्किमो की बातें ?

इन्द्र : हाँ, क्यों नहीं ? क्या मैं वे बातें सबसे कर सकता हूँ ?

लेखक : मानसी से कर सकते हो ?

इन्द्र : उसका नाम... ।

लेखक : मुझे पता है कि उसका नाम मानसी नहीं हैं। पर मैं यदि उसे मानसी ही कहूँ तो तुम्हें कोई आपत्ति है ?

इन्द्र : (**हँसकर**) नहीं, कोई आपत्ति नहीं है। वरन् यह नाम अच्छा ही लगता है। उसके असली नाम में इतना काव्य नहीं है।

लेखक : तब बतलाओ।

इन्द्र : तुम क्या जानना चाहते हो ?

लेखक : मुझे जो कुछ बतला सकते हो वह उसे भी बतला सकते हो ?

इन्द्र : सकता हूँ नहीं, बतला चुका हूँ। उससे और भी बहुत-कुछ कहता हूँ जो तुमसे नहीं कह सकता।

लेखक : मुझसे नहीं कह सकते ?

इन्द्र : कह ही नहीं सकता, यह तो नहीं, पर कभी कहा नहीं यह सच है। कोई खास बात बतलाने लायक है, सो नहीं। इधर-उधर की बातें, कितने ही विचार-प्रश्न। कुछ अच्छा लगने की बातें, कुछ खराब लगने की बातें। बहुत-सी बहुत ही साधारण छोटी-मोटी घटनाओं की बातें।

लेखक : मानसी तुम्हारी मित्र है ?

इन्द्र : मित्र ? हाँ, मित्र कह सकते हो। उसके साथ बातें करना मुझे अच्छा लगता है। बहुत बार बातें करके जी हलका हो जाता है। यह जो सारा दिन चलता रहता है, हर रोज़ वही का वही... (**सहसा लेखक की ओर मुड़कर**) अच्छा, तुम्हें कभी नहीं लगता ?

लेखक : क्या ?

इन्द्र : कि यह जो कुछ चल रहा है, इसका कोई अर्थ नहीं है ? एक विराट् चक्का बस घूम रहा है और घूम रहा है। और हम लोग भी उसके साथ-साथ चक्कर काटे जा रहे हैं।

लेखक : एक-दो-तीन। एक दो तीन दो एक तीन।

इन्द्र : क्या कहा ?

किन्तु तब तक एक-दो-तीन संगीत शुरू हो चुका है। अमल का प्रोफेसर के रूप में प्रवेश।

अमल : रोल नम्बर थर्टी फोर !

इन्द्र : यस सर।

अमल : व्हाट् इज़ द स्पेसिफ़िक ग्रेविटी ऑफ़ आयरन् ?[५]

इन्द्र : इलेविन पाइंट सेविन सर।[६]

घंटी। अमल का प्रस्थान। विमल का प्रवेश।

विमल : रोल नम्बर थर्टी फोर !

इन्द्र : यस सर।

विमल : हू वाज़ मेज़िनी ?[७]

इन्द्र : वन ऑफ द फ़ाउंडर्स ऑफ़ मॉडर्न इटेली।[८]

घंटी। विमल का प्रस्थान। किमल का प्रवेश।

कमल : रोल नम्बर थर्टी फोर !

इन्द्र : यस सर।

कमल : भारतीय वैराग्य-भाव ने प्राचीन भारत के साहित्य को किस रूप में प्रभावित किया था ?

इन्द्र : प्राचीन साहित्य में जो प्रक्षिप्तांश की अधिकता मिलती है, उसका मूल कारण भारतीय अनासक्ति ही प्रतीत होती है। वर्णन, तत्त्वावलोचन और अवान्तर कथाएँ कहानी के स्वच्छन्द प्रवाह को निरन्तर बाधित करती चलती हैं।

कमल इस बीच चला गया है। वाद्ययंत्र में इन्द्र-जित् का स्वर डूब जाता है। हो-हल्ला करते हुए अमल का प्रवेश। अब वह तरुण है।

अमल : इन्द्र, मेरी प्रॉक्सी दे देना, मैं सिनेमा जा रहा हूँ।।

इन्द्र : अच्छा।

अमल का प्रस्थान। विमल का प्रवेश।

विमल : इस शनिवार को अपने केमिस्ट्री के नोट्स दे सकोगे, इन्द्र ?

इन्द्र : हाँ, ले लेना।

विमल का प्रस्थान। कमल का प्रवेश।

कमल : तुम्हारे पास एक रुपया है, इन्द्र ? सोमवार को लौटा दूँगा।

इन्द्र : आज तो नहीं है, कल ला दूँगा भाई।

कमल का प्रस्थान। मौसी का प्रवेश।

मौसी : थाली परोसूँ ?

इन्द्र : ज़रा देर बाद, माँ !

मौसी : अब और कौनसी बेला होगी, इन्द्र ! खा-पीकर छुट्टी करो, बाबा !

मौसी का प्रस्थान। वाद्य-संगीत पुनः तीव्र होता है...फिर 'नौ-आठ-सात-छः-पाँच-चार-तीन-दो-

एक' पर आकर शेष होता है।

इन्द्र : हम सब चक्कर काट रहे हैं, और चक्कर काटे जा रहे हैं।

मौसी : (**नेपथ्य से**) इन्द्र !

इन्द्र : आया, माँ।

इन्द्रजित् का प्रस्थान। मौसी का प्रवेश।

मौसी : तुम खाना खाओगे या नहीं ?

लेखक : नहीं।

मौसी का प्रस्थान। मानसी का प्रवेश।

लेखक : एक-दो-तीन। अमल-विमल-कमल। एवं इन्द्रजित्। एवं मानसी। घर से स्कूल...स्कूल से कॉलेज...कॉलेज से दुनिया। सब बड़े हो रहे हैं और घूम रहे हैं। घूम रहे हैं और घूमे जा रहे हैं। एक-दो-तीन-दो-एक। अमल-विमल-कमल। एवं इन्द्रजित्।

अमल-विमल-कमल और इन्द्रजित् आकर परीक्षा देने बैठे हैं। स्टूल और टेबुल। प्रश्नपत्र और कापी। लेखक अध्यापक के रूप में घूम-घूमकर निगरानी कर रहा है। घंटा बजता है।

लेखक : टाइम अप। स्टॉप राइटिंग प्लीज़।[१]

वे जल्दी-जल्दी लिखे ही जा रहे हैं। लेखक एक-एक करके सबकी कापियाँ छीनता-सा है। वे लोग बिना आवाज़ के परीक्षा की चर्चा करते हुए चले जाते हैं...संशय, भय, हताशा का भाव।

लेखक : स्कूल से कॉलेज...कॉलेज और परीक्षा...परीक्षा और पास ! फिर दुनिया।

अमल, विमल, कमल और इन्द्रजित् का प्रवेश। लेखक पीछे टेबुल-कुर्सी ठीक करता है।

अमल : पास होने के बाद क्या करोगे ?

विमल : पहले पास तो होऊँ...फिर आगे की सोचूँगा।

कमल : पास होऊँ चाहे फेल, मुझे नौकरी ढूँढ़नी ही है। बाबूजी इस साल रिटायर हो रहे हैं।

अमल : ढूँढ़ने से ही नौकरी मिल जाएगी क्या ? रोज़ ही अखबार देखता हूँ, कुछ भी तो काम लायक नहीं दिखता।

विमल : तुम्हें क्या चिन्ता है ? मुझे तो तीन-तीन बहनों की शादी करनी है।

कमल : अब तक मज़े में रहा। जैसे-जैसे रिज़ल्ट निकलने का दिन पास

आता जा रहा है, वैसे-वैसे मेरे गले से रोटी नहीं उतरती।

लेखक : अमल कुमार बोस।

अमल खुशी से चीत्कार कर उठता है। सब उसकी पीठ थपथपाकर बधाई देते हैं।

: विमल कुमार घोष।

बधाई की पुनरावृत्ति।

: कमल कुमार सेन। इन्द्रजित् राय।

प्रत्येक बार पारस्परिक बधाई। मौसी का प्रवेश। सब उनके पैर छूते हैं। मौसी आशीर्वाद देकर चली जाती है। वे चारों भी हो-हल्ला करते हुए चले जाते हैं।

लेखक : इस बार दुनिया ! इन कुर्सियों पर बड़े-बड़े ज्ञानी-गुणी लोग बैठते हैं...परीक्षा लेते हैं...देखते हैं कि कौन-सा व्यक्ति कितने काम का है। और दरवाज़े से बाहर उस लम्बी बेंच पर बैठते हैं... अमल, विमल, कमल। एवम् इन्द्रजित्।

अमल, विमल और कमल घुसकर बेंच की ओर बढ़ते हैं।

: अभी नहीं, अभी नहीं। एक मिनट, एक मिनट और।

तीनों लौट जाते हैं।

: भूल गया था। इसके पहले थोड़ा-सा और है। वे कुर्सियाँ वहाँ नहीं हैं। बेंच की बात भी भूल जाइए। यहाँ पर हरी-हरी घास है... ये सब पेड़ हैं। और उधर उस पेड़ की घनी चोटी पर सिन्दूरी रेखा खिंची है। जो सूर्य रोज़ उगता है, वही आज भी उगा था, इस समय अस्त हो रहा है। उधर, उस ओर, उन डालों के बीच एक गहरी सिन्दूरी रेखा।

इसी बीच इन्द्रजित् और मानसी भीतर आये हैं। वे घने पेड़ के नीचे बैठ गये हैं। मानसी के हाथ में एक किताब है। लेखक सिन्दूरी रंग को देखते-देखते चला जाता है।

मानसी : तुमने मुझे यह किताब क्यों दी ? उल्टे मुझे तुम्हें देनी चाहिए थी।

इन्द्र : क्यों ?

मानसी : वाह रे, तुम पास हुए हो सो मैं ही तो दूँगी।

इन्द्र : कहीं लिखा है क्या कि मेरे पास होने पर तुम्हें उपहार देना होगा, मेरे देने से नहीं चलेगा ?

मानसी : लिखा कहाँ होगा ? ऐसा ही नियम है।

इन्द्र : खूब नियम मानती हो न !
मानसी : (**हँसकर**) तुम मानने कहाँ देते हो ?
इन्द्र : मानना अच्छा लगता है ?
मानसी : लड़कियों को मानना ही पड़ता है ।
इन्द्र : लड़कियों को...यह बात बहुत बार तुम्हारे मुँह से सुन चुका हूँ । लड़कियों को नियम मानना होता है । पुरुषों के न मानने से चल सकता है पर स्त्रियों को मानना ही होता है ।
मानसी : मैंने क्या कुछ झूठ कहा ?
इन्द्र : पता नहीं । मैं भी मानता हूँ, बहुतेरे नियम मानता हूँ । पढ़ाई-लिखाई करनी चाहिए...की । परीक्षा देनी चाहिए...दी । नौकरी करनी चाहिए...करूँगा । यह सब नियम-पालन ही तो है । हाँ, यह ठीक है कि नियम न होने पर भी नौकरी तो ज़रूर करता ।
मानसी : क्यों ?
इन्द्र : कई कारण हैं । पहला यह कि अपने पैरों पर खड़ा हो सकूँगा । घर के रुपये से पढ़ना-लिखना मुझे कैसा लगता है, यह मैं तुम्हें बतला ही चुका हूँ ।
मानसी : और क्या कारण है ?
इन्द्र : बहुत-से हैं । अच्छा, तुम एक बात बतलाओ तो ।
मानसी : क्या ?
इन्द्र : सभी तो मानता हूँ । पर क्या नियम मानना होगा, यह बात भी माननी होगी ?
मानसी : न मानकर क्या करोगे ?
इन्द्र : नियम से घृणा करूँगा । कम-से-कम इतना तो बचना ही चाहिए ।
मानसी : इससे लाभ ?
इन्द्र : जिस डोरी से मैं चारों ओर जकड़ा हुआ हूँ, उसकी पूजा करने से भी क्या लाभ ?
मानसी : पूजा करने को कौन कहता है ?
इन्द्र : यदि यह कहा जाए कि डोरी ही नियम है और उसे मानना उचित है, तो फिर पूजा करने में और बाकी क्या रहा ?
मानसी : अच्छा, तुम क्या करना चाहते हो, सो तो बतलाओ ।
इन्द्र : पता नहीं । इस बंधन को टुकड़े-टुकड़े कर डालना चाहता हूँ । चारों ओर से यह जो ऊँची दीवार जकड़े हुए है, उसे चूर-चूर कर डालना चाहता हूँ ।
मानसी : अच्छा, तुम्हारी इतनी नाराजगी किस पर है ?

इन्द्र : दुनिया पर, चारों ओर के लोगों पर। तुम लोग जिसे समाज कहती हो न, उस पर और उसकी व्यवस्था पर। मैंने तुमसे लीला की चर्चा की थी न, याद है ?

मानसी : जिसके पति को टी० बी० हो गया था ?

इन्द्र : हाँ। काफी दिन हुए उसके पति की मृत्यु हो गई। उसके ससुराल वालों ने उसे घर से निकाल दिया।

मानसी : क्यों ?

इन्द्र : कुछ दिनों तक रखा था। प्रॉविडेण्ट फंड और इंश्योरेंस का कुछ थोड़ा-सा रुपया पाना था। बस, तब तक रखा, फिर थोड़ा-बहुत जो गहना वग़ैरह था, सब छीन-छानकर उसे घर से निकाल दिया।

मानसी : फिर ?

इन्द्र : दूर के रिश्ते के किसी जीजाजी के यहाँ गई थी। उनकी एक छोटी-सी दूकान है। सुना है कि बहुत-से चोरी के काम में उनकी दुकान और वे लगे रहते हैं।

मानसी : उस लड़की का क्या होगा ?

इन्द्र : क्या होगा नहीं, जो होना था सो हो चुका। कल ही खबर मिली, पर है तीन महीने पुरानी। बतला सकती हो यह कैसा नियम है ?

मानसी निरुत्तर।

: जिस स्टॉप से मैं बस पकड़ता हूँ, वहीं एक दिन एक सात-आठ साल के लड़के ने मुझे पकड़ा, जूता पॉलिश करेगा। उसकी गोद में कोई साल-भर का लड़का था, पॉलिश में सने एक चिथड़े से खेल रहा था।

मानसी चुप है।

: मैंने पॉलिश नहीं करवाई, एक पैसा भी नहीं दिया बल्कि डाँटकर उसे दूर हटा दिया। यदि और तंग करता तो शायद मार भी बैठता।

मानसी : (**इन्द्रजित् का हाथ पकड़ते हुए**) पर क्यों ?

इन्द्र : पता नहीं। मैं नहीं जानता कि किसे मारना चाहिए। उसे नहीं मारना चाहिए, यह समझता हूँ, फिर भी शायद उसे मार बैठता। वहाँ नियम का पालन शायद मुझसे न होता। जिस नियम के अनुसार सात साल के बच्चे को पॉलिश करनी पड़े और साथ ही गोद के भाई की देखरेख करनी पड़े, उस नियम को मैं नहीं मान सकता।

मानसी : किन्तु यह तो अलग बात है ।

इन्द्र : अलग कैसे है ? इसी नियम का एक दूसरा रूप तुम्हारे घर में चलता है। वहाँ के सारे नियम तुम मानती हो और बोलती हो कि मानना होता है ।

मानसी : (**मुलायम स्वर में**) तुम क्या मुझे डाँटोगे ही ?

इन्द्र : (**ज़रा देर चुप रहकर**) मैं तुम्हें डाँट नहीं रहा हूँ, यह तुम जानती हो ।

मानसी चुप रहती है ।

: नहीं जानतीं ?

मानसी : जानती हूँ ।

इन्द्र : फिर इस तरह क्यों बातें करती हो ?

मानसी : तुम्हें ऐसे देखकर मुझे न जाने क्यों डर लगता है ।

इन्द्र : कैसे देखकर ?

मानसी : यही गुस्सा करते हुए। नियम के ऊपर गुस्सा करते हुए।

इन्द्र : (**ज़रा-सा हँसकर**) इस गुस्से का कोई मूल्य नहीं है। यह गुस्सा अन्धा है, अक्षम है। यह तो दीवार से माथा फोड़ने जैसा है।

मानसी : तब फिर खुद ही क्यों अपने को इस तरह क्षत-विक्षत करते हो ?

इन्द्र : तुमने बाइबिल पढ़ी है ?

मानसी : बाइबिल ?

इन्द्र : ज्ञान-वृक्ष के फल की कहानी जानती हो ? जिस फल को खाकर एडम और ईव स्वर्गच्युत हुए थे !

मानसी : जानती हूँ ।

इन्द्र : मैं भी यदि ज्ञान-वृक्ष का फल न खाता तो तुम्हारे नियमों वाले इस समाज के स्वर्ग में सुख से रहता ! अब तो दीवार से सर फोड़ने के सिवाय कोई उपाय नहीं है ।

कुछ देर दोनों चुप रहते हैं ।

मानसी : कभी-कभी सोचती हूँ तुम न होते तो मेरा क्या होता ।

इन्द्र : क्यों ?

मानसी : तुम शायद सुनकर गुस्सा करोगे। मैं बहुत-कुछ मान लेती हूँ क्योंकि तुम हो। तुम न होते तो शायद मैं भी गुस्सा करती ।

इन्द्र : इसका मतलब तो यह हुआ कि मैं तुम्हारा नुक़सान कर रहा हूँ ।

मानसी : ऐसे क्यों कहते हो ? फिर कभी मत कहना। (**इन्द्र चुप रहता है**) मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ ? तुम नहीं जानते कि तुम मेरे लिए क्या हो। तुम हो इसलिए मुझमें जैसे एक शक्ति रहती है, जिसके

सहारे मैं जी पाती हूँ। वह शक्ति न होती तो मैं न जाने कब की डूब गई होती। (**इन्द्र सुन रहा है**) पर मेरा ज़ोर गुस्सा करके नहीं मिलता। मैं गुस्सा नहीं करना चाहती। मुझे जीवन अच्छा लगता है, बहुत-कुछ मानती हूँ क्योंकि मानना ही होता है; फिर भी मुझे क्षोभ नहीं होता। तुम हो इस कारण जीवन को बड़े सहज भाव से (**हठात् रुककर**)...। मैं तुम्हें ठीक-ठीक समझा नहीं पाऊँगी।

इन्द्र : बोलती जाओ, रुक क्यों गई ?

मानसी : नहीं, मैं सब बातें ठीक से नही बता पाऊँगी। कोई दूसरी बात करो।

इन्द्र : दूसरी ही बातें तो हो रही थी।

मानसी : यह किताब यदि मेरी समझ में न आई तो समझा दोगे न ?

इन्द्र मानसी की ओर देखता रह जाता है।

: क्या हुआ, जवाब नहीं दिया ?

इन्द्र : मुझे जिस दिन नौकरी मिलेगी, उसके दूसरे दिन तुमसे विवाह करूँगा।

मानसी : ना !

इन्द्र : तुम देखना।

मानसी : तुम भूल गये कि मैं तुम्हारी मौसेरी बहन हूँ ?

इन्द्र : भूल कैसे सकता हूँ ? जितनी बार विवाह की चर्चा की है, हर बार तुमने इस बात की याद दिलाई है, सो कभी भूल सकता हूँ ?

मानसी : और हर बार तुमने कहा है...मैं इसे नहीं मानता।

इन्द्र : सच ही तो कहा है। क्यों मानूँ ? मैं कुछ नहीं मानूँगा।

मानसी : मुझे भी नहीं ?

इन्द्र : तुम्हें मानता हूँ पर तुम्हारे नियमों को नहीं।

मानसी : मुझे तुम बहुत दिनों बर्दाश्त नहीं कर पाओगे।

इन्द्र : यह एक और बकवास तुम लगाये रहती हो।

मानसी : मैं बिलकुल ठीक कहती हूँ। मैं एक बहुत साधारण लड़की हूँ।

इन्द्र : और मैं एकदम असाधारण !

मानसी : क्या मालूम ? पर सचमुच, तुम थोड़े असाधारण तो हो।

इन्द्र : सुनकर खुशी हुई।

मानसी : ई...बिलकुल असाधारण नहीं हो।

इन्द्र : चलो, तब तो झमेला ही खत्म हुआ।

मानसी : क्या खत्म हुआ ?

इन्द्र : एक साधारण लड़का एक साधारण लड़की से ब्याह करेगा, इसमें तो कोई झमेला नहीं होगा।

मानसी : कुछ खत्म नहीं हुआ है। चलो, घर चलो।

इन्द्र : नहीं, मैं नहीं जाऊँगा।

मानसी : देर नहीं हो रही है ?

इन्द्र : हुआ करे।

मानसी : हाँ न। तुम्हारे कारण मैं हर समय घर में डाँट सुना करूँगी न ?

इन्द्र : कैसा घर ?...घर जहन्नुम में जाए।

मानसी : लो, फिर शुरू हुआ। चलो...उठो।

इन्द्र : (**उठकर**) चलो।

मानसी : ऊ...बड़ा गुस्सा दिखा रहे हो...मानो मैं इससे डर जाऊँगी न !

इन्द्र : चलो देर हो रही है। घर में डाँट पड़ेगी।

मानसी : नहीं जाऊँगी।

इन्द्र : ठीक है, तो फिर मैं बैठा।

मानसी : (**उठते हुए**) ऐ, नहीं...नहीं...। चलो।

इन्द्र मानसी के कन्धे पर हाथ रख देता है। मानसी हाथ हटा देती है।

: क्या कर रहे हो ? देखते नही, यह पार्क है।

इन्द्र : पार्क है तो क्या हुआ ?

मानसी : (**धीरे से**) उधर देखो न, इस पेड़ के नीचे एक आदमी बैठा है।

उनके खड़े होने के बाद लेखक अँधेरे में एक ओर आकर बैठ गया था।

इन्द्र : तो उससे क्या हुआ ?

मानसी : वह देखेगा तो ?

इन्द्र : देखे न, खूब अच्छी तरह देखे।

फिर से मानसी के कन्धे पर हाथ रखता है। मानसी हाथ हटाकर आगे बढ़ जाती है। हँसते-हँसते इन्द्र भी उसके पीछे-पीछे चला जाता है। लेखक सामने की ओर आ जाता है।

लेखक : इन्द्रजित् और मानसी। घूमते-घूमते वे बहुत दूर निकल आये हैं। बहुत दूर चले आये हैं ? या घूम रहे हैं...केवल घूम रहे हैं ? वे विवाह कर सकते हैं। फिर...वही चक्कर। एक-दो-तीन-चार-तीन-दो-एक। यह एक सवाल है। आवर्त्तन का सवाल। पूरे सवाल का उत्तर शून्य है, इसीलिए कोई पूरी संख्या नहीं लेता।

छोटी करके लेता है। उत्तर होता है जीवन। हर एक व्यक्ति का अलग-अलग तरह का जीवन।

कविता पाठ करता है।

: ये पथरीले नयन विगत के
रहें चतुर्दिक् पड़े, घूरते
बँधा छन्द में
यह अनादि का खेल...रहे चलता अनन्त तक।
बँधा प्रकाश अन्धकार के आवर्त्तन में
रक्तिम ध्वनि वह समय-काल की रहे गूँजती।
दिवा-रात्रि के खंड-खंड भी
एक सूत्र में हों अनुबंधित।
खो जाएँ अनजान दिशा में
भूत-भविष्य खोजते अपना ठौर-ठिकाना
मैं क्यों सोचूँ...वर्तमान तो मैं हूँ।
क्या मिलना है...सूक्ष्म हिसाब लगा, संख्या गिन
उन प्रश्नों को हल करने की चेष्टा करके
हल जिनका है असम्भाव्य ?
क्या करना है सपनों के वायवी तंतु से
आगत के आँचल को बुनकर ?
रात्रि-दिवस के मधुर छन्द का
ताल कभी भी नहीं कटेगा।
फिर क्यों करते व्यर्थ सोच
जंजाल जमा क्यों करते मन के देवालय में ?
बाँध सको तो बाँधो अपने हृत्-स्पन्दन को
समय-ताल के साथ...
नहीं कुछ भी हो तब परवाह।

अमल-विमल-कमल का प्रवेश।

लेखक : रुको, अभी नहीं, अभी भी समय नहीं हुआ है।

तीनों का प्रस्थान।

: बस एक मुहूर्त। इस मुहूर्त के आवर्त्तन को अस्वीकार करो... अर्थात् पूरे सवाल को अस्वीकार करो। एक मुहूर्त...बस, वर्तमान का एक मुहूर्त। यही तो जीवन है।
फिर भी भोला मन कर नहीं पाता इसे स्वीकार
निरन्तर ढोता ही जाता है, बोझिल उन अंकों का भार

खोजता उत्तर उन प्रश्नों का, जिनको हल करना दुःसाध्य।
मान लूँ कैसे मैं यह बात कि
उत्तर दीर्घकाल का शून्य
अल्प दिन की ही संख्या जोड़ रहा मैं बैठा सब दिन मूक
अभी तो लिखने को है शेष
प्रकृति के पात-पात पर शिशु-अक्षर में
क्षण-क्षण की, जीवन की भाषा
अभी बहुत है शेष !

कविता-पाठ के साथ-साथ लेखक पर प्रकाश कम होने लगता है। पीछे टेबुल और कुर्सियाँ। दरवाज़े के बाहर बेंच। तीव्र प्रकाश। कविता-पाठ पूरा करके लेखक चला गया है। अमल-विमल-कमल और इन्द्रजित् आकर उसी बेंच पर बैठे हैं। कपड़े टिपटॉप हैं, तनिक सतर्क और कठोर भंगिमा। घंटी बजती है। अमल उठकर कमरे में जाता है। चेयर पर बैठे अदृश्य ज्ञानी-गुणियों को नमस्कार करता है। अनुमति पाकर ही सामने की कुर्सी पर बैठता है। मूल प्रश्नों का मूक उत्तर देता चलता है। बाहर बेंच पर वार्तालाप चल रहा है।

विमल : कैबिनेट-मिनिस्टरों के नाम याद हैं ?
कमल : ऊँहूँ, मैंने वह सब नहीं देखा है।
विमल : ईयर बुक ले आते तो अच्छा होता।
कमल : क्या अच्छा होता ? कितना रटते ?
विमल : कितना बजा, इन्द्र ?
इन्द्र : बारह बीस।
कमल : ग्यारह बजे से हम लोगों को बुलाकर बैठा दिया और बाबू लोग आये बारह बजे इन्टरव्यू लेने।
विमल : यह सब दिखावा-भर है। आदमी तो पहले ही चुना जा चुका है।
कमल : कौन हुआ होगा ? अमल के पहले जो गया था, वही ?
विमल : क्या पता ! अपने राम नहीं हैं, इतना-भर जानते हैं।
कमल : अमल को गए कितनी देर हुई ?
इन्द्र : पाँच मिनट हुए होंगे।
विमल : क्या-क्या पूछते हैं बाबा ?

भीतर अमल उठता है। सामने दरवाज़े की ओर बढ़ता है, पर कुर्सी की डाँट खाकर दूसरी ओर से बाहर निकल जाता है।

कमल : बहुत टेकनिकल प्रश्न पूछते होंगे ?

विमल : नहीं। खास नहीं। असल में सही उत्तर पर उतना ध्यान नहीं देते जितना उत्तर देने के ढंग पर।

कमल : हाँ, कोई बात न जानने पर स्मार्टली 'आई डोंट नो' कह देने से चल जाता है।

इन्द्र : 'आई डोंट नो' स्मार्टली कहना बहुत कठिन होता है।

घंटी। विमल भीतर जाता है। ये दोनों बेंच पर पास-पास बैठते हैं। भीतर विमल का वैसा ही मूकाभिनय।

कमल : गला थोड़ा बैठ रहा है। तुम्हारे पास लौंग है ?

इन्द्र : ना।

कमल सिगरेट निकालता है।

: गला पकड़े है, सिगरेट पीओगे ?

कमल : ठीक नहीं होगा न ?

सिगरेट रख लेता है।

: तुम इसके पहले कितने इण्टरव्यू दे चुके हो ?

इन्द्र : पाँच।

कमल : तुम अच्छे हो। मेरा तो यह चौथा ही है। किसी की खबर मिली?

इन्द्र : हाँ, एक का रिग्रेट लेटर मिला है।

कमल : (**तनिक रुककर**) अगले महीने बाबूजी रिटायर कर रहे हैं!

इन्द्रजित् उत्तर नहीं देता। लेखक का प्रवेश। मुसकराते हुए इन्द्रजित् की बगल में बेंच पर बैठ जाता है। ज़रा देर सब चुप रहते हैं।

कमल : कितना बजा ?

इन्द्र : साढ़े बारह।

कमल : आपको कितने बजे बुलाया था ?

लेखक : ग्यारह बजे। मेरा एक और इण्टरव्यू आज ही साढ़े दस बजे पड़ गया। मैंने तो इसकी आशा ही छोड़ दी थी, पर एक चान्स ले लिया और क्या ?

कमल : आपको बुलाया तो नहीं न ?

लेखक : नहीं भाई, इसीलिए ज़रा हिम्मत हो रही है।

कमल : आप भाग्यवान हैं।

इसी बीच भीतर मूकाभिनय समाप्त करके विमल दूसरी ओर चला जाता है। घंटी। कमल भीतर जाता है।

लेखक : सिगरेट ?

इन्द्र : मैं नहीं पीता, थैंक्स।

लेखक : (**सिगरेट जलाता है**) क्या पूछ रहे हैं, कुछ पता चला ?

इन्द्र : ना। उधर से बाहर निकलने को कह रहे हैं।

लेखक : ऐसा ही यूज़अली करते हैं। भाई लोगों के पास प्रश्न का स्टॉक तो कम ही रहता है।

इन्द्र : आपका पहले वाला इंटरव्यू कैसा हुआ।

लेखक : खूब अच्छा नहीं हुआ। वहाँ होगा नहीं। नौकरी अच्छी है।

इन्द्र : इसीलिए इस इंटरव्यू को छोड़कर उसमें गये थे ?

लेखक : हाँ, पर जानते हैं, मुझे लगता है कि यह पॉलिसी ग़लत है। जब नौकरी पाना ही ज़रूरी है तब खराब नौकरी के लिए ही पहले इंटरव्यू देना चाहिए क्योंकि उनमें चान्स ज़्यादा रहता है।

इन्द्र : चलिए, इस बार तो दोनों ही हो गये।

लेखक : सो तो लग रहा है। नहीं तो इसी अफ़सोस में तीन रात नींद न आती। मुझे नौकरी की कितनी ज़रूरत है, आप नहीं जानते।

इन्द्र : नौकरी की तो सभी को ज़रूरत है।

लेखक : सो तो एकदम ठीक है। माने जेनरली सबको ज़रूरत होती है, पर मुझे पर्टिकुलरली है।...तो आपको सब बातें खोलकर ही बता दूँ। उधार करके मैंने एक फ्लैट भाड़े पर ले लिया है। कम भाड़े का सुविधाजनक फ्लैट तो मेरे लिए हर समय खाली नहीं पड़ा रहेगा। इसमें और कुछ चाहे न हो, पानी की कल अलग है।

इन्द्र : आपकी बात पूरी तरह समझ नहीं पाया ?

लेखक : माने...मैंने ब्याह कर लिया है और क्या ? बाबूजी राज़ी नहीं थे। इसी महीने नौकरी न मिली तो फ्लैट छोड़ देना पड़ेगा। मेरी हालत समझ रहे हैं ? उधार ले-लेकर कितने दिन मकान-भाड़ा दे सकता हूँ ?

कमल का इंटरव्यू हो चुकता है; वह बाहर निकल जाता है। इसके बाद अमल-विमल-कमल तीनों लौटकर इंटरव्यू लेने के लिए तीन कुर्सियों पर बैठते हैं। लेखक की बात पूरी होने पर

'अनामिका कला-संगम', कलकत्ता द्वारा मंचित तथा श्यामानन्द जालान द्वारा निर्देशित 'एवम् इन्द्रजित' (दिल्ली '७३) के दृश्य :

लेखक (श्यामानन्द जालान), अमल, कमल, विमल और इन्द्रजित (सत्यदेव दुबे)
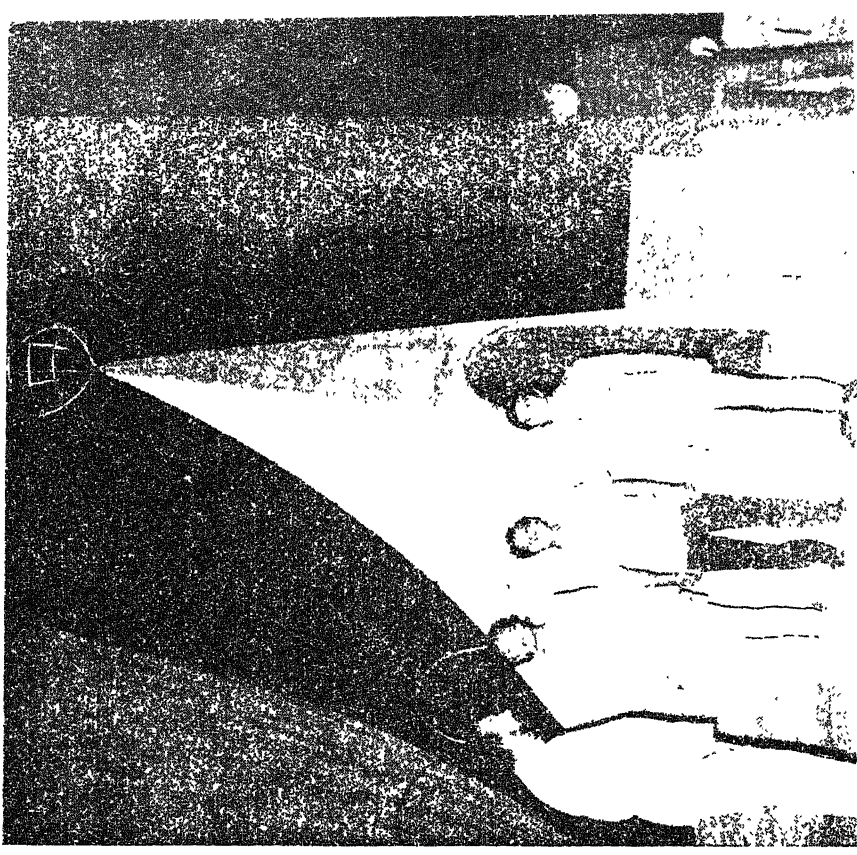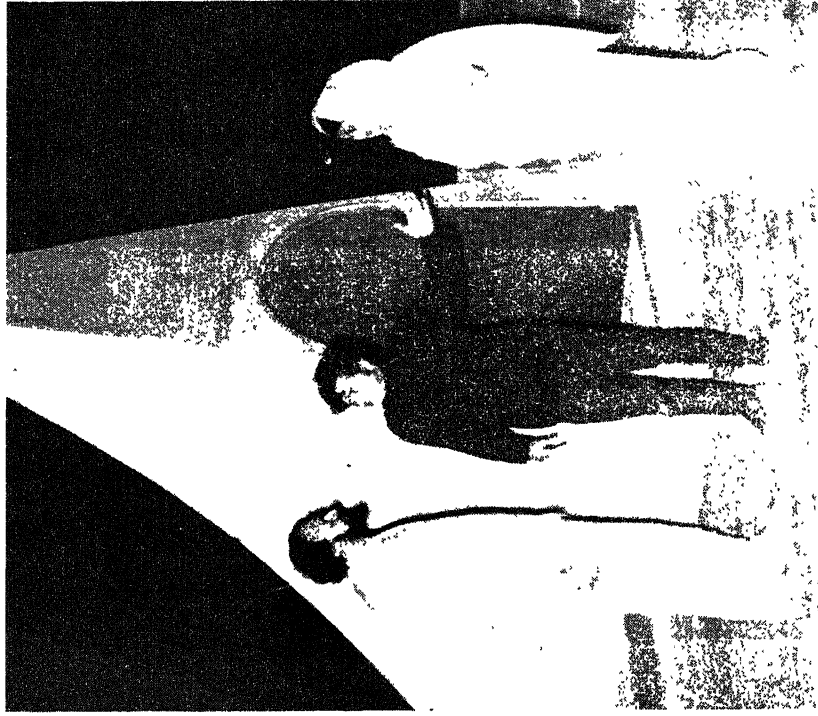
लेखक (श्यामानन्द जालान), इन्द्रजित् (सत्यदेव दुबे) श्रौर मानसी (चेतना तिवारी)

अमल घंटी बजाता है, इन्द्रजित् भीतर जाता है। इस बार चारों मूक अभिनय में भाग लेते हैं। लेखक कुछ देर तक बैठा सिगरेट पीता रहता है, फिर सिगरेट फेंककर सामने आ जाता है।

लेखक : अमल रिटायर करता है, उसका लड़का अमल नौकरी करता है। विमल बीमार हो जाता है, उसका लड़का विमल नौकरी करता है। कमल मर जाता है, उसका लड़का कमल नौकरी करता है। एवम् इन्द्रजित्...इन्द्रजित् का लड़का इन्द्रजित्। उधर फुटपाथ पर सात साल का एक लड़का हाथ में काठ का बक्स और गोद में साल-भर के लड़के को लिए खड़ा रहता है। उधर फुटपाथ पर एक लड़की खड़ी रहती है, नाम लीला। उधर आकाश सिंदूरी हो उठा है। वहाँ बैठी मानसी जीवन को प्यार करना चाहती है... बहुत सारे जीवन को। जाने-अनजाने, अज्ञात, अपरिचित, प्रकाश, अन्धकार। खण्ड-खण्ड टुकड़े अणु-परमाणु और सबको मिला दिया जाए तो चर्खी का ऊपर-नीचे जाना-आना।

कविता-पाठ करता है।

घूम रही है सृष्टि निरन्तर
आवर्तन में बँधी चल रही।
अस्त-व्यस्त आकाश
अचेतन-चेतन का सम्भार
ज्ञान-अज्ञान बीच प्रस्तार...
बाँधने को आतुर तत्काल
कर रहा हूँ मैं सतत प्रयास।

: मुझे इन लोगों की कहानी कहनी ही होगी—इनकी जीवनगाथा को मुझे नाटक में बाँधना ही होगा...

फिर कविता-पाठ।

किंतु भाषा तो है प्राचीन
कहानी क्षत-विक्षत, बलहीन
रोशनी की रेखा है क्षीण
सभी कुछ धुँधलाया-सा,
है प्रकाश दिग्भ्रान्त।
समाधि की जड़ता का यह नागपाश
है घेरे चारों ओर
वहीं पर मुझे जलाकर आग चिता की...करना है आलोक।

इन्द्रजित् साक्षात्कार करके जाता है। पुनः घंटी।

: घंटी बज रही है। एक परमाणु और च्युत हो गया है। वह एक और परमाणु को आमंत्रित कर रहा है...तीन परमाणु परस्पर पुकार रहे हैं। और भी ढेर-ढेर परमाणुओं से मिलकर बनी यह पृथ्वी घूम रही है और चक्कर काट रही है। और एक-पर-एक सेकंड, मिनट और घंटे चक्कर काट रहे हैं, काटे ही जा रहे हैं।

फिर घंटी बजती है। अमल-विमल-कमल धीरज खो-सा रहे हैं।

: घंटी बजी है। फिर बजेगी। फिर भी पृथ्वी है, फिर भी शताब्दी है। हमारी पृथ्वी, हमारी शताब्दी ! चर्खी जहन्नुम में जाए। सवाल भी जहन्नुम में जाएँ। हम हैं...अमल-विमल-कमल। एवम् इन्द्र-जित्, एवम् मैं। हम लोग हैं, अभी हैं, पृथ्वी पर हैं।

अमल-विमल-कमल ऊबकर उठ खड़े होते हैं। ज़ोर-ज़ोर से घंटी बजाते हैं किन्तु उनके ऊपर अँधेरा-सा हो आया है। लेखक पर तीव्र प्रकाश पड़ रहा है।

: मैं विभक्त, मैं अनुखंडित हूँ
चूर-चूर कण-कण से निर्मित जटिल इकाई एक
जी रहा, और जीऊँगा।
बूढ़ी सदी आज भी बैठी
सुनने को कुछ गान
खोलकर कान चतुर्दिक्।
ध्वंस-भ्रंश पृथ्वी है फिर भी
चली जा रही
अपराजिता...अजेय...निरन्तर !

अचानक प्रकाश बुझ जाता है। अँधेरे में यवनिका गिरती है। दबे किन्तु स्पष्ट सम्मिलित स्वर में कविता-पाठ चलता है।

बूढ़ी सदी आज भी बैठी
सुनने को कुछ गान
खोलकर कान चतुर्दिक्।
ध्वंस-भ्रंश पृथ्वी है फिर भी
चली जा रही
अपराजिता...अजेय...निरन्तर !

अंक : २

एक ढंग से चार टेबुल-कुर्सियाँ लगी हैं। एक खाली चौखट। उसके पीछे एक बड़ी कुर्सी और बड़ा टेबुल, टेलीफ़ोन। लेखक टेबुल-कुर्सी झाड़ रहा है...झाड़ क्या रहा है पंखों के झाड़न से ज़रा-ज़रा छूता जा रहा है, बस। उसके चेहरे या वस्त्र में कोई परिवर्तन नहीं है। झाड़ना पूरा करके सामने आता है।

लेखक : घर से स्कूल। स्कूल से कॉलेज। कॉलेज से दुनिया। दुनिया एक आफ़िस है। इसी ढंग का एक आफ़िस। यहाँ पर बहुत-से काम होते हैं, बड़े ज़रूरी-ज़रूरी भी। यहाँ बहुत-से लोग काम करते हैं। अमल-विमल-कमल एवम् इन्द्रजित्।

अमल और विमल का प्रवेश।

अमल : आठ-बावन वाली ट्रेन आज दस मिनट लेट आई।

विमल : सियालदह में आज ट्राम रुक जाने के कारण ट्रैफिक जाम हो गया।

कमल एवं इन्द्र का प्रवेश। अमल-विमल बैठते हैं।

कमल : नौ-तेरह की गाड़ी आज भी नहीं पकड़ पाया।

इन्द्र : दो बस छोड़नी पड़ीं, पैर रखने तक की जगह नहीं थी।

कमल और इन्द्र बैठते हैं।

अमल : (**विमल से**) लड़का कैसा है?

विमल : कुछ अच्छा है। (**कमलसे**) लड़की भरती हुई?

कमल : कहाँ हुई? (**इन्द्र से**) कलम मिली?

इन्द्र : ना। पाकेटमारी हो गई।

अमल : हरीश।

विमल : हरीश।

इन्द्र : हरीश।

अमल : (**जरा जोर से**) हरीश!

लेखक : कहिए।
अमल : एक गिलास पानी दो।
विमल : (ज़ोर से) हरीश।
लेखक : कहिए।
विमल : पान ले आओ, और ज़र्दा भी।
कमल : (ज़ोर से) हरीश।
लेखक : कहिए।
कमल : दो सिगरेट भी...कैंची।
इन्द्र : (ज़ोर से) हरीश।
लेखक : कहिए।
इन्द्र : यह चिट्ठी डाक में डाल देना।

लेखक अपनी जगह से हिलता नहीं। ये लोग भी उसे पैसा या चिट्ठी देते नहीं; यहाँ तक कि उसकी ओर देखा तक नहीं।

अमल : पाकेटमारों का तो ऐसा उपद्रव शुरू हुआ है कि बस, कुछ पूछो मत। उस दिन धर्मतल्ला की ट्राम में मौलाली का स्टॉपेज छोड़ते ही...।

विमल : होमियोपैथी दवा करना चाहते हो तो कन्हाई भट्टाचार्य को दिखाओ। हमारे बहनोई को क्रॉनिक डिसेन्ट्री हुई थी...।

कमय : तीसरी क्लास में भरती होगी और उसके लिए एडमिशन टेस्ट ! वाह...वा। अंग्रेज़ी, बॅगला और गणित, और उसके ऊपर से कहा कि वर्थ सर्टिफ़िकेट दिखाए बिना उम्र...।

अचानक लेखक बड़े रोब से बड़े टेबुल के पास जाता है। अमल-विमल-कमल एवम् इन्द्र तनिक उठकर माथा खुजलाते हुए बैठ जाते हैं। लेखक के कुर्सी पर बैठते ही टेलीफ़ोन की घण्टी बजती है।

लेखक : हैलो...हैलो...यस...यस...ऑर्डर...चालान...डिलिवरी फ़िफ़्टीन पर्सेण्ट...यस...यस...बाई।

'इन' से एक के बाद एक कई फ़ाइल लेकर 'आउट' में रखता है। फिर 'आउट' से 'इन' में। अमल आकर एक फ़ाइल पर सही करवाकर लौटता है, फिर विमल। फिर कमल। फिर इन्द्र। फिर फ़ोन।

लेखक : हैलो.. हैलो ...यस...यस...ऑर्डर .. चालान...डिलिवरी.. फ़िफ़्टीन पर्सेण्ट...यन...यस...बाई।

फिर 'इन' से 'आउट' में फ़ाइल डालता है।

अमल : हरीश।

विमल : हरीश।

कमल : हरीश।

इन्द्र : हरीश।

लेखक भीतर से आकर पुनः पंखवाला झाड़न लेकर अपने स्टूल पर बैठ जाता है। वे सब और ज़ोर से पुकारते हैं।

अमल : हरीश।

विमल : हरीश।

कमल : हरीश।

इन्द्र : हरीश।

लेखक उठकर एक-एक करके सबके पास जाता है।

लेखक : कहिए। कहिए। कहिए। कहिए।

अमल : विमल बाबू।

लेखक अमल की फ़ाइल विमल को देता है। विमल उसे रखकर लेखक को एक दूसरी फ़ाइल देता है।

विमल : कमल बाबू।

लेखक विमल की फ़ाइल कमल को देता है।

कमल : निर्मल बाबू।

लेखक : निर्मल बाबू तो रिटायर कर गये, सर!

कमल : ओ।...इन्द्रजित् बाबू।

लेखक कमल की फ़ाइल इन्द्रजित् को देता है।

इन्द्र : अमल बाबू।

अमल : विमल बाबू।

विमल : कमल बाबू।

कमल : इन्द्रजित् बाबू।

इस तरह तीन बार वही बात दुहराई जाती है। हर बार पहली बार से अधिक तीव्र गति से। अन्तिम बार लेखक फ़िरकी-सा नाचने लगता

है। घण्टी बजती है। लेखक भीतर जाता है। बड़े साहब का आदेश लेकर बाहर आता है।

अमल : हरीश।
विमल : हरीश।
कमल : हरीश।
इन्द्र : हरीश।
लेखक : बड़े साहब के लिए चाय लाने जा रहा हूँ, सर।
अमल : ओ !
विमल : ओ !
कमल : ओ !
इन्द्र : ओ !

लेखक चाय लेने जाने के बजाय घूमकर सामने आ जाता है।

लेखक : फ़ाइल के बाद चाय। फिर फ़ाइल। फिर टिफ़िन। फिर फ़ाइल। फिर चाय। फिर फ़ाइल। फिर ट्राम-बस-ट्रेन। इससे भी बड़े ऑफ़िस हैं...वहाँ फ़ाइल, फिर टी...फिर फ़ाइल। उसके बाद हिन्दुस्तान...फ़ियाट...स्टैण्डर्ड !
अमल : हैलो घोष, ओल्ड बॉय, आज क्लब जा रहे हो ?
विमल : न, आज घर जाना होगा। मिसेज़ ने आज अपनी पुरानी फ्रेंड्स को पार्टी दे रखी है।
कमल : हैलो राय, ओल्ड बॉय, गाड़ी गराज से निकली ?
इन्द्र : कुछ पूछो मत। क्लच प्लेट जल गई है। टैक्सी की भी इतनी बुरी हालत है, सुबह नौकर पूरे पैंतालीस मिनट लगाकर लौटा।

लेखक इस बीच भीतर बड़े साहब की टेबुल पर बैठता है। इनकी बातें पूरी होते ही फ़ोन।

लेखक : हैलो...हैलो...यस...बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर्स...कान्फ़रेंस, बजट... एनुअल रिपोर्ट...यस...यस...यस, बाई। मिस मलहोट्रा।

मानसी शार्टहेंड की कापी लिये आती है।

मानसी : यस सर।
लेखक : (**टहलते-टहलते**) विद रेफ्रेंस टू एबव लेटर इन कनेक्शन विद् द एबव मैटर, आई वुड रिक्वेस्ट यू...आई शैल बी ओब्लाइज्ड इफ़...फारवर्ड असएट योर अलिएस्ट कन्वीनिएंस...लैट व ऑफिस नो इम्मीजिएटली...फ़िफ़्टीन्थ अल्टीमो...ट्वन्टीफ़िफ़्थ

इंसटेन्ट...थैंकिंग यू, एश्योरिंग यू ऑफ अवर बेस्ट कोआप-रेशन...योर्ससिसीयरली...

टेलीफ़ोन सुनता है।

हैलो...यस...यस...बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर्स...कान्फरेंस...बजट, एनुअल रिपोर्ट...यस...यस...बाई...दैट्स ऑल मिस मलहोट्रा !

मानसी का प्रस्थान। लेखक निकलकर सामने आता है।

: दैट्स ऑल मिस मलहोट्रा। दैट्स ऑल लेडीज़ एंड जेंटिलमेन। दैट्स ऑल।

अमल : दैट्स ऑल।

विमल : दैट्स ऑल।

कमल : दैट्स ऑल।

सब कोरस में 'दैट्स ऑल' बोलते हैं। इन्द्र चुप रहता है। इन्द्र को चुप देखकर तीनों पहले रुक जाते हैं, फिर एक साथ ज़ोरों से हँस पड़ते हैं।

अमल : बक अप, ओल्ड ब्वॉय।

विमल : चियरिओ, ओल्ड ब्वॉय।

कमल : ऑल दा बेस्ट, ओल्ड ब्वॉय।

एक-एक करके इन्द्र की पीठ को थपथपाते हुए तीनों चले जाते हैं। इन्द्र बैठा रह जाता है। लेखक घूमकर पीछे जाता है और झाड़ू देने लगता है। इन्द्र अन्यमनस्क भाव से फ़ाइल देखता है।

लेखक : कुछ खोज रहे हैं, सर ?

इन्द्र : आँ ? हाँ, खोज रहा हूँ।

लेखक : क्या ?

इन्द्र : कुछ और।

लेखक : क्या ?

इन्द्र : आँ...नहीं, कुछ नहीं...कुछ नहीं। इसके सिवा और कुछ नहीं है ?

लेखक : मेरी समझ में ही नहीं आया, सर, कि आप क्या खोज रहे हैं ?

इन्द्र : हरीश, कुछ भी तो नहीं मिल रहा है। छोड़ो...हटाओ। कल सुबह यह फ़ाइल अमल बाबू के टेबुल पर रख देना, यह विमल बाबू को देना और यह कमल बाबू को। और इस पर बड़े बाबू का

दस्तख़त होगा। मैं कल नहीं भी आ सकता हूँ।

लेखक : आपकी तबियत खराब है, सर ?

इन्द्र : तबियत ? हाँ, कल तबियत खराब हो जा सकती है। अच्छा, मैं चला।

इन्द्र का प्रस्थान।

लेखक : अमल गया...विमल गया...कमल भी चला गया। केवल इन्द्रजित् बैठा सोच रहा था। इन्द्रजित् भी चला गया। मैं बैठा सोच रहा हूँ···मैं···।

मैं बैठा हूँ सोच रहा
बस सोच रहा हूँ।
मैं हूँ खंडित एक उपकथा
एक शून्य, जो अभरणीय है।
जीवन मेरा ऐसे ही विलीन हो रहा।
फिर भी अर्द्ध-चेतना लेकर
आती है क्यों मधुर मुखरता ?
चूर्ण हुई पृथ्वी के कण-कण
मिले धूल में
जिन्हें समय का सूप निरन्तर
फटक रहा है
सार और निस्सार देखने।
पर क्या जीवन-वीज छिपा...इन धूलि-कणों में ?
छोड़ो भी, क्या करना हमको
है भविष्य के बिखरे कण को
जोड़-बटोर सृजन करने की
इच्छा मन में पनपाने से।
मिट्टी अब यह बहुत पुरानी
सूना नभ...है व्यर्थ कल्पना
नये सृजन का स्वप्न देखना
सभी निरर्थक।
मैं बैठा हूँ सोच रहा
अब भी वैसे ही सोच रहा हूँ...
मनुज एक खण्डित अपूर्णता।
फिर भी मन क्यों बार-बार
है खोज रहा, है सोच रहा

उस पूर्ण मनुज की बात
आज भी ?

मौसी का प्रवेश।

मौसी : तू यहाँ बैठा है ? और खोजते-खोजते मेरे प्राण निकल गये। यहाँ बैठा क्या कर रहा है ?

लेखक : सोच रहा हूँ।

मौसी : इतना क्या सोचता रहता है, मैं भी तो सुनूँ !

लेखक : सोचता हूँ, हम लोग कौन हैं ?

मौसी : इसमें सोचने की क्या बात है ?तुम लोग तुम लोग हो और क्या ?

लेखक : ठीक ही तो है, हम लोग हम लोग हैं, यह तो मेरी अक़्ल में ही नहीं आया था। पर हम लोग क्या हैं ?

मौसी : लो, इसकी बातें सुनो। हमलोग क्या हैं ? तुम लोग सब हीरे की कनी जैसे लड़के हो। अच्छी तरह तुम लोगों ने इम्तहान पास किया है, अच्छी-अच्छी नौकरी पर लगे हो।

लेखक : ठीक कह रही हो, मौसी। हीरे की कनी। कनी माने टुकड़ा हूँ, यहाँ तक तो मैं भी पहुँच पाया था, पर हीरे की कनी हूँ यह खोपड़ी में ही नहीं घुसता था।

मौसी : किस खामख़याली में डूबे रहते हो ?

लेखक : सच खामख़याली ही तो है। तुमने फटाफट मेरे दो प्रश्नों का जवाब दे दिया...अब एक प्रश्न का और दो तो। पर यह उतना आसान नहीं है।

मौसी : क्या ?

लेखक : हम लोग क्यों हैं ?

मौसी : क्यों हैं, माने ?

लेखक : माने यही कि हम लोग हैं क्यों ?

मौसी : बलैया लूँ...! वाह रे...होंगे क्यों नहीं ? तुम लोगों के होने से किसका कलेजा जल रहा है, ज़रा मैं भी तो सुनूँ !

लेखक : उहुँ...हुआ नहीं। यह जवाब लॉजिकल नहीं हुआ।

मौसी : कौन तेरी लॉजिक का उधार खाये बैठा है ? जितनी हैं...सब अलक्षणी बातें ! ब्याह न करने से ही ऐसी फालतू बातें दिमाग़ में आती हैं।

लेखक : इसके बीच में ब्याह की बात कहाँ से टपक पड़ी ?

मौसी : नहीं ? ब्याह की बात क्यों आएगी ? आएगी तो यह सब क्यों, कौन, क्या की ! तू ब्याह क्यों नहीं करता, इसका जवाब मुझे दे ?

लेखक : बड़ा कठिन प्रश्न है मौसी। ब्याह क्यों करूँ, यही सोचते-सोचते तो प्राण निकले जा रहे हैं।

मौसी : लो भला, इसकी बातें सुनो। ब्याह क्यों करूँ। सभी करते हैं, फिर तू ही क्यों नहीं करता ?

लेखक : बस...मिल गया उत्तर। सभी करते है।
छीको क्यों तुम ? खाँसो क्यों तुम ?
मधुर-मधुर मुसकाओ क्यों तुम ?
लेते देख जम्हाई उसको
चुटकी तुरन्त बजाओ क्यों तुम ?
सब करते हैं, इसीलिए तुम भी करते हो !

मौसी : लो, यहाँ तो कविता शुरू हो गयी। मैं चली।

लेखक रास्ता रोक लेता है।

लेखक : कविता का सुन नाम दौड़कर भागीं तुम क्यों ?
ऊँचे स्वर में छेड़ रेडियो रखती तुम क्यों ?
और दाल में मुठ्ठी भर मिर्चा देती क्यों ?
सब करते हैं, इसीलिए तुम भी करती हो !

मौसी : लो, दाल में मुट्ठी-भर मिर्चा मैंने कब डाला ?

लेखक : समय हुआ यह देख दौड़ते ऑफ़िस क्यों तुम ?
छुरी से काटतीं सदा तरकारी क्यों तुम ?
देती क्यों हो तेल दूसरे के चरखे में ?
सब करते हैं, इसीलिए तुम भी करती हो !

मौसी : क्या पागलपन करते हो, मेरी तो समझ में नहीं आता। ब्याह हो जाता तो यह सारा पागलपन दो दिनों में रफूचक्कर हो जाता।

मौसी का प्रस्थान।

लेखक : विवाह। जन्म, विवाह और मृत्यु। जन्म के बाद विवाह, फिर मृत्यु। बहुत दिनों पहले मैंने एक बड़ी सुन्दर कहानी पढ़ी थी... पता नहीं आप लोगों ने पढ़ी है या नहीं। कहानी का अधिकाश तो भूल गया हूँ फिर भी...। एक राजकुमार था और एक राजकुमारी। बहुत-से झंझट-झमेलों के बाद...उसके बाद ही तो असल कहानी शुरू होती है...दोनों सुख से राजपाट भोगने लगे। राजपाट या घर-गृहस्थी क्या भोगने लगे, ठीक से याद नहीं। पर हाँ, दोनों बड़े सुख से रहने लगे, यानी इतने अधिक सुख से कि उसे लेकर कहानी और आगे बढ़ ही नहीं सकी।

नेपथ्य से शंखध्वनि। मंच के बीच में मानसी सिर पर साड़ी का पल्ला रखे सलज्जा नववधू-सी आकर खड़ी होती है।

: विवाह। एक पुरुष और एक नारी। दम्पति...जम्पति...जाया-पति। सीधे-सादे ढंग से कहने का मतलब...दूल्हा-दुल्हन !

अमल का प्रवेश...नये विवाह का-सा संकोच।

अमल : ज़रा सुपारी देना तो।

मानसी : आले पर रखी है। ले लो न !

अमल : न जाने कहाँ रखी है, मुझे नहीं मिलेगी।

मानसी : अहा, नहीं मिलेगी। इतने दिनों तक कौन खोजकर दिया करता था, ज़रा सुनूँ ?

अमल : इतने दिनों कोई मेरा था क्या ?

मानसी : चुप रहो, कोई सुन लेगा।

अमल : सुन लेगा...तो फिर चुपचाप कानों में बोलूँ ?

मानसी : क्या करते हो ? जाओ, तुम इस कमरे से जाओ। न जाने कौन कब आ पड़े !

अमल का प्रस्थान।

लेखक : दम्पति...जम्पति...जायापति...माने इसके बाद पति-पत्नी।

मानसी का घूँघट खिसक चुका है, स्वाभाविक गृहिणी हो गयी है। विमल का प्रवेश। हाथ में अखबार है...कुर्सी पर बैठकर पढ़ना शुरू करता है। मानसी पास आती है।

मानसी : कोई खास खबर है ?

विमल : एँ ?...नहीं। वही सब...।

मानसी : मैंने सोचा शायद दुनिया में बहुत बड़ी बात हो गयी है।

विमल : क्यों, क्या हुआ ?

मानसी : कब से अखबार लिए बैठे हो, सिर तक नहीं उठाया है तुमने।

विमल : नहीं...ऐसे ही ज़रा देख रहा था (**अखबार रखकर**) हाँ बोलो, क्या कह रही थीं ?

मानसी , खास कुछ नहीं। आज शाम को क्या कर रहे हो ?

विमल : क्यों ?

मानसी : ऐसे ही। ज़रा बाहर निकलने का मन था।

विमल : पर...आज तो मेरे ऑफ़िस में एक आदमी रिटायर कर रहे हैं सो फ़ेयरवेल मीटिंग है। कहाँ चलना चाह रही थीं ?

मानसी : नहीं, कहीं नहीं। दाढ़ी नहीं बनाओगे ? नौ बजा है।

विमल : नौ ? माई गॉड !

विमल का प्रस्थान।

लेखक : दम्पति...जम्पति...जायापति, माने मियाँ-गीवी।

कमल का प्रवेश।

मानसी : अच्छा, तुम्हारा दिमाग़ ठीक है या नहीं ? मुन्ना को बुखार था, देखकर गये थे, फिर भी रात दस बजे लौटने की फ़ुर्सत मिली ?

कमल : बार्ली ले आया हूँ। यह लो।

मानसी : हाँ, ले तो आ रहे हो बार्ली, पर रात के दस बजे। पहले की ले आई ख़त्म नहीं हो गई ? कुछ ख़याल था कि मुन्ना क्या लेगा ?

कमल : एकदम ख़त्म हो गयी थी ?

मानसी : जो ज़रा-बहुत बची थी वही जोड़-बटोरकर बना दी थी।

कमल : अब कैसा है ?

मानसी : निन्यानवे है। मुसम्मी नहीं लाए ?

कमल : यहाँ का फलवाला चोर है, रुपये में चार देता है। कल बाज़ार से ला दूँगा।

मानसी : चलो, हाथ-मुँह धोओ। मैं खाना परोसती हूँ।

दोनों का अलग-अलग दिशाओं में प्रस्थान।

लेखक : दम्पति...जम्पति...जायापति...दूल्हा-दूल्हन, ...पति-पत्नी... मियाँ-बीवी...अमल-विमल-कमल एवं इन्द्रजित्।

इन्द्रजित् का प्रवेश।

लेखक : अरे इन्द्रजित्- ?

इन्द्र : अरे तुम ! कितने ताज्जुब की बात है। तुमसे यहाँ ऐसे मुलाक़ात हो जायेगी, सो तो सोचा ही नहीं था।

दोनों ज़ोर से हाथ मिलाते हैं।

लेखक : ओ, कितने सालों बाद तुमसे भेंट हुई।

इन्द्र : हाँ, सात साल हुए होंगे।

लेखक : इतने दिनों तुम कहाँ थे ? भोपाल में ही ?

इन्द्र : नहीं। भोपाल की नौकरी तो सालभर बाद ही छूट गयी। उसके बाद बहुत जगह घूमता रहा। बम्बई, जालन्धर, मेरठ, उदयपुर...बदली वाली नौकरी मिल गयी है, यहाँ से वहाँ चक्कर काट रहा हूँ।

लेखक : यही तो तुम चाहते थे।

इन्द्र : यही चाहता था ?...पता नहीं।

लेखक : वाह ! वह पेंगुइन, कंगारू, एस्किमो...सब भूल गये ?

इन्द्र : ओ ! सरल भूगोल परिचय ? तुम्हें अभी तक याद है ?

लेखक : क्यों, तुम्हें भूल गया ?

इन्द्र : नहीं, भूला तो नहीं हूँ, पर लगता है अब दृष्टि बदल गयी है। उस दिन पाकिट में एक रुपया बारह आने की पूँजी लेकर हावड़ा छोड़ देता तो कैसा लगता, पता नहीं। आज लगता है, भूगोल से बाहर पृथ्वी नहीं है, कम-से-कम इस देश में तो नहीं ही।

लेखक : विदेश में ?

इन्द्र : विदेश तो गया नहीं, वहाँ की बात कैसे कहूँ ? मलाया की एक नौकरी के लिए इंटरव्यू दिया था पर मिली नही।

लेखक : मिलने से जाते ?

इन्द्र : हाँ, क्यों नहीं ?

लेखक : लगता है अभी शादी नहीं की।

इन्द्र : समय ही कहाँ मिला ? और तुमने ?

लेखक : बस, एक-सी ही गति है।

इन्द्र : और सबका क्या हालचाल है ?

लेखक : सब माने ?

इन्द्र : अमल-विमल-कमल।

लेखक : सब ठीक ही हैं, नौकरी कर रहे हैं, गृहस्थी चला रहे हैं।

इन्द्र : तुम्हारी बातों से तो नहीं लगता कि सब ठीक हैं ?

लेखक : नहीं...ठीक ही है। पर मुझे उनसे कोई ईर्ष्या नही है। तुम्हें होती है ?

इन्द्र : क्या जाने ? पता नहीं।

लेखक : मानसी का क्या हालचाल है ?

इन्द्र : मानसी...? अरे हाँ, तुम तो उसे मानसी ही कहते हो न ! ठीक है।

लेखक : कहाँ है ?

इन्द्र : **(हँसकर)** माने, जानना चाहते हो न कि शादी की है या नहीं ? नहीं, नहीं की। हजारी बाग में एक स्कूल में नौकरी करती है।

लेखक : **(ज़रा देर रुककर)** बस, और कोई समाचार नहीं ?

इन्द्र : और क्या समाचार जानना चाहते हो ?

लेखक : तुम जो भी बताना चाहो।

इन्द्र : **(हँसकर)** सचमुच और कोई समाचार नहीं है। बतलाने लायक दुनिया में कुछ घटता ही कहाँ है ? मैं नौकरी करता हूँ...वह नौकरी करती है। मैं चिट्ठी लिखता हूँ...वह जवाब देती है। साल में एक बार मुलाक़ात होती है। हम दोनों प्लान करके छुट्टी

लेकर कलकत्ता में भेंट करते हैं। बस, इतना ही तो समाचार है।

लेखक : तुम लोग विवाह करोगे ?

इन्द्र : नहीं ही करूँगा, ऐसा तो तै नहीं किया है पर हाँ, अभी तक किया नहीं है, यह सच है।

लेखक : विवाह कर क्यों नहीं डालते ?

इन्द्र : पता नही। मैं इसका कोई कारण नहीं बतला सकता। संभव था पास होने के बाद बिना कुछ सोचे-विचारे एक दिन कर लेता तो कर लेता। तब तो सोचता-विचारता नहीं था। वहाँ उसी मैदान में बैठकर न जाने कितनी बातें की हैं, प्लान किया है। और ऐसे ही एक दिन तर्क करते-करते न जाने क्या कैसे हो गया कि...।

मानसी का प्रवेश। आकर पास बैठ जाती है, इन्द्र भी उसके पास बैठता है लेखक एक कोने में अँधेरे में चला जाता है।

मानसी : इन्द्र, मुझसे नहीं होगा।

इन्द्र : क्या नहीं होगा ?

मानसी : तुम क्यों इस तरह ज़िद कर रहे हो ? मुझे कुछ समय दो।

इन्द्र : समय ! समय ! समय ! आज छः महीने से बस तुम एक ही बात कह रही हो...समय दो।

मानसी : मैं क्या करूँ, तुम्हीं बतलाओ। तुम्हारे जितना साहस मुझमें नहीं है।

इन्द्र : साहस मत कहो। कहो कि इच्छा नहीं है।

मानसी : इच्छा होने से क्या सब-कुछ किया जा सकता है ?

इन्द्र : सब-कुछ की बात मैं नहीं जानता, पर हाँ, विवाह किया जा सकता है, इतना जानता हूँ।

मानसी : मर्द लोग जो कुछ...।

इन्द्र : बस-बस, मुझे पता है। यही न कि मर्द जो कुछ कर सकते हैं औरतें नहीं कर पातीं। औरतें खाली सोच सकती हैं, मान सकती हैं और समय चाह सकती हैं।

मानसी : क्यों बेकार गुस्सा होते हो ?

इन्द्र : (**रुककर**) नहीं, गुस्सा नहीं हो रहा हूँ !...कल मैं भोपाल चला जा रहा हूँ, इसलिए आज इस बारे में जानना चाहता था।

मानसी : भोपाल चले जाने से ही सब-कुछ शेष हो जाएगा ?

इन्द्र : (**रुककर**) पता नहीं।

मानसी : इन्द्र !

इन्द्र : मुझे कुछ पता नहीं मानसी, सच कहता हूँ।

मानसी : (धीरे) तब फिर पहले पता कर लो। पहले भोपाल जाकर देखो कि क्या होता है।

इन्द्र : अब कौन गुस्सा हो रहा है ?

मानसी : यह गुस्सा नहीं है, इन्द्र। मैं बहुत सोच-समझकर कह रही हूँ... ज़िन्दगी बच्चों का खिलवाड़ नहीं है।

इन्द्र देखता रह जाता है। अंधकार। मानसी चली जाती है। पुनः लेखक पर प्रकाश पड़ता है। इन्द्र उठकर पास आता है।

इन्द्र : हम दोनों जीवन को लेकर बच्चों का खिलवाड़ नहीं कर सके। बहुत सोच-विचार किया। बहुत हिसाब-किताब किया। अभी भी करता रहता हूँ। लगता है सचमुच कहीं जीवन बच्चों का खिलवाड़ ही न हो उठे। जीवन...महामूल्यवान जीवन! अखबार पढ़ते हो ?

लेखक : हाँ, बीच-बीच में।

इन्द्र : न जाने कब एक खबर पढ़ी थी। अमरीका के सारे अणु-अस्त्र और कुछ नहीं, स्विच का खिलवाड़-भर है। कहीं भूल से आणविक युद्ध न शुरू हो जाये इसीलिए स्विच में बहुत तरह के ऑटोमैटिक इंटरलिंकिंग सिस्टम रखे गये हैं...वैसे ही जैसे रेल के सिगनल में होते हैं। मान लो, कभी भूल से कुछेक एटम और हाइड्रोजन बम के गिरने से सारी पृथ्वी नष्ट हो जाए, तो ? सोच सकते हो ?

लेखक : तुम कहना क्या चाहते हो ?

इन्द्र : खास कुछ नहीं। इसी मूल्यवान जीवन की बातें जिसे लेकर इतनी विवेचना, इतना हिसाब-किताब होता रहता है !

लेखक : मतलब यह कि तुम तो विवाह करना चाहते हो पर मानसी ही मन नहीं तय कर पा रही है ?

इन्द्र : नहीं, ऐसी बात नहीं है, कम-से-कम फ़िलहाल तो नहीं। हर समय क्या कोई एटमबम की बात सोच सकता है ? रात में तारों-भरे आकाश की ओर यदि निहारो और किताबों में पढ़े ज्योतिष-शास्त्र की बात यदि सोचो तो सारे सौर-जगत् में इस छोटी-सी पृथ्वी का कुछ महत्त्व लगता है ? कीड़े-मकोड़ों जैसे इन मनुष्यों का कोई मूल्य है ? फिर भी यही बात यदि हर समय सोची जाए तो क्या ज़िन्दा रहा जा सकता है ?

लेखक : फिर भी तो तुम सोचते रहते हो ?

इन्द्र : क्या करूँ, सोचे बिना रहा नही जाता। फिर अपने जीवन को बहुत विराट बनाकर भी मैं सोचता हूँ। मैं भूल जाता हूँ कि महाकाल के निकट मेरा जीवन क्या है...एक पल मात्र ही तो! मैं यह भी भूल जाता हूँ...इस अखिल विश्व ब्रह्माण्ड में मेरा अस्तित्व धूल के एक कण से अधिक महत्त्वहीन है। वरन् मैं सोचता हूँ कि इस दुनिया में मेरे जीवन की तरह मूल्यवान और कुछ है ही नहीं।

लेखक : इस तरह भूलना भी प्रकृति का वरदान समझो...मनुष्य इसी हथियार के भरोसे बच पाता है।

इन्द्र : यह हथियार पूरा नही पड़ता। ज्ञानवृक्ष का फल! यह तारों-भरा आकाश सब गोलमाल कर देता है, सब गोलमाल कर देता है। तुम, मैं, मानसी, कमल, विमल, अमल...

वाद्यसंगीत में इन्द्र का स्वर डूब जाता है। सारे मंच पर अंधकार हो जाता है। प्रकाश का एक पुंज लेखक एवं इन्द्र के ऊपर पड़ता है और दूसरी क्षीण रेखा पीछे खड़ी मानसी के ऊपर। दूसरी ओर हलके-से प्रकाश में अमल, विमल और कमल की छाया-मूर्तियाँ। वाद्यसंगीत एक गम्भीर कविता-पाठ के स्वर में परिणत होता है।

कंठस्वर : धरती मिलती है सागर में
औ' सागर जा दूर क्षितिज में लीन हो रहा
उस विस्तीर्ण सौर-मंडल में
इस पृथ्वी का तुच्छ ठिकाना...
कहाँ खो गया?
पृथ्वी का अस्तित्व...दो क्षणों का यह जीवन
क्या है?...एक विलास मात्र
इस सतत उच्छरित जीवनधारा
और काल की अनंत गति का।
जीवन का इतिहास, क्षणिक
आकस्मिक संयोजन भर तो है।
धरती का यह अर्थहीन नव-स्पंदन
केवल दान कुछेक क्षणों का ही तो।
उस अनन्त गणना में मैं हूँ
मात्र धूल के कण-सा

संज्ञाहीन, तुच्छ, साधारण।
ठीक युधिष्ठिर ने समझा था
बक-रूपी उन धर्मराज के प्रश्नों को...।
जीवन का मर्म वही था।
जीवन की इस सतत प्रवाहित
उच्छल धारा की गति को
है मृत्यु कर रही बेताला...
यह कहना कितनी बड़ी भूल है ?
एक मृत्यु क्या कर सकती है
प्रखर प्राणधारा को बाधित ?
फिर भी मानव मूढ़
सोचता इसी तरह है।
मानव के इतिहास ग्रन्थ
नहीं लिखी है गयी
और कोई घटना विस्मयकर इससे।

स्तब्धता। एकदम अँधेरा हो जाता है...केवल मानसी पर पड़ने वाला प्रकाश थोड़ा और तीव्र हो जाता है।

मानसी : फिर भी मैं हूँ कीट अधम, बेशर्म।
तुष्ट चतुर्दिक् फैले जीवन तन्तु-जाल।
विस्मृत कर बैठी मैं गहरी जटिल समस्या
गूढ़ तत्व आलोचन सब-कुछ।
किन्तु अनन्त घोषणा करता
उद्धत प्राणशक्ति से भरकर
तुच्छ धूलकण के मुहूर्त की।

मानसी पर पड़नेवाला प्रकाश बुझ जाता है। फिर धीरे-धीरे प्रकाश होता है तो मंच पर बीच में पाद-प्रदीप के पास लेखक अकेला दिखलाई पड़ता है।

लेखक : प्राणों का उद्धत अधिकार। पर किसके प्राण ? इन्द्रजित्, मानसी, मैं, और कौन ? अमल-विमल-कमल।

अमल का प्रवेश।

अमल : अरे कवि, क्या हालचाल है ?

लेखक : ठीक।

अमल : अभी भी लिखते-विखते हो या छोड़ दिया ?
लेखक : बीच-बीच में लिख लेता हूँ।
अमल : तुम्हारा वह नाटक पूरा हुआ ?
लेखक : ना। तुम्हारा क्या हालचाल है ?
अमल : अच्छा नहीं है भाई।
लेखक : क्यों, क्या हुआ ?
अमल : अरे, इस ए० बी० सी० कम्पनी में नौकरी करके तो ज़िंदगी ही बरबाद हो गई। सीनियर असिस्टेंट की पोस्ट पर काम करते छः साल हो गये...छः साल का अनुभव मुझे और असिस्टेंट मैनेजर की पोस्ट पर ले आये बाहर से किसी एक मद्रासी को !
लेखक : अच्छा ?
अमल : बस पूछो मत। आजकल मद्रासियों का ही बोलबाला है। बंगाली बंगालियों के ही हाथों मरेंगे। मैंने ही भूल की, उस समय पी० आर० क्यू० कम्पनी का ऑफ़र नहीं लिया। सोचा, यहाँ भी तो प्रमोशन हुआ जा रहा है क्यों फालतू में इधर-उधर...?सच कवि, जीवन से विरक्ति हो गयी।
लेखक : घर में सब लोग मज़े में हैं ?
अमल : मज़े में क्या हैं ! ऐसी हालत में कहाँ तक चैन से रहा जा सकता है ?छः साल हो गए...सीनियर असिस्टेंट के सीनियर असिस्टेंट। अच्छा भाई चलूँ, ज़रा जल्दी है।

अमल का प्रस्थान। विमल का प्रवेश।

विमल : अरे कवि, क्या हालचाल है ?
लेखक : ठीक।
विमल : अभी भी लिखते-विखते हो या छोड़ दिया ?
लेखक : बीच-बीच में लिखता हूँ।
विमल : तुम्हारा नाटक पूरा हुआ ?
लेखक : ना। तुम्हारा क्या हालचाल है ?
विमल : ठीक ही है। हम लोगों के फ़र्म को हैवी इंजीनियरिंग में अच्छा कॉन्ट्रैक्ट मिला है। रांची ट्रांसफर हो गया हूँ, कल जा रहा हूँ।
लेखक : फ़ैमिली को ले जा रहे हो ?
विमल : हाँ, क्वार्टर दिया है। और फ़ैमिली माने तो खाली मिसेज़ ! लड़के को ला मार्टीनियर में भरती करा दिया है। रांची में कौन जाने कैसा स्कूल मिले।
लेखक : तो मतलब अच्छे ही हो ?

विमल : हाँ, चलता है और क्या ? अच्छा भाई चलूँ। ज़रा न्यू मार्केट जाना है...कुछ लास्ट मिनट शापिंग करनी है। तुम उधर जाओगे क्या ? तो चलो, लिफ़्ट दे सकता हूँ।

लेखक : नहीं भाई, मुझे अभी नहीं जाना है।

विमल : अच्छा भाई, सो लाँग !

विमल का प्रस्थान। कमल का प्रवेश।

कमल : अरे कवि, क्या हालचाल है ?

लेखक : ठीक।

कमल : अभी भी लिखते-विखते हो ?

लेखक : ना।

कमल : हाँ भाई, इतने झमेलों में ऐसी हॉबी बनाये रखना बड़ा मुश्किल होता है। मैं भी तो माउथ-ऑर्गन बजाया करता था पर कहाँ चालू रख सका ? खराब होकर पड़ा है, ठीक भी नहीं करवा पाया। कैसी महँगाई है। हाँ, तुमने इंश्योरेंस करवाया है ?

लेखक : ना।

कमल : कहते क्या हो ? नहीं भाई, यह तो ठीक बात नहीं है। एक सिक्युरिटी तो चाहिए। ज़िंदगी के बारे में कौन क्या कह सकता है ? इंश्योरेंस करवा डालो—कम-से-कम दस हज़ार का...।

लेखक : किसके लिए इंश्योरेंस करवाऊँ ?

कमल : क्यों, ब्याह नहीं किया तुमने ?

लेखक : ना।

कमल : खैर, पर करने में क्या देर लगती है ? और फिर करने के साथ ही बाल-बच्चे। ज्यादा उम्र में बीमा करवाने से प्रीमियम रेट बहुत बढ़ जाता है। फिर अपनी बुढ़ौती में भी तो कुछ सहारा चाहिए। कितने का करवाओगे, बता दो, मैं सब इन्तज़ाम करवा दूँगा।

लेखक : तुमने क्या नौकरी छोड़ दी ?

कमल : दिमाग़ खराब हुआ है ? आजकल के ज़माने में कोई नौकरी छोड़ता है ? पर हाँ, एक बिज़नेस की चेष्टा में हूँ। यदि सब हिसाब-किताब ठीक बैठ गया तो नौकरी-वौकरी, बीमा की दलाली-फलाली सब छोड़ दूँगा। अच्छा, ऐसा कोई फाइनेंशयर तुम्हारी निगाह में है जो करीब पच्चीस हज़ार रुपये लगा सके ? बड़ी अच्छी स्कीम है ! फ़ॉर्टी परसेंट प्राफ़िट गारंटीड। मैं सारा हिसाब फैलाकर बता दे सकता हूँ।

लेखक : ऐसा कोई मेरी जानकारी में तो नहीं।

कमल : चिंता मत करो, कोई-न-कोई मिलेगा ही। ऐसी सोना उगलने वाली स्कीम है कि रुपया लगाने वालों की कमी न होगी। अच्छा भाई, चलूँ। हाँ, तुम इंश्योरेंस की बात सीरियसली सोच देखो।

कमल का प्रस्थान।

लेखक : **कविता पाठ करता है)**—किंतु अनन्त घोषणा करता
उद्धत प्राणशक्ति से भरकर
तुच्छ धूलकण के मुहूर्त की।

: ये सब छोटे-छोटे कण हैं—इनकी दैनन्दिन जीवन की अनेक छोटी-मोटी घोषणाओं का इतिहास मेरा नाटक है।
अमल-विमल-कमल। एवम् इन्द्रजित्।

इन्द्र का प्रवेश।

: तुम्हारी कौन-सी अनन्त घोषणा है, इन्द्रजित्?

इन्द्र : घोषणा, माने?

लेखक : कुछ नहीं। हाँ, मानसी से भेंट हुई?

इन्द्र : नहीं, हुई नहीं है पर होगी। उसी मैदान में।

इन्द्र पीछे चला जाता है।

लेखक : उस मैदान में। उसी घने पेड़ के नीचे।
बीते दिन की अनगिन बातें
तृण तरु-तरु में गुँथी हुई हैं।
जीवन में आगमन
प्रथम यौवन का
गुपचुप मन की बातें
उस कोने में रमी हुई हैं।

: इन्द्रजित् और मानसी। वे फिर से वहाँ बैठेंगे, बातें करेंगे।

दिन पर दिन बीते जाते हैं
मास-वर्ष की रगड़ें खा-खा
बात पुरानी पड़ जाती है
वही बात फिर-फिर आती है।
फिर भी आओ, उस कोने में
हरी-हरी दूर्वा पर बैठें
इधर-उधर की बातें करते
हम-तुम दोनों कुछ क्षण काटें

मानसी आकर इन्द्रजित् की बगल में बैठ जाती है। बातचीत शुरू होती है। लेखक हट जाता है।

इन्द्र : लगता है अब बहुत दिनों तक तुमसे मुलाक़ात न होगी।
मानसी : क्यों ?
इन्द्र : शायद बाहर चला जाऊँ।
मानसी : बाहर माने ? बाहर ही तो हो।
इन्द्र : और दूर।
मानसी : कहाँ ?
इन्द्र : लंदन।
मानसी : लंदन ? कोई नौकरी मिली है ?
इन्द्र : नहीं, नौकरी तो नहीं मिली है, पर अपने-आपको इस प्रवाह में छोड़ देने लायक रुपया जुट गया है। एक इंजीनियरिंग कोर्स में एडमिशन ले लिया है। पासपोर्ट वग़ैरह भी तैयार हो गया है। वहाँ पहुँचकर कोई नौकरी खोज लूँगा।
मानसी : न मिली तो ?
इन्द्र : मिल जाएगी।
मानसी : नहीं ही मिली तो ?
इन्द्र : कुछ-न-कुछ तो मिलेगा ही। अकेले पेट की कितनी चिन्ता ?
मानसी : इस तरह तुम कब तक बहते रहोगे ?
इन्द्र : जब तक सम्भव होगा।
मानसी : तुम्हें यह सब अच्छा लगता है ?
इन्द्र : उहूँ !
मानसी : तब ?
इन्द्र : तब क्या ?
मानसी : कहीं एक जगह टिककर रहते क्यों नहीं ?
इन्द्र : टिककर रहने से ही अच्छा लगने लगेगा ?
मानसी : पता नहीं।
इन्द्र : मुझे भी नहीं पता, मानसी...सच पूछो तो 'अच्छा' शब्द का कोई अर्थ ही नहीं होता। अच्छा लगने का प्रश्न ही नहीं उठता।
मानसी : (**तनिक रुककर**) इन्द्र !
इन्द्र : बोलो।
मानसी : मुझसे शादी हो जाती तो तुम स्थिर होकर बैठ पाते ?
इन्द्र : पता नहीं। आज तो कुछ भी नहीं कह सकता। एक ज़माना था

जब इस सम्बन्ध में कुछ कहने की स्थिति में था...।

मानसी : तुम्हें मेरे ऊपर गुस्सा नहीं आता ?

इन्द्र : ना। पहले आता था पर अब नहीं। और फिर ब्याह करने से क्या होता, यह कौन जानता है। सम्भव था हमारी यह मित्रता समाप्त ही हो जाती।

मानसी : और यह भी तो हो सकता था कि इससे भी घनिष्ठ एक दूसरी मैत्री का सम्बन्ध बन जाता ?

इन्द्र : पता नहीं मानसी, कुछ पता नहीं। मैंने इस सम्बन्ध में बहुत सोचा है, मन-ही-मन न जाने कितनी उधेड़-बुन की है, पर सारी बातों का उत्तर कहाँ दे पाया हूँ। अब तो न जाने कैसी क्लांति घेरे ले रही है। बहुत-सा तर्क-वितर्क भी अच्छा नहीं लगता। कुछ करने का मन भी नहीं करता। केवल क्लांति और क्लांति ! बस, मन करता है, सो रहूँ। **(ज़रा देर मौन रहता है)**

मानसी : चलो, थोड़ा घूमें।

इन्द्र : चलो।

दोनों उठकर चले जाते हैं। थके कदमों लेखक का प्रवेश।

लेखक : क्लांत-क्लांत...मैं बहुत क्लांत हूँ।
व्यर्थ प्रश्न यों ही रहने दो।
मिटती घनी मूक छाया में
मुझे अभी केवल सोने दो।

क्या करना है बातों का अम्बार लगाकर ?
और बताओ क्या मिलना है
बीज तर्क के यूँ फैलाकर ?
मैं विवेक से ऊब गया हूँ
आज बहुत ही क्लांत हुआ हूँ।
सूने निर्जन की छाया में
मुझे अकेला सोने दो, बस।
ज्ञात मुझे इस धरा-गर्भ में
छिपा अभी भी जाने क्या-क्या
पर मेरी संधान-साधना क्लांत हुई है।
धरती की जड़ता का बोझा...
अभी और है

पर मेरी प्रयत्न करने की
शक्ति आज तो क्लांत हुई है।
मृत्यु तीर पर
जीवन की आशा में बैठी
सतत प्रतीक्षा क्लांत हुई है

जाओ, अपने प्रश्न साथ ले
तर्क-विवेक सभी ले जाओ।

सोने दो मुझको
छाया के घोर गम्भीर लोक में
मुझको सोने दो...मैं बहुत क्लांत हूँ।

अंक : ३

एक टेबुल के तीनों ओर बैठे अमल, विमल और कमल ताश खेल रहे हैं। तीनों अपनी-अपनी बात कहकर पत्ते चलते और तीन पत्तों के बाद हाथ जीतकर ताश समेटते हैं।

अमल : सन् १९४७ की १५ अगस्त को भारत स्वाधीन हुआ।

विमल : ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पंजों से हम मुक्त हुए।

कमल : अब हमें एक स्वाधीन, स्वावलम्बी समाज का निर्माण करने के लिए प्रस्तुत होना है।

अमल : पूँजीवादी व्यवस्था को नष्ट होना ही होगा।

विमल : फ़ासिज़्म संसार को विनाश के पथ पर ले जाता है।

कमल : कम्यूनिज़्म मनुष्य के स्वातंत्र्य-बोध को नष्ट कर देता है।

अमल : डिमोक्रेसी के द्वारा जल्दी कुछ करना संभव नहीं होता।

विमल : डिक्टेटरशिप हर देश, हर युग में अभिशाप रही है।

कमल : आम जनता हर व्यवस्था में दुःख पायेगी।

अमल : सारे देश में अव्यवस्था और अन्याय का साम्राज्य है।

विमल : इस सरकार के किये कुछ भी न होगा।

कमल : गद्दी पर बैठकर सब एकसे हो जाते हैं। यहाँ तो सब धान बाईस पसेरी !

अमल : राजनीति गंदी चीज़ है।

विमल : अपनी तो नक्कारख़ाने में तूती की आवाज़ है। मेरा हाल क्या पूछते हो ?

कमल : मैं ज़िन्दा बचूँगा, तव न बाप-दादा का नाम चलेगा ?

अमल : प्रमोशन नहीं हुआ।
विमल : क्वॉर्टर एकदम रद्दी है।
कमल : रोज़गार का तार ही नहीं बैठा।
अमल : घर में बीमार है।
विमल : मुन्ना इम्तहान में फेल हो गया।
कमल : बाबूजी गुज़र गये।
अमल : जितने सब हैं...।
विमल : छिः छिः छिः !
कमल : धत्तेरे की।
अमल : विमल।
विमल : कमल।
कमल : अमल।
अमल : विमल।
विमल : कमल।
कमल : अमल।

नेपथ्य से घोषणा...'एवम् इन्द्रजित्'! लेखक का प्रवेश।

अमल : अरे कवि, क्या हालचाल है ?
विमल : अरे कवि, क्या हालचाल है ?
कमल : अरे कवि, क्या हालचाल है ?
लेखक : कल इन्द्रजित् की चिट्ठी मिली।
अमल : अच्छा ? क्या लिखा है ?
विमल : वह तो विलायत गया था न !
कमल : अभी लौटा नहीं ?
लेखक : परीक्षा में पास हो गया है।
अमल : वाह ! यह तो अच्छी ख़बर है।
विमल : बस, लौटते ही नौकरी मिल जाएगी। इंजीनियरिंग लाइन बड़ी अच्छी है।
कमल : अभी भी अपने यहाँ विदेशी डिग्री की बड़ी इज़्ज़त है।
लेखक : क्या लिखा है, सुनोगे ?
अमल : हाँ, सुनाओ।
विमल : चिट्ठी लम्बी है ?
कमल : होने दो न !

लेखक पत्र पढ़ना शुरू करता है। ये तीनो ताश खेलने लगते हैं। इस बार बातचीत नहीं, केवल तीन हाथ का खेल।

लेखक : कलकत्ता-भोपाल-बम्बई-जलन्धर-मेरठ-उदयपुर-कलकत्ता-लंदन। सारा अतीत रथ के पहिये की तरह घूमता गया है। फिर भी ठीक पहिये की तरह नहीं। हर नया चक्कर पुराने को छोड़कर अलग चक्कर बना है, यही ट्रेजेडी रही है। जानने की सबसे बड़ी ट्रेजेडी रही है। कुछ पकड़ता हूँ, फिर सब शेष हो जाता है और फेंक देता हूँ। फिर कुछ नया पकड़ता हूँ। फिर भी यह आशा किसी तरह नहीं टूटती कि कभी-न-कभी कुछ-न-कुछ असंभव अप्रत्याशित घट कर रहेगा ही। फिर भी हर समय यह लगता है जैसे इतना ही सब-कुछ नहीं है। ऐसा लगता है जैसे कभी...कुछ ऐसा अवश्य घटित होगा जिसके तीव्र आलोक में अतीत का सब-कुछ धुँधला जाएगा। कैसा भोला स्वप्न है...? नींद टूट जाने पर भी सपने की खुमारी और नशा नहीं जाता।

इस बीच इन्द्र आकर लेखक की बगल में खड़ा हो जाता है। अमल-विमल-कमल पूर्ववत् ताश खेले जा रहे हैं।

इन्द्र : जो कुछ मिलने लायक था, सब पा चुका हूँ। और अब यह कटु सत्य अनुभव हो रहा है कि यह सारा पाना कितना व्यर्थ रहा है! और मिलेगा और मिलने पर उसे समेटने के लिए चार हाथ निकल आयेंगे...यह आशा भी कितनी व्यर्थ है! अतीत और भविष्य आज भी रस्सी के दो छोर हैं...विपरीत हैं सो भी इसलिए कि अभी स्वप्न का अस्तित्व बचा है, नहीं तो भविष्य को मोड़-माड़-कर सहज ही अतीत की गोद में डाल दिया जा सकता है। वर्तमान भी एक धूमिल अनजाने भविष्य की ओर मुँह बाए देखता अनिर्दिष्ट-सा ही न रहकर एक दिन एक सीमाबद्ध सुनिर्दिष्ट बिंदु बन जा सकता है। कहने का मतलब...मृत्यु का वरण कर सकता है।

मानसी ज़रा देर पहले आ चुकी है।

मानसी : मृत्यु का वरण?

इन्द्र : हाँ, मृत्यु का वरण। वास्तव में मृत्यु में बड़ा सुख है। न जाने कितने लोग मरकर सुख में हैं। सारे आगामी भविष्य को गत अतीत के साथ एकाकार करके परम सुखी हैं। मुझे भी तो एक-न-

एक दिन इसी तरह मरना ही होगा। तो फिर अभी ही क्यों न मर जाऊँ ?

मानसी : ऐसा मत कहो। तुम जीवित रहो...।

इन्द्र : जीवित रहने के लिए मनुष्य को विश्वास की ज़रूरत है ..भगवान् पर विश्वास। भाग्य पर विश्वास। काम पर विश्वास। मनुष्य पर विश्वास। विद्रोह पर विश्वास। अपने ऊपर विश्वास...प्रेम पर विश्वास। इनमें से आज कौन-सा विश्वास मुझमें बचा है, बता सकती हो ?

मानसी : जीवन पर विश्वास है न ?

इन्द्र : जीवन ! जहाँ विराट् प्रश्नो के उत्तर नही मिलते वहाँ छोटी-छोटी अर्थहीन समस्याओं में उलझे रहना। कुछेक अर्थहीन दिखावा और झूठ जिसकी कोई आवश्यकता ही नही थी। फिर भी करना होगा...यही जीवन है, मनुष्य-जीवन। और मैं करोड़ों-करोड़ों मनुष्यों में से एक हूँ। मेरे जीवन का मिथ्या करोड़ों-करोड़ों लोगों के जीवन का मिथ्या है।

मानसी : तुम करना क्या चाहते हो ?...क्या करोगे ?

इन्द्र : क्या करूँगा ? थककर चूर होकर सो रहूँगा...या सब हँसकर उड़ा दूँगा !...शायद हँसकर उड़ा देना ही ठीक होगा। जीवन है ही एक ऐसी हास्यकर वस्तु कि हँसी रोकने का कोई अर्थ नहीं है।

इन्द्रजित् अचानक अट्टहास कर उठता है। मानसी और लेखक अलग-अलग दिशाओं में चले जाते हैं। अमल-विमल-कमल बिना कुछ समझे-बूझे अट्टहास शुरू कर देते हैं। लेखक पुनः प्रवेश करके पाद-प्रदीप के पास आता है। दोनों हाथ उठाकर दर्शकों को रोकने की चेष्टा करता है मानो वे ही हँस रहे हों। अमल-विमल-कमल का प्रस्थान। इनकी हँसी की आवाज़ धीरे-धीरे विलीन हो जाती है।

लेखक : आप लोग इस तरह हँसिए मत, मैं आपके हाथ जोड़ता हूँ...अब शांत हो जाइए। सच, मुझसे नाटक नहीं बन पा रहा है। पर, मैं कितनी चेष्टा कर रहा हूँ, यह तो आप देख ही रहे हैं। अमल-विमल-कमल का नाटक ? एवम् इन्द्रजित् !

मौसी का प्रवेश।

मौसी : खाना नहीं खाओगे ?

लेखक : ना।

मौसी का प्रस्थान। मानसी का प्रवेश।

मानसी : खाना नहीं खाओगे ?

लेखक : (**दोनों हाथों से मुँह ढककर**) तुम भी ?

मानसी : नहीं, भूल हो गई। तुम लिखोगे नहीं ?

लेखक : कैसे लिखूँ ? इन्द्रजित् लौट नहीं रहा है। तीन साल में उसने मुझे तीन चिट्ठियाँ लिखी हैं, हरएक में एक ही बात।

मानसी : क्या ?

लेखक : यही कि वह चक्कर काट रहा है, घूम रहा है पर मरता नहीं। न जाने कितने अटपटे स्वप्न दिमाग़ में घूमते रहते हैं, पर किसी तरह मरते नहीं। बोलो, जो जीवन को वास्तव रूप में देखता है और स्वप्न समझता है, उसे लेकर नाटक कैसे लिखा जाए ?

मानसी : उसी को लेकर तो नाटक हो सकता है।

लेखक : नहीं, नहीं। जितनी बार मैं उसे घटनाचक्र में ले आता हूँ, वह उससे बाहर छिटक पड़ता है। कहता है...यह वास्तविक घटना नहीं है। जितनी बार उससे कोई बात कहलवाना चाहता हूँ, वह उस बात की परिधि से बाहर जा खड़ा होता है। कहता है...यह वास्तविक बात नहीं है। उसने बहुत-कुछ जान लिया है, ज़रूरत से ज़्यादा जान लिया है।

मानसी : फिर भी वह स्वप्न देखता है।

लेखक : एक-न-एक दिन तो स्वप्नों का अंत होगा।

मानसी : हाँ, सो जानती हूँ।

लेखक : तब ?

मानसी : होने दो अंत।

लेखक : उसके बाद !

मानसी : तब तो फिर स्वप्न के तिनके के सहारे तैर नहीं सकेगा।

लेखक : तब फिर डूब जाएगा।

मानसी : डूब जाएगा तो डूबने दो। शायद डूबकर ही वह धरती का ठोस आधार पा सकेगा। शायद वहीं से जीवन की शुरूआत हो।

लेखक : तुमने कैसे जाना ?

मानसी : मैंने ?...मैंने क्या जाना, कुछ भी नहीं। मैं तो बेवकूफ हूँ, मैं कुछ भी नहीं जानती। मैं तो केवल विश्वास करना जानती हूँ।

मानसी का प्रस्थान।

लेखक : विश्वास ? पाताल का विश्वास ?

इन्द्र का प्रवेश।

इन्द्र : (**कविता पाठ करता है**)

आस्तिक की दीनता लिए मैं तैर रहा हूँ।
तृण के ऊपर डाल भार सारे जीवन का, तैर रहा हूँ।
कोहरे की सादी साँसों ने
छिपा लिया है कूल किनारा ।
इस प्रवास में जाना मैंने एक तथ्य है
मेघों के उस पार
स्वर्ण से मण्डित दिखता राजघाट
औ' ताराओं के पार
डूबते-उतराते स्वर्गों की छाया।
सब है मिथ्या !
तुमसे विनय...
सांत्वना झूठी देना छोड़ो
मन से दूर निकाल फेंक दो
आस्था औ' विश्वास युगों का।
स्वयं डूबकर देखो कितने गहरे में हैं धरती का
तल।
मानव है चल
और साथ ही क्रियाशील है।
नहीं चूकता डूब लगाकर
जा पाताल-पुरी तक पहुँचा
पाने का अधिकार
डोर शासन की अपने हाथों लेने।

लेखक : इन्द्रजित् !

इन्द्र : बोलो।

लेखक : तुम लौट आए ?

इन्द्र : हाँ।

लेखक : कब आए ?

इन्द्र : बहुत दिन हो गए।

लेखक : हो कहाँ ?

इन्द्र : कलकत्ता में।

लेखक : क्या करते हो ?

इन्द्र : नौकरी।

लेखक : ब्याह किया ?
इन्द्र : हाँ।
लेखक : मतलब, अंत में मानसी किसी तरह ब्याह के लिए राज़ी हो ही गई।
इन्द्र : ना।
लेखक : एँ ?
इन्द्र : किसी और से ब्याह किया है।
लेखक : किसी दूसरी से ?
इन्द्र : हाँ।
लेखक : वह कौन है ?
इन्द्र : एक औरत।
लेखक : नाम ?
इन्द्र : मानसी।
लेखक : यह कैसे सम्भव हो सकता है ?
इन्द्र : दुनिया में ऐसा ही होता है। न जाने कितनी मानसी आती हैं और चली जाती हैं। उन्हीं में से किसी एक के साथ विवाह होता है। फिर न जाने कितनी मानसी आती हैं और फिर चली जाती हैं। मानसी की बहन मानसी। मानसी की सहेली मानसी। मानसी की लड़की मानसी।
लेखक : वैसे ही जैसे अमल-विमल-कमल ?
इन्द्र : हां, वैसे ही जैसे अमल-विमल-कमल एवम् इन्द्रजित्।

मानसी का प्रवेश। सिर पर आँचल है।

: आओ तुमसे परिचय करवा दूँ। मेरी पत्नी मानसी और ये मेरे पुराने मित्र, लेखक।
लेखक : नमस्कार।
मानसी : नमस्कार। आप क्या लिखते हैं ?
लेखक : जब जो लिख जाए।
मानसी : आजकल क्या लिख रहे हैं ?
लेखक : एक नाटक लिखने की चेष्टा कर रहा हूँ।
मानसी : मुझे सुनाएँगे ?
लेखक : ज़रूर। पूरा हो जाने दीजिए, फिर सुनाऊँगा।
मानसी : अभी कितना बाकी है ?
लेखक : ज़्यादा नही। बस आजकल में लिखना शुरू करूँगा।
मानसी : अभी आपने शुरू ही नहीं किया है ?
लेखक : कहाँ कर पाया ?

लेखक : आपने कहा न कि पूरा होने में अधिक बाकी नहीं है ?

मानसी : इस नाटक के आरम्भ और अन्त में अधिक अन्तर नहीं है। नाटक वृत्ताकार है।

मानसी : आपकी बातें समझ में नहीं आ रही हैं।

इन्द्र : समझोगी कैसे मानसी ? बातें क्या समझने के लिए होती हैं ?

मानसी : वाह, बात समझ में आने के लिए ही तो कही जाती है।

इन्द्र : वह पहले कही जाती थी। अब केवल अभ्यास-वश ही कही जाती है।

मानसी : हटाओ भी। सब फालतू की बातें हैं।

इन्द्र : फालतू की हैं, यही तो मैं भी कह रहा हूँ। वह देखो...।

अमल-विमल-कमल का प्रवेश। मंच की दूसरी ओर खड़े वे बातें करते हैं।

मानसी : वे कौन हैं ?

लेखक : वे अमल-विमल-कमल हैं !

अमल : धनतंत्र-राजतंत्र-गणतंत्र !

विमल : साम्राज्यवाद-नाज़ीवाद-मार्क्सवाद !

कमल : अर्थनीति-टेण्डर-स्टेटमेण्ट !

विमल : रिपोर्ट-मिनिट्स-बजट !

कमल : मीटिंग-कमेटी-कान्फ़रेन्स !

अमल : सभ्यता-शिक्षा-संस्कृति !

विमल : साहित्य-दर्शन-इतिहास !

कमल : ब्रह्म-निर्वाण-भूमा !

अमल : राजकपूर-माला सिन्हा-विश्वजित् !

विमल : उमरीगर-कृष्णन्-मिलखासिंह !

कमल : हेमन्तकुमार-एस० डी० बर्मन-लता मंगेश्कर !

अमल : डॉक्टर-होमियोपैथ-कविराज !

विमल : ट्राम-बस-ट्रेन !

कमल : नरम-कूड़ा-मच्छर !

अमल : बेटा-बेटी-पत्नी !

विमल : मास्टर-ड्राइवर-बावरची !

कमल : साली-भानजे-ससुर !

मानसी : वे क्या कह रहे हैं ?

इन्द्र : बातें कर रहे हैं, बातें।

अमल-विमल-कमल हाथ-पैर हिलाते निःशब्द बात करते चले जाते हैं।

मानसी : क्या बातें

इन्द्र : मुझे नहीं पता। लेखक से पूछो।

मानसी : (**लेखक से**) अच्छा, इसके सिवा क्या और कोई बातें नहीं हैं ?

लेखक : लगता तो है कि हैं। जरूर हैं।

सामने आकर दर्शकों से पूछता है।

: इसके अलावा क्या बातें नहीं हैं ? (**दर्शक निरुत्तर**)

: नहीं हैं ? (**फिर नीरव**) तब फिर मैं किसे लेकर नाटक लिखूँ ? इन सब बातों को लेकर ? ऐसे नाटक में कौन अभिनय करेगा ? कौन देखेगा ?

इन्द्र और मानसी जाने लगते हैं।

: इन्द्रजित्, जाना मत।

मानसी चली जाती है। इन्द्र लौट पड़ता है।

: पहले बताकर जाओ।

इन्द्र : क्या ?

लेखक : मानसी कहाँ है ?

इन्द्र : अभी ही तो गई है।

लेखक : यह मानसी नहीं। वह जो हजारीबाग में रहती थी। वह कहाँ है ?

इन्द्र : हजारीबाग में है।

लेखक : उसे चिट्ठी नहीं लिखते ?

इन्द्र : लिखता हूँ।

लेखक : उससे भेंट होतीं है।

इन्द्र : बीच-बीच में होती है ?

लेखक : कहाँ ?

इन्द्र : उसी मैदान में...घने पेड़ के नीचे।

लेखक : बातें करते हो ?

इन्द्र : हाँ, करता हूँ।

लेखक : क्या बातें करते हो ?

इन्द्र : जो सदा से करता आया हूँ...अपनी बातें, उसकी बातें।

लेखक : वे बातें भी क्या अमल-विमल-कमल की बातों की तरह ही होती हैं ?

इन्द्र निरुत्तर रहता है।

: बोलो इन्द्रजित् !

इन्द्र तब भी उत्तर नहीं देता, केवल पीछे के उस मैदान में चला जाता है, उसी पेड़ के नीचे। वहाँ हज़ारी बाग वाली मानसी है।

मानसी : बोलो।

इन्द्र : क्या बोलूँ ?

मानसी : वही जो कह रहे थे।

इन्द्र : क्या कह रहा था ?

मानसी : तुम्हारे घर परिवार की बातें।

इन्द्र : अरे हाँ, मेरी स्त्री घर की देखभाल करती है। मैं नौकरी करता हूँ। मेरी स्त्री सिनेमा जाती है, मैं उसके साथ जाता हूँ। मेरी स्त्री पीहर जाती है। मैं होटल में खा लेता हूँ। वह लौटकर आ जाती है, मैं बाजार करता हूँ।

मानसी : यह सब क्या कह रहे हो ?

इन्द्र : क्यों, मेरे घर-परिवार की बातें ? तुम्हीं तो सुनना चाह रही थीं।

मानसी : ये सब बातें मैं बिलकुल नहीं सुनना चाह रही थी।

इन्द्र : तब फिर क्या सुनना चाहती हो ?

मानसी : तुम्हारी बातें।

इन्द्र : मेरी बातें ? मैं...मैं एक रेल की लाइन पकड़कर चल रहा हूँ... सीधी रेल-लाइन है। पीछे मुड़कर देखता हूँ तो दूर एक बिन्दु पर लोहे की दोनों लाइनें मिल गई दीखती हैं। सामने देखता हूँ तो वही दूर, एक बिन्दु पर, दोनों लाइनें मिल गई हैं। मैं जितना ही आगे बढ़ता जाता हूँ, वह बिन्दु उतना ही खिसकता जाता है। जो पीछे है, वही सामने भी। अतीत और भविष्य में कोई अन्तर ही नहीं। जो अतीत में है, वही भविष्य में भी।

मानसी : फिर ?

इन्द्र : सोचता था, चाहे पीछे, चाहे सामने से, कोई गाड़ी आयेगी।

मानसी : गाड़ी आती तो क्या करते ?

इन्द्र : कूदकर दूर हट जाता या दौड़ने लगता या कौन जाने दब ही जाता ! कुछ तो होता। पर नहीं...वह कैसे होता ? मुझे मालूम हो गया है, उस लाइन पर गाड़ी नहीं चलती। इसीलिए सोचता हूँ...।

चुप हो जाता है।

मानसी : क्या सोचते हो ?

इन्द्र : सोचता हूँ, अब चलना बन्द कर दूँ। चलने से कोई लाभ नही है। न होगा तो उसी लाइन पर लेट रहूँगा।

मानसी : (**ज़रा रुककर**) ऐसा नहीं होता, इन्द्र।

इन्द्र : क्यों ?

मानसी : सामने जब पथ है तब चलना ही होगा।

इन्द्र : बहुत तो चल चुका हूँ।

मानसी : और भी चलना होगा, इन्द्र।

इन्द्र : मैं थक गया हूँ।

मानसी : फिर भी चलना होगा।

इन्द्र : क्यों ? क्यों ? क्यों ? यही एक रास्ता है, मैं चला चल रहा हूँ, चला चल रहा हूँ, चला चल रहा हूँ, फिर भी निष्कृति...।

मानसी : नहीं, निष्कृति नहीं है, इन्द्र !

लेखक : (**कविता पाठ करता है**)

नहीं, नहीं है निष्कृति।
भीगा मन औ' क्षुधित दोपहर
खंडित दिन।
निर्जन, निद्राहीन रात्रि है।
मैं हूँ
शेष अभी हूँ...जागृत भी हूँ।
सब है स्मरण
अभी तो जीवन बहुत शेष है।
रहा अभी तक जो वह अब भी...
दूर-दूर...बहु दूर-दूर तक रहना
सब तो मेरा ही है और यही मैं।
फिर भी निष्कृति नहीं।

क्लांति दूर हो शांति मिलेगी,
इस आशा में दूर-दूर मैं उड़ता जाता
ऊपर उठते, उठकर गिरते
थके पँख पर डाले भार।
क्षण-क्षण के कण-कण हैं बिखरे
और समय की सार्वभौमता
मानों खंडित चूर-चूर हो।

मुझे निरन्तर घुमा रहा है
चक्का काम-काज का भारी
गुरु गंभीर चर्र-चूँ करता।
झूठ बात के खाली गुब्बारे में
भरता फूँक-फूँककर हवा। हाय, पर
फिर भी निष्कृति नहीं।
तुमसे है अज्ञात नहीं कुछ।
तुम परिचित हो उन बातों से
सब बातों से
जो निज संग मधुर झंकृति का रव ले आतीं
और प्रकाश, नाद ले आतीं
स्वच्छ रँगे वस्त्रों के नीचे सड़ा-गला जो उसे ढाँकतीं।
तुमसे है अज्ञात नहीं यह सत्य कि
जो कुछ है समक्ष
वह जीर्ण पुरातन धागे में गूँथे फूलों का हार
कि जिसके फूल शीघ्र ही झर जाएँगे।
तुमको है यह ज्ञात
कि मेरे जीवन का अवसान नहीं
मैं हूँ मृत अपने ही में।
फिर भी क्यों तुम बात एक ही
बार-बार कहते कि
चलो तुम, और चलो तुम, और चलो...।
क्या न मिलेगी निष्कृति अब भी ?

इन्द्र : पर क्यों ?

मानसी : पथ जब है, तब चलना ही होगा।

इन्द्र : क्यों चलना होगा ? पथ के उस पार क्या है ? मैं किस लिए चलूँ ?

मानसी : सब किस लिए चलते हैं?

इन्द्र : सब ?

सामने की ओर अमल का प्रवेश। लेखक से भेंट होती है।

लेखक : अरे अमल, कहाँ चले भाई ?

अमल : परीक्षा देने जा रहा हूँ।

लेखक : परीक्षा ? इस उम्र में ?

अमल : इंस्टीच्यूट ऑफ़ बेटरमैनशिप की परीक्षा। पिछले साल भी दी थी पर पास नहीं हो सका। एक बार और चेष्टा करके देखूँ। कॅरेस-पांडेंस कोर्स लिया है।

लेखक : यह परीक्षा देने से लाभ क्या है ?

अमल : लाभ है भाई, है। इस इंस्टीच्यूट की एसोशियेट मेम्बरशिप मिल जाने से कोई प्रमोशन नहीं रोक सकता। मैनेजर की पोस्ट तक पहुँचने में कोई असुविधा नहीं होगी। चलूँ भाई, देर हो जाएगी।

अमल का प्रस्थान। विमल का प्रवेश।

लेखक : अरे विमल ! कहाँ चले ?

विमल : सीमेंट के परमिट के सिलसिले में जा रहा हूँ। तगादा न करने से तो वहाँ फ़ाइल हिलेगी नहीं !

लेखक : सीमेंट क्या होगी ?

विमल : मकान बनवा रहा हूँ। सी० आई० टी० स्कीम में एक ज़मीन ली है। रिजर्व दाम है साढ़े छः हजार, और नीलाम पर चढ़कर हो गया नौ हज़ार आठ सौ पचास। क्या दाम हो गया है ज़मीन का ! अब बताओ कि मकान बनाने को पैसा कहाँ से लाऊँ ? गवर्न-मेंट लोन, इन्श्योरेन्स लोन, एम्प्लॉइज़ क्रेडिट लोन...सब ले-दे करके भी दो मंज़िल से ज़्यादा नहीं बना पा रहा हूँ।

लेखक : तो फिर अभी बनवाया ही क्यों ?

विमल : और क्या करता, बोलो ? आजकल रुपये की कोई कीमत है ? पर मकान हो तो बुढ़ौती में कम-से-कम रहने का ठौर-ठिकाना तो रहता है। फिर बाल-बच्चों की बात भी तो सोचनी पड़ती है। चलूँ भाई, देर हो रही है।

विमल का प्रस्थान। कमल का प्रवेश।

लेखक : अरे कमल ! कहाँ चले भाई ?

कमल : ज़रा श्यामल के ऑफ़िस जा रहा हूँ। उसने किसी एक फ़ाइनें-शियर का जुगाड़ किया है। देखूँ, यदि समझा सका तो...।

लेखक : क्या समझाओगे ?

कमल : एक बड़े अच्छे बिज़नेस की स्कीम है...फ़ूल प्रूफ़ स्कीम है। इंपोर्ट लाइसेंस मिल जाएगा, एसेम्बलिंग में कोई परेशानी नहीं होगी। बड़ा अच्छा मार्केट है। बाजार में माल पहुँच ही नहीं पायेगा... सब बुक्ड इन एडवान्स ! बस खाली पूँजी के लिए ही रुकी है। हमने और श्यामल ने मिलकर उधार का इन्तज़ाम किया है, उसमें पूरा नहीं पड़ रहा है। फ़िफ़्टीन परसेन्ट सूद पर भी रुपया नहीं

मिल रहा है।

लेखक : तो इस समय यह रोजगार ही मत उठाओ।

कमल : न करूँ तो खाऊँगा क्या ? नौकरी तो ऐसी ही है। भगवान् की दया से छः बच्चे हैं। (लड़की के टायफ़ॉयड में एक हज़ार रुपये गल गये। बिचले लड़के को स्कूल में प्रमोशन नहीं मिला...एक साल की फीस का नुक़सान हो गया। इस तरह कब तक चलेगा ? चलूँ, देर हो रही है।

कमल और लेखक, दोनों का प्रस्थान।

इन्द्र : और सब ! यही और सब हैं। यही अमल-विमल-कमल हैं।

मानसी : फिर भी तो वे चल रहे हैं।

इन्द्र : वे सुखी हैं, मानसी। उनके सामने कुछ है...लक्ष्य है, आशा है, स्वप्न है।

मानसी : तुम्हारे पास नहीं है ?

इन्द्र : ना, कुछ नहीं है।

मानसी : कभी था भी नहीं ?

इन्द्र : था, कभी था क्यों नहीं ? मैं खुद था, मैंने मान लिया था कि मुझे कुछ करना है। क्या यह मैं नही जानता था पर...पर कुछ विराट्, कुछ विशाल !...मैं स्वप्न देखा करता था मानो एक ज्वलंत उल्का की तरह मैं दिशाओं को भेदकर ऊपर आया हूँ...आकाश के इस कोने से उस कोने तक मैं बस ऊपर ही उठता जा रहा हूँ... तब तक जब तक कि उल्का की अग्नि जलकर निश्शेष न हो जाए। और आकाश में क्षण-भर के लिए आँखों को झुलसा देने-वाली एक ज्वाला-मात्र शेष रह जाती है।

मानसी : जलकर भस्म हो गये ?

इन्द्र : कहाँ मानसी ? प्रकाश ही नहीं हुआ ! आकाश में ज्वाला ही नहीं रही ! मैं दिगन्त भेदकर आकाश में ऊपर उठ ही नहीं पाया !

मानसी : क्यों ?

इन्द्र : मुझमें वह क्षमता नहीं है, कभी भी नहीं थी। मैंने केवल क्षमता का स्वप्न देखा। मैं एक अत्यन्त साधारण व्यक्ति हूँ। जब तक इसे स्वीकार नहीं कर पाया तब तक स्वप्न में था। आज स्वीकार करता हूँ।

मानसी : इन्द्रजित् !

इन्द्र : ना-ना मानसी। मुझे इन्द्रजित् मत कहो, मैं इन्द्रजित् नहीं हूँ। मैं निर्मल हूँ। अमल, विमल, कमल और निर्मल। मैं अमल,

विमल, कमल और निर्मल हूँ।

बोलते-बोलते व्याकुल-सा इन्द्र सामने आ जाता है। लेखक आकर पीछे खड़ा होता है। मानसी बैठी रहती है।

लेखक : इन्द्रजित् !

इन्द्र : आप शायद भूल कर रहे हैं। मेरा नाम निर्मलकुमार राय है।

लेखक : मुझे पहचान नहीं रहे हो, इन्द्रजित् ?

इन्द्र : कौन ? तुम ! लेखक।

लेखक : मैं अपना नाटक पूरा नहीं कर पा रहा हूँ, इन्द्र।

इन्द्र : पूरा करके क्या होगा ? उसका अंत नहीं है। उसका आदि-अंत सब एक ही है।

लेखक : फिर भी लिखना तो होगा।

इन्द्र : तुम्हें लिखना है, तुम लिखो। मेरा कुछ भी नहीं है...मैं निर्मल हूँ।

लेखक : तुम्हारा कुछ नहीं ? प्रमोशन, मकान, बिज़नेस स्कीम, कुछ भी नहीं ? फिर तुम निर्मल कैसे होगे ?

इन्द्र : पर...मैं तो एक साधारण व्यक्ति हूँ।

लेखक : फिर तुम निर्मल नहीं हो। मैं भी साधारण व्यक्ति हूँ फिर भी निर्मल नहीं हूँ। हम निर्मल नहीं हो सकते।

इन्द्र : तब फिर हम लोग किसके सहारे जियेंगे ?

लेखक : पथ के। हम लोगों के लिए केवल पथ है, हम लोग चलेंगे। लिखने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है, फिर भी लिखूँगा। बोलने के लिए तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है फिर भी बोलोगे। मानसी के पास जीने के लिए कोई आधार नहीं है फिर भी वह ज़िन्दा रहेगी। हम लोगों के लिए पथ है, हम लोग चलेंगे।

इन्द्र : देवराज जूपिटर के अभिशाप से सिसिफ़स की प्रेतात्मा एक बड़ा भारी पत्थर ठेलते-ठेलते पहाड़ की चोटी तक ले जाती है, पर चोटी पर पहुँचते ही तुरन्त पत्थर नीचे लुढ़क जाता है। वह फिर ठेल-ठेल ले जाती है, पत्थर फिर गिर पड़ता है।

लेखक : हमलोग भी अभिशप्त सिसिफ़स की प्रेतात्मा हैं। हम भी जानते हैं कि वह पत्थर लुढ़क जाएगा। जब ठेल-ठेलकर ऊपर ले जाते हैं तब जानते हैं कि इस मेहनत का कोई अर्थ नहीं है। पहाड़ की उस चोटी का भी कोई मतलब नहीं है।

इन्द्र : इतना सब जानते हुए भी ठेलना होगा ?

लेखक : हाँ, सब-कुछ जानते हुए भी ठेलना होगा। हमें कोई आशा नहीं है क्योंकि भविष्य के बारे में हम जानते हैं। हम लोगों का अतीत और भविष्य एकाकार हो गया है। हम जान चुके हैं कि जो हमारे पीछे था, वही हमारे सामने भी है।

इन्द्र : फिर भी ज़िन्दा रहना होगा ?

लेखक : हाँ, फिर भी ज़िन्दा रहना होगा। फिर भी चलते जाना होगा। हम लोगों के लिए तीर्थ नहीं है, केवल तीर्थयात्रा।

मानसी आकर लेखक और इन्द्रजित् के बीच में खड़ी हो गई है। तीनों की दृष्टि सामने है, तनिक ऊपर। लगता है मानो प्रेक्षागृह की दीवार पारकर, हवा और आकाश का क्षेत्र पार करके, कहीं बहुत दूर चली गई है ...वहाँ जहाँ पथ की दोनों रेखाएँ एक बिन्दु पर मिल गई हैं। चारों ओर अंधकार में एक प्रकाश-पुंज उन्हें आलोकित किये है। दूर से स्वर सुनाई पड़ता है।

: इसीलिए तो इस पथ का मैं
अन्त नहीं पाता हूँ।
नहीं कहीं आश्वासन कि
यात्रा के पूरी होने पर कोई
देवलोक सम्मुख होगा,
या कि स्नेह-स्पर्श से अपने
पथ-श्रम कोई दूर करेगा।
इसीलिए यह यात्रा अब है
अर्थहीन
उद्देश्यहीन-सी।
तो भी सोच करूँ क्यों ?
हो, ऐसी ही होनी है तो !

इच्छा केवल व्यर्थ प्रश्न सब पड़े रहें
उस अतल गर्त में।
शोक सभी मैं जाऊँ भूल।

जीवन के उस स्वर्ण-प्रात में
मुक्त-हृदय निर्द्वन्द्व भाव से
दीक्षा ली थी पदयात्रा की
सतत तीर्थयात्रा करने की।

जीवन की संध्या में पहुँचा
मन मेरा यह भूल न जाए
दीक्षा के उस मूल मंत्र को...
तीर्थ नहीं, है केवल यात्रा
लक्ष्य नहीं, है केवल पथ ही
इसी तीर्थ-पथ पर है चलना
इष्ट यही, गन्तव्य यही है।

●●●

English Dialogues in Roman Script

१. Everybody continues in its state of rest or of uniform motion in a straight line unless it is compelled by an external impressed force to change that state.
२. Expression of the imagination, expression of the imagination. State of rest or of uniform motion. State of rest or of uniform motion. State of rest or of uniform motion.
३. Game of glorious uncertainty.
४. Sinking, Sinking Drinking water.
५. What is the specific gravity of iron ?
६. Eleven point seven, Sir.
७. Who was Mazzini ?
८. One of the founders of modern Italy.
९. Time-up. Stop writing, please.

खामोश, अदालत जारी है
निर्देशक का वक्तव्य
अरविंद देशपांडे

'खामोश, अदालत जारी है' लीला बेणारे की ट्रैजेडी है। पूरे नाटक में उसका प्रस्तुतीकरण विनोदपूर्ण है, फिर भी मुझे लगता है कि अंत:प्रवाह बहुत अधिक भिन्न, अत्यधिक तरल एवं गम्भीर है। अतः बेणारे को प्रधान चरित्र बनाकर उसके इर्द-गिर्द नाट्यसूत्रों को गूँथना ज़रूरी बन जाता है। इस बात का ध्यान रखते हुए प्रथम अंक में ऐसे कुछ स्थल अवश्य रखे गये हैं जो यह दिखा देते हैं कि ऊपर-ऊपर हँसमुख दिखाई देनेवाली बेणारे अंतर की अतल गहराई में कहीं एक गहरी व्यथा छिपाये हुये है, अन्दर कहीं बेतरह बेचैन है, और सावधान और सतर्क भी है।

(१) बेणारे एवं सामंत का प्रथम दृश्य, जिसमें बेणारे अनजाने ही, बातों-ही-बातों में, अपने ऊपर लगाए गये इलजाम का और पेशी का ज़िक्र कर जाती है;

(२) उसके सम्बन्ध में पोंक्षे एवं कर्णिक के संवाद;

(३) श्रीमती काशीकर एवं रोकड़े के संवादों में प्रो० दामले का ज़िक्र;

(४) सहेली के सम्बन्ध में पोंक्षे एवं बेणारे के संवाद;

(५) बिना किसी पूर्व सूचना के अचानक मुजरिम के कठघरे में खड़े हो जाने पर बेणारे की आन्तरिक बेचैनी।

प्रथम अंक के निर्देशन में इस तरह के कुछ स्थल चुनकर उन पर बल देना मैंने महत्त्वपूर्ण समझा, और इस दौरान पात्रों की कंपोज़िशंस अधिकतर बोलते हुए बनाये रखने का मेरा प्रयास रहा। सामंत के साथ बात करते समय बेणारे को उससे दूर, रंगमंच के एक कोने ही में रखा। दायीं तरफ़ प्लेटफ़ार्म पर बैठकर बेणारे अपनी पेशी के बारे में बताती है। कर्णिक एवं पोंक्षे के संवादों की आयोजना

इससे कहीं अधिक कठिन थी, क्योंकि उस समय सारे पात्र रंगमंच पर होते हैं। तब फिर मूवमेंट्स कम्पोज़ करते समय काशीकर, श्रीमती काशीकर एवं सुखात्मे का एक गुट बनाया, जिसमें उन्हें विवादों में उलझाये रखा गया—मूकाभिनय द्वारा ही। दूसरे छोर पर रोकड़े को सेट के काम में उलझाये रखा और फिर पोंक्षे एवं कर्णिक को सीधे फ़ुट-लाइट्स तक ले आया—इस तरह उनके संवादों वाले दृश्य का भाग उभर आया। जब श्रीमती काशीकर एवं रोकड़े के संवादों में दामले का ज़िक्र आता है, तब, उसी समय, बेणारे को रंगमंच के इस छोर से उस छोर तक ले जाकर दामले के साथ उसके किसी प्रकार के सम्बन्ध को सूचित करने का मेरा प्रयास किसी हद तक सफल भी रहा। और इसी उद्देश्य से मैंने बेणारे अभियुक्त का कठघरा भी ठीक फ़ुट-लाइट्स के नज़दीक ही रखा। खेल-ही-खेल में शुरू किये गए मुक़दमे के दौरान वास्तव में ही अपने फँस जाने का भयानक एहसास करते ही बेणारे दंग रह जाती है, हड़बड़ा उठती है, घबरा उठती है—अपने इर्द-गिर्द सारी तनावपूर्ण परिस्थिति का एहसास उसे होता है। भ्रूण-हत्या का अभियोग लगाया जाता है, तब तनाव और अधिक बढ़ जाता है। सामंत जब पान, सिगरेट आदि लेने जाता है, तो अन्य पात्र भले ही इस तनाव से थोड़ी देर के लिये मुक्त हो जाते हैं, लेकिन बेणारे के लिए यह तनावपूर्ण स्थिति बदल नहीं पाती। अब उसी का पीछा होगा। वही तो नाटक का केन्द्र-बिन्दु बनेगी और नाट्यसूत्र उसी के इर्द-गिर्द तेज़ी से घूमता रहेगा। इसीलिए फ़ुट-लाइट्स के पास, दर्शकों के नज़दीक ही उसका स्थान अधिक प्रभावपूर्ण एवं महत्त्वपूर्ण हो जाता है। नाटक के पर्सपेक्टिव में बेणारे दर्शकों की निगाहों में 'क्लोज़-अप' की तरह बराबर बनी रहती है।

बेणारे के कठघरे का स्थान निश्चित हो जाने पर उसी के लिहाज़ से अन्य पात्रों की मूव्ज़ मैंने क़म्पोज़ कर लीं। पोंक्षे जब अपनी पहली गवाही में अपनी शादी तय करा देने के बेणारे के प्रयासों का ज़िक्र करता है तो वह चौंक उठती है। उसका यह चौंक उठना एक विशेष अर्थ रखता है, और उसके इस चौंक उठने का सम्बन्ध-सूत्र जुड़ता है पोंक्षे की दूसरी गवाही में। यानी कि यह चौंक उठना दो तथ्यों को जोड़नेवाला महत्त्वपूर्ण सूत्र बन गया। नाटक के प्रस्तुतीकरण में इसे उभारना ज़रूरी था। तब से मैंने उसे करीब-करीब अकेली रखा। वह अपने हाथ में पकड़े मनीबैग के साथ खेल रही है। शादी का ज़िक्र आते ही अचानक मनीबैग उसके हाथ से गिर पड़ता है। सब लोग उसकी तरफ़ देखते हैं। यह पल-भर के लिए पोंक्षे की तरफ टकटकी बाँधे देखती रहती है। पॉज़ ! फिर झुककर बैग उठा लेती है, खेलने लगती है। पल-भर का यह पॉज, अचानक सन्नाटा, वह अपेक्षित असर कर जाता है। वही बात होती है रोकड़े की पहली गवाही के समय। वह बताता है कि उसने बेणारे को प्रो० दामले के कमरे में देखा है, और बेणारे रोकड़े की तरफ़ बस देखती रह जाती है। बाकी सारे पात्र तब गौण बन जाते हैं, बेणारे

और रोकड़े—एक समांतर विवाद शुरू हो जाता है।

चूँकि बेणारे की पोज़ीशन दर्शकों के अधिक पास है, अतः इस विवाद में भी वही प्रधान बन जाती है, डॉमिनेट करती है। अभियुक्त का कठघरा प्रधान बना रहता है, और (प्रभाव में) आक्रामक बना रहता है।

दूसरे अंक का अंत, और नाटक एक विचित्र मोड़ पर आ जाता है। खेल अब खेल नहीं रहा, आखेट बन जाता है। निर्दय, निर्मम, घृणित यह क्रूर शिकार, जो निर्देशक के सामने एक जटिल प्रश्न बनकर खड़ा हो जाता है। सामत की गवाही से खेल आखेट में परिवर्तित हो जाता है। खेल के जोश में वह किताब का एक अंश गवाही के रूप में वयान करता है और, बस, मानव के अंतर में सोया हुआ 'पशु' जाग उठता है। व्यष्टि-रूप में नाटक का हर व्यक्ति डरपोक है। लेकिन समष्टि बन जाते ही उसके अन्तर का 'पशु' जाग उठता है, मानवीय संवेदना का अन्त हो जाता है, और प्रत्येक व्यक्ति पशु-मात्र रह जाता है। क्रूर, सामने शिकार को देख लार टपकाने वाला ! खेल की समाप्ति और आखेट के आरम्भ का यह एहसास दिलाना भी ज़रूरी था। इसलिए इस बार भी ग्रुपिंग एवं कंपोजिशंस की सहायता से मैंने वांछित प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयास किया। सामंत की गवाही के ख़त्म होते-होते, एक-एक करके सारे पात्र सामंत की दिशा में जा खड़े होते हैं। फल-स्वरूप जब बेणारे, सामंत की गवाही में सहन-सीमा के पार होकर ढहने लगती है, भहरा कर गिरने लगती है, तब रंगमंच पर एक ओर अकेली बेणारे और दूसरी तरफ़ उसके खिलाफ़ खड़े समस्त पात्र दिखाई देने लगते हैं। शिकार के सामने खड़े शिकारी—कुछ इस तरह का असर पैदा कर जाता है यह चित्र ! बुद्धिमान, जानकार दर्शकों के लिए और एक बारीक़ी—हर पात्र अब तक न्यायासन के नज़दीक है—मानो न्यायाधीश का अधिकार हर पात्र ने अब ग्रहण कर लिया है और इस विशेष अवस्था में रहते हुए हर एक प्रकार का क्रूर आनन्द लूट रहा है। बाहर से दरवाज़ा बन्द हो जाता है। असहाय बेणारे अन्दर अटकी रह जाती है; उसके लिए अब छूटने का रास्ता नहीं, यह जान कर सभी एक-दूसरे की तरफ़ उसी क्रूर तृप्ति के भाव से देखते हैं। अपवाद अकेले सामंत का है क्योंकि वह नहीं जानता कि क्या हो रहा है। वह अकेला अब बेणारे के पक्ष में है, इसीलिए जब बेणारे दरवाज़ा खोलने की कोशिश करने जाती है, तब वह दर्शकों के काफ़ी नज़दीक खड़ा है (बायीं ओर), जब कि शेष पात्र अपेक्षाकृत दूर (दायीं ओर) खड़े हैं।

तृतीय अंक में कर्णिक, पोंक्षे, रोकड़े, काशीकर, सब मिलकर बेणारे से बदला लेते हैं। हर कोई उस पर झपट पड़ता है। आरम्भ से अंत तक भय-चकित बेणारे चुपचाप खड़ी है अपने सारे जीवन की चीर-फाड़ को असहाय देखती रह जाती है। मेरे ख़याल से तीसरे अंक का बेणारे का 'स्वगत' 'डिफ़ेंस' न हो कर 'डिफ़ायंस' है।

इसलिए बारीकी से देखने पर पता चलेगा कि यह 'स्वगत' बेणारे वास्तव में दर्शकों की तरफ उन्मुख हो कर बोलती है। तब तक अन्य सब पात्र उसके लिए नगण्य, क्षुद्र बन चुके होते हैं।

इस 'स्वगत' को रंगमंच पर ढालना बड़ी कठिन तपस्या रही, क्योंकि कठघरे में बंद बेणारे तो बोलती नहीं है। उसके मन में, बस, विचारों का बवंडर उठ खड़ा हुआ है। आँखों के सामने जीवन का निरावरण चित्र ला खड़ा किया गया है और उसके निष्कर्ष ! अब यह अंतर दिखायें तो कैसे ? काशीकर का अंतिम वाक्य है, "(जबाबदेही के लिए) अभियुक्त को दस सेकेंड का वक्त दिया जाता है," और तुरन्त बेणारे के 'स्वगत' का पहला वाक्य आता है, "हाँ, बहुत कुछ कहना है मुझे।" इसलिए सीधा-सादा अर्थ यह लगाया जाता है कि काशीकर के सवाल का यह सीधा-सादा जवाब है। इस भूल को टालने के लिए मैंने प्रकाश योजना एवं पार्श्व-ध्वनि का प्रयोग किया।

पूरे नाटक में प्रकाश-योजना नैचुरल है, कहीं भी विशेष इफ़ेक्ट्स नहीं हैं। कुछ भी अस्वाभाविक, अन्-नैचुरलन हीं और इसी बात का मैंने यहाँ लाभ उठाया। काशीकर के अन्तिम वाक्य के समाप्त होते ही अँधेरा छा जाता है और अन्नैचुरल लाइटिंग, जो अब तक बिलकुल नहीं थी, अपनी करामात दिखाने लगती है। अकेली बेणारे पर स्पॉट-लाइट डाला जाता है। शेष पात्र जैसे अपनी-अपनी जगह जम जाते हैं। वास्तव में वे उसी तरह खड़े हैं जिस तरह पहले—लाइट-इफ़ेक्ट्स के पहले खड़े थे। काशीकर घड़ी देख रहे हैं। अँधेरे में घड़ी की टिक-टिक शुरू हो जाती है, जो दस सेकेंड की अवधि सूचित करती है। 'स्वगत' के दौरान भी उसकी अस्पष्ट ध्वनि सुनी जा सकती है। 'स्वगत' दो प्रकाश-वलयों (लाइट-स्पॉट्स) में बोला जाता है और 'स्वगत' के समाप्त होते ही फिर से नैचुरल प्रकाश-योजना आरम्भ हो जाती है। बेणारे कठघरे में वैसी ही खड़ी है। काशीकर घड़ी में देख रहे हैं। टिक-टिक सुनाई दे रही है। टिक-टिक अचानक रुक जाती है और काशीकर कहते हैं, "टाइम इज़ अप !" नाटक फिर से यथार्थ भूमि पर आ जाता है। काशीकर सज़ा फरमाते हैं। इस समय काशीकर के पीछे से लाल प्रकाश का आयोजन कुछ इस प्रकार किया गया कि काशीकर की छाया बेणारे पर छा जाये, जिससे बेणारे के सर्वनाश की पूर्व-सूचना का भास हो जाता है।

फिर बाहर से आवाज़ें सुनायी देती हैं। सभी होश में आते हैं और तब तनाव के पश्चात् पहली बार सब लोग जो कुछ घट चुका, उसे महसूस करने लगते हैं। अब उनकी घबराने की बारी है। मूलतः सारे डरपोक हैं। किये गये आखेट के परिणाम को सहने की सामर्थ्य से रहित, सर्वनाश से सहमे हुए ! विध्वंस को झेल सकने में असमर्थ और इसीलिए इसके वाद का नाटक का अंश बोला जाता है फुसफुसाहट के रूप में, दबी-दबी-सी, सहमी-सहमी-सी आवाज़ में, अपराध की भावना लिये

हुए। यहाँ तक कि "आफ़्टर ऑल, दिस वॉज़ जस्ट ए गेम" कहने में भी यह अपराध-भावना स्पष्ट झाँकती रहती है। और अंत में सब लोग चले जाते हैं।

रंगमंच पर बने रहते हैं सामंत और बेणारे। सामंत बेचैन है; उसे कुछ सूझता नहीं। यह जानते हुए भी कि अब उसे किसी तरह साहस जुटाना है, वह असहाय है, असमर्थ है। वह भी तो एक साधारण व्यक्ति है यद्यपि मानवता से युक्त। साहस जुटा नहीं पाता; वह चाहता ज़रूर है, इसलिए फिर वह अंत में वह तोता—खिलौना—बेणारे के पास चुपके से रख जाता है, जो वह अपने भतीजे के लिए लाया था। वह चला जाता है। 'बुलबुल से सुगना कहे, क्यों गीले तेरे नैन'—इस बाल-गीत के साथ-साथ परदा गिरता है।

विजय तेंदुलकर

खामोश, अदालत जारी है

मराठी से अनुवाद : सरोजिनी वर्मा

पात्र

कुमारी बेणारे
सुखात्मे
काशीकर
पोंक्षे
सामंत
कर्णिक
रोकड़े
श्रीमती काशीकर

अंक : १

पर्दा उठते ही एक सूने और खाली दालान में प्रकाश फैलता है। इस दालान में दो दरवाज़े हैं। एक बाहर से आने के लिए और दूसरा भीतर के किसी कमरे में जाने के लिए। दालान का एक हिस्सा बाएँ विंग में आगे तक जाता हुआ दिखाई दे रहा है। पहले से तैयार एक ऊँचा मंच इस दालान के मध्य भाग में स्थित है। दो-एक पुरानी कुर्सियाँ, चीड़ का एक बक्स और एक स्टूल भी बेतरतीब ढंग से पड़े हुए हैं। दीवार पर एक घड़ी लगी हुई है जो बन्द है। कुछ नेताओं की पुरानी तस्वीरें तथा लकड़ी के एक फलक पर कुछ दानियों के नाम भी लगे हुए दिखाई दे रहे हैं। दरवाज़े के ठीक ऊपर गणेश जी की तस्वीर है। दरवाज़ा बन्द है।

बाहर की तरफ़ कुछ आहट होती है और बाहर की कड़ी खुलने की आवाज़ आती है। दरवाज़ा खोलकर एक व्यक्ति धीरे से अन्दर आकर कुछ इस अदा से खड़ा होता है मानो इस जगह वह पहली बार आया है। यह सामंत है। इसके एक हाथ में ताला-कुंजी है और दूसरे हाथ में हरे रंग का, कपड़े का बना हुआ एक तोता और एक किताब है।

सामंत : (देखता हुआ) हाँ यही। यही है वह हॉल। लगता है सबेरे ही सफ़ाई वगैरह हो गई है। आज प्रोग्राम है न इसीलिए।

कुमारी बेणारे सामंत के पीछे-पीछे आकर दरवाज़े पर खड़ी हो जाती है। मुँह में उँगली। दूसरे हाथ में सामान की डोलची और पर्स है।

: (**उसे देखता हुआ**) क्या हुआ ? कड़ी खोलने में उँगली दब गई ? यह सब बहुत पुराना है ना, इसीलिए ऐसा होता है। आसानी से कड़ी खिसकती ही नहीं और जो कहीं कुंडा बाहर रह गया और कड़ी खींच ली तो जानती हैं क्या होगा ? दरवाज़ा अन्दर से बन्द और बाहर से कड़ी ! बस समझिए अन्दर वाले को तो जेलखाना ही हो गया। उँगली ज़रा चूस लीजिए, अभी ठीक हो जाएगी। एक बार तो मेरे इस दाहिने हाथ की उँगली कुंडे में फँसकर रह गई थी...उँगली और अँगूठे में फर्क ही नहीं पता लगता था। पाँच दिन तक ऐसा सूजा रहा कि बस पूछिए नहीं। चार ही उँगलियों से सब करना पड़ता था।

बेणारे : अरे वाह ! (**उससे**) नहीं। कुछ नहीं। ऐसे ही। मुझे आदत है। लेकिन मुझे यहाँ बहुत अच्छा लग रहा है। यहाँ स्टेशन पर सबके साथ उतरी तो एकाएक इतने दिन बाद आज बहुत अच्छा लगने लगा।

सामंत : क्यों मगर ?

बेणारे : क्या पता ? और तुम्हारे साथ यहाँ आते समय तो और भी अच्छा लगा। अच्छा हुआ जो वह सब पीछे रह गये। कितनी जल्दी-जल्दी आए न हम लोग !

सामंत : हाँ और क्या ? यानी कि मुझे भी इतना तेज़ चलने की आदत नहीं है। सचमुच बहुत ही तेज़ चलती हैं आप !

बेणारे : हमेशा नहीं ! आज ही इतनी तेज़ चलकर आई। मन किया कि सबको पीछे छोड़ दूँ और तुम्हारे साथ कहीं दूर चलती चली जाऊँ।

सामंत : (**घबराकर**) मेरे साथ ?

बेणारे : यस। तुम बहुत अच्छे लगे मुझे।

सामंत : (**बहुत लजाकर संकोच से**) क्या बेकार आप भी, हँ हँ...मुझमें क्या...।

बेणारे : तुम बहुत अच्छे हो। और एक बात बताऊँ, तुम बहुत भोले और निष्पाप हो।

सामंत : (**अविश्वास से**) मैं ?

बेणारे : हाँ। और यह हॉल भी मुझे बहुत अच्छा लग रहा है (**घूमती है**)।

सामंत : हॉल भी ? वैसे तो यह पुराना ही है। कस्बे में कोई प्रोग्राम

होना होता है तो यहीं होता है। प्रोग्राम के लिए ही समझ लीजिए बना है यह हॉल। भाषण, मुंडन, छेदन, शादी-ब्याह... ज़रूरत हुई तो महिला-समाज के सालाना जलसे के लिए भजन-वजन की प्रेक्टिस भी यहीं होती है। आज रात में प्रोग्राम है न, इसीलिए आज भजन बन्द होगा। रात यहाँ प्रोग्राम हुआ कि फिर दिन में महिलाओं का भजन बन्द। पूछिए क्यों ? तो उसकी वजह है कि रात के तमाशे के लिए वह जल्दी-जल्दी घर का काम निबटाती हैं। नहीं तो आएँगी कैसे ?

बेणारे : **(सावधानी और उत्सुकता से)** तुम्हारी पत्नी भी, लगता है, भजन मण्डली में है।

सामंत : उहुँक। पत्नी नहीं। भाभी ! पत्नी है ही नहीं अभी।

बेणारे : **(उसके हाथ में थमे हुए तोते को इंगित कर)** तो फिर यह किसके लिए ?

सामंत : यह न ? भतीजे के लिए...बड़ा प्यारा है बच्चा। आपको अच्छा लगा यह खिलौना ?

बेणारे : हाँ...।

सामंत : मेरा मतलब कि शादी हुई ही नही अभी मेरी। कारण वैसे कुछ खास नहीं। पेट भरने को नौकरी-औकरी है वैसे। पर हुई ही नहीं। बीच में एक बार यहाँ जादू का खेल हुआ था। दृष्टिभ्रम, मोहिनी-विद्या, वग़ैरह...।

बेणारे : तुमने देखा था ?

सामंत : हाँ-हाँ ! हर प्रोग्राम में रहता हूँ मैं।

बेणारे : अच्छा !

सामंत : हाँ। एक भी प्रोग्राम छूटता नहीं मुझसे। इसके अलावा और यहाँ मनोरंजन भी क्या है ?

बेणारे : सचमुच। **(उसके क़रीब जाकर उसकी बातों में विश्वास-सा करती हुई)** जादू क़रीब से देखा है तुमने ?

सामंत : हाँ। यानी कि बिलकुल क़रीब से तो नहीं, मगर वैसे करीब ही था। क्यों ?

बेणारे : **(उसके बहुत ही क़रीब जाकर)** तो सुनो। वह जीभ काटकर उसे फिर जोड़ते कैसे हैं ?

सामंत : **(अचकचाकर ज़रा हटते हुए)** जीभ न ? मगर यह बात उस तरह से बताई नहीं जा सकती...।

बेणारे : बताओ न, लेकिन...।

सामंत : आँ ? लेकिन...।

वह फिर उसके उतने ही क़रीब खिसक आती है।
वह सकुचाकर दूर हट जाता है।

: बात यह है कि, अच्छा कोशिश करता हूँ...यानी कि समझाना मुश्किल ही है...समझ लीजिए कि यह जीभ है।

उँगली का सिरा आगे पकड़ता है।

बेणारे : देखूँ।

देखने के बहाने वह फिर उसके क़रीब चली जाती है। क्षणभर उसे उस निकटता की अनुभूति, मगर सामंत को नहीं।

सामंत : (**एकाग्र होकर**) यह जीभ है। इसे ऐसे काट दिया तो क्या होगा ? रक्त आयेगा। मगर नहीं आता। अब पूछिए कि रक्त क्यों नहीं आता ? तो इसका हल उस मोहिनी-विद्या में ही कुछ-न-कुछ होगा...यानी कि उस तरह की कोई सुविधा होगी तभी रक्त नहीं आता। कुछ भी नहीं होता...बिलकुल ही कुछ नहीं...दुखता भी नहीं...सचमुच...।

उसके इस भोलेपन की प्रतिक्रिया में वह उससे दूर हट जाती है।

बेणारे : अभी तक पहुँचे कैसे नहीं वे लोग ? कछुए की चाल चल रहे होंगे, धीरे-धीरे। आदमी को कैसा एकदम फुर्तीला होना चाहिए।

सामंत : हाँ, तो मैं वह जीभ वाली बात बता रहा था न...मोहिनी-विद्या... ।

बेणारे : स्कूल में पहली बेल होती और मेरे पैर स्कूल के भीतर होते। पिछले आठ बरसों में मेरी इस बात पर किसी को उँगली उठाने का साहस नहीं हुआ। पढ़ाने के मामले में भी। मेरा पोर्शन कभी भी पीछे नहीं रहा। कापियाँ ठीक वक़्त पर जँचकर तैयार। किसी को नाम रखने की गुंजाइश ही नहीं छोड़ती मैं।

सामंत : मास्टरनी हैं आप शायद ?

बेणारे : नहीं शिक्षिका। क्या मास्टरनी जैसी लगती हूँ मैं ?

सामंत : नहीं-नहीं ! इस मतलब से नहीं कहा था मैंने...।

बेणारे : नहीं ! कह सकते हो अगर चाहो।

सामंत : मगर मैंने तो कहा ही नहीं...मास्टरनी से मेरा मतलब यही था कि आप बच्चों को पढ़ाती हैं न...। बस, वही...उसी अर्थ

में कहा था मैंने...हाँ...सचमुच...।

बेणारे : अपने को महान् लगने वाले लोगों से तो वह भी कहीं अच्छी ही होती हैं। कम-से-कम अपने बड़प्पन का झूठा घमंड और अपने बारे में कोई ग़लतफ़हमी तो नहीं होती उन्हें। पंजे मार-कर माँस नोच लेने के बाद कायर की तरह डरकर भागतीं तो नहीं वे। ओफ़ ! वह खिड़की खोल दो ज़रा, बड़ी गर्मी लग रही है मुझे।

सामंत फुर्ती से जाकर खिड़की खोलता है। बेणारे राहत से गहरी श्वास लेती है।

: अब ज़रा अच्छा लग रहा है।

फिर पूरे हॉल में मुक्त भाव से घूमने लगती है।

सामंत : वह अभी जो बता रहा था न। वह जीभ वाली बात। उसे पूरा कर दूँ क्या ? मोहिनी-विद्या ? **(फिर से उँगली का सिरा पकड़कर)** अब देखिए न ! यह रही जीभ। इसे ऐसे काट दिया।

बेणारे : उँह ! उसे छोड़ो अब।

सामंत : **(आज्ञाकारी की तरह)** अच्छा।

हाथ नीचे कर लेता है। फिर एकाएक आगे बढ़कर एक कुर्सी उठाकर उसके पास रखता है।

: मगर आप घूम क्यों रही हैं। आराम से बैठिए न ! आपके पैर दुखने लगेंगे।

बेणारे : खड़े-खड़े पढ़ाने की आदत है मुझे। क्लास में बैठकर कभी नहीं पढ़ाती मैं। सारा क्लास आँखों के सामने रहता है। कोई मिश्चिफ़ नहीं कर सकता। अपने क्लास पर बड़ा रोब है मेरा और मेरे लिए उनके मन में प्यार भी है। मेरे लिए मेरे बच्चे सब कुछ कर सकते हैं। अपना तन-मन जलाकर उन्हें बनाया है मैंने। इसीलिए तो लोगों को ईर्ष्या होती है मुझसे...खासकर शिक्षिकाओं और संचालकों को। मगर मेरा कर क्या लेंगे वे ? क्या करेंगे ? आख़िर कर ही क्या सकते हैं ? हुँ ! जाँच-पड़ताल कर रहे हैं। अपने काम में खरी हूँ मैं। प्राण देकर बच्चों को पढ़ाती हूँ। खून-पसीना एक कर दिया है मैंने इस नौकरी में। एक अकेला आरोप सिद्ध कर ही लेंगे तो क्या बिगाड़ लेंगे मेरा ? निकाल देंगे ? निकाल दें। किसी और का अहित नहीं किया है मैंने ! किया है तो अपना ही। मगर यह भी क्या ऐसा

गुनाह है कि मुझे नौकरी से निकाल दिया जाय ? अपनी ज़िन्दगी मैं कैसे बिताऊँ इसका फैसला करने वाले वे कौन है ? मेरी ज़िन्दगी मेरी अपनी है। नौकरी के लिए मैंने नीलाम नहीं कर दिया है खुद को। मेरी इच्छा मेरी है, उसे कोई कुचल नहीं सकता...कोई भी नहीं। मैं अपना या अपनी ज़िन्दगी का जो जी में आएगा, करूँगी। अपना भविष्य मैं स्वयं निर्धारित करूँगी...।

अनजाने ही पेट के निचले हिस्से पर हाथ रखती है और सहसा सचेत होकर घबरा जाती है। सामंत की उपस्थिति का उसे एकाएक एहसास होता है। वह आशंकित होकर खामोश हो जाती है। सामंत असमंजस में।

सामंत : मैं देख आऊँ क्या ? अभी तक आए क्यों नहीं वे लोग ?

बेणारे : (**घबराकर**) नहीं-नहीं। (**फिर धीरे-धीरे नॉर्मल होती हुई**) मुझे...बात यह है, मुझे अकेले यहाँ डर लगेगा।

सामंत : अच्छा तो नहीं जाऊँगा। आपकी तबीयत ठीक नहीं है क्या ?

बेणारे : (**एकदम से निर्भय होकर, लापरवाही से**) हम्बग ! तबियत को मेरी क्या हुआ है ? आई ऐम फाइन...परफेक्टली फाइन !

अपने में तन्मय-सी हलके हाथ ताली बजाती हुई धीरे-धीरे एक अंग्रेज़ी गीत गुनगुनाने लगती है।

: ओ आई हैव ए स्वीट हार्ट
हू कैरीज़ आल माई बुक्स
ही प्लेज़ इन माई डोल्स हाउज़
ही सेज़, ही लाइक्स माई लुक्स
आई विल टेल यू ए सीक्रेट
ही वांट्स टु मैरी मी
बट ममी सेज़ आई अैम टू लिटल
टु हैव सच थॉट्स इन मी...।

: (**गीत एकाएक रोककर**) हम आज क्या करने जा रहे हैं जानते हो तुम ? तुम...क्या नाम है तुम्हारा ?

सामंत : सामंत।

बेणारे : हाँ, वही।

सामंत : हाँ, मन्दिर पर तख्ती लगी है। सोनार मोती चाल, बम्बई की जागृति सभा द्वारा अभिरूप न्याय...न्याय...क्या...हाँ

न्यायालय। रात के ठीक आठ बजे।

बेणारे : यानी क्या ? कुछ मतलब समझे इसका ?

सामंत : मतलब तो नहीं समझा बाबा ! यही कोर्ट-ओर्ट का कुछ गोलमाल।

बेणारे : एकदम ठीक। यानी कि असली कोर्ट नहीं। नकली, झूठ-मूठ का।

सामंत : अच्छा, यानी कोर्ट का एक तमाशा !

बेणारे : हाँ। मगर सामंत ! लोगों का उद्बोधन भी हमारे इस कार्यक्रम का एक प्रधान उद्देश्य है...यह बात हमारे अध्यक्ष मिस्टर काशीकर नाटक के बीच-बीच में तुम्हें बताएँगे ही। बग़ैर किसी प्रधान उद्देश्य के हमारे काशीकर साहब का एक क़दम भी आगे नहीं पड़ता। दूसरी है मिसेज़ 'पालने की डोर' यानी कि मिसेज़ काशीकर। आदर्श गृहिणी है बिचारी। मगर क्या फ़ायदा ? समाज-सेवा से संसार का उद्धार करते-करते बिचारे प्रधान उद्देश्य उसी में फँसकर रह गये और बेचारी उनकी यह 'पालने की डोर' पालना देखने को ही तरस गई ?

सामंत : यानी क्या ? **(दोनों हाथ से नन्हे बच्चे का आकार दिखाकर)** यह नहीं है उनके ?

बेणारे : राइट ! तुम तो खासे बुद्धिमान मालूम पड़ते हो। तो वह मिस्टर काशीकर और वह 'पालने की डोर' ने इस डर से, कि कहीं खाली घर की मनहूसियत में उन्हें कुछ हो-हवा न जाए, ऊबकर कहीं कोई उनमें से फाँसी-वाँसी न लगा ले, एक लड़का पाला है। पढ़ाया-लिखाया है और काम में जोत-जातकर उसे भीगी बिल्ली बना दिया है। उसका नाम है बालू। बालू रोकड़े...। वैसे ज़रूरत पड़ी तो एक कानूनाचार्य जी भी हैं अपनी मण्डली में। कानून में उनकी पहुँच इतनी ज़बर्दस्त है कि कोर्ट का मारा हुआ कोई मूर्ख मुवक्किल भी उनके पास नहीं फटकता। बेचारे कोर्ट में अकेले ही बैठे-बैठे अपने कानूनी ज्ञान से बार-रूम की मक्खियाँ मारा करते हैं और जब चॉल के अपने कमरे में पहुँचते हैं तो कमरे की मक्खियाँ मारा करते हैं। आज के अभिरूप वाले मुकदमे में बहुत बड़े वकील हैं वे...। हूँ। उनका पराक्रम तो देखोगे ही तुम। एक 'हूँ' है **(होंठों में पाइप दबाने का अभिनटन)** मिस्टर 'हूँ' ! साइंटिस्ट। इंटर फेल।

सामंत : मज़ा आएगा तब तो।

बेणारे : और एक इंटलेक्चुअल भी है अपनी पार्टी में...इंटेलेक्चुअल, यानी अपनी किताबी बुद्धि पर इतराने वाले और मौक़ा आने पर दुम दबाकर रफ़ूचक्कर हो जाने वाले। आज आये नहीं हैं। आएँगे भी नहीं। साहस ही नहीं है उनमें।

सामंत : मगर मुकदमा किस बात का होगा आज ?

बेणारे : अणु-अस्त्र बनाने के लिए प्रेसिडेंट जॉनसन पर मुकदमा है आज।

सामंत : बाप रे !

बेणारे : श्श···! आ गए लगते हैं सब लोग।

कुछ योजना बनाती है।

: तुम ज़रा ऐसे इस तरफ़ आ जाओ। आओ। छिप जाओ, ऐसे छुपो जल्दी। मैं यहाँ ऐसे खड़ी रहती हूँ। छुप जाओ ठीक से। हाँ, आने दो अब।

सामंत और बेणारे बाहर से अन्दर आने वाले दरवाज़े की आड़ में छुप जाते हैं, एक-दूसरे से सटे हुए।

'हियर इट इज़ ! मिल ही गया आख़िर' कहते-हुए वकील सुखात्मे, शास्त्र के पारंगत, पीछे दो तीन बक्से, दो झोले तथा माइक्रोफ़ोन का बैटरी-वाला एक सेट लादे हुए, अभिरूप न्यायालय में पट्टे वाले चोबदार की भूमिका करने वाले रोकड़े, दरवाज़े से प्रवेश करते हैं। सुखात्मे के मुँह में सुलगी हुई बीड़ी है और पोंक्षे के होंठों में दबा हुआ पाइप है। इनके पीछे-पीछे कोर्ट में काम आने वाले लकड़ी के दो कटघरे लिए हुए एक मज़दूर आता है। इन लोगों के भीतर घुसते ही बेणारे सामंत के साथ दरवाज़े की आड़ से निकलकर ज़ोर से, 'खो:' करके डराती है। एक क्षण के लिए सब सहम जाते हैं, फिर धीरे-धीरे एक-एक आदमी सँभलने लगता है। बेणारे खिल-खिलाकर बेतहाशा हँसती रहती है। सामंत यह सब कुतूहल और नयेपन के अचरज के साथ देखता है।

रोकड़े : **(सामान एक तरफ़ ले जाकर रखता हुआ)** कितनी ज़ोर से बेणारे बाई ! अभी यह सब सामान गिर जाता कि नहीं ?

बेकार फिर काशीकर बाई मुझे दस बात सुना देती। चाहे कोई कुछ करे, बात मुझे ही सुननी पड़ती है। उनके सहारे पढ़ा जो हूँ; अब उसका ब्याज तो भरना ही होगा। अपनी-अपनी तकदीर है।

हुश्श करता है। मज़दूर बाएं विंग में कटघरे रखकर वापस आता है। पोंक्षे उसकी मज़दूरी अदा करते हैं। मज़दूर बाहर चला जाता है।

पोंक्षे : (**आँखों पर से मोटे फ्रेम का चश्मा उतारकर रखते हुए गंभीर आवाज़ में**) ओह गॉश ! देखूँ कहाँ है...।

बुदबुदाता हुआ अन्दर के कमरे में चला जाता है।

सुखात्मे : (**बीड़ी का लम्बा कश लेकर धुआँ छोड़ते हुए**) एक छोटी-सी लड़की है मन में बसी हुई। बेणारे बाई, दुनिया बदल गई मगर आप किसी भी शर्त पर प्रौढ़ होने को राज़ी नहीं हैं। है ना ?

बेणारे : क्यों ! अपने क्लास में गंभीर ही तो रहती हूँ मैं। मगर मैं कहती हूँ कि आख़िर इन्सान हर वक़्त लम्बा, तिकोना, चौकोना मुँह बनाकर क्यों रहे पोंक्षे की तरह। अरे ! दुनिया में रहना है तो खूब हँसो, गाओ, खेलो, कूदो और नाचने को मिले तो नाचो भी। कोई संकोच, कोई शर्म, कोई लिहाज़ न करो। सच कहती हूँ। अच्छा आप ही कहिए। अपनी ज़िन्दगी तबाह हो गई तो क्या कोई और अपनी देगा ? क्यों जी सामंत, बोलो, दे सकता है कोई ?

सामंत : बात तो आप ठीक कहती हैं। तुकाराम महाराज ने भी तो कहा है...यानी कि इसी तरह का कुछ कहा है शायद...।

बेणारे : उँह ! तुकाराम महाराज की छोड़ो। मेरी सुनो। मैं कहती हूँ, मैं लीला बेणारे। एक जीती-जागती हुई स्त्री अपने अनुभव से कहती है कि ज़िन्दगी किसी के लिए नहीं होती वह सिर्फ़ अपने लिए होती है, होनी भी चाहिए। वह बड़े महत्त्व की है। उसका हर क्षण, हर पल अनमोल है...।

सुखात्मे : (**ताली बजाकर**) हियर, हियर !

पोंक्षे भीतर से आता हुआ दिखाई देता है।

बेणारे : हियर नहीं। (**पोंक्षे की तरफ इशारा करके**) देयर !

खिलखिलाकर हँसती है, हँसती रहती है।

पोंक्षे : (**कुछ समझ पाने में असमर्थ रहकर**) क्या हुआ ?

बेणारे : पोंक्षे ! क़सम खाकर सच-सच कहना कि कार्यक्रम के पहले की

नर्वसनेस में जिस बात की तुम्हें ज़रूरत पड़ती है उसी सुविधा की तलाश में तुम गए थे न भीतर, करैक्ट ?

सुखात्मे : कुछ भी कहिए बेणारे बाई ! अपनी न्याय-सभा में पोंक्षे जब गवाह के कटघरे में एक साइंटिस्ट की हैसियत से आकर खड़े होते हैं तो लगते इंप्रेसिव हैं। मुँह में पाइप-वाइप दबाये हुए। भला उन्हें देखकर कोई माई का लाल माप सकता है कि हमारे यह साइंटिस्ट महाशय इंटर साइंस में वन्स-मोर लेकर फिलहाल सी० टी० ओ० की क्लर्की कर रहे हैं।

रोकड़े यहाँ अपने को रोक नहीं पाता, फिस्स से हँस देता है।

पोंक्षे : (**नर्वस होकर**) हँसो मत रोकड़े ! तुम्हारी तरह काशीकर बाई के टुकड़े पर पलकर नहीं पढ़ा हूँ। इण्टर फेल हूँ तो भी अपने बाप के पैसे पर ! नॉन्सेन्स !

बेणारे : नॉन्सेन्स !

उसकी जैसी आवाज़ और शैली में कहती है और हँसती रहती है।

: ओ हो सुनो, मैं तुम लोगों को एक अजीब बात बताऊँ। जब मैं छोटी थी न, तो बहुत ज़्यादा चुप रहती थी। बस, गुपचुप मन के लड्डू पकाया करती थी...कुछ भी किसी से नहीं कहती थी और ज़रा-सा मन के खिलाफ कुछ हुआ कि चीख-चीखकर आसमान सर पर उठा लेती थी।

पोंक्षे : तभी तो अब एकदम उसके उल्टी हो गई है।

बेणारे : हाँ और क्या ? तुमने तो देखा ही है सामंत।

सामंत : (**अचकचाकर**) हाँ...यानी कि नहीं भी हो सकता है...मुझे वहीं ही मालूम होगा...।

बेणारे : अपनी कापियों पर बड़े खूबसूरत कवर वग़ैरह चढ़ाकर स्कूल में पहले दिन, पहले पेज पर मोती जैसे अक्षर बनाकर, फूल-पत्तियों से सजाकर मैंने यह बातें लिखी थीं, द ग्रास इज़ ग्रीन, द रोज़ इज़ रेड, दिस बुक इज़ माइन...टिल आई अैम डेड। टिल आइ अैम डेड...और फिर क्या हुआ जानते हो ?

सामंत : क्या हुआ ?

बेणारे : कापियाँ फट-फटाकर न जाने कहाँ चली गईं और मैं अभी भी जीवित हूँ। आई अैम नॉट डेड। नॉट डेड। द ग्रास इज़ स्टिल ग्रीन, द रोज़ इज़ स्टिल रेड, बट आई अैम नॉट डेड।

हँसती रहती है।

रोकड़े : (**तुरन्त झोले में से कापी निकालकर स्मरण करके लिखते हुए**) वाह, बहुत बढ़िया है...द ग्रास इज़ ग्रीन...द रोज़ इज़ रेड, और फिर वह बीच वाला क्या है बेणारे बाई ?

बेणारे : (**खीझभरे चेहरे से**) रोकड़े ! यह आदत बुरी है। मैं क्लास की लड़कियों से भी हमेशा कहती हूँ कि अधूरी बात सुनकर फौरन लिखने की जल्दी मत मचाया करो। पहले सुनो ! ध्यान से, एकाग्र मन से सुनो। सुनकर उसे आत्मसात् करो। वह तुम्हारे भीतर स्वयं ही टिका रहेगा। रक्त में घुलमिल जाएगा। और रक्त में जो घुल-मिल जाए उसे जीवन भर कोई निकाल नहीं सकता। कोई भी नहीं भुला सकता उसे...।

सामंत : हमारे गुरुजी भी यही कहा करते थे। मनु के श्लोक ऐसे ही रटाये थे उन्होंने। यानी कि यह रक्त वाली बात नहीं बताई थी बस !

सुखात्मे : हाँ बेणारे बाई, आगे कहिए आप।

बेणारे : (**बहुत उत्साहित होकर**) मैं कहानी सुनाऊँ ?...बच्चो बैठ जाओ। एक था भेड़िया...।

रोकड़े : (**पालथी मारकर बैठता हुआ**) वाह ! हो जाय बाई ! बैठिए सुखात्मे साहब। पोंक्षे, तुम भी बैठो।

पोंक्षे नाक-भौं चढ़ाकर नापसन्दगी ज़ाहिर करता हुआ बाहर चला जाता है।

बेणारे : नही, मैं एक कविता सुनाती हूँ—

यह मेरे पाँव
किसी खतरनाक राह पर
चलते जाते हैं।
एक के बाद एक
आती हैं उफनाती लहरें
अन्धी-सी टकराती हैं आपस में
बिखर जाती हैं।
हर बार रोशनी
अँधेरे को नकार कर
चमकती है
मगर फिर घुल जाती है
उसी अँधेरे में।

मिट्टी के यह मेरे हाथ
बार-बार जलते हैं, बुझते हैं।
फिर फिर जल उठते हैं ।
स्पष्ट हैं ये बातें सारी
स्पष्ट है सब कुछ ।
जख्म बहते ही हैं
बहना उनकी आदत है ।
युद्ध होते ही हैं कुछ ऐसे
जिनकी परिणति सिर्फ़ पराजय ।
व्यर्थ गँवाने को ही
पाते होते हैं
कुछ अनुभव ।

बीच में ही उस कविता को छोड़कर।

: नहीं, मैं एक गाना ही सुनाती हूँ—
मलाड का बुड्ढा शेकोटी में आया...
मलाड का बुड्ढा शेकोटी में आया...
मलाड का बुड्ढा, बुड्ढे की बीवी
बीवी का लड़का,
लड़के की दाई,
दाई का दामाद...।

सुखात्मे कुर्सी में बैठे हुए हैं। सामंत के चेहरे पर उत्सुकता। बेणारे गा रही है और सब उसके साथ-साथ ताल देने लगते हैं। सुखात्मे आरती की लय में ताल देते हैं। प्रयोगशील नाटक वाले कर्णिक आते हैं। मुँह में पान।

कर्णिक : ठीक तो आ गया। मैंने तो सोचा था कि भटक ही जाऊँगा। (**बैठे हुए लोगों की तरफ़ देखकर**) क्या हुआ ?

रोकड़े : उँह ! सब गड़बड़ हो गया ।

सुखात्मे : बेणारे बाई गा रही थी। (**खोखली आवाज़ में**) बहुत सुन्दर, बहुत मधुर बेणारे बाई !

बेणारे 'सब समझती हूँ' के अर्थ में जीभ निकालकर दिखाती है, फिर हँसती रहती है। कर्णिक हॉल का निरीक्षण कर रहे हैं। रोकड़े उठकर खड़ा हो गया है।

सुखात्मे : (**वकीलों की-सी शैली में**) मिस्टर कर्णिक ! वन मिनट ! आपके मन में इस वक़्त क्या है, खोलकर कहूँ ? आप सोच रहे हैं कि इंटीमेट थियेटर अर्थात् अल्प दर्शकों के बीच दिखाये जाने वाले नाटकों के लिए यह हॉल आइडियल है। क्यों ठीक कह रहा हूँ न, बोलिए।

कर्णिक : (**शान्तिपूर्वक पान चबाते हुए। जानबूझकर**) नहीं, मैं तो यह सोच रहा था कि यह हॉल ऐसा है कि किसी सचमुच के कोर्ट को भी मात करे।

बेणारे : अरे वाह ! तब तो बड़ा मज़ा है। आज अपना अभिरूप कोर्ट खूब रंग लाएगा, बिलकुल असली जैसा।

रोकड़े : (**कुछ चिन्तित होकर**) लेकिन अभी तक काशीकर बाई क्यों नहीं आई ?

कर्णिक : (**पान चुभलाते हुए**) आ रही है। रास्ते में मिस्टर काशीकर गजरा खरीदकर देने लगे थे, इसलिए रुक गए थे। मैं पान लेकर आगे चला आया। रोकड़े ! माइक की बैटरी तो ठीक है न ? देख-दाख लो। ऐसा न हो कि रात ऐन मौक़े पर तमाशा मचे। वैसे भी कुछ-न-कुछ गड़बड़ तो हो ही जाता है। पिछले महीने हमारे शो में फ़्यूज़ उड़ गया था। मैं ही था स्टेज पर। रोल छोटा था तो क्या ? बड़ी मुसीबत से निभाया मैंने किसी तरह।

रोकड़े : ऊँह ! गणपति उत्सव का ही नाटक तो था।

कर्णिक : हाँ, मगर मूड ऑफ हो गया था।

बेणारे : (**बीच ही में एक बड़ी-सी जँभाई लेकर, दिखावटी भोलेपन के साथ**) तुम्हारी बात पर यह नहीं कर्णिक ! बात यह है कि सुबह बहुत जल्दी उठना पड़ता है न रोज़ ! उसके अलावा मार्निंग शिफ़्ट, आफ्टरनून शिफ़्ट और ऊपर से रात का ट्यूशन भी।...सुनिए। आप लोगों ने मिस्टर और मिसेज़ काशीकर की एक बात पर कभी ग़ौर किया है ?

रोकड़े : (**बहुत उत्साहित होते हुए, मगर उत्साह को दबाकर**) क्या ?

पोंक्षे : (**बाहर से अन्दर आते हुए**) यस, व्हाट ?

सुखात्मे : मैं बताता हूँ। लेकिन नहीं, पहले आप ही बताइए। बेणारे बाई आँ ? लैट मी सी...कम ऑन, आउट विद इट...।

बेणारे : देखिए सुखात्मे ! अब इस समय अपना वकीली हथकंडा तो चलाइए नहीं कि जानते-बूझते कुछ नहीं और ज़ाहिर ऐसा करते हैं कि सब जानते हो। आप कुछ नहीं समझे। सुनिए,

हमारे काशीकर साहब तो हैं सोशल वर्कर और मिसेज़ काशीकर हैं बिलकुल ही 'ये', यानी कि कम पढ़ी-लिखी, वग़ैरह। वैसे मेरा मतलब यह नहीं कि उनकी समझदारी और शराफत में कोई कमी है। मगर मिसेज़ काशीकर के कम पढ़ी-लिखी होने के बावजूद भी दोनों शौकीन तबीयत खूब हैं। यानी कि जैसे मिस्टर काशीकर मिसेज़ काशीकर को गजरा वग़ैरह खरीदकर देंगे। मिसेज़ काशीकर मिस्टर काशीकर के लिए रेडीमेड बुश्शर्ट वगैरह खरीदेंगी...मेरा मतलब कि यह देखकर कैसा अजीब लगता है न !

कर्णिक पिछवाड़े की एक खिड़की खोलकर अपने मुँह का पान थूककर आते हैं।

कर्णिक : मैं तो किसी पति-पत्नी के बीच इस तरह की फॉरमेलिटी देखता हूँ तो संदेह होता है कि कुछ उनके बीच में गड़बड़ होगा।

रोकड़े : (**ज़रा नाराज़ होकर**) यह सब तुम्हारे प्रयोगशील नाटक में होता होगा !

कर्णिक : जो बात तुम्हारी समझ में नहीं आती उसमें टाँग मत अड़ाओ, रोकड़े ! अपनी किताब घोंटो बैठकर। मैं अपनी पत्नी के लिए कभी भी गजरा-वजरा नहीं ले जाता। यानी कि जी चाहता है तो भी टाल देता हूँ।

बेणारे 'च्च, च्च' करती है।

: क्यों क्या हुआ ?

बेणारे : मैं जो आपकी जगह होती तो अपनी बीवी के लिए रोज़ गजरा ले जाती।

सुखात्मे : तो फिर एक बार कम-से-कम बुश्शर्ट तो ले ही दीजिए मिस बेणारे ! आई वंडर ! कैसा होगा वह भाग्यवान ? आपकी तरह भोला हुआ तब तो कोई बात ही...।

बेणारे : छोड़िए इस बात को (**सामंत को तलाश कर**) क्या है तुम्हारा नाम ? सुनो, यह कुर्सियाँ नहीं मिल सकेंगी ? क्यों जी ?

सामंत : कुर्सियाँ ? मेरा नाम न। सामंत (**अपनी जगह से उठकर इधर-उधर देखता हुआ**) देखता हूँ। मुझे भी क्या पता...।

खोजते हुए भीतर चला जाता है।

पोंक्षे : अन्दर रक्खी हैं...फोल्डिंग कुर्सियाँ। चाय की बड़ी ज़रूरत है।

सुखात्मे : जब हम लोगों ने स्टेशन पर पिया तब तो तुमने चट से इनकार कर दिया।
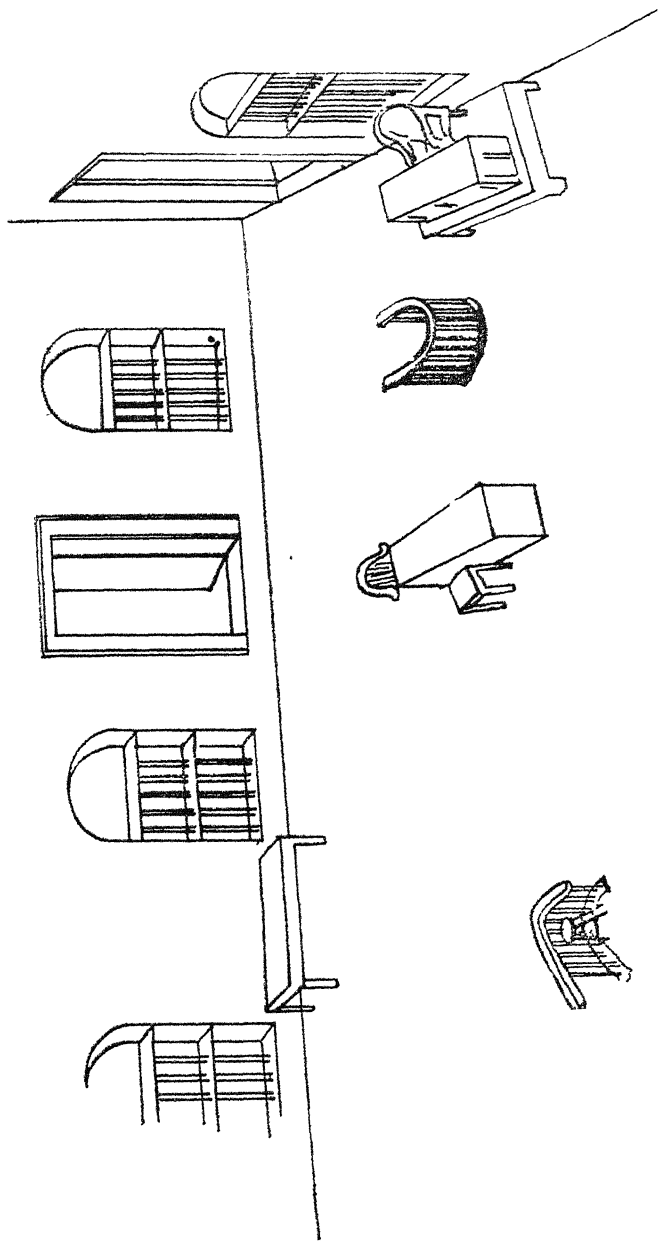
'खामोश, अदालत जारी है' के मूल मराठी में प्रदर्शन का दृश्यबन्ध ।

'अब टापो' जैसा भाव चेहरे पर।

पोंक्षे : गॉश ! मगर मुझे उस समय ज़रूरत नहीं थी तो कैसे ले लेता ? मुझे पहले से ही सब ले-वे कर बैठना पसंद ही नहीं। यह भी कोई लाइफ़ है ? इस साइन्स-एज में ऐन वक़्त पर ही सब कुछ पा जाने में आनन्द है... (**चुटकी बजाकर**) लाइक दिस !

सामंत दोनों हाथों में जितनी समा सकीं फोल्डिंग कुर्सियाँ लेकर आता है।

सामंत : (**कुर्सियाँ रखकर**) लीजिए। और ज़रूरत हो तो है भीतर।

सब जल्दी-जल्दी कुर्सियाँ खोलकर मनमाने ढंग से बैठ जाते हैं। एक-दूसरे से वार्तालाप। पोंक्षे अभी भी अपनी पाइप के रोब में खड़ा हुआ है।

सामंत : (**पोंक्षे से, उसके साहबी ठाठ से प्रभावित होकर**) बैठिए न सर !

पोंक्षे : आँ (**'सर' संबोधन से सुखी होकर**) थैंक्यू ! ट्रेन में बैठा ही तो था अभी तक। क्या नाम है आपका ?

सामंत : सामंत ! यहीं का रहने वाला हूँ मैं, सर !

पोंक्षे : गुड ! मिस्टर सामंत ! यहाँ चाय मिल सकेगी क्या ?

सामंत : चाय न ? क्यों नहीं मिलेगी, सर ! मगर शक्कर की समस्या आएगी। आजकल मिलती नहीं न इसीलिए। अगर गुड़ की चल सके तो...।

पोंक्षे : नो ! चाय में गुड़ पॉइज़न होता है मिस्टर सामंत ! आपको शायद पता नहीं।

सामंत : पता हो तो भी क्या फायदा, सर ! राशन की शक्कर तो भाई के बच्चे ही दूध, चाय में पी जाते हैं। अपने नसीब में तो गुड़ की ही चाय है। और चारा भी क्या है ?

पोंक्षे : (**साइंटिस्ट की अदा से मुँह में पाइप दबाकर**) हूँ !

बेणारे : (**अपनी जगह बैठी हुई उसे मुक्त भाव से चिढ़ाती हुई, उसी की आवाज़ और शैली में**) 'हूँ' ! एक थे 'हूँ' और एक थी 'उहूँ' !

पोंक्षे : बहुत हो चुका बेणारे बाई ! कब तक चलेगा यह बचपना आपका ?

सामंत खड़ा ही है। श्री और श्रीमती काशीकर आते हैं।

श्रीमती काशीकर : (**जूड़े में लगे हुए गजरे को अनजाने ही टटोलती हुई**) देखो, हैं सब लोग यहीं पर।

सुखात्मे : आइए काशीकर जी ! कैसा रहा गजरा-प्रोग्राम ?

बेणारे सामंत को दिखाकर उन दोनों की तरफ़ इशारा करती है।

रोकड़े : (**आगे बढ़कर**) हाँ, और क्या ?

काशीकर : सब सामान ठीक से ले आया न बालू ?

रोकड़े : हाँ, सब ठीक से आ गया।

श्रीमती काशीकर : कहते तो हो सब आ गया; मगर हर बार कुछ-न-कुछ तुम भूल ज़रूर जाते हो, रोकड़े ! चोबदार का बल्लम आया है ? सिर्फ़ सिर मत हिलाओ। लाए हो तो दिखाओ। निकालकर लाओ।

रोकड़े : (**निकालकर दिखाता है**) यह देखिए। (**दयनीय मुद्रा में**) ड्रेस भी है। कभी-कभी भूल जाता हूँ, हमेशा थोड़े ही...।

काशीकर : हमेशा भूले हो तब भी कोई बात नहीं। आज है कि नहीं सब सामान ? नहीं तो सब गड़बड़ करोगे। मेरा विग...जज का ? लाए हो ?

रोकड़े : हाँ, वह तो सबसे पहले रखा था।

रोकड़े की दयनीय मुद्रा पर अब खीझ उभरती है।

काशीकर : आप सुखात्मे ! वकील का गाउन लाए हैं ?

सुखात्मे : (**झुककर, कोर्ट की अदा से**) यस, योर ऑनर ! उसे मैं स्वप्न में भी भूलता नहीं। आपका क्या था पोंक्षे ?

पोंक्षे : वेल ! मैं हमेशा पूरी तरह से तैयार ही होकर आता हूँ। कुछ छूटने-वूटने का सवाल ही नहीं। फिर मेरा ज़रा नर्वस टेम्परा-मेण्ट है। पाइप नहीं रहा तो विटनेस-बॉक्स में मुझे कुछ याद ही नहीं आता।

काशीकर : आज पहले से तुम्हारी लाइन सब बता दूँगा।

पोंक्षे : नहीं, उसकी जरूरत नहीं।

श्रीमती काशीकर : क्यों री बेणारे (**जूड़े में लगे गजरे को टटोलकर**) तेरे लिए भी मैं गजरा लेने वाली थी, देखा...?

बेणारे : (**पोंक्षे की शैली में**) हूँ !

पोंक्षे अब क्रोध से होंठ चबाने लगता है।

श्रीमती काशीकर : है कि नहीं जी ? (**यह वाक्य श्री काशीकर से**) मगर हुआ क्या कि...

बेणारे : (**मुक्त भाव से खिलखिलाती हुई**) हुआ क्या कि गजरा उड़

गया...फुर्र ! या कौवा ले गया ? मुझे सचमुच नहीं चाहिए था। नहीं तो क्या खरीदने की औक़ात नहीं है मेरी ? खुद ही कमाती हूँ। तभी तो गजरा-वजरा लेने की कभी मेरी इच्छा ही नहीं होती।

बेणारे श्रीमती काशीकर का लाया हुआ नमकीन बड़े सबको बाँटती है।

श्रीमती काशीकर : अच्छा, अच्छा। स्कूल कैसा चल रहा है तेरा ?

बेणारे : (**चौंककर**) चल कहाँ रहा है, वहीं का वहीं है।

काशीकर : मैं सोचता हूँ जज की कुर्सी हम लोग इस तरफ़ लगाएँ, या कि इस तरफ़ ?

कर्णिक : इसी तरफ़। एंट्रेंस उधर है। वह कमरा जज के कमरे के रूप में इस्तेमाल हो सकता है। यू कैन एंटर फ़्रॉम देयर। प्रेसिडेंट जॉनसन यहाँ इस तरफ़ खड़े रहेंगे।

सामंत : (**अचानक जैसे नई बात सुनी हो**) प्रेसिडेंट जॉनसन ?

काशीकर : नहीं, नहीं। जॉनसन का कटघरा उधर उस तरह से रखना चाहिए ताकि जज की हैसियत से उनसे जिरह करने में मुझे...।

कर्णिक : मुझे तो यह ठीक नहीं लगता। दर्शक की नज़र से देखा जाए तो यह यहीं रहनी चाहिए।

सुखात्मे : मिस्टर कर्णिक ! दर्शक की नज़र से देखेंगे तो प्रासिक्यूट कर दूँगा मैं आपको। आप प्रयोगशील नये नाटक वाले हैं।

वकीलों की-सी हँसी।

कर्णिक : फिर वही ! यह नया नाटक आखिर है क्या बला ? कोई बताएगा भी ? बग़ैर जाने-सुने बस आप लोग शब्दों का इस्तेमाल किये जाते हैं। मेरे को जो उचित समझ में आएगा वही कहूँगा। वह नया हो या पुराना, बला से !

सब एक-दूसरे से वार्तालाप में तल्लीन हो जाते हैं।

सामंत : (**रोकड़े के पास जाकर**) सुनिए। यह प्रेसिडेंट जॉनसन का क्या तमाशा है ?

रोकड़े : (**अपने ही में खोया-सा, चौंककर**) किसका ?

सामंत : नहीं ! यह लोग प्रेसिडेंट जॉनसन के बारे में क्या बात कर रहे थे ?

रोकड़े : अच्छा वह ?

सामंत : यानी क्या सचमुच ही वह...असंभव तो है ही...मगर फिर

भी...असली बात क्या है ?

रोकड़े : सचमुच कहाँ ? यह कर्णिक ही तो बनेगा।

कुछ देर पहले अपने इकहरे सम्बोधन के बदले में।

सामंत : प्रेसिडेंट जॉनसन।

रोकड़े : (**कुछ याद करके, श्रीमती काशीकर के क़रीब जाकर**) बाई ! प्रोफेसर दामले तो अभी तक आए नहीं।

श्रीमती काशीकर से बातें करती हुई बेणारे एकाएक चुप हो जाती है और अनजाने पोंक्षे के सामने जा खड़ी होती है। पोंक्षे से जल्दी-जल्दी बातें करने लगती है, झूठमूठ। पोंक्षे का कोई उत्तर नहीं।

श्रीमती काशीकर : अरे हमेशा की तरह वह अबकी भी देर से ही आएँगे। हमारी गाड़ी उनके मान की थी ही नहीं। यह तो उन्होंने पहले भी फ़ोन पर बता दिया था। उनका कुछ था भी तो सिंपोज़ियम-उंपोज़ियम। दो दफ़े तो सहेजकर कह दिया था। बेणारे ! तुझसे मुलाक़ात हुई थी क्या रे ?

बेणारे : (**पोंक्षे से फिर बात करने की तन्मयता में ही**) कौन ?

श्रीमती काशीकर : प्रोफेसर दामले।

बेणारे : न बाबा।

पोंक्षे से फिर बातो में लग जाती है। मगर पोंक्षे एकदम चुप। कोई रिसपॉन्स नहीं।

रोकड़े : (**सामंत से कुछ पूछने के बाद श्रीमती काशीकर से**) लेकिन बाई ! अब जो गाड़ी आने को बची है, वह तो बिलकुल रात में पहुँचेगी। यह सामंत बता रहे हैं। उससे कैसे आएँगे ? लेट हो जाएँगे कि नहीं ?

पोंक्षे : (**बीच में ही एकाएक**) काशीकर बाई ! आपकी वह सहेली आजकल कहाँ है ? वही, जिनसे आप मेरी शादी करा रही थीं ? कुछ गोलमाल था न उनका ? कहाँ है आजकल...?

बेणारे बहुत घबराकर पोंक्षे के पास से हटकर उसी घबराहट में सामंत के सामने जा खड़ी होती है।

श्रीमती काशीकर : बीच में भी तो कोई गाड़ी थी न ? (**काशीकर से**) सुनो जी, यह बालू कह रहा है कि बीच में कोई गाड़ी ही नहीं है।

काशीकर : (कर्णिक से चल रहे संवाद को रोककर) किसके बीच में ?

रोकड़े : (काशीकर से) मेरा मतलब कि अब कार्यक्रम से पहले कोई गाड़ी नहीं है। यही बता रहे हैं सामंत !

सुखात्मे : कार्यक्रम खत्म होने के वाद तो है न ? बस फिर क्या ?

काशीकर : अरे मगर, सुखात्मे ! प्रोफ़ेसर दामले समय पर पहुँचेंगे कैसे ? अगर आये भी तो लेट आएँगे। बीच में कोई गाड़ी जो नहीं है।

कर्णिक : तो फिर वह आएँगे ही क्यों ? मैं तो कहता हूँ कि प्रोफ़ेसर दामले बड़े हिसावी-किताबी आदमी हैं। लेट होने का अंदेशा होगा तो आना ही काट देंगे और मज़े से घर पर सोएँगे।

रोकड़े : (बहुत टेंशन में) लेकिन बाई, मैंने उनके पास कार्ड ठीक से भेज दिया था। मतलब कि मेरा कोई कसूर नहीं है। पता भी बिलकुल ठीक लिखा था...।

काशीकर : तो यह भी एक उलझन खड़ी हो ही गई !

सुखात्मे : कोई उलझन की बात नही, आप बेफिकर रहें।

काशीकर : बेफिकर कैसे रहूँ ? वी ओ समर्थिंग टु द पीपुल, सुखात्मे ! कार्यक्रम है, कोई हँसी ठट्टा नहीं।

पोंक्षे : (उनके क़रीब जाते हुए) क्या हुआ ?

श्रीमती काशीकर : (सुखात्मे से) सुनो भैया ! मुलज़िम का वकील किसको बनाओगे ?

सुखात्मे : डोंट वरी ! आज भर के लिए मैं सरकारी वकील के साथ-साथ वह भूमिका भी कर दूँगा। उसमें रखा ही क्या है ! वकालत तो मेरी नस-नस में बसी हुई है ? किसी तरह की कमी महसूस भी नहीं होने दूँगा। फिक्र न कीजिए...मैं कहता हूँ आपसे काशीकर साहब...मेरे ऊपर डालकर देखिए।

कर्णिक : मगर मेरे ख्याल से यह कुछ ज्यादा ही ड्रामटिक हो जाएगा।

पोंक्षे : बिलकुल।

पाइप का लम्बा कश लेता है।

बेणारे : बिलकुल।

पोंक्षे क्रोध से देखने लगता है।

रोकड़े : (एक कागज सामने बिछाकर उसमें देखता हुआ) और चौथा गवाह ? सुखात्मे साहव ! वह भी कम है। रावते फ्लू से बीमार पड़ा है...यहीं से किसी के ले लेने की बात तय हुई थी हमारे बीच... (श्रीमती काशीकर को देखकर सुधार करता हुआ) यानी आप लोगों के बीच।

सुखात्मे : ट्रू ! यहाँ का मानी ?

रोकड़े : (**साहस बटोरकर**) आज मैं करूँ क्या वह काम ? थोड़ा-सा ही है...मेरा कोई भी कर देगा...मुझे लाइनें याद हैं चौथे गवाह की...।

कर्णिक : आई ऑपोज़। चोबदार हो तो क्या, वह काम भी आसान नहीं है। संवाद होने न होने से क्या फर्क पड़ता है ? ऐन मौक़े पर किसी दूसरे आदमी को लाकर खड़ा कर देना ठीक नहीं। रोकड़े, तुम्हीं करोगे वह काम...।

रोकड़े : मगर एक दिन मैं ज़रा दूसरा काम कर लूँगा तो...।

काशीकर : नही।

श्रीमती काशीकर : बालू, नहीं कहते हैं तो नहीं।

रोकड़े पीछे हट जाता है।

: मगर फिर चौथा गवाह बनेगा कौन ?

सुखात्मे : (**सामंत को देखते हुए**) आई नो। (**एकाएक**) यह देखिए गवाह। (**आदेशपूर्ण स्वर में**) सामंत !

सामंत : (**घबराकर**) क्या हुआ ?

पोंक्षे : (**पाइप फूँकते हुए**) नॉट बैड।

काशीकर : (**सामंत से**) क्यों भाई ! तुमने कभी नाटक-वाटक में काम किया है ?

सामंत : कहाँ ? बिलकुल नहीं। क्यों ? हुआ क्या मगर ?

श्रीमती काशीकर : एक बात बताओ, भैया ! तुम हमारे नाटक में चौथे गवाह बनोगे ? ए बेणारे... (**बेणारे आती है**) यह चौथा गवाह कैसा लग रहा है तुझे ? क्यों ?

बेणारे : यह न। नॉट बैड...यानी कि बहुत खूबसूरत लग रहे हैं।

सामंत झेंपता है। बेणारे हँसती रहती है।

: गवाह की ही बात कर रही थी मैं...चौथे गवाह की।

सुखात्मे : मिसेज़ काशीकर ! कर्णिक, पोंक्षे ! डोंट वरी, मैंने ज़िम्मेदारी ले ली है। अरे, उसमें क्या धरा है ? मैं सिखा-पढ़ा दूँगा। मिस्टर...कौन हैं आप ?

सामंत : रघु सामंत।

सुखात्मे : मिस्टर सामंत ! हमने आपको अपने अभिरूप न्यायालय में आज चौथा गवाह बनाया है।

सामंत : (**एकदम नर्वस होकर**) मैं...मगर मुझे...सचमुच मुझे कुछ नहीं पता।

काशीकर : कोर्ट तो देखा है न तुमने ?

सामंत : अभी तक तो नहीं देखा।

कर्णिक : कोर्ट का नाटक तो कम से कम...?

सामंत : नहीं, वह सब नाटक यहाँ होता ही नहीं।

सुखात्मे : चलिए, नाटक का कोर्ट इन्होंने नहीं देखा, यह अच्छा रहा। कम से कम कोर्ट के बारे में ग़लत-सलत जानकारी तो नहीं होगी।

कर्णिक : सारे नाटकों के बारे में आप यह बात नहीं कह सकते।

सुखात्मे : मिस्टर सामंत ! प्रोग्राम से पहले मैं आपको सिखा-पढ़ाकर एकदम तैयार कर लूँगा। गवाह को तैयार कर लेना तो मेरे लिए चुटकियों का खेल है।

'हँ-हँ' करके वकीलों की-सी शैली में हँसता है।

सामंत : मगर मुझे तो कोई भी जानकारी नहीं है। मुझे तो कोर्ट के नाम से ही डर लगता है। जो आता होगा वह भी भूल जाऊँगा वहाँ पर।

श्रीमती काशीकर : ऐसा क्यों न करें कि रिहर्सल करके इसे ठीक से एक बार सिखा ही दें हम लोग। (**काशीकर से**) क्यों जी ? (**काशीकर को अनसुना करते देखकर बेणारे से**) क्यों री बेणारे ?

बेणारे : हाँ, मुझे कोई इन्कार नहीं है। बल्कि अच्छा ही रहेगा। प्रोग्राम तो रात में होगा। जब तक के लिए कोई मन-बहलाव भी तो नहीं है। आज आते समय कोई किताब भी लाना मैं भूल गई।

सामंत : किताब है मेरे पास, अगर ज़रूरत हो तो। सूर्यकान्त फातर पेकर का नया उपन्यास है 'एक सौ पाँचवाँ'। (**निकालकर देता हुआ**) बहुत मज़ेदार होते हैं उनके उपन्यास। लीजिए।

बेणारे : नहीं।

सुखात्मे : शपथ लेने के लिए भगवद् गीता और बाइबिल तो आई ही होगी साथ...मेरा मतलब कि आप पढ़ने की बात जो कर रही हैं उसमें काम आ सकती है, क्यों जी रोकड़े ? गीता और बाइ-बिल लाए हो न ? कि रह गईं ?

रोकड़े : (**संतुलित स्वर**) नहीं। हैं। जी चाहे तो देख लीजिए।

थैले के नज़दीक जाता है मगर निकालता नहीं।

बेणारे : गीता-वीता पढ़ने की उम्र अभी मेरी नहीं हुई है, वकील साहब !

काशीकर : तो फिर क्या आप रँगीली कहानियाँ जैसी पत्रिकाएँ पढ़ती हैं...? ये पढ़ती हैं इसीलिए पूछा...होती वैसे मज़ेदार हैं... मगर हमारे सोशल वर्क के साथ तस्वीर देखने के अलावा और

कुछ जमता ही नहीं।

श्रीमती काशीकर : छि: ! तुम भी...।

काशीकर : (**नाराज़ होकर**) क्यों, ग़लत कह रहा हूँ मैं ?

श्रीमती काशीकर का चेहरा उतर जाता है।

कर्णिक : रिहर्सल का सुझाव मुझे एकदम मंज़ूर है मगर शुरू करने से पहले कोई चार-पाँच पैकेट सिगरेट ले आता तो अच्छा होता। फिर बीच में किसी को बाहर जाने की तलब न होती।

पोंक्षे : (**पाइप का कश लेते हुए**) आई डोंट माइंड।

सामंत : हाँ, यह तो अच्छा रहेगा। पहले से ही सब मैं देख लूँगा, तब कोई दिक़्क़त होगी ही नहीं।

बेणारे : मेरा तो विचार है कि अणु-अस्त्र वाला यह नाटक जो हम रात में करने जा रहे हैं, पिछले तीन महीनों में सात बार तो कर ही चुके हैं। आज रात आठवीं बार खेला जाएगा। फिर बीच में भी वही रिहर्सल में करेंगे तो वैसे तो कोई फर्क न पड़ता, मगर मुख्य प्रोग्राम पर उसका बुरा असर हो सकता है।

सुखात्मे : आई एग्री विद मिस बेणारे। एक मेरा भी सुझाव है। आपको पसंद आएगा या नहीं, कह नहीं सकता। हम लोग जब बार-रूम में कभी खाली होते हैं तो आपस में कुछ खेलते हैं, रमी या पेशेन्स या एक और खेल, नकली मुकदमे का। जस्ट टाइम-पास्ट, दैट्स ऑल। एक अलग ही तरह का काल्पनिक मुकदमा हम किसी पर चलाते हैं। बड़ा मज़ेदार होता है। आज भी क्यों न हम यहाँ वही खेल खेलें। इस बहाने से सामंत को कोर्ट की कार्रवाई भी आसानी से समझ में आ जाएगी और हम लोगों का मनोरंजन भी हो जाएगा। क्यों मिस्टर काशीकर ? आपका सैंक्शन है ?

काशीकर : क्यों नहीं ? अच्छा है आपका सुझाव। वैसे भी सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वाले के लिए यह उचित नहीं कि वह किसी बात पर मनमाना निर्णय लेता फिरे। हवा का रुख देखकर ही क़दम उठाना चाहिए।

कर्णिक : (**गदगद होकर**) थ्री चियर्स फॉर दिस न्यू आइडिया। हमारे ड्रामा-टेकनीक में इसे विज़ुअल एनेक्टमेंट कहा जाता है। पिछले साल जब सरकारी नाट्य-शिविर में जाकर बैठा करता था, तब सुना था यह नाम।

सुखात्मे : मामूली-सी बात का इतना लम्बा-चौड़ा नामकरण क्यों,

कर्णिक ? यह तो सिर्फ़ एक खेल ही होगा। क्यों, मिस बेणारे ?

बेणारे : हाँ, मैं तो लँगड़ी खेलने को भी तैयार हूँ। खेल की बात उठी, इसलिए कह रही हूँ। खेल तो बस बहुत ही मज़ेदार होते हैं। मैं तो अपने स्कूल की लड़कियों के साथ खूब खेलती हूँ। बड़ा आनन्द आता है।

पोंक्षे : ऑल राइट, वी प्ले। मिस्टर सामंत ! अड्डे पर से प्लीज़ ज़रा सिगरेट के पैकेट ला देंगे क्या ? मेरे लिए कैप्सटन। यह लीजिए पैसे।

पैसे देता है।

श्रीमती काशीकर : तुम क्यों पैसे देते हो, पोंक्षे ? सामंत ! पैसे वापस कर दो इनके। मैं कहती हूँ इसे भी हम नाटक के खर्च में ही दिखा दें, बस छुट्टी। वैसे भी यह कोई झूठ बात तो है नहीं। सामंत को आखिर कोर्ट की जानकारी तो देनी ही है फिर क्या। सामंत! (**पर्स खोलकर नोट निकालते हुए**) यह लो। सबसे पूछकर जो-जो चाहिए, सिगरेट के आधे दर्जन पैकेट ले आओ। और पान भी ले आना तीन-चार बीड़े। मसाला पान। समझे ?

सब उसे आर्डर देते हैं। सुखात्मे अपने लिए छाता-छाप बीड़ी का आर्डर देते हैं।

सामंत : अच्छा, अच्छा।

पैसा लेकर चला जाता है, फिर लौटता है।

: अभी शुरू न कीजिएगा आप लोग। मैं बस अभी आता हूँ।

जाता है।

बेणारे : बेचारा ! मैं भी अभी आती हूँ।

डोलचीं में से नैपकिन और साबुनदानी निकालकर उठती है और गुनगुनाती हुई अन्दर चली जाती है।

श्रीमती काशीकर : बालू ! तब तक तू ज़रा कोर्ट ठीक से लगा दे। उठ।

वह काम में लग जाता है।

कर्णिक : ऐ पोंक्षे ! ज़रा इधर आना। (**सुखात्मे तथा अन्य लोगों से**) कास्ट रात वाली ही रहेगी ? मेरा मतलब जज और वकील वग़ैरह...।

सुखात्मे : ओ यस ! बाई आल मीन्स। उसमें बदलाव क्यों किया जाय ? वकील इस वक्त भी मैं ही हो जाऊँगा।

श्रीमती काशीकर : मगर हमारी एक मानो तो मुलज़िम दूसरा आदमी कोई बनाओ इस समय। है न कर्णिक ?

कर्णिक : नहीं, उसकी ज़रूरत नहीं है। (**बगल में आए हुए पोंक्षे से**) यू नो वन थिंग, पोंक्षे ? (**भीतर के कमरे की ओर इशारा करके**) उसके बारे में ? मिस बेणारे के बारे में ? रोकड़े टोल्ड मी।

पोंक्षे : व्हॉट ?

कर्णिक : अभी नहीं, रात के प्रोग्राम के बाद याद दिलाना मुझे।

पोंक्षे : मैं भी कुछ बताने वाला हूँ ..मिस बेणारे के ही बारे में। (**अन्य लोगों से**) मेरी राय मानिए तो अभियुक्त इस समय किसी दूसरे ही आदमी को बनाइये।

काशीकर : हाँ। और मेरा खयाल है कि मुकदमे में नई जान उसी से आएगी।

श्रीमती काशीकर : वही तो।

काशीकर : वही तो क्या ? ज़रा अपनी ज़बान पर लगाम रक्खो। मेरा तो मुँह खोलना मुश्किल है।

श्रीमती काशीकर चुप रहती हैं।

सुखात्मे : आई डोंट माइंड । अभियुक्त...मैं सोचता हूँ...व्हाई नाट रोकड़े ?

रोकड़े इस सुझाव से प्रसन्न होता है।

रोकड़े : (**अपनी जगह से ही**) हाँ, हाँ, मैं तैयार हूँ।

पोंक्षे : हुश्श ! (**कर्णिक से**) मैं भी बताऊँगा...उसके बारे में।

कर्णिक : अभियुक्त मैं बना जाता हूँ।

काशीकर : मैं कहता हूँ, अगर सचमुच कुछ करना है तो अब यह मज़ाक बन्द करो। अभियुक्त मैं बना जाता हूँ।

कर्णिक : वाह ! तो फिर मुकदमे में रह ही क्या जाएगा ? अभियुक्त भी यही और जज भी यही।

पोंक्षे : (**पाइप का कश लेकर**) कन्सडिर मी देन। वैसे अपनी कोई ज़िद नहीं। मगर ज़रूरत हो तो आई ऐम गेम !

रोकड़े : (**श्रीमती काशीकर से**) मगर हमारे में क्या कमी है बाई...?

श्रीमती काशीकर : सुनो मैं बन जाऊँ क्या ? बन जाती हूँ अगर ज़रूरत हो।

काशीकर : नहीं।

श्रीमती काशीकर चुप।

: ज़रा चार आदमियों के बीच आने को मिल भर जाए कि फिर हर बात में आगे-आगे नाचना। आगे-आगे कूदना।

श्रीमती काशीकर : (**संकोच और शर्म से**) अच्छा हो गया, नहीं बनती मैं। अब खुश?

सुखात्मे : आप लोगों में से कोई भी अभियुक्त नहीं बनेगा। अभियुक्त कोई दूसरा ही आदमी बनाया जाएगा। वही ठीक होगा। क्यों न अपनी मिस बेणारे रहें अभियुक्त ? क्यों, पोंक्षे, कैसी रही च्वाएस ?

पोंक्षे : ठीक है।

सुखात्मे : अब बिना मतलब समय क्यों बरबाद किया जाय ? क्यों काशीकर बाई ?

श्रीमती काशीकर : हाँ, अब यही तय कर दो। कम से कम देखने को मिलेगा कि औरतों पर मुकदमा कैसे चलाया जाता है (**आदतन, काशीकर से**) है कि नहीं जी ? देख लेना चाहिए न ?

काशीकर : (**व्यंग्य करते हुए**)हाँ, क्यों नहीं ? कल को हाईकोर्ट तुम्हें कहीं जज की कुर्सी पर बिठा दे तो सीख तो लेना ही चाहिए।

श्रीमती काशीकर : इसके लिए मैं थोड़े ही कह रही थी...।

सुखात्मे : मुकदमे में ऐसा कोई खास फर्क नहीं होता। फ़र्क सिर्फ़ यह है कि अभियुक्त के कटघरे में जब कोई स्त्री आकर खड़ी होती है तो मुकदमे में अनूठा ही रंग आ जाता है। यह मेरा अपना अनुभव है। क्यों, मिस्टर कर्णिक ?

कर्णिक : हाँ ! मैं कोई टीम के बाहर थोड़े ही हूँ। टीम-स्पिरिट को मैं बहुत मानता हूँ।

श्रीमती काशीकर : चलो भैया, तब तो बस तै ही समझो। बस इस समय की मुलज़िम यही अपनी बेणारे। मगर कसूर कौनसा ?

काशीकर : कोई-न-कोई सामाजिक महत्त्व का अभियोग होना चाहिए।

पोंक्षे : ठीक है (**उठकर**) शश श...चलो हम लोग एक काम करें। सब लोग ज़रा इधर आइए। प्लीज़ कम ऑन। आइए।

सबको एकत्र करके कोई प्लान बताता है इशारों से। बीच में उस दरवाज़े की तरफ़ इशारा करता है जिसमें बेणारे गई है।

काशीकर : रोकड़े ! अभी तक तुम से कोर्ट अरेंज नहीं हो पाया न ?

रोकड़े : बस हो ही गया है।

फुर्ती से काम पर जुट जाता है।

कर्णिक : जबकि तुम्हें मैंने ग्राउण्ड-प्लान भी निकालकर दे दिया था, रोकड़े, कि बाद में यह न पूछते फिरो कि कौन-सी प्रॉपर्टी कहाँ रक्खी जाएगी।

रोकड़े : (**अप्रसन्न होकर**) मुझे आप लोगों का यह नाटक-वाटक का

गोरख-धंधा कुछ समझ में नहीं आता। मुझे आदत नहीं है।

सब जुटकर फ़र्नीचर को कोर्ट की तरह लगा देते हैं। पोंक्षे आगे-आगे हैं, काशीकर निरीक्षण में। पोंक्षे की सलाह से रोकड़े बेणारे का पर्स मंच पर रखे सामान में से निकाल कर बाएँ विंग की तरफ़ रखे हुए एक स्टूल पर रख देता है। इसके साथ ही प्रबन्ध पूरा हो जाता है। पोंक्षे तथा काशीकर भीतर के कमरे के दरवाज़े पर जाकर खड़े हो जाते हैं। शेष सारे लोग बाएँ विंग में।

काशीकर : **(विंग में जा रहे लोगों से)** इशारा करूँगा मैं।

इसी समय नेपकिन से मुँह पोंछती हुई, कुछ गुनगुनाती हुई बेणारे आती है। एकदम फ्रेश है। बेणारे दाहिनी तरफ़ मंच पर रखी अपनी डोलची, नेपकिन आदि रखती है और गुनगुनाती है।

बेणारे : बुलबुल से सुगना कहे
क्यों गीले तेरे नैन
कहाँ रहूँ ओ सुगना दादा
कहाँ बिताऊँ रैन
कहाँ गया मेरा रैन बसेरा
चिव चिव चिव
चिव चिव चिव रे
चिव चिव चिव

पोंक्षे अन्दर के दरवाज़े के पास से आकर बेणारे के सामने खड़ा हो जाता है।

पोंक्षे : मिस लीला बेणारे! एक भयानक अभियोग के आधार पर आपको कैद किया जाता है। और अभियुक्त के रूप में आपको कोर्ट में हाज़िर किया जाता है।

बेणारे खड़ी-खड़ी पत्थर के बुत-सी सुन्न और निश्चल हो जाती है। उसे हतप्रभ होकर देखती है। वह भी उसे देखता रहता है। कंघी रखने के लिए पर्स ढूँढ़ती हुई वह बाएँ विंग के पास आती है। स्टूल पर से अपना पर्स उठाती है। काशीकर

ठीक मौक़े पर आकर मंच पर रखी हुई न्याया-धीश की कुर्सी पर बैठ जाते हैं और बायीं विंग में इशारा करते हैं। कर्णिक तथा रोकड़े तुरंत ही अभियुक्त का लकड़ी का कटघरा लिए हुए आते हैं और बेणारे के गिर्द उसे रख देते हैं। वकील मिस्टर सुखात्मे काला कोट पहनते हुए बायीं विंग से आते हैं और मेज़ के साथ लगी हुई वकील की कुर्सी पर बैठ जाते हैं। बाकी लोग यथास्थान। बाहर के दरवाज़े पर खड़ा हुआ सामंत।

काशीकर : (**खखारकर**) अभियुक्त मिस बेणारे ! इंडियन पीनल कोड की दफ़ा ३०२ के अनुसार आपके ऊपर भ्रूण हत्या का अभियोग लगाया गया है। उक्त अभियोग आपको मान्य है या अमान्य ?

बेणारे सुन्न और निश्चल ! सब क्षणभर स्तब्ध। वातावरण में भयानक गंभीरता और तनाव।

अंक : २

वही दालान। जिस परिस्थिति में प्रथम अंक खत्म होता है, वही परिस्थिति इस अंक के आरंभ में।

काशीकर : (**मंच पर मेज़ के पास रखी हुई कुर्सी पर न्यायाधीश की गंभीरता और रोब से बैठे हुए**) अभियुक्त मिस बेणारे ! इंडियन पीनल कोड की दफ़ा ३०२ के अनुसार आपके ऊपर भ्रूण हत्या का अभियोग लगाया गया है। उक्त अभियोग आपको मान्य है या अमान्य ?

वातावरण विलक्षण गंभीर। मिस बेणारे कुर्सी का सहारा लेकर सुन्न खड़ी है।

सामंत : (**दरवाज़े से ज़रा सा बढ़कर**) यह लीजिए मसाला पान और सिगरेट।

वातावरण की गंभीरता में अब एकाएक हलकापन आ जाता है।

काशीकर : मुझे मसाला पान।

कर्णिक : मुझे विल्स सिगरेट।

पोंक्षे : सामंत ! स्पेशल पान इधर।

सुखात्मे : मुझे एक सादा पान और छाताछाप बीड़ी। काशीकर आपको ?

काशीकर : मसाला पान।

रोकड़े सामंत से पान का बीड़ा लेकर काशीकर को देता है।

रोकड़े : (**काशीकर से, अदब से**) फालतू चूना निकाल दिया है।

सुखात्मे : (**बेणारे की तरफ एक बीड़ा बढ़ाते हुए**) हैव इट, बाई !

बेणारे : (**कुर्सी में बैठी हुई**) आँ ? हाँ...मगर नहीं ! थैंक्यू !

सुखात्मे : बेणारे बाई, आप इस तरह एकाएक गंभीर क्यों हो गई ? ऑफ़्टर आल दिस इज़ जस्ट ए गेम। एक खेल ही तो है यह ! बस। उसमें इतना सीरियस होने की क्या ज़रूरत है ?

बेणारे : (**हँसने का प्रयास करती हुई**) कौन है सीरियस ? मैं तो बिलकुल ही लाइट हूँ। कोर्ट का एटमॉस्फियर बनाने के लिए ज़रा सीरियस हो गई थी। बस। इस मुकदमे में मुझे क्या डर हो सकता है ?

सामंत : (**कर्णिक से एक सिगरेट लेकर उसे सुलगाता हुआ, कर्णिक से ही**) अभी का यह तमाशा असल में था क्या ?

कर्णिक : (**सिगरेट का कश लेकर**) कैसा तमाशा ?

सामंत : नहीं। वह अभी कुछ कह रहे थे न ? वह काशीकर साहब। कुछ अभियोग वग़ैरह। कुछ ठीक से समझ में नहीं आया।

कर्णिक : अभियोग न ? भ्रूण हत्या का।

सामंत : वह तो सुना, मगर उसके माने क्या ? मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम। इसलिए पूछा...मैंने कभी देखा ही नहीं न यह सब, इसीलिए...।

सुखात्मे : तुरन्त जन्मे हुए बच्चे की हत्या का अभियोग।

सामंत : बाप रे ! बहुत ही भयंकर है। हमारे कस्बे में भी बिलकुल ऐसे ही हुआ था...हो गया होगा डेढ़ बरस...विधवा थी बेचारी!

सुखात्मे : अच्छा ? तो वकील किसको किया था ? काशीकर साहब, वाह ! क्या बात है ! ऐसा चुनकर आपने यह अभियोग लगाया है कि बस ! ए वन अभियोग। जब तक इस तरह का कोई भयंकर अभियोग न हो, मुकदमे में रंग नहीं आता।

काशीकर : हाँ, और फिर इस अभियोग का सामाजिक दृष्टि से भी कितना महत्त्व है। सुखात्मे ! भ्रूण हत्या का प्रश्न अपने-आपमें एक जबर्दस्त सामाजिक समस्या है। तभी तो मैंने खास तौर से यही अभियोग चुना है। वैसे भी मेरे हाथों आप ऐसा कोई भी काम होता हुआ नहीं पाएँगे जिसमें कोई-न-कोई सामाजिक हित की बात न आई हो। खैर, बेणारे बाई ! नाऊ कम ऑन। रोकड़े ! मेरा हथौड़ा ?

रोकड़े फुर्ती से हथौड़ा ले आता है और काशीकर को देता है।

: वैसे इस समय न भी मिलता तो काम चल जाता। मगर मैं जानना चाहता था कि तुम लाए हो या नहीं। (**हथौड़ा पटककर**) नाऊ-टु बिजनेस। चलिए सुखात्मे ! स्टार्ट कीजिए। अधिकस्य अधिक फलम्। रुकिए, ज़रा पहले अपनी कनखोदनी तो...।

जेब में से कनखोदनी ढूँढकर निकालते हैं और सामने मेज़ पर रख लेते हैं।

सुखात्मे : (**रोब से काले कोट को एक झटका देकर पान चबाते हुए**) मि'लार्ड ! कोर्ट की आगामी कार्रवाई बिना किसी रुकावट के चलाई जा सके, इसके लिए संबंधित लोगों को पान थूकने के लिए आरम्भ में ही चौथाई मिनट का समय दिया जाए, इसकी नम्रतापूर्वक विनती मैं न्यायासन से करता हूँ।

काशीकर : (**जीभ पर चिपके हुए सुपारी के कणों को उड़ाकर, न्यायमूर्ति जैसी गंभीरता से**) इस विषय में अभियुक्त के वक़ील को कोर्ट के सामने उपस्थित किया जाए।

सुखात्मे : (**तुरंत उठकर अभियुक्त का वकील होता है**) मि'लार्ड ! सरकारी वकील के सुझाव का मैं पूरी तरह से विरोध करता हूँ। पान थूकने के लिए ज़्यादा-से-ज़्यादा दस सेकेण्ड का समय काफी होने के बावजूद सरकारी वकील चौथाई मिनट का कीमती वक़्त माँग रहे हैं, यह बात मेरे पक्ष के लिए घातक और विद्रोहपूर्ण है। इससे जान-बूझकर समय बरबाद करने का उनका स्पष्ट मंतव्य ज़ाहिर होता है, इसीलिए मेरे पक्ष का कहना है कि कोर्ट इस कार्य के लिए सिर्फ़ दस सेकेण्ड का ही समय दे।

बेणारे : (**बगैर बोले रहा नहीं जाता**) हाँ, और क्या ? नहीं तो उतना ही क्यों...साढ़े नौ ही सेकेण्ड।

काशीकर : बेणारे बाई ! कोर्ट में अभियुक्त बार-बार बोल नहीं सकता। सामंत की बात और है। मगर कोर्ट के एटीकेट क्या आपको भी नये सिरे से सिखाने होंगे ? (**कर्णिक को बुलाकर**) क्लर्क ऑफ़ द कोर्ट ! उपस्थित समस्या के बारे में कोर्ट की पूर्व परम्परा क्या कर रही है, क्या आप इसे स्पष्ट करेंगे ?

कर्णिक : (**सिगरेट का कश लेकर धुआँ छोड़ता हुआ**) पान खाकर कोर्ट की कार्रवाई चलाने की आम पद्धति न होने की वजह से मेरा ऐसा खयाल है, मि'लार्ड ! कि इसकी कोई पूर्व परम्परा निर्मित ही नहीं हो सकी है। बल्कि मैं तो यह भी कहूँगा कि

‘दिशान्तर’, दिल्ली द्वारा प्रस्तुत एवं ओम शिवपुरी द्वारा निर्देशित ‘खामोश, अदालत जारी है’ के मंचन के तीन दृश्य :

कुमारी बेणारे (सुधा शिवपुरी) और सुखात्मे (विश्वमोहन बडोला)

●

बेणारे (सुधा शिवपुरी)

●

बेणारे (सुधा शिवपुरी) और सामंत (रामगोपाल बजाज)

पान खाकर कोर्ट में न्यायमूर्ति के बैठने का यह प्रसंग भी इस परम्परा में पहला, अनोखा और एक तरह से अभूतपूर्व है मि'लार्ड !

काशीकर : अभियुक्त के वकील ! क्या आप इस बात को कोर्ट के सामने सिद्ध कर सकेंगे कि पान थूकने के लिए दस सेकेण्ड काफी हैं ?

सुखात्मे : बाई ऑल मीन्स !

बाहर जाकर थूककर लौटते हैं और दरवाज़ा बन्द करते हैं।

: एक्ज़ैक्टली टेन सेकेण्ड्स मि लार्ड !

काशीकर : वी मस्ट सी फॉर अवर-सेल्वज !

वही काम करने के लिए भीतर जाते हैं।

बेणारे : (**गहरी साँस लेकर**) यह न्यायालय है कि पान थूकने का कम्पिटीशन, क्यों जी कर्णिक ?

कर्णिक अनसुनी करता है।

सामंत : (**बीच ही में कर्णिक से**) साहब ! असली कोर्ट में भी ऐसा ही होता है ? मगर है बड़ा मजेदार यह !

कर्णिक : (**सिगरेट का धुआँ उड़ाकर, नकली गंभीरता से**) श्श ऽ ऽ ऽ... कोर्ट की बेअदबी होगी। बोलो नहीं। बस देखते रहो चुप-चाप !

पोंक्षे की तरफ आँख मारता है।

काशीकर : (**वापस आकर बैठते हुए**) क्लार्क आफ द कोर्ट ! वक़्त क्या हुआ ?

कर्णिक : (**घड़ी देखकर**) पता नहीं।

श्रीमती काशीकर : मैं बताती हूँ जी। पन्द्रह सेकेण्ड हुआ है।

सुखात्मे : (**सरकारी वकील की जगह आकर विजयी हास्य करते हुए**) देयर ! नॉट टेन, बट फ़ुल फ़िफ़्टीन सेकेण्ड्स...दैट इज़ वन-फ़ोर्थ मिनट ! मैंने जितना कहा उतना ही वक़्त मि'लार्ड !

काशीकर : (**गंभीरता बनाये रखकर**) यस ! मगर पान थूकने के विषय को लेकर कोर्ट का आधे से अधिक मिनट बरबाद हो चुका है इसलिए अब इस चर्चा पर और समय न देकर, कोर्ट की कार्रवाई तुरन्त आरम्भ की जाए। कोर्ट यह निर्णय लेता है कि इस तरह के व्यक्तिगत काम, जिसमें पान थूकना वग़ैरह शामिल हैं, हर व्यक्ति कोर्ट की कार्रवाई में वग़ैर बाधा पहुँचाए हुए चुपचाप करके आ सकता है।

पोंक्षे : **(खड़े होकर)** हियर ! हियर !

काशीकर : **(हथौड़ा पटककर)** साइलेन्स ! साइलेन्स मस्ट बी ऑब्ज़र्व्ड !

श्रीमती काशीकर : **(सामंत से)** सामंत, यह पान-वान वाली बात को तुम सही न समझना। यह तो ऐसे ही मज़ाक में था। तुम बस कोर्ट की कार्रवाई पर ध्यान देना। परमिशन तो सभी बात में लेनी पड़ती है। याद रखना, नहीं तो रात में सब घोटाला कर बैठोगे।

सामंत : **(उत्साह से)** नहीं। ठीक से तो देख ही रहा हूँ। मगर...।

काशीकर : **(ज़ोर से हथौड़ा पटककर)** साइलेन्स मस्ट बी आब्ज़र्व्ड व्हेन कोर्ट इज़ इन सेशन ! घर में भी वही, यहाँ भी वही।

श्रीमती काशीकर : मगर मैं तो सिर्फ इस सामंत को...।

सुखात्मे : छोड़िए बाई ! मज़ाक में कह रहे हैं काशीकर साहब !

श्रीमयी काशीकर : तो भी क्या ? उठते-बैठते बस बात सुनाना !

उदास हो जाती है।

वेणारे : **(चेहरे पर ऊब और थकान। चोबदार के वेश में खड़े हुए रोकड़े से धीमे स्वर में)** ए बालू...!

रोकड़े : **(नाराज़ होता हुआ)** मुझे बालू मत कहिए।

काशीकर : **(गला खँखारकर, हथौड़ा पटकते हुए)** नाऊ बैक टु भ्रूण हत्या। अभियुक्त मिस लीला बेणारे ! आपके ऊपर जो अभियोग लगाया गया है वह आपको मान्य है या अमान्य ?

बेणारे : आपके ऊपर लगाया जाए तो आपको होगा मान्य ?

काशीकर : **(हथौड़ा पटककर)** आर्डर ! आर्डर ! कोर्ट की प्रतिष्ठा किसी भी परिस्थिति में क़ायम रहनी ही चाहिए। नहीं तो सामंत को कोर्ट की करेक्ट कार्रवाई की जानकारी नहीं हो सकेगी।

बेणारे : कि भ्रूण हत्या की कार्रवाई की ?...छि: छि:, मुझे तो यह शब्द ही घिनौना लगता है...भ्रूण हत्या ! भ्रूण हत्या ! इससे तो कहीं अच्छा होता कि आप मेरे ऊपर सार्वजनिक संपत्ति के अपहार वग़ैरह का अभियोग लगाते। अपहार शब्द कैसा मधुर है। बिलकुल उपहार या अल्पाहार जैसा।

श्रीमती काशीकर : न कहीं बुरा है। अच्छा भला तो है, मुझे तो है। मुझे तो बहुत पसन्द आया बाबा, यह अभियोग।

बेणारे : **(कुर्सी पर हाथ पटककर)** आर्डर ! आर्डर ! कोर्ट की प्रतिष्ठा क़ायम रहनी ही चाहिए ! यहाँ भी वही, घर में भी वही **(वकील की अदा से)** मि'लार्ड ! कोर्ट के कुटुम्ब को उचित चेतावनी दुवारा दी जाए। उन्होंने क्या कभी भ्रूण हत्या की

है ? उन्होंने तो खुद मि'लार्ड को छोड़कर किसी सार्वजनिक सम्पत्ति का अपहार भी नहीं किया है।

श्रीमती काशीकर : अच्छा बस, चुप कर बेणारे ! बहुत हो चुका।

बेणारे : (**चोबदार रोकड़े को सम्बोधित करके धीरे से**) ए बा...लू !

वह क्रोध से होंठ चबाता है।

सामंत : (**श्रीमती काशीकर से, बहुत मुदित होकर**) हुँः ! कमाल करती हैं यह बेणारे बाई भी !

पोंक्षे : (**गंभीरता से**) तमाम बातों में।

काशीकर : अभियुक्त मिस बेणारे ! वकील का अधिकार अपने हाथ में लेकर आपने कोर्ट की मर्यादा का उल्लंघन किया है। इसके लिए आपको चेतावनी दी जा रही है।

बेणारे उठकर सीधे उनके सामने जाकर खड़ी हो जाती है और पान का बीड़ा उनकी तरफ़ बढ़ाती है।

बेणारे : थैंक्स ! और इस नेक कार्य के लिए आपको मसाला पान की भेंट दी जा रही है।

कर्णिक : बस यही, यही तो सब मुसीबत की जड़ है। जब सीरियसली कुछ लेना ही नहीं है तो जाने दीजिए। ज़रा इसी सामंत को समझाना था। कम-से-कम यह सोचकर तो कोर्ट के नियम पालिए। प्लीज़ बी सीरियस !

सुखात्मे : आख़िर यह खेल भी बच्चों का खेल ही होकर रह गया। सीरि-यसनेस तो सबसे पहले ज़रूरी है।

बेणारे : (**कटघरे में वापस लौटती हुई**), नाऊ बैक टु भ्रूण हत्या। मि' लार्ड, ख़ता हुई ! अभियुक्त को न्यायमूर्ति का इतना सम्मान नहीं करना चाहिए था। जहाँ तक अभियोग का प्रश्न है मुझे वह अमान्य है। मैं, जो एक पिद्दी-से झींगुर की हत्या नहीं कर सकती, इतने बड़े भ्रूण की हत्या कैसे करूँगी ? अब आप कहि-एगा कि क्लास में लड़कियों को मैंने मारा है तो उन्हें तो मारूँगी ही, जो शरारत करेगा वह पिटेगा भी।

काशीकर : रोकड़े ! शपथ लेने के लिए गीता ?

रोकड़े फुर्ती से एक मोटा ग्रन्थ निकालकर स्टूल पर रख देता है।

: गवाह का कटघरा ?

रोकड़े लेने को लपकता है।

काशीकर : (**सामंत से**) अब इसके बाद सरकारी भाषण, यानी कि सरकारी वकील का भाषण समझे ?

सुखात्मे दो कुर्सियाँ मिलाकर पैर फैलाए हुए बैठे हैं। दोनों हाथ गर्दन के पीछे हैं। सुस्ती से उठकर यंत्रवत बोलने लगते हैं।

सुखात्मे : मि'लार्ड ! अभियुक्त पर लगाए गए अभियोग का स्वरूप...। (**कर्णिक की सिगरेट से बीड़ी सुलगाकर धुआँ छोड़ते हुए**) महा भयंकर है। मि'लार्ड ! मातृत्व एक मंगलमय...।

बेणारे : आपको क्या पता ? (**सबके चेहरे की तरफ बारी-बारी से देखकर**) आर्डर ! आर्डर !

पोंक्षे खीझकर भीतर के कमरे में चल देता है।

काशीकर : अभियुक्त मिस बेणारे ! कोर्ट की कार्रवाई में बाधा डालने की वजह से कोर्ट आपको एक बार फिर चेतावनी देता है, ऑर्नी फॉर द स्टेट, कन्टिन्यू कीजिए।

सुखात्मे : मातृत्व पवित्र है, इतना ही नहीं, बल्कि मातृत्व को हमारी कल्पना के पीछे बहुत ही अधिक...ये है...यानी कि उदात्तता है। हमने स्त्री को जगत्-जननी माना है। हमारी संस्कृति में उसकी सदा पूजा होती आई है। 'मातृदेवो भव' यह शिक्षा हम अपने बच्चों को पालने से ही देते आए हैं। माता पर बच्चे का बहुत बड़ा दायित्व होता है। वह समय पड़ने पर अपनी जान की परवाह न करके अपने बच्चे का पालन-पोषण और संरक्षण करती है...।

काशीकर : एक भूल गये सुखात्मे ! जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ! इस तरह का संस्कृत में एक श्लोक भी तो है।

श्रीमती काशीकर : (**उत्साहित होकर**) हाँ और, 'ऐ माँ ! तेरी सूरत से अलग भगवान की सूरत क्या होगी' यह गाना तो बहुत ही ज़्यादा प्रसिद्ध है। है ना ?

बेणारे : आर्डर ! आर्डर ! यह सारी बातें स्कूल की निबन्ध कापी से चुराई गई हैं। (**जीभ काटकर शरारत से**) अभियुक्त मिस बेणारे ! कोर्ट के अधिकार अपने हाथ में लेकर कोर्ट की कार्रवाई में बाधा डालने के कारण आपको एक बार फिर चेतावनी दी जाती है।

हथौड़ा पटकने का अभिनटन।

सुखात्मे : आई ऐम डीपली ग्रेटफुल मि'लार्ड, फॉर योर एडीशन।

सारांश यह है कि स्त्री क्षण-काल की पत्नी और अनन्त-काल की माता है।

सामंत ताली बजाता है।

काशीकर : चलो इस समय तो कोई बात नहीं, चल गया। मगर रात में यह सब मत करना।

सामंत : हाँ, हाँ जानता हूँ। इस समय तो बिना बजाये रहा नहीं गया। मगर कितना सुन्दर वाक्य था ना!

सुखात्मे : सत्य है। ऐसी स्थिति में यदि कोई स्त्री अपने जिगर के टुकड़े की कोमल गर्दन में अपने राक्षसी पंजे धँसाकर उसकी हत्या कर दे तो एक प्रतिष्ठित नागरिक होने के नाते हमारा क्या कर्तव्य है? इस बात को आप भी मानते होंगे कि ऐसी पत्थर-दिल और क्रूर स्त्री इस संसार में दूसरी नहीं हो सकती। अभियुक्त ने एक अत्यन्त अधम और नीच क़िस्म का अपराध किया है। उसके इस अपराध को हम अब कुछ गवाहियों के आधार पर सिद्ध करेंगे।

रोकड़े कटघरा ले आता है।

बेणारे : (**धीमे और छेड़खानी के स्वर में**) ए बालू...।

वह झुँझलाता है। अन्दर के कमरे से निकलकर पोंक्षे आते हैं।

सुखात्मे : हमारे पहले गवाह हैं विश्वविख्यात साइंटिस्ट मिस्टर गोपाल पोंक्षे। कहिए पोंक्षे! प्रसन्न हुए कि नहीं? एकाएक आपको मैंने विश्वविख्यात बना दिया।

काशीकर : गवाह को कटघरे में बुलाया जाए।

कान खोदते रहते हैं। पोंक्षे गवाह के कटघरे में आकर खड़े होते हैं। रोकड़े उनके सामने ग्रन्थ ले आता है। पोंक्षे ग्रन्थ का पहला पेज खोलकर देखते हैं फिर बन्द कर उस पर हाथ रखते हैं। गंभीर स्वर में।

पोंक्षे : मैं, जी० एन० पोंक्षे, ऑक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी पर हाथ रखकर शपथ लेता हूँ कि जो कुछ कहूँगा सत्य कहूँगा, झूठ नहीं कहूँगा...।

बेणारे खिलखिलाकर हँस पड़ती है।

काशीकर : (**डाँटकर**) बालू! गीता किधर है?

रोकड़े : (**दीन होकर**) भूल गया। भूल से यह डिक्शनरी आ गई।

आखिर मैं भी क्या-क्या चीज़ें याद रखूँ... ?

बेणारे : बिच्चारा बालू !

रोकड़े : (**नाराज़ होकर**) आप मेरा मज़ाक मत बनाइए, कहे देता हूँ।

काशीकर : (**हथौड़ा पटककर**) एक्ज़ैमिनेशन टु स्टार्ट।

श्रीमती काशीकर : (**सामंत से**) अब यह वाली कार्रवाई ज़रा ठीक से देखो।

सामंत सिर हिलाता है।

सुखात्मे : (**पोंक्षे के पास जाकर**) आपका नाम ?

पोंक्षे : आगे चलाइए। बारीकियाँ सब रात में।

सुखात्मे : अच्छी बात है। तो गवाह मिस्टर पोंक्षे ! आप अभियुक्त को पहचानते हैं ?

बेणारे : (**बीच में ही, पोंक्षे की नकल में**) हूँ !

पोंक्षे : (**बेणारे को पैनी निगाह से देखते हुए**) हाँ, खूब अच्छी तरह से।

सुखात्मे : अभियुक्त के सामाजिक जीवन-स्तर का वर्णन आप किस तरह करेंगे ?

पोंक्षे : शिक्षिका उर्फ मास्टरनी।चाची यानी स्कूल मास्टरनी।

बेणारे : (**जीभ निकालकर चिढ़ाती हुई**) अच्छी भली जवान तो है।

सुखात्मे : मिस्टर पोंक्षे ! अभियुक्त विवाहित है या कि अविवाहित ?

पोंक्षे : यह बात अभियुक्त से क्यों नहीं पूछते ?

सुखात्मे : मैं आपसे पूछता हूँ। आप क्या जवाब देंगे ?

पोंक्षे : लौकिक दृष्टि में तो अविवाहित ही कहा जायगा।

बेणारे : (**बीच में**), और अलौकिक दृष्टि से ?

काशीकर : आर्डर ! आर्डर ! बेणारे बाई ! संयम और संयम के महत्त्व को न भूलिए। (**सुखात्मे से**) यू मे कंटिन्यू। मैं आया अभी।

उठकर अन्दर के कमरे में चले जाते हैं।

श्रीमती काशीकर : यह भी बस इसी समय, समझे। रात में यह सब नहीं होगा। उस समय सब असली की तरह करना पड़ेगा।

सुखात्मे : (**अपने से ही**) यह मिस्टर काशीकर भी बेवक़्त की डफली छेड़ देते हैं। (**सहज स्वर में**) हाँ, तो मिस्टर पोंक्षे ! अभियुक्त के नैतिक आचरण का आप अपनी दृष्टि से किस तरह वर्णन करेंगे ? सर्वसाधारण विवाहित स्त्रियों की तरह ? कम-से-कम इस ट्रायल को आप सीरियसली कीजिए।

बेणारे : मगर सर्वसाधारण अविवाहित स्त्रियों का भी बेचारे क्या जानें... आचरण-वाचरण !

पोंक्षे : (**बेणारे की बात को अनसुना करके**) नहीं, अलग तरह का।
सुखात्मे : मिसाल के तौर पर ?
पोंक्षे : मेरा मतलब कि अभियुक्त कुछ ज़रूरत से ज़्यादा ही 'यह' है।
सुखात्मे : ज़्यादा क्या है ?
पोंक्षे : यानी कि पुरुषों के आगे-पीछे कुछ ज़्यादा ही रहती है वह।
बेणारे : (**चिढ़ाती हुई**) च्च च्च च्च च्च...विचारा पुरुष !
सुखात्मे : मिस बेणारे ! आपकी हरकतों से कोर्ट की बेअदबी हो रही है।
बेणारे : कोर्ट की ? वह तो वहाँ गया है उस कमरे में। फिर उसकी बेअदबी इस कमरे में कैसे हो सकती है ? और आपके प्लैन में तो बहुत से कमरे में भी नहीं हैं, सुखात्मे।

सामंत मुदित होकर हँसता है।

सुखात्मे : (**बेणारे से**) आपके मुँह लगना बेकार है। गवाह मिस्टर पोंक्षे...!

पोंक्षे कटघरे से थोड़ा हटकर कर्णिक से वार्तालाप में उलझा है।

: नो बडी इज़ सीरियस।

पोंक्षे कटघरे में ठीक से खड़ा हो जाता है।

: मिस्टर पोंक्षे ! अभियुक्त का किसी विवाहित या अविवाहित पुरुष से विशेष घनिष्ठ सम्बन्ध है ? या था ? इस पर आप क्या प्रकाश डाल सकेंगे ? (**ज़ोर देकर**) ध्यान से सुनिए। विवाहित या अविवाहित पुरुष से...।
बेणारे : हाँ हाँ, क्यों नहीं, खुद सरकारी वकील सुखात्मे से ही है। और वह जो न्यायमूर्ति जी हैं उनके साथ भी। वैसे देखा जाये तो पोंक्षे जी और बालू के साथ भी। और वह जो कर्णिक खड़े हैं, उनसे भी !
रोकड़े : बेणारे बाई ! पछताइएगा। कहे देता हूँ।
पोंक्षे : ऐसी दशा में यह मुकदमे का बच्चों जैसा खेल चलाने से क्या फायदा सुखात्मे ? नो बडी इज़ सीरियस। यह काशीकर वहाँ जाकर बैठ गए हैं। इनका यह हाल है। मुझे कुछ कहने का मौक़ा ही नहीं दिया जाता।
कर्णिक : इससे तो कहीं गम्भीरता से मेरे नाटकों का रिहर्सल होता है।
श्रीमती काशीकर : आखिर मंशा तेरी क्या है रे बेणारे ! समझ ले, अकेले तेरे पीछे रात का पूरा कार्यक्रम चौपट हो जाएगा।
बेणारे : मैंने क्या किया ? मैं तो मुकदमे में मदद दे रही हूँ।

काशीकर भीतर से आकर अपनी कुर्सी पर फिर बैठ जाते हैं।

काशीकर : ह्वाट हैपंड ? कंटिन्यू मिस्टर सुखात्मे ! (**धीरे से**) कहाँ गई कनखोदनी !

बेणारे : मेरी तो तबियत ऊब गई। मैं जा रही हूँ यहाँ से। ज़रा बाहर की ठण्डी हवा खाकर आती हूँ। आप लोग अपना मुकदमा लेकर चाटिए। हूँः भ्रूण हत्या...!

कर्णिक : यही हाल रहा तो यह खेल बैठ ही जाएगा।

काशीकर : नहीं जी। एक बार तो इसे ज़रूर ही पूरा कर दो। जब छेड़ दिया है तो फिर पीछे क्यों हटें।

सामंत : (**दुविधा में**) यानी क्या ? अब यह नहीं होगा ?

काशीकर : (**कनखोदनी पा जाते हैं**) हाँ। चलिए मिली तो। चलिए, चलिए, शुरू कीजिए। हियरिंग टु कंटिन्यू (**बेणारे को चुप रहने का इशारा करते हैं**) सुखात्मे ! इन्तज़ार किस बात का है ?

सुखात्मे : आपकी कनखोदनी के मिलने का, मि'लार्ड। (**फिर आवाज़ बदलकर वकीलों के लहज़े में**) मिस्टर पोंक्षे !

कटघरे से निकलकर बाहर खड़ा हुआ पोंक्षे हड़बड़ाकर कटघरे में वापस आ जाता है।

: आपको कभी अभियुक्त के रहन-सहन में कोई चीज़ खटकी थी ?

पोंक्षे : यस। तमाम चीजें।

सुखात्मे : जैसे ?

पोंक्षे : अभियुक्त के दिमाग़ में कई बार मुझे कुछ गड़बड़ी महसूस हुई। यानी कई बार उनका व्यवहार ऐसा रहा कि जो मेरी समझ से बाहर था।

सुखात्मे : फ़ॉर एक्ज़ाम्पल ?

पोंक्षे : फ़ॉर एक्ज़ाम्पल, समझ लीजिए कि जैसे एक बार उन्होंने मेरी शादी तय कराने के लिए...और वैसे इस वक़्त भी देख लीजिए, यह पागलखाने के पेशेंट की तरह जीभ निकाले हुए खड़ी हुई है।

बेणारे झट से जीभ भीतर कर लेती है।

सुखात्मे : (**महत्त्वपूर्ण तथ्य हाथ लगने के उत्साह में**) गुड ! अब आप बैठ सकते हैं मिस्टर पोंक्षे, द ग्रेट साइंटिस्ट ! अवर नेक्स्ट विटनेस मिस्टर कर्णिक, द ग्रेट ऐक्टर !

पोंक्षे कटघरे से बाहर निकलकर बेणारे की

तरफ़ देखता हुआ एक तरफ़ हट जाता है। कर्णिक नाटकीय ढंग से आकर कटघरे में खड़ा हो जाता है।

कर्णिक : आस्क !

सुखात्मे : शपथ, नाम, पेशा सब हो चुका है। अब मिस्टर कर्णिक आप अभिनेता है।

कर्णिक : (**नाटक के गवाह की तरह**) यस, और इस बात का मुझे गर्व है।

सुखात्मे : उसे छोड़िए। पहले आप यह बताएँ मिस्टर कर्णिक, आप इस महिला को जानते है ? यू नो दिस लेडी ?

बेणारे की तरफ़ इशारा करता है।

कर्णिक : (**नाटकीयता से उसे देखकर**) यस सर ! आई थिंक आई नो दिस लेडी।

सुखात्मे : थिंक के क्या माने, मिस्टर कर्णिक ?

कर्णिक : थिंक माने सोचना या विचार करना। आपको संदेह हो तो डिक्शनरी है यहाँ पर।

सुखात्मे झोंक में डिक्शनरी की तरफ़ जाते हैं और पहुँचने पर भूल का बोध होने पर वापस लौटते हैं :

सुखात्मे : उसकी ज़रूरत नहीं है। आप इनको पहचानते हैं या नहीं पहचानते ? दोनों में से सही क्या है, क्या इसका जवाब दे सकते हैं आप ? हाँ बोलिए...।

कर्णिक : (**कंधे को एक झटका देकर**) स्ट्रेंज। अकसर तो लगता है कि मैं इनको पहचानता हूँ मगर दरअसल पहचानता नहीं। ट्रुथ इज़ स्ट्रेंजर दैन फ़िक्शन।

सुखात्मे : आपसे इनका परिचय कहाँ का है ?

कर्णिक : परिचय हमारी नाटक-मंडली में ही हुआ है। हम लोग अभिरूप कोर्ट का कार्यक्रम करते हैं। उसी में यह भी रहती हैं। हाँ सच, मुझे सही स्मरण है।

सारे हाव-भाव नाटकीय।

सुखात्मे : कार्यक्रम किस तरह का होता है मिस्टर कर्णिक ?

कर्णिक : टॉप !

सुखात्मे : (**ठेठ वकीलाना लहज़े में, काशीकर से**) मि'लार्ड ! इस महत्त्व-पूर्ण तथ्य को नोट कर लिया जाए।

काशीकर : हो जाएगा, आगे चलिए।

सुखात्मे : मिस्टर कर्णिक ! सत्य का स्मरण करके कहिए कि जिस नाटक में आप काम करते हैं उसमें माता का वर्णन किन शब्दों में किया जाता है।

कर्णिक : आजकल के नये नाटकों में तो वह रहता ही नहीं है। वह सारे नाटक तो जीवन की अर्थहीनता पर आधारित होते हैं यानी कि इसे यों समझिए कि मनुष्य जो है वह स्वयं ही एक अर्थहीन...।

काशीकर : यह तो...बस यही मुझे सख्त नापसन्द है। मनुष्य का कोई-न-कोई ध्येय होना ही चाहिए...बिना किसी ध्येय के इंसान इंसान नहीं, चूहा है।

सुखात्मे : उसकी चिन्ता छोड़िए। मिस्टर कर्णिक ज़रा सोचकर देखिए, आपको अगर माता की व्याख्या करनी हो तो आप किस तरह करेंगे ?

कर्णिक : जो बच्चे को जन्म दे वह माता है।

सुखात्मे : जन्म देने के बाद जो उसे पाल-पोसकर बड़ा करती है वह माता है, या कि अपने राक्षसी पंजे धँसाकर जो उसका गला घोंट देती है वह माता है ? इन दोनों में से कौन-सी व्याख्या आपको ठीक लगती है ?

कर्णिक : व्याख्या दोनों ही ठीक हैं क्योंकि जन्म तो दोनों ही माताएँ बच्चे को देती हैं।

सुखात्मे : मिस्टर कर्णिक, मातृत्व के अर्थ क्या हैं ?

कर्णिक : बच्चे को जन्म देना।

सुखात्मे : जन्म तो पशु भी अपने बच्चों को देते हैं।

कर्णिक : तो उनमें भी माताएँ होती हैं। मैंने कब कहा कि माताएँ सिर्फ़ इंसानों में ही होती हैं, पशुओं में नहीं।

बेणारे : (**बड़ी-सी जँभाई लेकर**) बक'प, कर्णिक !

सुखात्मे : कर्णिक आज रंग में है।

काशीकर : यह सब रात में करना कर्णिक, अभी ज़रा सीधे-सीधे ही जवाब-सवाल होने दो।

सुखात्मे : गवाह मिस्टर कर्णिक ! अब आप अच्छी तरह से सोच-समझ कर जवाब दीजिए, अभियुक्त का नैतिक चाल-चलन आपको कैसा लगता है ?

कर्णिक : (**दो-तीन भयंकर पोज़ देकर**) यानी इस मुकदमे के सिलसिले

में या कि असली ?

सुखात्मे : असली। असली ही।

काशीकर : (**कान खोदते हुए**) मेरा तो ख्याल है कि फिलहाल यह सब प्रश्न मुकदमे के सिलसिले में ही चलने दीजिए, सुखात्मे !

कर्णिक : हाँ और क्या ! वही ठीक होगा ! उस तरह से देखा जाए तो अभियुक्त के नैतिक चाल-चलन के बारे में मुझे कोई जानकारी नहीं है।

सुखात्मे : सचमुच नहीं है ?

कर्णिक : सचमुच। कम-से-कम इस मुक़दमे के सिलसिले की तो क़तई नहीं।

बेणारे के चेहरे पर बेचैनी।

सुखात्मे : मिस्टर कर्णिक। (**एकाएक उत्साह में भरकर भिन्न स्वर में**) मिस्टर कर्णिक ! विशेष समय में विशेष परिस्थिति में आपने अभियुक्त को संदिग्ध अवस्था में पाया है या नहीं ? हाँ या न में जवाब दीजिए। यस ऑर नो।

कर्णिक : (**एकाएक**) नहीं-नहीं, मैंने कहाँ ? इसने देखा है, इसने। रोकड़े ने।

रोकड़े : (**घबराकर**) नहीं, मुझे कुछ नहीं मालूम। मेरी बात मानिए। सचमुच मुझे कुछ भी मालूम नहीं है।

सुखात्मे : (**सीधे तनकर, किसी बड़े बैरिस्टर के अंदाज में**) मिस्टर कर्णिक ! थैंक्यू सो मच। यू केन टेक योर सीट नाऊ।

कर्णिक कटघरे से बाहर आ जाता है।

: नाऊ मिस्टर रोकड़े ! गवाह के कटघरे में चलिए तो ! हाँ चलिए, चलिए।

काशीकर : (**सामंत से**) समझ में आ रहा है न ?

सामंत : हाँ।

रोकड़े दुविधा और घबराहट में वहीं का वहीं खड़ा है।

रोकड़े : मैं...मैं नहीं।

सुखात्मे : मि'लार्ड ! चोबदार रोकड़े की गवाही की इस मुकदमे में सख्त आवश्यकता है। उसे गवाह के कटघरे में फौरन बुलाया जाए।

रोकड़े : (**दयनीय होकर**) मैं हरगिज़ नहीं आऊँगा। नहीं मानेंगे तो मैं चला जाऊँगा यहाँ से...।

बेणारे खिलखिलाकर हँसती है।

काशीकर : रोकड़े !

रोकड़े आज्ञाकारी सेवक की तरह जाकर कटघरे में खड़ा हो जाता है। शरीर में कँपकँपी। बहुत नर्वस।

पोंक्षे : क्या देखा है जी उसने ?

कर्णिक : कहाँ क्या देखा है ? कुछ नहीं। मैंने तो यों ही छेड़ दिया है उसे। अपनी पारी में तुमने 'खोः' मुझे दिया था और मैंने उसे दे दिया है। बस। सुखात्मे साहब का खेल चलता रहेगा। क्यों ठीक किया कि नहीं ?

सुखात्मे : शपथ, नाम, पेशा...। अब आगे चलिए मिस्टर रोकड़े !

रोकड़े रुआँसा हो गया है।

: मिस्टर रोकड़े ! अभी-अभी अपनी गवाही के बीच मिस्टर कर्णिक ने आपका ज़िक्र किया था, क्या आपने सुना था ? आप उस पर कहाँ तक प्रकाश डाल सकते हैं ?

श्रीमती काशीकर : बालू ! अब इस समय बिना झेंपे हुए एक बढ़िया-सी गवाही दे तो दे। समझ ले इस समय तेरा काम जम गया तो आगे प्रोग्राम में और चान्स मिलेगा। इतना अच्छा मौक़ा फिर हाथ नहीं आएगा बालू।...सामंत ! देख रहे हो न ? ठीक से समझ-बूझ लेना।

काशीकर उन्हें घूरते हैं। श्रीमती काशीकर चुप हो जाती हैं।

सुखात्मे : हाँ मिस्टर रोकड़े ! बोलिए, क्या देखा आपने ?

रोकड़े बहुत अधिक नर्वस। थूक निगलता रहता है।

सुखात्मे : मिस्टर रोकड़े ! ईश्वर का स्मरण करके बताइए कि आपने वहाँ पर क्या देखा ?

रोकड़े के मुँह से बात नहीं निकल पाती।

: (**विशेष, फ़िल्मी कोर्ट में जैसे हों**) विशिष्ट समय में, विशिष्ट परिस्थिति में क्या देखा आपने ? आन्सर प्लीज़ !

रोकड़े : (**किसी तरह**) अपना सर।

पसीने-पसीने है। बेणारे खिलखिलाकर हँसती जा रही है। कर्णिक पोंक्षे की तरफ़ देखकर आँख मारते हैं।

काशीकर : (**दाँत खोदते हुए**) यह तो शुरू से ही ऐसा गावदी है।

श्रीमती काशीकर : बालू ! फिर चान्स मिलेगा नहीं तुझे। उत्तर दे जल्दी से। घबराने की उसमें क्या बात है ? चार आदमी के बीच ज़रा बोलना-चालना चाहिए। है कि नहीं जी सामंत ?

सामंत : हाँ, लेकिन वैसे यह काम मुश्किल तो है ही।

काशीकर : बालू ! बोल न झटपट !

बेणारे : बालू बोल न...बोल न मुन्ने, अ आ, इ ई, उ ऊ !

रोकड़े : (**उतनी घबराहट के बीच भी बेणारे को झिड़ककर**) चुप रहिए !

पसीना पोंछता है।

सुखात्मे : (**वकीली लहज़े में**) मिस्टर रोकड़े !

रोकड़े : आप जरा देर चुप रहिए न। (**अपने को भरसक संयत कर लगातार हँसे जा रही बेणारे को दो-एक बार देखकर**) सब बताता हूँ रुकिए ! अभी कुछ दिन पहले मैं गया था उनके घर...।

सुखात्मे : (**वकीलाना शैली**) मिस्टर रोकड़े, किसके घर गए थे आप ?

रोकड़े : मुझे टोकिए नहीं बीच-बीच में। मैं गया था वहाँ...वह जो दामले साहब हैं न...उनके घर।

बेणारे स्तंभित।

पोंक्षे : अवर प्रोफ़ेसर दामले ?

कर्णिक : तब तो उनके कॉलेज के होस्टल वाले कमरे की बात होगी।

रोकड़े : हाँ ! ऐसे ही शाम का समय था। उस समय यह वहाँ पर मौजूद थी। यही बेणारे बाई।

सब लोग : (**एकदम**) कौन ?

रोकड़े : (**बेणारे की तरफ़ देखकर**) अब हँसिए। क्यों ? अब क्यों चुप हो गई ? बनाइए न मज़ाक !...यही बेणारे बाई ही थी वहाँ पर...दामले और यह।

बेणारे के चेहरे पर घबराहट। कर्णिक द्वारा पोंक्षे को इशारा।

सामंत : (**श्रीमती काशीकर से**) सुनिए ! यह सब इसी कोर्ट वाले खेल का हिस्सा है या सच बात है ?

सुखात्मे : (**एक खास तरह की सतर्क आवाज़ में**) मिस्टर रोकड़े ! आप शाम को अँधेरा होते-होते प्रोफ़ेसर दामले के कमरे पर पहुँचे तो वहाँ आपने क्या देखा ? (**धमकाती हुई गम्भीर आवाज़ में**) क्या देखा वहाँ ?

काशीकर : (**बहुत रस ग्रहण करते हैं, पर ऊपरी दिखावे से**) सुखात्मे, यह कुछ व्यक्गित-सा हुआ जा रहा है। इस तरह तो...।

सुखात्मे : नहीं ! बिलकुल नहीं मि'लार्ड ! यह तो इस मुकदमे का ही एक अंश है। हाँ तो मिस्टर रोकड़े...!

बेणारे : मुझे यह सब पसन्द नहीं है, कहे देती हूँ। इससे इस मुकदमे के खेल से क्या मतलब ?

श्रीमती काशीकर : मगर तू इतनी यह क्यों हो रही है रे बेणारे ? चलने दो जी सुखात्मे !

बेणारे : मेरी व्यक्तिगत बातों को यहाँ उछालने की कोई ज़रूरत नहीं है। मैं चाहे जिसके घर जाऊँ-आऊँ, आपसे क्या मतलब ? दामले कोई मुझे खा तो नहीं रहे थे !

सुखात्मे : हाँ तो आपने वहाँ पर क्या देखा मिस्टर रोकड़े ? हाँ-हाँ, कहिए, कहिए। बेणारे बाई, मुकदमे का मजा किरकिरा मत कीजिए। ज़रा सुनिए तो ध्यान से। बड़ा मज़ेदार होता है यह खेल। ज़रा सब्र कीजिए। हाँ जी रोकड़े, फौरन बताइए आपने वहाँ क्या देखा ? संकोच बिलकुल मत कीजिए...।

रोकड़े : (**पहले कुछ ठिठककर फिर बिलकुल नाक की सीध में नज़र किए हुए**) दोनों बैठे हुए थे।

सुखात्मे : और ?

रोकड़े : और क्या ? दोनों बैठे हुए थे वहीं उस कमरे में।

सुखात्मे : आपने और क्या देखा ?

रोकड़े : बस इतना ही देखा।

सुखात्मे निराश होते हैं।

: मगर मुझे बड़ा अजब लगा यह देखकर। अँधेरा बढ़ रहा था और दामले के कमरे में यह...

बेणारे : अबोध है अभी मुन्ना !

रोकड़े : अच्छा फिर मुझे देखकर आपके चेहरे पर हवाइयाँ क्यों उड़ने लगी थीं बोलिए ? क्यों ? अब क्यों चुप हो गई ? दामले ने बाहर-ही-बाहर मुझे काट दिया, नहीं तो हमेशा वह अन्दर बुलाकर बैठाते थे, कमरे में।

बेणारे : (**हँसती हुई**) क्यों काट दिया यह तो तुम्हारे दामले साहब जानें। मगर मेरे चेहरे पर जो हवाइयाँ उड़ती हुई तुमने देखीं वह तो सिर्फ़ इस अफसोस में कि उन्होंने मेरे सामने तुम्हें काट दिया था।

सुखात्मे : (**काशीकर से**) मि'लार्ड ! गवाह मिस्टर रोकड़े ने जो कुछ देखा, वह आगे और कुछ क्यों नहीं देख सके यह तो वही जानें मगर जो कुछ भी उन्होंने देखा उसे नोट कर लिया जाए। निश्चय ही अभियुक्त का आचरण संदेहपूर्ण है। यह बात किसी अन्य व्यक्ति की नज़र से देखने पर साफ़ ज़ाहिर होती है।

बेणारे : क्या साफ़ ज़ाहिर होता है ? मैं तो कल प्रिंसिपल के केबिन में भी दिखाई पड़ सकती हूँ, उससे क्या मेरा आचरण सन्देहपूर्ण हो जाएगा ? कुछ पता भी है ? पैंसठ वर्ष के हैं हमारे प्रिंसि-पल !

सुखात्मे : मि'लार्ड ! अभियुक्त का यह वाक्य भी प्रमाण के रूप में आगे इस्तेमाल करने के लिए नोट कर लिया जाए।

बेणारे : आपको चाहिए तो मैं पच्चीस और आदमियों के नाम-पते दे सकती हूँ जिनके साथ अकेली घूमती फिरती हूँ। हूँः ! मुकदमा चलाने चले हैं ! अभियुक्त का आचरण सन्देहपूर्ण है ! कुछ अर्थ भी जानते हैं इसके ? सीधे-सीधे शब्द के अर्थ तो आते नहीं !

कर्णिक की पोंक्षे से इशारे में बातचीत।

सुखात्मे : मि'लार्ड ! अभियुक्त का यह वाक्य भी मेरे विचार से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होने के कारण नोट कर लिया जाए।

काशीकर : (**दाँत खोदते हुए**) कौन-सा ? सीधे शब्द के अर्थ समझ में नहीं आते, यह ?

सुखात्मे : नहीं, पच्चीस और आदमियों के नाम पते वाली बात जिनके साथ यह घूमती फिरती है अकेली।

बेणारे : अभी ज़रा देर पहले जब यहाँ पहुँची तो इस सामंत के साथ भी तो अकेली ही थी कि नहीं ? लिखिए...इनका भी नाम-पता लिखिए।

सामंत : (**हड़बड़ाकर उठता हुआ, घबराहट भरे स्वर में**) नहीं, नहीं। यह बेणारे बाई तो मेरे साथ बहुत शराफ़त के साथ बातचीत कर रही थी। कोई गड़बड़ी नहीं। हम लोग तो बस सिर्फ़ मोहिनी-विद्या पर ही बातें कर रहे थे।

सुखात्मे : मि'लार्ड ! मोहिनी-विद्या का उल्लेख बड़े महत्त्व का है इसलिए इसे भी नोट कर लिया जाए।

काशीकर : (**दाँत खोदते हुए**) मगर सुखात्मे ! कोर्ट की कार्रवाई के नियमों में यह सब कहाँ तक ठीक बैठता है ?

कर्णिक : नहीं बैठता तो भी क्या हुआ ? यह तो अभी योंही हो रहा है। दिस इज़ जस्ट ए रिहर्सल।

पोंक्षे : यस, दिस ईज़ जस्ट ए गेम। खेल है यह तो। यहाँ कौन सीरियस कोर्ट चल रहा है ? सुखात्मे ! बस आज तो मज़ा आ गया, चलाए रक्खो। (**कर्णिक से**) यार ! वकील तो यह अच्छा मालूम पड़ता है। फिर इसकी वकालत चलती क्यों नहीं ?

सामंत : (**श्रीमती काशीकरसे**) मगर बाई ! उस मोहिनी-विद्या में ऐसा कुछ भी नहीं है...हाँ, सच कहता हूँ। बस यही समझ लीजिए कि हिप्नॉटिज़्म।

पोंक्षे : (**उसे बैठने का इशारा करते हुए**) बैठो भी जी तुम। अरे यह तो एक खेल है। चल रहा है।

कर्णिक : (**सुखात्मे से**) सुखात्मे ! रुकने मत देना, चलाए चलो। (**श्रीमती काशीकर से**) कहिए काशीकर बाई ! कैसा लग रहा है ?

श्रीमती काशीकर : अब तो बड़ा मज़ेदार हो चला है भैया, यह। पहले नहीं लगता था। सुखात्मे ! रुकने मत देना। चलाए चलो।

सुखात्मे : (**इन बातों से उत्तेजित होकर**) मिस्टर रोकड़े ! अब आप कटघरे से बाहर जा सकते हैं।

रोकड़े राहत से हुश्श करता हुआ तुरन्त ही बाहर निकल जाता है और सीधे अन्दर वाले कमरे में चला जाता है।

: नाऊ, मिस्टर सामंत।

सामंत : (**खड़ा-खड़ा अविश्वास और दुविधापूर्ण स्वर में**) मैं ? मुझसे कहा ?

सुखात्मे : आइए।

गवाह के कटघरे की तरफ़ इशारा करते हैं। सामंत आकर खड़ा हो जाता है।

: घबराने की कोई बात नहीं है, मिस्टर सामंत ! आपसे जो प्रश्न पूछे जाएँ उनका...।

सामंत : उत्तर देना है।

सुखात्मे : होशियार हो।

काशीकर : कोई परेशानी की बात नहीं है सामंत। यह तो प्रेक्टिस ही है। असली तो रात में है।

सामंत : हाँ हाँ। जानता हूँ कि रात में ही है। मैं घबरा नहीं रहा हूँ। अभी ज़रा ठीक से आता नहीं है न, इसीलिए बस। (**सुखात्मे से**)

शपथ लिए लेता हूँ फिर सुविधा हो जाएगी।

सुखात्मे : ऑल राइट ! चोबदार रोकड़े !

रोकड़े है नहीं।

सामंत : वह शायद वहाँ गए हैं भीतर। मैं खुद ही ले लेता हूँ शपथ।

तुरन्त डिक्शनरी उठाता है और उस पर हाथ रखता है।

: शपथ लेकर कहता हूँ कि जो कुछ कहूँगा सच कहूँगा, झूठ नहीं कहूँगा। मेरा मतलब कि बस इस मुकदमे में जैसा सच होता है वैसा ही। यानी इस तरह से झूठ ही हुआ। मगर प्रेक्टिस के लिए शपथ ले रहा हूँ। (**हाथ अभी भी डिक्शनरी पर ही है**) बात यह है कि अब जान-बूझकर झूठ बोलने का कलंक क्यों अपने माथे लूँ। (**खेदयुक्त स्वर में**) ईश्वर वग़ैरह को मानता हूँ न मैं। चलिए, शपथ हो गई। (**गवाह के कटघरे में वापस आकर सुखात्मे से**) कहिए कैसा रहा ? (**काशीकर बाई से**) देखा ? वैसे डरता-वरता नहीं हूँ। बस ज़रा पहली बार कर रहा हूँ न इसीलिए कुछ गड़बड़ हो जाती है। (**सुखात्मे से**) हाँ, पूछिए।

सुखात्मे : नाम...पेशा...सब हो चुका है।

सामंत : आपको पूछना है क्या ? पूछना हो तो पूछ सकते हैं।

सुखात्मे : नहीं ! अब मिस्टर...।

सामंत : सामंत ! कई बार बीच में ही लोग मेरा नाम भूल जाते हैं इसीलिए बताना पड़ता है।

सुखात्मे : इट्‌ज ऑल राइट। मिस्टर सामंत ! अभियुक्त मिस बेणारे को आप पहचानते हैं ?

सामंत : (**साभिमान**) हाँ-हाँ। मगर ज्यादा नहीं, कुल दो-ढाई घण्टों में ऐसी क्या पहचान हो सकती है ! मगर हो तो गई ही है। बहुत अच्छी है बाई।

सुखात्मे : मगर उनके बारे में जो धारणा आपके मन में बन गई है वह उतनी अनुकूल और विश्वसनीय नहीं लगती है न ! क्यों ?

सामंत : हाँ। नहीं नहीं...लगेगी क्यों नहीं ? ज़रूर लगेगी। मेरी माँ तो एक सेकेंड में चेहरा देखकर आदमी को परख लेती थी। अब तो बिचारी को बिलकुल दिखाई ही नहीं देता। बूढ़ी जो हो गई है।

रोकड़े अन्दर से आकर अपने पूर्व-स्थान पर खड़ा

हो जाता है। बेणारे अभियुक्त के कटघरे में हाथ पर गाल टिकाए आंखें बन्द किए हुए एक दम निश्चल बैठी हुई है।

: वह तो सो गई लगती है...वह देखिए वह बेणारे बाई।

बेणारे : (**आँखें बग़ैर खोले हुए**) जाग रही हूँ ! नींद तो चाहने पर कभी भी नहीं आती। आती ही नहीं।

सामंत : यह झंझट मेरे साथ नहीं है। मैं जब चाहूँ फौरन आ जाती है नींद। (**सुखात्मे से**) आपको ?

सुखात्मे : मेरी नींद का तरीक़ा तो विचित्र है। आती है तो एकदम झट-से आ जाती है और नहीं आती तो चार-चार घंटे गुज़र जाते हैं, आती ही नहीं।

काशीकर की कान और दाँत खोदने की क्रिया लगातार चल ही रही है।

काशीकर : सिर पर आँवले का तेल ठोंकते जाओ सुखात्मे ! बिलकुल अन्दर तक जज़्ब हो जाने दो। मै तो वही करता हूँ ! फिर कितनी भी टेढ़ी सामाजिक समस्या क्यों न हो, आँवले का तेल सर में दबाया और लेने लगे खर्राटे। और इतना समझ लो कि इधर नींद आई नहीं कि उधर दिमाग एकदम शान्त ! और दिमाग शान्त न रहा तो फिर सामाजिक समस्याओं पर आप लाख सिर पीटते रहिए, हल होने की ही नहीं। दिमाग़ और हाज़मा, बस यही तो वह दो चीजें हैं शरीर की जो बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

सामंत : हाँ। (**सुखात्मे से**) मगर आप अपने प्रश्न जल्दी-जल्दी पूछकर छुट्टी कीजिए न !

सुखात्मे : (**पहले का सूत्र पकड़कर**) मिस्टर...

सामंत : सामंत !

सुखात्मे : अभियुक्त को...यानी मिस बेणारे को रोकड़े ने प्रोफेसर दामले के कमरे में शाम के वक़्त, जबकि अँधेरा हो चला था, देखा !

सामंत : बिलकुल ठीक।

सुखात्मे : उस मौक़े पर कमरे में अभियुक्त तथा प्रोफेसर दामले के अतिरिक्त और कोई भी मौजूद नहीं था।

सामंत : करेक्ट ! मगर मुझसे भी तो कुछ पूछिए।

सुखात्मे : पूछता हूँ। तो उसके आधे घंटे के बाद आप वहाँ पहुँचे।

सामंत : कहाँ ? नहीं-नहीं। वह कमरा तो बम्बई में है और मैं रहता हूँ यहाँ। इस कस्बे में। मैं कैसे पहुँच सकता हूँ वहाँ ? मैं तो आज तक यह भी नहीं जानता कि आपके प्रोफेसर दामले गोरे हैं या काले। फिर उनके कमरे में कहाँ से पहुँच जाऊँगा मैं ? अच्छा तमाशा है ! यह भी कोई पूछने का तरीक़ा है ?

सुखात्मे : आप पहुँचे वहाँ ?

सामंत : आपके समझने में कोई भूल हो गई है, वकील साहब।

सुखात्मे : मिस्टर सामंत ! मुकदमे में कुछ बातें काल्पनिक रूप से हम मानकर ही चलते हैं।

कर्णिक : और फिर जब अभियोग ही काल्पनिक है तो क्या रहा ? सभी कुछ काल्पनिक है।

पोंक्षे : सिर्फ अभियुक्त ही काल्पनिक नहीं है।

सामंत : (**श्रीमती काशीकर से**) देखा ! मेरी ही पारी में सब गड़बड़ हो गया। (**सुखात्मे से**) ठीक है, चलिए मैं आध घंटे बाद प्रोफेसर दामले के कमरे में पहुँचा। फिर ?

सुखात्मे : आप ही बताइए।

सामंत : मैं कैसे बता सकता हूँ ?

सखात्मे : तो और कौन बताएगा ?

सामंत : हाँ सचमुच ! मैं ही तो बताऊँगा। मगर बड़ा मुश्किल है। अभियुक्त और प्रोफेसर दामले ! रूम ! शाम का समय...।

पोंक्षे : अँधेरा पड़ने लगा था...।

कर्णिक : उसके आधे घंटे बाद, यानी खासा अँधेरा ! नाइट सीन। कालेज के कम्पाउंड में सन्नाटा।

सामंत : (**एकाएक**) ठीक है पूछिए...हाँ तो मैं पहुँचा। आँ ? तो जब पहुँचा तो क्या हुआ कि...दरवाज़ा बन्द।

सुखात्मे : दरवाज़ा बन्द ?

सामंत : हाँ ! दरवाज़ा बन्द ! बाहर से नहीं। अन्दर से। और मैंने दरवाज़ा खटखटाया। नहीं ! घंटी बजाई। दरवाज़ा खुला। मेरे सामने एक अपरिचित आदमी खड़ा था। सोचिए कौन रहा होगा वह ? अरे वही प्रोफेसर दामले। उन्हें पहली ही बार देख रहा था न मैं, तो अपरिचित तो लगे ही होंगे।

पोंक्षे : वाह जी, सामंत !

काशीकर : खूब गवाही दे रहा है जी यह तो।

सामंत : **(उत्साहित होकर)** तो साहब ! मेरे सामने दामले खड़े थे। मुझे देखते ही झुँझलाकर बोले, 'यस, किससे मिलना है ?'

पोंक्षे : **(कर्णिक से)** एकदम ठीक वर्णन कर रहा है, यह प्रोफेसर दामले का।

सामंत : मैंने कहा, 'प्रोफेसर दामले'। वह बोले, 'घर में नहीं हैं' और साथ ही धड़ से दरवाज़ा बन्द कर लिया। एक मिनट तो सन्न खड़ा रहा। इस उलझन में उलझा रहा कि लौट जाऊँ या फिर से घंटी बजाऊँ ? क्योंकि मेरा काम ज़रूरी था।

सुखात्मे : कौन-सा काम था ?

सामंत : कौन-सा यानी क्या ! जैसे मान लीजिए...कुछ भी मान लीजिए, समझ लीजिए मुझे प्रोफेसर दामले का भाषण तय करना था। भाषण देते हैं न वह ? प्रोफेसर हैं इसीलिए पूछा... देते ही होंगे। तो मैं यह सोचता हुआ वहीं खड़ा रहा कि मैं भाषण निश्चित किए बिना कैसे लौट जाऊँ, इतने में कमरे में से रोने की दबी आवाज़ आई।

काशीकर : रोने की ?

सामंत : हाँ और क्या ? रोने की अस्फुट आवाज़। वह भी किसी स्त्री की।

सुखात्मे : **(रोमांचित होकर)** यस ?

सामंत : पल-भर वह वहाँ ठगा-सा खड़ा रहा। वह, यानी कि मैं ही। वह, यानी कि मैं समझ ही नहीं पाया कि आखिर कौन रो रहा है ! यानी कि यह बात तो मेरे मन में भी साफ थी कि वह स्त्री प्रोफेसर दामले के घर की नहीं रही होगी। आप पूछ सकते हैं कि कैसे ? तो उसके जवाब में मैं यह कहूँगा कि उसके रोने का ढंग ही कुछ ऐसा रहस्यमय था और आवाज़ इतनी दबी हुई तथा अस्फुट थी कि वह स्त्री उस घर की नहीं लग रही थी क्योंकि अपने ही घर में कोई चोरी-चोरी क्यों रोएगा ? बस इसी दुविधा में खड़ा ही था कि मेरे कान में फौरन ही कुछ बातचीत की भनक पड़ी...।

काशीकर : बातचीत ?

कर्णिक : क्या थीं वह बातें ?

सामंत : न, यह ग़लत बात है। आप नहीं पूछ सकते कुछ...बस यह वकील साहब पूछ सकते हैं।

सुखात्मे : क्या थी वह बातचीत ? कौन बोल रहा था ?

सामंत : सिवा उस महिला के जो अन्दर दबी-दबी आवाज़ में सिसकियाँ ले रही थी और कौन बोल रहा होगा ?

श्रीमती काशीकर : हाय राम ! अरे बता तो कम-से-कम कि आखिर वह मरी थी कौन ?

बेणारे की ओर अनजाने ही एक तिरछी नज़र ।

सामंत : उहुँक ! सिर्फ यह पूछेंगे...यह वकील साहब । आप नहीं ।

सुखात्मे : पूछता हूँ मैं । मिस्टर सामंत, आप पहले यह बताइए कि आपके कान में बातचीत की जो भनक पड़ी वह क्या थी ? फौरन कहिए । समय बरबाद मत कीजिए ! जल्दी मिस्टर सामंत । वी क्विक !

सामंत : वह बातचीत यों थी...सारी बातें बताऊँ ?

सुखात्मे : जितनी याद हैं, उतनी सारी बातें कह डालिए...मगर कहिए...।

सामंत : **(कुछ घबराया हुआ हाथ में थमी हुई किताब की तरफ़ देखकर)** मुझे ऐसी परिस्थिति मे आप छोड़ देंगे तो मैं जाऊँगी कहाँ ?

बेणारे स्तंभित रह जाती है ।

श्रीमती काशीकर : ऐसे पूछ रही थी ?

सामंत : 'मैं क्या जानूँ' ?

सुखात्मे : **(खीझकर)** तो फिर कौन जानेगा ?

सामंत : नहीं, नहीं...मैं तो उस स्त्री के प्रश्न का जवाब बता रहा हूँ जो प्रोफेसर दामले ने उसे दिया था ।

सुखात्मे : अच्छा अच्छा !

सामंत : 'तुम कहाँ जाओगी यह तुम जानो । तुम्हारे साथ मुझे सहानुभूति है । मगर मैं कर क्या सकता हूँ । अपनी प्रतिष्ठा को मैं ख़तरे में नहीं डाल सकता ।' इस पर, 'मुझे तबाह कर तुम प्रतिष्ठा की दुहाई दे रहे हो ? बड़े निष्ठुर हो तुम ।' इस पर, 'निष्ठुर तो दुनिया ही है ।'

काशीकर : **(जल्दी-जल्दी कान खोदते हुए)** आई सी ! आई सी...।

सुखात्मे : **(रोमांचित होकर)** कमाल है! सचमुच कमाल है...।

सामंत : 'आप इस तरह मुझे बेसहारा छोड़ देंगे तो आत्महत्या कर लूँगी मैं' । 'तो कर लो । मैं कुछ नहीं कर सकता । मैं भी विवश हूँ । हाँ तुम्हारी मृत्यु से तकलीफ़ मुझे भी होगी ।'

सुखात्मे : सिम्पली थ्रिलिंग !

सामंत : 'मगर यह जान लो, कि इस तरह की तुम्हारी धमकियों में मैं

आने वाला नहीं। मैं अपने कर्त्तव्य से नहीं हट सकता'। 'तो जान लीजिए कि आपके ऊपर दो...नहीं नहीं एक...नहीं दो ही...दो हत्याओं का पाप लगेगा। इससे आप बच नहीं सकते।' इस पर एक भयंकर अट्टहास !

बेणारे : (**एकाएक बहुत क्रोधित होकर**) चुप रहो।

काशीकर : (**हथौड़ा पटककर**) आर्डर ! आर्डर !

बेणारे : झूठ है यह सब। बिलकुल झूठ है।

पोंक्षे : हाँ सो तो है ही। उससे क्या ?

कर्णिक : झूठ है तो भी कितना असरदार है।

श्रीमती काशीकर : हाँ जी सामंत ! तुम आगे बताओ जी।

बेणारे : नहीं ! मैं कहती हूँ बन्द करो, यह सब बकवास बन्द करो तुरन्त।

सामंत : (**घबराकर**) मगर बेणारे बाई ! क्या हुआ, क्या ?

बेणारे : एकदम बन्द करो यह सब तमाशा। इसका एक रत्ती भी सही नहीं है।

सामंत : सो तो है ही।

बेणारे : बनावटी है सब। सब सरासर झूठ है।

सामंत : आप एकदम ठीक कह रही हैं।

बेणारे : साफ झूठ बोल रहे हो तुम।

सामंत : हाँ, और क्या ? (**किताब वाला हाथ आगे करके**) यह देखिए न, इसी किताब से तो कह रहा हूँ सब !

सुखात्मे : मिस्टर सामंत ! हाँ, भयंकर अट्टहास। फिर ? उसके बाद ?

बेणारे : अब एक शब्द भी मुँह से निकला तो मैं चली जाऊँगी यहाँ से।

सुखात्मे : मिस्टर सामंत !

बेणारे : सब मिट्टी में मिला दूँगी। चकनाचूर कर दूँगी सब ! एकदम तहस-नहस कर दूँगी।

श्रीमती काशीकर : अरी बेणारे ! अपने मन में जब तू साफ है तब फिर इतना चीख-पुकार, कोहराम क्यों ?

बेणारे : जान-बूझकर मेरे ऊपर कोई दाँव चलाया है, तुम लोगों ने। जाल बिछाया है कोई।

सामंत : छिः छिः छिः ! अरे नहीं बाई ! सचमुच ऐसी कोई भी बात नहीं।

सुखात्मे : मिस्टर सामंत ! आन्सर प्लीज़। प्रोफेसर दामले ने भयंकर अट्टहास किया। फिर उसके बाद वह अज्ञात स्त्री क्या बोली ?

सामंत : **(जल्दी से किताब खोलकर देखता हुआ)** रुकिए, मैं ज़रा वह पेज निकाल लूँ पहले, तब बताऊँ।

बेणारे : सामंत ! अब एक भी अक्षर मुँह से निकाला तो समझ लेना... बस अब देख ही लेना तुम !

सुखात्मे : **(धमकीपूर्ण स्वर में)** मिस्टर सामंत !

सामंत : अच्छी मुसीबत हो गई है। वह पेज भी नहीं मिलता।

सुखात्मे : **(काशीकर से)** मि'लार्ड ! अभी-अभी सामने आया हुआ यह संपूर्ण प्रसंग अपने आपमें इतना स्पष्ट और मुखर और चुका है कि इस पर अब और अधिक बहस की गुंजाइश महसूस नहीं हो रही है। इस सारे बयान को अभियुक्त के खिलाफ अपनी तरफ की लिखा-पढ़ी में शामिल कर लिया जाए।

काशीकर : रिक्वेस्ट ग्रान्टिड।

बेणारे : हाँ-हाँ, करो, करो। खूब जी-भर लिखा-पढ़ी करो। जो-जो तबियत में आए लिख लो। **(आँखें आँसुओं से डबडबाई हुई, कंठ अवरुद्ध। चेहरे पर मन के भीतर दर्द झलक रहा है। निडर और रुआँसी आवाज़ में)** क्या कर लोगे तुम लोग मेरा? कर लो जो मन में आए।

आँखों में टप-टप आँसू। विंग में तेज़ी से चली जाती है। वातावरण एकाएक बोझिल और स्तब्ध। सामंत को छोड़कर शेष सबकी मुख-मुद्राएँ बदल जाती हैं, और धीरे-धीरे एक विचित्र सतर्कता, उत्सुकता और बेचैनी उनके चेहरे पर उभरती है।

सामंत : **(बहुत दुखी होकर)** अरे-अरे ! यह क्या हो गया एकदम से बाई को ?

काशीकर : **(कान खोदते हुए)** अचानक कैसा उलझाव पैदा हो गया इस सारे तमाशे में। दरअसल आजकल का सामाजिक वातावरण ही इस तरह उलझा हुआ है। सुखात्मे, देखा न ! किसी भी चीज में निर्मलता नहीं रह गई।

सुखात्मे : इसीलिए तो मैं कहता हूँ मिस्टर काशीकर ! कि हम जैसे सुलझे हुए दिमाग़ के व्यक्तियों को इस प्रसंग पर अत्यन्त गम्भीरता और ज़िम्मेदारी से विचार करना चाहिए। दिस शुड नॉट बी टेकन लाइटली।

काशीकर : बिलकुल ठीक कह रहे हैं सुखात्मे ।

सुखात्मे : मगर सिर्फ विचार करने से भी समस्या सुलझेगी नहीं। उस पर अमल भी करना चाहिए। ऐक्शन ! क्यों कर्णिक ?

कर्णिक : यस, ऐक्शन।

पोंक्षे : राइट।

सुखात्मे : भावनाओं में डूबने-उतराने से यहाँ काम नही चलेगा। यहाँ तो हम सबको मिलकर...वी मस्ट ऐक्ट।

काशीकर : मगर एक बात सुनो जी। इसमें मामला क्या है ?

श्रीमती काशीकर : तुम ज़रा चुप रहो जी। क्या हो सकता है जी सुखात्मे ? कुछ अन्दाज ?

सुखात्मे : (**कुछ अन्दाज़ लगाने का भाव**) दैट इज़ द मिस्ट्री !

सामन्त बड़ा परेशान और चिन्तित दिखाई देता है।

: ऐंड आई थिंक वी नो द आन्सर टु दिस मिस्ट्री।

कर्णिक :
पोंक्षे :
रोकड़े :
काशीकर :
श्रीमती काशीकर : } क्या ?

अन्दर के दरवाज़े पर बेणारे आकर खड़ी है।

सुखात्मे : (**उसकी उपस्थिति से अनभिज्ञ**) अरे मित्रो ! सीधा तर्क है। मिस्टर सामंत ने जो बातें किताब से कहीं या गढ़ीं, उनमें तथ्य है। इट होल्ड्स वाटर।

श्रीमती काशीकर : हाय राम ! इसके माने, ये बेणारे अपने प्रोफेसर दामले के साथ...।

सुखात्मे : यस। बियाँड अ शेड ऑफ़ डाउट ! कोई शक ही नहीं।

श्रीमती काशीकर : बाप रे !

रोकड़े : (**कुछ अधिक ढीठ होकर**) मुझे तो पहले ही मालूम था।

सुखात्मे : श श ऽऽ !

कमरे के दरवाज़े पर बेणारे को खड़ा देखकर चुप हो जाते हैं। सब लोग उसे देखने लगते हैं। वह कुछ निश्चय-सा करके सीधी अपने सामान के पास जाती है। पर्स और डोलची उठाती है और बाहर के दरवाज़े की तरफ़ तेज़ी से बढ़ जाती है। दरवाज़े की साँकल खोलती है। सब एकटक उसे ही देख रहे हैं। दरवाज़ा खुलता नहीं है। वह दरवाज़े को खींचती है। वह खुलता ही नहीं।

वह ज़ोर-ज़ोर से खींचती है। वह बाहर से बन्द है। क्रोध में भरकर वह धक्के मारती है, झकझोरती है। और ज़ोर-ज़ोर से झकझोरती है, मगर बन्द ही है। सामंत को छोड़कर हर व्यक्ति का चेहरा एक विचित्र इत्मीनान और आल्हाद से चमक उठता है।

सामंत : लो हो गई न गड़बड़। बाहर से कुंडी बन्द हो गई। बस यही तो होता है इस दरवाज़े में। बाई, ज़रा रुकिए आप।

उठकर आगे बढ़ता है, खोलने का प्रयास करता है।

: बाहर से आते समय जब दरवाज़ा खोला गया तो कड़ी ठीक से खिसकाई नहीं गई और भीतर से दरवाज़ा बन्द करते ही बस हो गया बंटाढार। हुआ जेलखाना हम लोगों को। यह तो तय है इसका। अब तो चाहे सर पटककर रह जाइए, यह दरवाज़ा खुलने का नहीं। मज़े की बात तो यह है कि आफ़िस बन्द होने की वजह से इस समय बाहर कोई होगा भी नहीं जो दरवाज़े को खोल दे।

दरवाज़े को बार-बार धक्के देता है, झकझोरता है।

: धत्तेरी की। (**बेणारे से**) बाई! जब आपने कड़ी खींची थी तभी ग़लती हो गई। वह बिलकुल किनारे तक खिसका देनी चाहिए थी।

फिर खींचकर देखता है। कोई फ़ायदा नहीं होता। हारकर किनारे हट जाता है।

: बन्द ही है।

बेणारे अभी भी उसी दरवाज़े के पास खड़ी रहती है। दर्शकों की ओर पीठ।

काशीकर : (**कान को तल्लीन होकर खोदते हुए**) मुझे तो ऐसा लग रहा है सुखात्मे, कि अब ऐसी दशा में हम अपने मुकदमे को ही और आगे बढ़ाते चलें।

सुखात्मे : (**सहसा एक विकृत उत्साह से आगे झुककर वकीलाना अन्दाज़ में**) यस मि'लार्ड! (**आँखों में चमक**) मि'लार्ड, गवाह के कटघरे में सबसे पहले अभियुक्त को ही उपस्थित किया जाए।

परदा गिरता है।

अंक : ३

वही स्थिति। वक्त शाम। पात्र दूसरे अंक के अन्त में जिस स्थान पर थे वहीं।

सुखात्मे : **(अचानक एक विकृत उत्साह से भरकर, वकीलाना अन्दाज़ में झुककर)** मि'लार्ड ! **(आँखों में चमक)** मि'लार्ड ! गवाह के कटघरे में सबसे पहले अभियुक्त को ही उपस्थित किया जाए।

काशीकर : **(कान खोदते हुए)** अभियुक्त मिस बेणारे ! गवाह के कटघरे में चलिए। चलिए। कटघरे में चलिए मिस बेणारे !

बेणारे यथावत्।

: कमाल है! न्यायासन के सामने ही उसकी यह बेअदबी ? चोबदार रोकड़े ! अभियुक्त को कटघरे में ले चलो !

रोकड़े : **(बहुत घबराकर हकलाता हुआ)** म म मैं...।

बेणारे फिरभी यथावत्।

श्रीमती काशीकर : रुको जी, मैं लिए चलती हूँ। जरूरत ही क्या है उसकी ? **(बेणारे को जबरन ले जाती हुई)** चल री बेणारे !

उसे कटघरे के भीतर ले जाकर खड़ा कर देती है। उसके चेहरे पर जाल में फँस गए शिकार जैसी दहशत और बेबसी।

सुखात्मे : **(काला गाउन प्रदर्शनपूर्वक चढ़ाते हुए बेणारे को देखकर)** मि'लार्ड ! मुकदमे की इस बदली हुई अत्यन्त गंभीर स्थिति को देखते हुए मेरी यह सलाह है कि न्यायमूर्ति भी अगर अपना गाउन धारण कर लें तो वह प्रभावशाली लगेगा।

काशीकर : एक्ज़ैक्टली। रोकड़े ! मेरा गाउन देना।

रोकड़े काला गाउन निकालकर देता है। मिस्टर काशीकर उसे पहन लेते हैं। उनके व्यक्तित्व और वातावरण की गंभीरता और भव्यता बढ़ जाती है।

सुखात्मे : मिस्टर सामंत ! मिसेज़ काशीकर ! पोंक्षे ! कर्णिक ! आप सब अपनी-अपनी जगह क्रम से बैठ जाएँ !

स्वयं सज-सँवरकर, ध्यानस्थ हो, आँखें बन्द कर लेते हैं फिर धीरे-से अपने मुँह पर दो-तीन चपत लगाकर अज्ञात दिशा में तीन-चार बार नमस्कार करते हैं।

: पिता ने यह आदत डाल दी है काशीकर ! जब किसी कार्य के लिए जाना होता है तो कुलदेवता का स्मरण और प्रार्थना अवश्य कर लेता हूँ। उससे कितनी पवित्रता आती है ! मन को बल मिलता है।

बल प्राप्त हो जाने का भाव। अखाड़े के मल्ल की तरह दो-एक क़दम चलते हैं।

: गुड। नाऊ टु बिज़नेस। अभियुक्त को शपथ दिलाई जाए।

रोकड़े डिक्शनरी लेकर बेणारे के सामने जाकर खड़ा होता है। बेणारे बुत-सी स्तब्ध और निश्चल।

काशीकर : **(अपना विग सँभालते हुए)** अभियुक्त मिस बेणारे ! शपथ ग्रहण कीजिए।

बेणारे निश्चल।

सामंत : **(धीमे स्वर में)** अरे कर लीजिए न बाई। खेल ही तो है यह।

श्रीमती काशीकर : **(आगे बढ़कर)** लाओ जी मुझे दो। मैं अभी दिलाए देती हूँ शपथ। **(रोकड़े के हाथ से डिक्शनरी लेकर)** हाँ, बोल री बेणारे, मैं शपथ लेती हूँ कि जो कुछ कहूँगी सच कहूँगी, झूठ नहीं कहूँगी। बोल।

बेणारे फिर भी निश्चल।

काशीकर : कमाल है।

श्रीमती काशीकर : **(डिक्शनरी रोकड़े को वापस देकर)** चलो समझ लो कि ले लिया शपथ। हाथ तो था ही डिक्शनरी पर। अब पूछो जो कुछ पूछना है, सुखात्मे !

काशीकर . अभियुक्त मिस बेणारे ! कोर्ट आपको चेतावनी देता है कि इस तरह की हरकतें, जिनसे कोर्ट की बेइज्जती होती हो, आइंदा से नहीं होनी चाहिए। हाँ सुखात्मे, गो !

कर्णिक : फ़ायर !

सुखात्मे : **(बेणारे के कटघरे के सामने आकर एक-दो फेरे लगाकर एकाएक एक उँगली से उसे संबोधन करते हुए)** आपका नाम लीला दामले ?

सामंत : **(बीच में ही)** नहीं-नही...बेणारे। दामले तो वह प्रोफेसर साहब हैं।

काशीकर : तुम ज़रा देर चुप ही रहो सामंत ! उसी को बोलने दो।

सुखात्मे : मिस लीला बेणारे !

वह न देखना चाहती है, न बोलना चाहती है।

सुखात्मे : ज़रा कोर्ट को अपनी उम्र बताइए।

पोज़ लेकर खड़े होते हैं। जैसे उन्हें यह विश्वास है कि बेणारे उम्र नहीं बताएगी। बेणारे निश्चल ही है।

काशीकर : अभियुक्त बेणारे ! अभियुक्त होने के नाते, पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देने की ज़िम्मेदारी आपकी है। **(कुछ रुककर)** अभियुक्त बेणारे ! इन्तज़ार किस बात का है ?

श्रीमती काशीकर : मैं कहती हूँ कि उमर वही क्यों बताए ? मुझे है न अन्दाज़। समझो बत्तीस के ऊपर ही होगी। एकाध बरस ज्यादा हो सकता है, कम नहीं। चेहरा ही बता रहा है।

सुखात्मे : थैंक्यू, मिसेज़ काशीकर !

काशीकर : वेट। थैंक्यू कैसे ? अभी अभियुक्त ने उम्र बताई नहीं है। मेरा ध्यान है। अभियुक्त बेणारे ! उम्र ?

श्रीमती काशीकर : लेकिन अभी मैंने तो...।

काशीकर : अभियुक्त से पूछे गए प्रश्नों के किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दिए गए उत्तर स्वीकार करने की परम्परा किसी भी कोर्ट में नहीं है। तुम बीच-बीच में मत बोलो जी ! अभियुक्त ! प्रश्न का उत्तर ? आन्सर।

बेणारे निश्चल।

सामंत : बात असल में यह है कि औरतों से उनकी उम्र पूछना ही अपने यहाँ कुछ...।

काशीकर : उत्तर देने की यह ज़िद क्यों है मगर ? इज़ दिस ए कोर्ट ऑर व्हॉट !

मेज़ पर हाथ पटकते हैं, इफेक्ट के लिए।

पोंक्षे : सचमुच ! यह तो सरासर कोर्ट की बेइज्ज़ती है।

काशीकर : अभियुक्त ने अगर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर नहीं दिए तो फिर कुछ उपाय करना होगा। दिस इज़ द क्वेश्चन ऑफ द प्रेस्टिज ऑफ़ द कोर्ट। अभियुक्त को दस सेकेंड का समय दिया जाता है।

घड़ी सामने रखते हैं।

: नो मसखरी नाऊ।

सुखात्मे : (**दसवें सेकेंड पर नाटकीय ढंग से**) मि'लार्ड ! अभियुक्त की खामोशी से हमें अपने प्रश्न का जवाब मिल गया है। इसलिए इस प्रश्न को अब हम वापस लेते हैं। वी टेक बैक द क्वेश्चन।

काशीकर : ऑल राइट। चालाकी कम नहीं, कहिए तो लिखकर दे दूँ। मेरा तो यह कहना है कि अब फिर से बाल-विवाह की प्रथा को समाज में स्थान मिलना चाहिए। पंख निकलने से पहले ही लड़की को ससुराल रवाना कर दो। फिर देखो, सारी बदचलनी बिलकुल बन्द हो जाएगी। मैं तो साफ कहूँगा कि आगरकर और धोंडो केशव कर्वे ने हमारे समाज का बहुत अहित किया है। सुखात्मे ! माई फ्रेंक ओपीनियन।

सुखात्मे : (**वकीलाना अन्दाज़ में**) यस मि'लार्ड !

रोकड़े कापी में इसी बीच जल्दी-जल्दी काशीकर का वक्तव्य लिखने लगता है। बेणारे कटघरे में स्तब्ध और निश्चल।

: (**बेणारे के पीछे से जाकर एकाएक पुकारकर**) मिस बेणारे !

बेणारे चौंककर पीछे हटती है और दुबारा निश्चल हो जाती है।

: अब तक, इतनी उम्र तक आपने विवाह क्यों नहीं किया, इसे क्या आप कोर्ट के सामने स्पष्ट करेंगी ?

: (**रुककर उत्तर की प्रतीक्षा करने के बाद**) अपने इस प्रश्न को मैं दूसरी तरह से आपके सामने रखता हूँ। आपके जीवन में विवाह के अवसर को लेकर कितनी शामें अब तक आई और क्यों गुज़र गई ? इसे कोर्ट के सामने स्पष्ट कीजिए।

काशीकर : आन्सर !

घड़ी उतारकर सामने रखते हैं। वह पूर्ववत् स्तब्ध और निश्चल है।

: दिस इज़ टू मच बाबा !

श्रीमती काशीकर : मुझे तो ऐसा लग रहा है कि यह सीधे पूछने से कुछ कबूलेगी नहीं।

वह निश्चल ही रहती है।

सुखात्मे : मि'लार्ड ! अभियुक्त से की जानेवाली जिरह फिलहाल खत्म हो रही है। आगे मौक़ा पड़ने पर दुबारा की जा सकती है।

बेणारे कटघरे से निकलकर सीधे दरवाज़े की तरफ बढ़ने लगती है। दरवाज़े बन्द ही हैं। सामने अचानक पोंक्षे पड़ जाता है। उसे देखते ही दूसरी तरफ़ से काटकर निकलना चाहती है, तभी मिसेज़ काशीकर उसे पकड़कर अभियुक्त के कटघरे में खड़ा कर देती हैं।

काशीकर : नेक्स्ट विटनेस ?

सुखात्मे : मिसेज़ काशीकर।

श्रीमती काशीकर अपना नाम सुनते ही तुरन्त बड़े उत्साह से आँचल-वाँचल सँभालती हुई गवाह के कटघरे में आकर खड़ी हो जाती है।

काशीकर : **(सुखात्मे से)** देखिए इसे कहते हैं उत्साह, सिर्फ़ कहने-भर की देर थी कि हाज़िर !

श्रीमती काशीकर : उँह ! तो उसमें इतना 'ये' करने की भी ज़रूरत नहीं है। **(गवाह की तरह)** शपथ तो अभी हमने लिया ही है। बेणारे ने और हमने। एक साथ ही समझो दोनों की हो गई। और मैं सच ही सच कहूँगी, मुझे किसके बाप का डर पड़ा है ?

सुखात्मे : ठीक है। मिसेज़ काशीकर ! आप क्या इस बात की कोई जानकारी दे सकती हैं कि मिस बेणारे इतनी उम्र होने तक ग़ैर-शादीशुदा क्यों और कैसे रह गईं ?

श्रीमती काशीकर : उसमें क्या है ? अरे जो शादी करेगा ही नहीं, वह ग़ैर-शादी-शुदा तो रहेगा ही।

सुखात्मे : दैट्स इट ! मगर मिसेज़ काशीकर, ज़िन्दगी के बत्तीस बरस तक...?

काशीकर : **(बीच में ही)** चौंतिस, चौंतिस ही रक्खो सुखात्मे...चौंतिस।

सुखात्मे : चौंतिस बरस तक भले घर की पढ़ी-लिखी किसी लड़की का...।

श्रीमती काशीकर : लड़की ? अरे औरत कहो, औरत ! यह लड़की है तो फिर मै तो जवान ही हूँ अभी।

सुखात्मे : औरत ही सही...मगर आप यह स्पष्ट करें कि विवाह न करने का कारण क्या हो सकता है ?

श्रीमती काशीकर : कारण-फारण कुछ नहीं। अरे जिसको करनी होती है उसकी डके की चोट पर हो जाती है।

सुखात्मे : यानी आपका मतलब है कि मिस बेणारे शादी करना ही नहीं चाहती थी।

श्रीमती काशीकर : और नहीं तो क्या ? जब बिना शादी किए ही सब कुछ मिल जाए तो फिर ज़रूरत ही क्या है ! आजकल तो यही सब चाहती है। सुख अच्छा लगता है मगर ज़िम्मेदारी नहीं चाहिए। मीठा-मीठा गप और कड़ुआ-कड़ुआ थू। तुम्हें बताता हूँ सुखात्मे ! हमारे समय में एक-से-एक काली-कलूटी, नकटी, कुबड़ी लड़कियों की शादी हो जाती थी। यह जो पैसा कमाने की लत है न सुखात्मे ! यह सब बुराई की जड़ है। सब भ्रष्टाचार इसी कमाऊपन की हविश के पीछे फैल रहा है। समाज में सारी गंदगी इसी से है।

रोकड़े कापी में जल्दी-जल्दी लिखने लगता है।

: **(रोकड़े से)** बन्द कर यह लिखना-पढ़ना बालू ! **(सुखात्मे से)** हाँ जी पूछो और !

सुखात्मे : आपने अभी-अभी कहा कि जब बिना शादी के ही सब कुछ मिल जाए तो फिर ज़रूरत क्या है।

श्रीमती काशीकर : हाँ, और क्या, यही तो है ही।

सुखात्मे : तो आपका सब-कुछ से क्या मतलब है ? कृपा करके यह बताएँ मिसेज़ काशीकर !

काशीकर : इश्श ! कैसी बात करते हो !

संकोच से गड़ जाती है।

श्रीमती काशीकर : **(कान खोदते हुए)** अब इस उम्र में शरमाती क्या हो ! जवाब दो तुरन्त इनके प्रश्न का। उम्र बढ़ गई मगर दिमाग़ वहाँ का वहीं हैं।

काशीकर : अच्छा मेरी उम्र की बात मत उठाओ ! उसकी ज़रूरत नहीं है।

काशीकर : आन्सर !

श्रीमती काशीकर : अरे 'सब-कुछ' माने वही सब जो शादी के बाद गृहस्थ में मिलता है।

सुखात्मे : अभियुक्त मिस बेणारे के लिए यह बात कहना आपको अनुचित नहीं लगता ?

श्रीमती काशीकर : कुछ नहीं लगता। सभी जगह तो यही हो रहा है।

सुखात्मे : औरों को छोड़िए। सिर्फ मिस बेणारे के बारे में आप बताइए कि क्या आप अपनी बात का कोई सबूत दे सकती हैं ? सबूत। अगर कोई दे सकती हैं तो दीजिए तुरन्त।

श्रीमती काशीकर : और क्या सबूत चाहिए ? उसका व्यवहार ही बता रहा है सब-कुछ। बस यही समझ लो कि अपने पहचान की है इसलिए कुछ कहा नहीं। नही तो इस तरह से मर्दों के बीच...मैंकहती हूँ कितने ही पहचान के क्यों न हों वे लोग...मगर इस तरह से औरतों को नंगा नाच नहीं नचाना चाहिए। आखिर कोई इसकी हद भी है कि नहीं ? बाप रे बाप ! कितनी ज़ोर-जोर से हँसेगी, गाएगी, नाचेगी, ठिठोली करेगी ! न दिन का पता न रात का ! कुछ फरक ही समझ में नहीं आता। किसी भी मर्द के साथ अकेले घूमती-फिरती रहती है।

सुखात्मे : (**इन सबूतों से निराश होकर**) मिसेज़ काशीकर ! इन बातों से तो ज़्यादा-से-ज़्यादा इंसान के स्वभाव का खुलापन ज़ाहिर होता है, बस।

श्रीमती काशीकर : खुला-उलापन नहीं। बेहयाई कहो। सभी बात में बेहयाई। अब कहना नहीं चाहिए पर बात चली तो कह रही हूँ। ज़रा पकड़ो यह।

बुनाई की ऊन-सलाई सुखात्मे को पकड़ा देती है

: जब रात में कार्यक्रम खत्म होने पर इसे घर जाना होता है तो इसे प्रोफेसर दामले ही क्यों याद आते हैं ? बोलो ?

बेणारे किसी निश्चय से खामोश है।

सुखात्मे : (**सतर्क और उत्सुक होते हुए**) आई सी...रात में कार्यक्रम के बाद घर पहुँचने के लिए मिस बेणारे को प्रोफेसर दामले की ही संगत की ज़रूरत होती है ?

पोंक्षे और कर्णिक एक-दूसरे को इशारा करते हैं।

श्रीमती काशीकर : और नहीं तो क्या ? एक दफ़े ये और हम...अभी सितम्बर की ही तो बात है...सितम्बर की ही है न जी ?

काशीकर : गवाही में और गवाही की ज़रूरत नहीं है ! तुम्हें जो कुछ कहना है, कहो।

श्रीमती काशीकर : सितम्बर ही था। यह अकेले घर जा रही थी तो हम लोगों ने कहा कि हम छोड़ देंगे तुझे घर तक। मगर यह तो न जाने किस समय उसी दामले के साथ उड़ गई। जब तलाश करने लगे तो देवी जी नदारद !

सुखात्मे : (**वकीलाना अन्दाज़ में**) पिक्यूलियर !

काशीकर : अभी ज़रा देर पहले कैसा कोहराम मचाए हुए थी कि झूठ है, जाल है। अब नहीं बोल फूट रहे हैं। ऐसे ही समझ लो सच बात के कोई सींग, पूँछ थोड़े ही होते हैं ? लाओ दो।

ऊन-सलाई वापस मांग रही है।

सुखात्मे : (**ऊन वगैरह वापस करते हुए**) श्रीमती काशीकर ! प्रोफेसर दामले तो वाल-बच्चेदार गृहस्थ हैं ?

श्रीमती काशीकर : और क्या ? पाँच बच्चे हैं उनके।

सुखात्मे : तो ऐसा भी तो हो सकता है कि मिस बेणारे एक बुज़ुर्ग आदमी की संगत की इच्छा से उनके साथ गई हो ?

श्रीमती काशीकर : और हम लोग क्या कोई लुच्चे-लफंगे हैं ? और मान लो दामले बुज़ुर्ग है तो यह बालू क्या है ?

रोकड़े बुरी तरह चौंकता है।

सुखात्मे : (**चौकन्ने होकर**) इसका क्या हुआ ?

बेणारे बेचैन।

श्रीमती काशीकर : वही बताने जा रही हूँ। अरे इसके साथ भी तो बेणारे ने कार्यक्रम के वाद अँधेरे में छेड़खानी की थी। यह बात तो इस वेचारे ने अपने मुँह से मुझे बताई थी। है न बालू ?

कर्णिक को छोड़कर बाकी सबके मन में खलबली। सुखात्मे के चेहरे पर उतावलापन।

रोकड़े : (**बहुत घबराहट से हकलाकर**) हाँ...न...नहीं।

सामंत : नहीं जी। अभी-अभी हमारे साथ थी ये, तब कहीं कुछ भी नहीं...।

कर्णिक स्तब्ध है।

सुखात्मे : श्रीमती काशीकर ! आप जा सकती हैं। आपकी गवाही पूरी हो गई है। मि'लार्ड ! रोकड़े को फिर से गवाह के कठघरे में बुलाया जाए।

रोकड़े अपनी जगह से हिलता भी नहीं।

: **(बेणारे के सामने जाकर साधारण स्वर में)** क्यों बेणारे बाई ! कुछ रंग आया कि नहीं खेल में ?

काशीकर : रोकड़े चलो। गवाह के कटघरे में चलो।

बेणारे से नज़र बचाता हुआ रोकड़े ठिठकता हुआ गवाह के कटघरे में जाकर खड़ा हो जाता है।

श्रीमती काशीकर : **(रास्ते में ही)** बालू ! जो सच बात है सबकी-सब-बता देना। डरना मत।

सुखात्मे : **(कठघरे के पास जाकर)** मिस्टर रोकड़े !...शपथ पहले ही हो गई है...मिस्टर रोकड़े, आपके और मिस बेणारे बाई के सम्बन्ध में एक बहुत उत्तेजक बात श्रीमती काशीकर ने अपनी गवाही के बीच उठाई है।

रोकड़े इनकार में सिर हिलाता है।

श्रीमती काशीकर : बालू ! तूने बताया था कि नहीं मुझसे ?

सुखात्मे : मिस्टर रोकड़े ! बग़ैर घबराए हुए, उस रात कार्यक्रम के बाद जो कुछ घटना घटी, अच्छी या बुरी, मज़ेदार या बेमज़ा, वह सब कोर्ट के सामने बताना आपका फ़र्ज़ है। हाँ, कार्यक्रम खत्म हुआ, फिर...?

रोकड़े : (**(साहस नहीं कर पाता)** मैं...मुझे...।

सुखात्मे : कार्यक्रम खत्म होने के बाद हम सब लोग अपने-अपने घर जाने के लिए बाहर निकल आए...आगे ?

कर्णिक : और भीतर रह गए ये दोनों।

श्रीमती काशीकर : उसी समय इसने इसका हाथ पकड़ लिया था...इसी बालू का।

पोंक्षे : गॉश !

सुखात्मे : और...? और क्या हुआ मिस्टर रोकड़े ? और क्या किया ? व्हॉट नेक्स्ट ?

श्रीमती काशीकर : मैं बताती हूँ...।

काशीकर : तुम मत बताओ...उसी को कहने दो। बेमतलब हर बात में तुम क्यों घुस जाती हो ?

सुखात्मे : यस, मिस्टर रोकड़े !...एकदम निडर होकर अपनी बात कहिए...बी नॉट अफ्रेड...।

श्रीमती काशीकर : अफ्रेड ? अरे हम किसलिए यहां बैठे है ? कोई कुछ करके तो देखे...?

रोकड़े वातावरण को तोलता है। उसे भरोसा हो

जाता है कि मिस बेणारे के विरुद्ध उसके पास पर्याप्त संरक्षण है और यह सोचकर वह कुछ ढीठ हो जाता है।

रोकड़े : (**ढिठाई से ही**) मेरा...मेरा हाथ पकड़ लिया था इन्होंने।

सुखात्मे : यस...?

रोकड़े : तभी...उसी समय मैंने कहा था कि यह ठीक नहीं है...मुझे ...मुझे यह ज़रा भी पसन्द नहीं है...यह तुम्हारे ऊपर शोभा नहीं देता। यही...यही कह दिया था मैंने...।

सुखात्मे : आगे ?

रोकड़े : मैंने अपना हाथ छुड़ा लिया। फिर यह फ़ौरन ही दूर हट गई और मुझसे बोली कि इस घटना के बारे में किसी से कुछ कहना नहीं।

बेणारे : झूठ है यह !

काशीकर : (**हथौड़ा पटककर**) आर्डर ! कार्रवाई के बीच बाधा डालने के लिए अभियुक्त को सख़्त चेतावनी दी जाती है। रोकड़े, कंटिन्यू !

रोकड़े : कहने लगी कि अगर किसी से कुछ कहा तो समझे रहना, मैं तुम्हारे खिलाफ़ कुछ कर बैठूँगी। हाँ, अन्ना, यही कहा था इन्होंने !

सुखात्मे : यह घटना कब की है मिस्टर रोकड़े ?

रोकड़े : आठ दिन पहले की। जब डोंबिवली में हम लोगों का कार्यक्रम था, तब की।

सुखात्मे : मि'लार्ड ! अभियुक्त ने रोकड़े जैसे एक कम-उम्र छोकरे के साथ, जो उसके छोटे भाई की तरह है, एकान्त में छेड़खानी की। यही नहीं, किये गए कुकर्म पर परदा डालने के लिए उसने रोकड़े को डराया-धमकाया भी। इससे यह ज़ाहिर होता है कि अभियुक्त अपना पापाचरण गुप्त रखना चाहती थी।

श्रीमती काशीकर : मगर सच्ची बात छुप थोड़े ही सकती है !

सुखात्मे : अभियुक्त ने तुम्हारे खिलाफ़ कुछ करने की धमकी दी, हाँ, फिर रोकड़े ? नेक्स्ट ? फिर क्या हुआ ?

रोकड़े : (**अनजाने ही अपने गाल पर हाथ ले जाकर**) मैंने...मैंने तब इनके एक थप्पड़ लगा दिया।

पोंक्षे : व्हॉट ?

कर्णिक : हाऊ मेलोड्रेमेटिक !

रोकड़े : हाँ...मैं बोला...मैंने कहा कि तुमने मुझे समझ क्या रखा है? तुम्हारे मन में जो आये करो, मैं तो सबसे कह दूँगा यह बात! ज़रूर कह दूँगा। इसीलिए इनको...भाभी को बता दिया था...हाँ।

काशीकर : क्यों नहीं! उन्हीं से तो कहोगे ही तुम सब कुछ! मुझे बताने की क्या ज़रूरत है?

रोकड़े : (**डरकर**) ग़लती हुई अन्ना! मैंने सोचा था कि...कि आपको तो मालूम हो ही जाएगा...भाभी आपसे तो...बस इसीलिए मैंने आपको...।

सुखात्मे : फिर क्या हुआ रोकड़े? व्हॉट नेक्स्ट? व्हॉट नेक्स्ट?

रोकड़े : फिर क्या? कुछ नहीं। बस इतना ही। जाऊँ मैं?

सुखात्मे : यस, मिस्टर रोकड़े।

जेब में से एक चिट निकालकर ज़ोर-ज़ोर से बुदबुदाकर लिखते हैं, 'आठ दिन पहले डोंबिवली में कार्यक्रम'। रोकड़े झट से कटघरे से निकलकर दूर खड़ा हो जाता है। पसीना पोंछता है। चेहरे पर राहत।

श्रीमती काशीकर : यह वाद वाली बात तो तूने मुझे बताई ही नहीं थी बालू... थप्पड़ मारने वाली।

सामंत : (**पोंक्षे से**) छिः! मुझे तो बिलकुल ही विश्वास नहीं होता।

वातावरण में खासी चुलबुलाहट और बेचैनी।

पोंक्षे : (**बैठे-बैठे पाइप का ज़ोर से कश लेते हुए**) सुखात्मे! मेरी विटनेस, मेरी गवाही लो। अब मुझे भी ज़रा आने दो कठघरे में (**नज़र आहत-सी बैठी हुई बेणारे पर। स्वर में उतावलापन**) बुलाओ, बुलाओ।

काशीकर : सुखात्मे! कॉल पोंक्षे! लेट अस हियर हिम...कॉल! सुन ही लिया जाय अब सब कुछ। बुलाइए।

सुखात्मे : मिस्टर पोंक्षे को गवाही के लिए उपस्थित किया जाए।

रोकड़े : मिस्टर पोंक्षे, गवाही के लिए चलिए।

पोंक्षे कटघरे में जाकर खड़ा होता है।

पोंक्षे : शपथ क्या फिर से लेनी होगी? (**ऑक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी पर हाथ रखकर**) शपथ लेता हूँ कि...।

काशीकर : बस हो गया। सुखात्मे! अब पूछिए।

सुखात्मे : मिस्टर पोंक्षे! अभियुक्त मिस बेणारे के बारे में...।

पोंक्षे : (**बेणारे पर नज़र**) बताने योग्य मेरे पास कुछ महत्त्वपूर्ण बातें हैं।

बेणारे को जैसे काठ मार जाता है।

: उनसे सिर्फ़ इतनी बात पूछिए कि वह अपने पर्स में 'टिक ट्वेंटी' क्यों रखती है ?

बेणारे चौंक पड़ती है।

श्रीमती काशीकर : अरे वाह ! यह तो नई बात पता लगी !

पोंक्षे : यह खटमल मारने की ज़ालिम विषैली दवा है, आप सब जानते होंगे।

सामंत : (**कर्णिक से**) घर ले जा रही होगी।

सुखात्मे : 'टिक ट्वेंटी' जैसी महा विषैली दवा अभियुक्त मिस बेणारे के पर्स में आपको कब और कैसे दिखाई दी, इसे आप कोर्ट के सामने बताएँगे मिस्टर पोंक्षे ?

बेणारे कुछ कहना चाहती है, कह नहीं पाती। सहमकर पत्थर की मूर्ति-सी निश्चल और शिथिल हो जाती है।

पोंक्षे : हाँ ! इनकी एक छोटी छात्रा मेरे घर के बगल में रहती है। करीब दस दिन पहले एक दिन वह मेरे पास आई और बोली 'हमारी मिस ने आपको यह दिया है।'

सुखात्मे : टिक ट्वेंटी ?

पोंक्षे : नहीं ! वह लिफ़ाफ़े में बन्द एक ख़त था। मैंने जब लिफ़ाफ़ा खोला तो उसमें एक और लिफ़ाफ़ा था। वह भी बन्द था। उसके अन्दर एक चिट थी। उसमें लिखा था, 'क्या मुझसे भेंट कर सकोगे ? तुमसे कुछ ज़रूरी काम है। दोपहर सवा बजे स्कूल के पीछे वाले उड़ीपी होटल में आ जाओ, मैं भी आ जाऊँगी वहीं।' ज़ाहिर है कि बात कुछ जँची नहीं मुझे। मगर मैंने मन में सोचा कि मज़ा लेने में क्या हर्ज है इसलिए मैं वहाँ चला गया। पाँच मिनट बाद ही मिस बेणारे लोगों की नज़र बचाती हुई फ़ुर्ती से होटल के भीतर दाख़िल हुई।

बेणारे और भी बेचैन तथा भयभीत।

सुखात्मे : आई सी...!

काशीकर : फिर ? उसके बाद क्या हुआ पोंक्षे ?

पोंक्षे : आते ही मुझसे बोली, 'यहाँ नहीं, अन्दर चलो फैमिली रूम में। यहाँ देखेंगे लोग'।

श्रीमती काशीकर : वाह !

पोंक्षे : हम लोग अन्दर जाकर बैठे। चाय आई। मिस बेणारे की बात, जो मुझसे होनी थी, हो जाने के बाद रूमाल निकालने के लिए उन्होंने पर्स खोला। और पर्स खोलते ही एक शीशी निकलकर बाहर गिर गई।

एक पल बिलकुल सन्नाटा।

सुखात्मे : और वह शीशी ही 'टिक ट्वेंटी' थी। गुड ! मगर मिस्टर पोंक्षे ! आपके और मिस बेणारे के बीच इससे पहले क्या बातचीत हुई ? यानी कि वह काम क्या था जिसके लिए इन्होंने आपको बुलाया था ?

बेणारे शब्द के अभाव में अस्वीकृति-सूचक सिर हिलाती है।

पोंक्षे : इन्होंने मुझसे विवाह करने की इच्छा जाहिर की।

कर्णिक :
काशीकर : क्या ?

रोकड़े तथा अन्य अचरज से हक्के-बक्के।

काशीकर : यह तो बड़ा इंटरेस्टिंग हो चला है सुखात्मे !

सुखात्मे : ट्रू मि'लार्ड ! इट इज़ एण्ड इट विल बी। (**बेणारे पर एक भूखी नज़र डालकर**) क्या इन्होंने आप से अपना प्रेम-वेम होने की बात बताई ?

पोंक्षे : नहीं ! मगर इन्होंने मुझसे यह कहा कि वह गर्भवती है।

हर तरफ़ खलबली। बेणारे के चेहरे पर जैसे स्याही पुत गई हो। गर्दन झुकाये पत्थर के बुत-सी बैठी हुई।

कर्णिक : अरे, सच कहते हो पोंक्षे ?

पोंक्षे : और नहीं तो क्या झूठ कहता हूँ ?

काशीकर : किससे ? कंटिन्यू पोंक्षे...कंटिन्यू...रुकिए नहीं।

सुखात्मे : मिस्टर पोंक्षे...?

पोंक्षे : मिस बेणारे जिस व्यक्ति से गर्भवती हुई थी...जैसा कि उन्होंने मुझे बताया था...उस व्यक्ति का नाम किसी से भी कहने को उन्होंने मुझे मना किया था और मुझसे शपथ ले ली थी जिसका पालन आज तक मैंने किया।

श्रीमती काशीकर : लेकिन वह आदमी है कौन ?

काशीकर : ज़रा देर तुम चुप रहो जी ! सब्र करो। द कैट विल बी आउट

ऑफ द बैग। उतावली होने की कोई ज़रूरत नहीं है। लेकिन पोंक्षे ! मेरी समझ में एक बात नहीं आई। उन्होंने अपने गर्भवती होने की बात बताकर शादी तुमसे यानी कि एक तीसरे आदमी से करने की इच्छा प्रकट की ?

पोंक्षे : एक्जैक्ट्ली।

सुखात्मे : तो इस पर आपने क्या जवाब दिया मिस्टर पोंक्षे ? मानवतावादी उदार दृष्टिकोण अपनाकर क्या आप 'सवत्सधेनु' को ब्याहने को तैयार हो गए ?

पोंक्षे : जवाब ज़ाहिर है।

सुखात्मे : 'टिक ट्वेंटी' की शीशी मिस बेणारे के पर्स से लुढ़ककर बाहर आ गई। उसके बाद क्या हुआ मिस्टर पोंक्षे ?

पोंक्षे : अफ़कोर्स, उसे उठाकर मैंने उन्हें पकड़ा दिया। उनके साथ हुए पूरे सम्भाषण का व्योरा दूँ ? आप चाहें तो दे सकता हूँ।

बेणारे : (**तड़पकर खड़ी होती हुई**) नहीं नहीं। नहीं...।

काशीकर : (**हथौड़ा पटककर**) साइलेंस ! मिस्टर पोंक्षे ! संभाषण का व्योरा दीजिए। (**सुखात्मे से**) अब नाम आता है बाहर...।

बेणारे : नहीं।...तुम्हें क़सम है पोंक्षे...।

सुखात्मे : मिस्टर पोंक्षे ! मिस बेणारे को जिस बात से इतनी बेचैनी और घबराहट है वह आख़िर है क्या ? ऐसी कौन-सी बात है जो आपमें और बेणारे में हुई ?

काशीकर : कह डालिए आप पोंक्षे...खामोश मत रहिए...बता डालिए झटपट। उस संभाषण का बड़ा सामाजिक महत्त्व होगा।

पोंक्षे : मगर यह बात उन्हें रुचेगी नहीं...।

काशीकर : (**हथौड़ा पटककर**) जज यहाँ पर कौन है पोंक्षे ? मैं कहता हूँ यह अभियुक्त की रुचि-अरुचि का सवाल कोर्ट में कब से उठने लगा ? फ्रॉम व्हेन ? आई से, कंटिन्यू...।

बेणारे : (**पोंक्षे के सामने आकर खड़ी होकर**) पोंक्षे...!

काशीकर : आर्डर ! आर्डर ! अभियुक्त, कठघरे में। रोकड़े, अभियुक्त को कठघरे में ले जाओ।

रोकड़े ज़रा-सा आगे बढ़कर फिर ठिठक जाता है।

बेणारे : ज़रा कहकर तो देखो तुम पोंक्षे।

काशीकर : अभियुक्त, कठघरे में चलो...रोकड़े ! कठघरा।

श्रीमती काशीकर : (**आगे बढ़कर बेणारे का हाथ पकड़ते हुए**) पहले उधर चलकर

खड़ी रह । चल । रोकड़े, पकड़ हाथ...।

रोकड़े सिर्फ पीछे-पीछे चलता है ।

: चल रे ! चल ।

उसे खींचती हुई ले जाकर कठघरे के भीतर खड़ी कर देती है । रोकड़े और श्रीमती काशीकर पहरे पर ।

काशीकर : नियम नियम है। हाँ बोलिए आप पोंक्षे, क्या-क्या बातें हुई ? मेरी कनखोदनी ? (**तलाश कर**) हाँ, कहिए !

सुखात्मे : मिस्टर पोंक्षे । संभाषण का व्योरा दीजिए ।

पोंक्षे : पहले तो वह इधर-उधर की तमाम बातें करती रही...मसलन कि सुखात्मे वैसे तो आदमी अच्छे हैं मगर तक़दीर खोटी है बिचारे की...वकालत बिलकुल नहीं चलती...बार-रूम में बैठे-बैठे पेशेन्स खेलते रहते हैं । जिस बदनसीब बेचारे का केस इनके हाथ पड़ा उसकी तक़दीर में जेलखाना पक्का समझो । यह बात तो इनके बारे में जग-ज़ाहिर है मगर जज के सामने इनकी सिट्टी-पिट्टी बिलकुल गुम रहती है ।

सुखात्मे : (**क्रोध और अपमान को निगलकर**) आई सी...यस, आगे चलिए...।

पोंक्षे : फिर कहने लगी कि काशीकर रोकड़े को बहुत सताते हैं क्योंकि उन्हें शक है कि उनकी बीवी से उसका कुछ सम्बन्ध है। उसके कोई बच्चा नहीं है न, इसीलिए...।

श्रीमती काशीकर : यह कह रही थी यह ?

तिलमिलाती है । बेणारे को ऐसे देखती है जैसे खा जाएगी ।

काशीकर : (**ज़ोर-ज़ोर से कान खोदते हुए**) बोलिए, आगे बोलिए, पोंक्षे...।

पोंक्षे : इस तरह की कुछ बातें करने के बाद फिर वह असली बात पर आई...।

कर्णिक : वेट । मेरे बारे में क्या कह रही थी पोंक्षे ?

पोंक्षे : कुछ नहीं ।

कर्णिक : ज़रूर कह रही होगी कि मैं एक टुच्चा ऐक्टर हूँ वग़ैरह। मुझे मालूम है अपने बारे में उनकी राय। खूब जानता हूँ इन्हें ।

पोंक्षे : उन्होंने बातों-बातों में मुझसे पूछा 'तुम्हारी कहीं बातचीत लग रही है कि नहीं ?' तो मैंने कहा कि जब तक मेरे मन का नहीं मिलेगा मैं शादी करने में इन्टरेस्टेड नहीं हूँ। इस पर

इन्होंने पूछा 'मन का मानी कैसा ? तुम चाहते क्या हो ?' तो मैंने कहा 'साधारण रूप से लड़कियाँ मूर्ख और बौखल होती हैं। ऐसा मेरा अपना खयाल है। आई वांट ए मेच्योर पार्टनर।' इस बात पर तुरन्त ही इन्होंने पूछा, 'मेच्योरिटी यानी बुद्धि की परिपक्वता अनुभव से आती है इसे तुम नहीं मानते ?' मैंने कहा, 'पता नहीं।' तो वह बोली, 'और अनुभव उम्र के साथ होते हैं। ज़रा अलग तरह का जीवन जीने से आते हैं और इस तरह के अनुभव बहुत सुख देने वाले नहीं होते। पानेवाला तकलीफें उठाता है और दूसरा व्यक्ति सहजता से उसे स्वीकार नहीं कर पाता। क्या तुम ऐसी को अपनाने को तैयार हो जाओगे? यानी कि यों समझो कि अगर वह सचमुच ही मेच्योर हो। उम्र में भी और शिक्षा-दीक्षा में भी, तो भी ?' मैं बोला, 'मैंने इस पर अभी सीरियसली विचार नहीं किया है', तो वह बोली, 'तो मेरी इच्छा है कि तुम करो।' मैंने पूछा, 'क्या तुम्हारी नज़र में ऐसी कोई लड़की है ?' वह बोली, 'हाँ है और बिलकुल वैसी ही है जैसी तुम चाहते हो। सिर्फ़ उसका अनोखापन तुम्हारी समझ में आना चाहिए।' मैं समझ नहीं पा रहा था कि आख़िर इन्हें एकाएक मेरे विवाह की इतनी चिन्ता क्यों हो गई। मैंने यों ही पूछा, 'अनोखापन यानी क्या ?' तो वह बोली कि 'उस लड़की को प्रेम में भयंकर धोखा, और निराशा हुई है...और' हाँ...ज़रा रुको, शायद ठीक ही याद है...'उस प्रेम का फल...' यहाँ पर यह ज़रा हिचकिचायी फिर बोली, 'उसके पेट में है। सच कहा जाए तो उसका कोई दोष नहीं है मगर उसकी परि-स्थिति बहुत ही दयनीय है और उसे अपने बच्चे का पालन-पोषण करना है। असल में उस बच्चे के लिए ही वह अब जीवित रहने का और विवाह करने का विचार कर रही है।' उनकी बातों को सुनकर मुझे सन्देह हुआ इसलिए सच्ची बात निकालने के खयाल से मैंने कहा, 'अरे अरे, बिचारी के साथ तो बड़ा अन्याय हुआ। कौन था वह अधम आदमी ?'

सुखात्मे : इस पर वह बोली कि वह व्यक्ति प्रोफेसर दामले है।

पोंक्षे : नहीं। वह पहले बोली कि 'कृपा करके उन्हें अधम वग़ैरह मत कहो...हो सकता है कि वह बहुत अच्छे हों, बहुत बुद्धिमान्, महान्...वह लड़की ही उनके सामने तुच्छ और मूर्ख साबित हुई हो। वह अपने मन में उस व्यक्ति के बारे में क्या भावना

रखती है उसे वह ज़ाहिर न कर पाई हो...महत्त्व उस लड़की का नहीं है महत्त्व तो उस बच्चे का है।'

सुखात्मे : और ?

पोंक्षे : और फिर बोली कि 'उस लड़की ने उस आदमी की बुद्धि पर श्रद्धा की थी मगर उसे सिर्फ़ लडकी का शरीर ही नज़र आया।' वह इसी तरह की बातें काफ़ी देर तक कहती रही। मसलन कि बेचारी के लिए दामले के परिवार में स्थान पाना भी संभव नहीं...। उनका...।

सामंत :
कर्णिक :
सुखात्मे : } दामले के ?

काशीकर : (**मेज़ पर हाथ पटकर**) द कैट इज़ आउट ऑफ द बैग !

पोंक्षे : अरे, ग़लती हुई ? मैंने तो नाम न बताने की शपथ ली थी।

सुखात्मे : डज़न्ट मैटर मिस्टर पोंक्षे। डज़न्ट मैटर एट ऑल। असावधानी में टूट जाने वाली शपथ का पाप नहीं लगता...और कोर्ट में तो बिलकुल ही नहीं। तो इसके माने पेट में जो बच्चा था वह प्रोफ़ेसर दामले का था। आगे चलिए...।

पोंक्षे : और फिर इन्होंने मेरे पाँव पकड़ लिए।

काशीकर : आई सी...आई सी...।

पोंक्षे : हाँ, इन्होंने मेरे पाँव पकड़ लिए तो मैं बोला, 'यह आपको शोभा नहीं देता मिस बेणारे ! आपने मुझसे यह पूछा यही मेरे लिए अपमान की बात है। मैं क्या आपको इतना छिछला व्यक्ति लगता हूँ ?' मेरे यह कहते ही यह एक बार मेरे चेहरे की तरफ़ देखकर ज़ोर-ज़ोर से हँसती हुई उठकर खड़ी हो गई और बोली, 'तुमने क्या सोचा ? क्या मैं यह सब सच कह रही थी ? यह तो मैंने तुम्हें बेवकूफ बनाया है बस !' और फिर हँसती रही।

श्रीमती काशीकर : आँय ?

पोंक्षे : मगर इनकी आँखों में आँसू थे जिससे असलियत ज़ाहिर थी। इसके बाद वह तुरन्त ही यहाँ से यह कहते हुए, कि देर हो रही है, खिसक गई।

सुखात्मे : थैंक्यू फार द वैल्यूबल प्रूफ़ यू हैव गिवन, मिस्टर पोंक्षे !

पोंक्षे कठघरे से बाहर चला जाता है। सुखात्मे एक चिट निकालकर ज़ोर-ज़ोर से बोलते हुए नोट

करते हैं। 'दस दिन पूर्व रोकड़े का हाथ पकड़ने वाली घटना के दो दिन पहले।'

: दैट्स फाइन ! मि'लार्ड ! अब इस गवाही में किसी टीका-टिप्पणी की जरूरत ही नहीं है। सबूत इतना साफ़ और मुखर है कि उसमें सन्देश की कोई गुंजाइश ही नही है। अभियुक्त ने पहले मिस्टर पोंक्षे को फँसाया और जब उसकी दाल वहाँ नहीं गल पाई तो उसने रोकड़े पर अपना जाल डालने की कोशिश की। अब इसके बाद अभियुक्त की गवाही, मि'लार्ड !

बेणारे की तरफ इशारा। वह अर्धमृत-सी लग रही है।

कर्णिक : (**नाटकीयता से हाथ उठाकर**) वेट ! वेट ! इस मुकदमे में मुझे भी कुछ महत्त्वपूर्ण जानकारी देनी है।

सुखात्मे : मिस्टर कर्णिक ! इन द बॉक्स।

वह आकर कठघरे में अभिनय की ही मुद्रा में खड़ा होता है। श्री काशीकर ज़ोर-ज़ोर से कान खोद रहे हैं।

सुखात्मे : स्पीक ! मिस्टर कर्णिक, आप कोर्ट को क्या जानकारी देना चाहते हैं ?

कर्णिक : (**नाटकीयता से ही**) अभियुक्त, मिस बेणारे और रोकड़े के सम्बन्ध में जो तथ्य मिस्टर रोकड़े ने कोर्ट के सामने रक्खे, वह सरासर झूठे हैं।

रोकड़े : (**बीच ही में चिढ़ी हुई आवाज़ में**) आपसे क्या मतलब ?

कर्णिक : (**नाटकीयता से**) इसलिए कि इस प्रसंग में जो कुछ कहा गया और जो कुछ घटित हुआ, दुर्भाग्य से उसका मैं साक्षी था।

काशीकर : (**कनखोदनी साफ़ करते हुए**) क्या बात है, झटपट उसे कह डालिए मिस्टर कर्णिक ! बेमतलब उसे गुत्थी की तरह उलझाइए नहीं।

कर्णिक : (**उसी नाटकीयता से**) गुत्थी की तरह तो आज सारी ज़िन्दगी ही उलझी हुई है। पाश्चात्य नाटककार आइनेस्को...।

काशीकर : (**हथौड़ा पटककर**) टु द प्वाइंट ! विषयांतर मत कीजिए। विषय को साथ लेकर चलिए।

कर्णिक : गुत्थी की बात आपने उठाई इसलिए कहना पड़ा।

सुखात्मे : अभियुक्त बेणारे और रोकड़े के विषय में जो कुछ कोर्ट के सामने

बताया गया उसमें आप क्या सुधार करने जा रहे हैं मिस्टर कर्णिक ?

कर्णिक : सत्य का स्मरण करके यह बताना मेरा कर्तव्य है कि अभियुक्त के मुख-कमल पर रोकड़े ने थप्पड़ नहीं मारा था ।

रोकड़े : (**डरी हुई आवाज़ में**) झूठ कहते हैं...।

कर्णिक : जो कुछ हुआ वह इस प्रकार था । पहले अभियुक्त ने रोकड़े को घेरकर रोका, यह देखकर मैं यह जानने को उत्सुक हो उठा कि देखूँ आगे क्या सिचुएशन आती है और मैं चुपचाप अँधेरे में एक तरफ़ छुप गया । अभियुक्त ने रोकड़े से पूछा, 'तो फिर क्या फैसला किया तुमने ?' रोकड़े के शब्द कान में पड़े, 'भाभी के हुकुम के बिना मैं कुछ भी नहीं कर सकता । मुझे मज़बूर न कीजिए ।' अभियुक्त ने पूछा, 'भाभी की गुलामी में अभी और कितनी ज़िन्दगी बिताओगे ?' इस पर रोकड़े ने कहा, 'इसका कोई अन्त नहीं है । हर आदमी की अपनी-अपनी तक़दीर होती है । मैं शादी की बात सोच भी नहीं सकता ।' इस पर अभियुक्त ने कहा, 'फिर से सोच लो; मैं तुम्हारा सारा भार उठा लूँगी । तुम्हें कोई भी कमी नहीं होने दूँगी । भाभी और अन्ना से डरने की कोई बात ही नहीं रह जाएगी । फिर तुम आत्मनिर्भर होगे ।' इस पर रोकड़े बोला, 'मुझे डर लगता है और आपकी ऐसी दशा में अगर मैं आपसे शादी करूँगा तो दुनिया मेरे मुँह पर थूकेगी । हमारे ख़ानदान में किसी ने भी ऐसा काम नहीं किया है । आप मेरे पीछे मत पड़िए, नहीं तो भाभी से कह दूँगा ।' इस पर अभियुक्त ने तिलमिला कर...।

रोकड़े : झूठ है यह...।

कर्णिक : रोकड़े के मुँह पर थप्पड़ मारा ।

अनजाने में ही रोकड़े का हाथ गाल पर ।

रोकड़े : झूठ है यह...साफ़ झूठ है...।

श्रीमती काशीकर क्रोध से उसकी तरफ़ देखती है ।

सुखात्मे : थैंक्यू मिस्टर कर्णिक ! तो यानी कि अभियुक्त ने गवाह रोकड़े को फँसाकर उससे विवाह करने की जो कोशिश की थी यह सच ही है । सिर्फ थप्पड़ किसने किसको मारा इस पर आपकी राय भिन्न है ।

कर्णिक : यह राय नहीं, प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

सुखात्मे : दैट्स सो ! मिस्टर कर्णिक...।

कठघरे से बाहर का रास्ता दिखाते हैं।

कर्णिक : मुझे कुछ और भी कहना है।

काशीकर : बेमतलब की बात को रहस्यपूर्ण न बनाना हो तो कहिए। बातों की लपसी मत बनाइए।

कर्णिक : मि'लार्ड !

काशीकर : (**हथौड़ा पटककर**) आर्डर ! आपने क्या अपने-आपको वकील समझ रक्खा है ? गवाह की तरह सीधे न्यायमूर्ति महाराज कहिए।

कर्णिक : न्यायमूर्ति महाराज !

काशीकर : हाँ, यही नियम है। आगे बोलिए अब। मगर लपसी नहीं। सब कुछ सीधा और साफ़ हो...।

रोकड़े : (**धीमे स्वर में, दयनीय सा, श्रीमती काशीकर से**) भाभी···।

श्रीमती काशीकर : अब बोल मत मुझसे !

रोकड़े : मगर भाभी...।

वह मुँह दूसरी तरफ़ घुमा लेती है। रोकड़े और भी दयनीय।

कर्णिक : न्यायमूर्ति महाराज ! अभियुक्त का एक मौसेरा भाई है जिसे मैं जानता हूँ। यानी कि परिचय बिलकुल संयोग से ही हो गया हमारा। यही दादर जिमखाने के एक क्रिकेट मैच में। यानी कि बैचलर्स इलेवन के उस मैच में हम दोनों का एक संयुक्त फ्रेंड उस दिन खेल रहा था। और वह फ्रेंड जो मेरे फ्रेंड का फ्रेंड है, अभियुक्त का मौसेरा भाई है यह सूचना मेरे फ्रेंड ने मुझे दी थी। मेरा फ्रेंड अभियुक्त को जानता है और वह भी उसे जानता है। यानी कि अभियुक्त के बारे में उसे खूब जानकारी है।

काशीकर : आई सी। तो इसे आप क़िस्से की तरह क्यों बाँध रहे हैं ? कोर्ट के नियमों की इज्ज़त कीजिए।

कर्णिक : (**इज्ज़त करने का पोज़ लेकर**) यस ! तो अभियुक्त की चर्चा करते हुए उसके मौसेरे भाई में और मुझमें यों ही जब बातचीत चल पड़ी तो उसने कुछ इन्फ़ॉरमेशन यानी कि जानकारी मुझे दी।

सुखात्मे : जैसे ?

कर्णिक : जैसे कि एक बार अभियुक्त ने आत्महत्या करने की कोशिश की।

सुखात्मे : **(सतर्क होते हुए)** दैट्स द प्वाइंट। तो 'टिक ट्वेन्टी' की शीशी की भी परंपरा है।

कर्णिक : यह मैं कैसे कहूँ ? मगर यह इन्फ़ॉरमेशन मुझे ज़रूर मिली है कि आत्महत्या की यह कोशिश प्रेम में होने वाली निराशा के फलस्वरूप की गई थी। और निराशा में समाप्त हो जाने वाला अभियुक्त का वह प्रेम अपने मामा से पन्द्रह साल की उम्र में हुआ था।

श्रीमती काशीकर : **(आश्चर्य से)** मामा ?

सुखात्मे : मि'लार्ड ! मामा से अर्थात् माँ के भाई से अनैतिक संबंध।

काशीकर : वाह ! व्यभिचार की चरम सीमा ! वाह सुखात्मे !

सुखात्मे : मि'लार्ड ! वाह क्यों ? अभियुक्त का आचरण तो पाप कर्मों से भरा हुआ है ही। उसका भूतकाल और वर्तमान दोनों ही पाप से लिप्त हैं और इस गवाही से यह बात सूर्य की रोशनी की तरह साफ़ हो चुकी है।

बेणारे झट से उठकर दरवाज़े की तरफ बढ़ती है। श्रीमती काशीकर उसे तुरन्त लपककर पकड़ती है और कठघरे में दुबारा लाकर खड़ी कर देती है।

श्रीमती काशीकर : चली किधर ? दरवाज़ा बंद है, बैठ यहीं।

कर्णिक : मेरी गवाही ख़त्म हुई।

काशीकर से नाटकीय ढंग से अभिवादन करके कटघरे से बाहर आता है और अपनी कुर्सी पर जाकर बैठ जाता है।

काशीकर : **(एकाएक जैसे कुछ याद आ गया हो। मेज़ पर ज़ोर से हाथ पटकते हुए)** कोई शक ही नहीं सुखात्मे ! अब कोई भी शक नहीं रह गया।

सुखात्मे : क्या बात हुई मि'लार्ड ?

काशीकर : बता रहा हूँ सुखात्मे ! अब कोर्ट की परंपरा को तोड़कर एक बहुत महत्त्वपूर्ण जानकारी मैं देने जा रहा हूँ।

सुखात्मे : मि'लार्ड !

काशीकर : इस मुकदमे का बहुत ज़बर्दस्त सामाजिक महत्त्व है सुखात्मे ! कोई खेल-तमाशा नहीं। कोर्ट की परंपरा को तोड़कर अब मुझे गवाही देनी ही होगी। सुखात्मे, इज़ाज़त माँगो। आस्क मी, आस्क !

सुखात्मे : मि'लार्ड ! मुकदमे के महत्त्व को देखते हुए रूढ़िवादी परम्परा को तोड़कर स्वयं न्याय-देवता को गवाह के कटघरे में आने की इज़ाज़त दी जाए।

काशीकर : परमिशन ग्रान्टिड। (**कठघरे में आकर खड़े होते हैं**) क्रास मी। कम ऑन...(**बोलने के लिए उतावले हो रहे हैं। नज़र मिस बेणारे पर**) कोई शक ही नहीं।

सुखात्मे : (**वकीलाना अदा से**) मिस्टर काशीकर, आपका व्यवसाय ?

काशीकर : सोशल वर्कर उर्फ़ सामाजिक कार्यकर्ता।

सुखात्मे : अभियुक्त को आप पहचानते हैं ?

काशीकर : खूब अच्छी तरह। यह समाज की जड़ को खोखला करने वाली अनैतिकता रूपी दीमक है। मैं डंके की चोट पर यह बात कह सकता हूँ। यह अविवाहित, प्रौढ़, कुमारी कन्या...।

सुखात्मे : (**विशेष वकीलाना पोज़ में**) बग़ैर पूछे अपनी राय न दीजिए मिस्टर काशीकर !

काशीकर : मेरी राय मेरी है, उसे देने के लिए मैं किसी के पूछने का इन्तज़ार नहीं कर सकता।

पोंक्षे : ब्रेवो !

सुखात्मे : मत कीजिए मिस्टर काशीकर ! आपको अभियुक्त के बारे में क्या महत्त्वपूर्ण गवाही देनी है ? कृपया देंगे ?

काशीकर : वही तो देने जा रहा हूँ।

सुखात्मे : शुरू कीजिए।

काशीकर : (**बेणारे की तरफ नज़र**) बम्बई के जाने-माने नेता श्री नाना साहब शिंदे के घर मेरा काफी जाना-आना है। अर्थात् सामाजिक कार्य की रुचि हमारे-उनके बीच की कड़ी है। बाकी उनका बड़प्पन अलग, मेरा अलग, वह प्रश्न यहाँ नहीं है...। मैं एक बार इसी बीच उनके घर...करीब रात के नौ बजे होंगे, किसी कार्यवश पहुँचा। मैं अभी बैठा ही था कि एक बातचीत ने मेरा ध्यान खींचा।

बेणारे चौंकती है।

: उस बातचीत में एक आवाज़ तो मेरे शिंदे साहब की थी ही, दूसरी भी कुछ पहचानी हुई-सी मुझे लगी।

श्रीमती काशीकर : किसकी थी दूसरी आवाज़ ?

काशीकर : सुखात्मे दो, चेतावनी दो ! गवाही के बीच अड़ंगा लगाने की ज़रूरत नहीं है।...दूसरी आवाज़ किसकी है इसे मैं स्पष्ट रूप

से जानने की कोशिश कर ही रहा था कि नाना साहब शिंदे बाहर निकल आए और मैं उसी विचारधारा के बीच तपाक से उनसे पूछ बैठा कि कौन था ? तो वह बोले कि 'वह हाईस्कूल के शिक्षा मंडल की एक मास्टरनी है। रोज़ चक्कर काट रही है। चाहती है कि उसके बारे में हो रही जाँच-पड़ताल बंद कर दी जाए। मास्टरनी अभी जवान है इसलिए एकदम ना भी नहीं कर पाया। सोचकर जवाब देने के लिए दुबारा बुला लिया है।' वह स्त्री कौन है यह जानने के लिए मैं बहुत उत्सुक हो उठा। मगर उन्होंने बताया नही। लेकिन अब मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि वह स्त्री और कोई नहीं, यही बेणारे बाई थी। हूबहू यही आवाज़। कोई शक ही नहीं।

श्रीमती काशीकर : हाय राम !

काशीकर : दावे के साथ मैंने क्यों कहा यह आप पूछ सकते हैं सुखात्मे ! बात यह हुई कि आज ही सुबह जब नाना साहब के जन्मदिन पर मैं उनके घर पहुँचा तो वह क्रोध में किसी से ज़ोर-ज़ोर से कह रहे थे, 'विवाह से पहले गर्भधारण बिलकुल साफ़ अनाचार है। ऐसी औरत को तो फ़ौरन नौकरी से अलग कर देना चाहिए।' यह बात अपने कान से मैंने सुनी। उन्होंने यह भी कहा कि दस्तखत के लिए आज ही कागज़ भेजिए।

बेणारे को शॉक।

: ऐसी स्त्री को पढ़ाने की इज़ाजत देना ही अनाचार को बढ़ावा देना है। अब बोलिए इन बातों से किस स्त्री की तस्वीर आँखों के सामने आती है ? मैं तो कहता हूँ कि बस यह बेणारे बाई ही है।

सामंत : अरे रे रे ! तो क्या नौकरी छूट जाएगी उनकी ?

सुखात्मे : नो इलाज मिस्टर सामंत। टिट फार टैट। जैसी करनी वैसी भरनी, यह तो ज़िन्दगी का नियम है।

रोकड़े कापी खोलकर लिखने लगता है।

: मगर मिस्टर काशीकर ! वह स्त्री यह बेणारे बाई ही थी, इस बात को आपने दावे के साथ किस आधार पर कहा ?

काशीकर : अरे इतनी साधारण-सी बात भी समझ में नहीं आएगी मेरे ? समाज का चालीस वर्ष का मेरा अनुभव है मिस्टर सुखात्मे ! आप हैं किस जहान में ? उड़ती चिड़िया के पंख पहचानता हूँ मैं। मुझे अपने दावे की सच्चाई में कोई दुविधा नहीं है।

निश्चय ही वह स्त्री बेणारे बाई ही थी। आप खुद ही जान लेंगे जब वह आर्डर कल उनके पास पहुँच जाएगा। नौकरी से निकाले जाने का आर्डर ! बस। कोर्ट के रिकार्ड के लिए मुझे सिर्फ़ इतना ही कहना था। **(कटघरे से निकलकर सीधे न्यायासन पर बैठते हुए)** प्रासिक्यूशन, कंटिन्यू।

बेणारे के हाथ में छोटी-सी शीशी है जिसे वह मुँह से लगाती है। कर्णिक झटके से उसे उछाल देता है। शीशी लुढ़ककर पोंक्षे के पास गिरती है।

पोंक्षे : **(शीशी उठाकर देखता हुआ न्यायमूर्ति की मेज़ पर रखते हुए)** 'टिक ट्वेंटी' !

सामंत अत्यन्त सहमा हुआ है। काशीकर शीशी को हाथ में लेकर देखते हैं और रख देते हैं।

काशीकर : प्रासिक्यूशन, कंटिन्यू...।

सुखात्मे : अब इस आखिरी गवाही के बाद, जोकि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी, हमारी गवाहियाँ खत्म हो चुकी हैं। मि'लार्ड ! द केस फ़ॉर द प्रासिक्यूशन रेस्ट्स।

बहुत अधिक थका हुआ-सा कुर्सी पर बैठ जाता है।

काशीकर : **(न्यायमूर्ति की गम्भीरता से)** अटर्नी फ़ॉर द एक्यूज्ड !

सुखात्मे अभियुक्त के वकील की हैसियत से पास के एक स्टूल पर बैठ जाते हैं।

: आपके पक्ष का कोई गवाह हो तो उसे बुलाइए।

सुखात्मे ग्लानि और निराशा से झुके-झुके उठते हैं। वकीलाना अभिवादन करते हैं, फिर बुझे हुए स्वर में बोलते हैं।

सुखात्मे : यस मि'लार्ड ! हमारे प्रथम गवाह हैं प्रोफ़ेसर दामले।

रोकड़े : **(चोबदार की तरह)** दामले हाज़िर ! प्रोफेसर दामले हाज़िर है ? **(काशीकर से)** प्रोफेसर दामले ग़ैर-हाज़िर है।

काशीकर : **(सुखात्मे से)** नेक्स्ट प्लीज़।

सुखात्मे : अवर नेक्स्ट विटनेस, नाना साहब शिंदे।

काशीकर : **(दाँत खोदते हुए)** ग़ैर-हाज़िर। वह यहाँ क्या करने आएँगे ? नेक्स्ट...।

सुखात्मे : इस मण्डली के सदस्य मिस्टर रावते...।

काशीकर : वह भी ग़ैर-हाजिर। हो चुके अभियुक्त के गवाह ?

सुखात्मे : फ़रियादी से क्रॉस-क्वेश्चन करना चाहता हूँ मि'लार्ड !

काशीकर : इजाज़त नामंजूर। टेक योर सीट।

सुखात्मे : **(ठंडी साँस भरकर)** केस फ़ॉर द एक्यूज्ड़ रेस्ट्स।

जाकर अभियुक्त के वकील के स्टूल पर निढ़ाल-से बैठ जाते हैं।

काशीकर : **(दाँत में फँसा हुआ टुकड़ा थूककर)** गुड। नाऊ अटर्नी फ़ॉर द प्रासिक्यूशन आर्गू। अब वक़्त बरबाद न कीजिए।

सुखात्मे जगह बदलते हैं। पुनः मूल स्थान पर उत्साह से बैठते हैं और फिर उठकर अखाड़िया मल्ल की तरह आगे बढ़ते हैं।

काशीकर : संक्षेप में कहिए।

सुखात्मे : **(सरकारी वकील की हैसियत से)** मि'लार्ड! अभियुक्त मिस लीला बेणारे के ऊपर लगाये गए अभियोग का स्वरूप महा भयंकर है। मि'लार्ड! कठघरे में खड़ी हुई इस स्त्री ने स्वर्ग से भी अधिक पवित्र मातृत्व को अपने कुकर्मो से कलंकित किया है। उसे कोर्ट द्वारा दिया जा सकने वाला कठोर से कठोर दण्ड भी कम है। अभियुक्त का चरित्र अत्यन्त लज्जा-जनक है। नैतिकता को तो उसने सरेबाज़ार नीलाम कर दिया है। अपने पतित आचरण से उसने सामाजिक और नैतिक मूल्यों का गला घोंट दिया है। अभियुक्त समाज की प्रबल शत्रु है। इस तरह की समाजघातक प्रवृत्तियों को अगर बढ़ावा मिलता रहा तो एक दिन यह देश और इसकी संस्कृति रसातल में चली जाएगी। इसीलिए मेरा कहना है कि भावनाओं में न बहकर कोर्ट अभियुक्त के गुनाहों पर, कठोर कर्त्तव्य का स्मरण करने के बाद ही निर्णय ले। अभियुक्त पर आरोप भ्रूण-हत्या का है। किन्तु उसने उससे भी गम्भीर गुनाह किया है। वह है विवाह से पहले माँ बनने का। बग़ैर विवाह का मातृत्व हमारे धर्म और संस्कृति में महा पाप माना गया है और फिर उस अवैध सन्तान को पाल-पोसकर बड़ा करने का अभियुक्त का संकल्प यदि सफल हो गया तो समाज का अस्तित्व ही ख़तरे में पड़ जाएगा। नैतिक मूल्यों का तो नामो-निशान मिट जाएगा। यह एक भयंकर आशंका है मि'लार्ड! भ्रूण हत्या अत्यन्त पतित कर्म है और उससे भी पतित कर्म किसी अवैध

संतान को पाल-पोसकर बड़ा करना है। इसे बढ़ावा मिलने पर समाज में विवाह की संस्था जैसी चीज़ ही मिट जाएगी, अनाचार और पापाचार का बोलबाला हो जाएगा। संस्कारयुक्त समाज का जो हमारा सुन्दर स्वप्न है, वह देखते-देखते मिट्टी में मिल जाएगा। अपनी परम्परा, अपनी इज्ज़त, संस्कृति और यहाँ तक कि अपने धर्म की भी नींव में बारूद लगाकर उसे समूल नष्ट कर देने का इरादा इस अभियुक्त स्त्री का लगता है। इसलिए मैं कहता हूँ कि हममें से हर समझदार, बुद्धिमान तथा विचारशील नागरिक एवं न्याय-देवता का यह पवित्र और आवश्यक कर्त्तव्य है कि उसे आकार लेने से पहले ही नष्ट कर दिया जाए। अभियुक्त स्त्री है यह सोचकर उस पर दया करने की ज़रूरत नहीं है। स्त्री पर तो समाज को बनाने का दायित्व और भी अधिक है। 'न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति', यह हमारी परम्परा का सर्वमान्य नियम है। इस नियम के अनुसार मैं दावे के साथ माँग करता हूँ कि 'न मिस बेणारे स्वातंत्र्यमर्हति'। अभियुक्त पर दया न करके कोर्ट उसे कठोर से कठोर दण्ड दे। इस आग्रह के साथ मैं फ़रियादी पक्ष की बहस खत्म करता हूँ।

काशीकर : गुड ! अटर्नी फॉर द एक्यूज्ड। अभियुक्त का वकील।

सुखात्मे जगह बदलकर निढाल से फिर उठते हैं।

सुखात्मे : (**भारी क़दमों से चलकर, निराश और उदास स्वर में**) मि'लार्ड ! गुनाह बहुत गम्भीर है मैं इस से इनकार नहीं करता। मगर मनुष्य आखिर एक कमज़ोर प्राणी है और यौवन मनुष्य को अन्धा कर देता है। इस बात को ध्यान में रखकर ही अभियुक्त के हाथों अनजाने हो गए इस अपराध पर क्षमा की भावना से विचार किया जाए। दया ! मि'लार्ड मानवता के नाते दया...।

न्यायमूर्ति की मेज़ के पास आ जाते हैं। बेणारे एकदम निश्चल और बेजान-सी हो जाती है।

काशीकर : गुड ! नाऊ अभियुक्त बेणारे...।

बेणारे चुप।

: अभियुक्त बेणारे ! सज़ा सुनने से पहले तुम्हें अपने अभियोग के बारे में कोई सफ़ाई देनी है ? (**घड़ी सामने रखकर**) अभियुक्त को दस सेकण्ड का वक़्त दिया जाता है।

वह उसी तरह चुप और बेजान। कहीं से पार्श्व संगीत उभरता है। प्रकाश बदलता है। सम्पूर्ण कोर्ट इस क्षण जिस स्थिति में है उसी स्थिति में निस्तब्ध हो जाता है। और तब तक बेजान-सी बैठी हुई बेणारे उठकर खड़ी होती है मूर्ति की तरह।

बेणारे : हाँ! बहुत कुछ कहना है मुझे। (**अँगड़ाई लेकर**) कितने बरस बीत गए, कुछ कहा ही नहीं। क्षण आये, चले गये। एक के बाद एक तूफ़ान आए, मगर कण्ठ में ही घुटकर रह गये। छाती में प्राणांतक आक्रोश उठे, किन्तु हर बार होंठों को कसकर भींच लिया। लगा कि कोई भी इसे जान नहीं सकेगा, कोई भी समझ नहीं सकेगा इसे। जिस समय शब्दों का प्रचण्ड ज्वार उमड़ता हुआ आकर होंठों से टकराने लगता है तो लगता है यह मेरे आसपास रहनेवाले आदमी कितने नासमझ, पागल और बचकाने हैं। सभी! वह भी, जो नितान्त अपना है। दिल करता है उन पर जी-भर हँसती रहूँ। बस हँसती ही रहूँ। और तब मन फूट-फूटकर रो उठता है और इतना रोता है कि आतें ऐंठने लगती हैं। लगता है कि छाती फट जाए तो अच्छा हो। ज़िन्दगी कितनी सारहीन लगती है। (**एक गहरा निःश्वास भरकर**) मगर प्राण नहीं जाते। और न जाने पर फिर उसके महत्त्व का एहसास होता है। आनेवाला हर क्षण फिर कितना नया और अनोखा लगता है! खुद अपना अस्तित्व कितना नया-नया लगने लगता है। आकाश, पक्षी, बादल, किसी सूखे तरु की धीरे से झाँकती हुई कोई टहनी और खिड़की में हिलता हुआ परदा। चारों ओर फैली हुई नीरवता और कहीं दूर से आती हुई अस्पष्ट आवाज़ें, हास्पिटल की दवाओं की भभक... यह सब भी तब ज़िन्दगी के रस से परिपूर्ण लगती हैं। लगता है, ज़िन्दगी चौकड़ी भरती हुई मेरे लिए गीत गा रही है। कितना ज़्यादा था आत्महत्या की असफलता का आनन्द! जीवित रहने की वेदना से भी ज्यादा...। (**गहरी साँस भरकर**) ज़िन्दगी को व्यर्थ जानकर फेंकने लगोगे तभी उसके अस्तित्व का एहसास होगा। मज़ा है ना? सँजोकर रखो तो फेंक देने की इच्छा हो और फेंकने लगो तो उसके बच जाने का सुख मिले, कुछ भी सम्पूर्ण नहीं है। बार-बार वही, उसी तरह। (**शिक्षिका**

की तरह) जीवन ऐसा है, जीवन वैसा है, जीवन अमुक है जीवन तमुक है...जीवन चिंदी-चिंदी होकर बिखरता हुआ एक ग्रन्थ है, जीवन यानी स्वयं को डस जाने वाला एक महा-विषधर सर्प है, जीवन यानी विश्वासघात है, जीवन यानी प्रतारणा है। जीवन यानी नशा है, जीवन यानी आवारागर्दी है। जीवन यानी ऐसा कुछ है जो कुछ नहीं है या ऐसा कुछ भी नहीं है जो सचमुच कुछ हो। (**सहसा कोर्ट के अनुरूप पोज़ लेकर**) मि'लार्ड ! जीवन एक महा भयानक चीज़ है। जीवन को फाँसी पर लटका देना चाहिए। 'न जीवन जीवनमर्हति'। जीवन की पड़ताल करके उसे नौकरी से निकाल देना चाहिए। लेकिन क्यों ? क्यों आखिर ? अपने काम में मैंने कभी कोई कोर-कसर की ? प्राण देकर अपने बच्चों को बनाया है मैंने। शिक्षा दी है। जानती थी मैं, यह ज़िन्दगी आसान नहीं है। आदमी बहुत क्रूर हो सकता है। अपने सगे-सम्बन्धी भी जानने-समझने की परेशानी नहीं उठाएँगे। इस जीवन का बस एक ही सत्य है...शरीर ! आप इससे इनकार करें तो करें। करते रहें। मगर यही सत्य सर्वमान्य है। भावना तो बस आवाज़ में कंपन पैदा करके मीठी-मीठी बातें करने की एक अदा है।...मैं देख रही थी सब कुछ ! उसी में जी रही थी और भीतर-ही-भीतर झुलस रही थी। मगर क्या इस बात को कोई जानता है कि उन नन्ही-नन्ही कोंपलों को मैंने अपने उस झुलसन की आँच भी नहीं लगने दी। इस विष को अकेले पचाया है मैंने। वह जानते भी नहीं। उन्हें तो मैंने सौन्दर्य की शिक्षा दी है। भीतर मन में रोते हुए भी उन्हें बेतहाशा हँसाया है मैंने। मन की निराशा को छुपाकर आशावादी बनाया है उन्हें। कौन-सा वह गुनाह है जिसके आधार पर तुम मेरी नौकरी, मेरी इकलौती खुशी छीन रहे हो मुझसे ? मेरा निजी चरित्र मेरी अपनी समस्या है। अपने इस गुनाह का दण्ड क्या भोगना होगा, इसे मैं निश्चित करूँगी जैसे हर व्यक्ति को करना चाहिए। इस पर उँगली उठाने का अधिकार किसी दूसरे को नहीं मिल सकता। हर किसी का अपना अलग व्यक्तित्व, रास्ता और फिर मंज़िल होती है। मगर इसका दूसरों से मतलब ही क्या ? (**एकाएक हलके-फुलके मूड में**) शश ऽऽ ! आवाज़ बन्द ! साइलेन्स !

कितना शोर ?

कठघरे से निकलकर सब तरफ़ घूमने लगती है। जैसे क्लास-रूम में चल रही हो।

: एकदम चुपचाप बैठे रहो सब। (**निश्चेष्ट बैठे हुए एक-एक व्यक्ति को बारी-बारी से देखकर**) बेचारे !...बच्चो ! जानते हो यह सब कौन हैं ?

एक-एक चेहरे पर प्रकाश केन्द्रित होता है। सबके चेहरे भयानक, जड़वत्, प्रेत जैसे दिखाई देते हैं।

: यह बीसवीं शताब्दी के सुसंस्कृत मानव के अवशेष हैं। देखो ! ये चेहरे कितने जंगली लग रहे हैं। होंठों पर घिसे-पिटे खूबसूरत औपचारिक शब्द हैं, भीतर अतृप्त और विकृत वासनाएँ !

स्कूल का पीरियड खत्म होने का घंटा। बच्चों का अस्पष्ट-सा शोर। उसे सुनती-सुनती वह क्षणभर के लिए तल्लीन हो जाती है। आवाजें दूर होती अन्ततः डूब जाती हैं। एक चुप्पी ! वह जैसे सोते से जागती है। अपने चारों तरफ़ देखती है और उस चुप्पी से बहुत भयभीत हो जाती है।

: नहीं नहीं...मुझे ऐसे अकेली छोड़कर न जाओ रे बच्चो। मुझे इनसे भय लगता है...बहुत भय लगता है। (**भय से मुँह छुपाकर व्याकुल स्वर में**) कबूल करती हूँ, मैंने पाप किया है। मैंने माँ के भाई से प्रेम किया है। मगर घर के बंधनों के बीच... मेरी खिलती-गदराती हुई देह की बहार में अकेला वही तो मेरे करीब आया था...उसीने तो दिन-रात उस बहार का बखान किया था...लाड़ किया, दुलराया...मुझे क्या पता कि हृदय से जिसके साथ एकरूप होने की तीव्र इच्छा होती हो...जिसके केवल संसर्ग से संपूर्ण जीवन सार्थक-सा लगता हो वह अगर माँ का भाई है तो सब कुछ पाप में बदल जाएगा। अरे, कुल चौदह साल की तो थी मैं। पाप क्या होता है यह जानती भी नहीं थी मैं...माँ की सौगंध। (**छोटी बच्ची की तरह बिलखकर रोती हुई**) मैंने विवाह के लिए ज़िद की थी तो सिर्फ़ इसलिए कि औरों की तरह एक सुखी गृहस्थी की कल्पना मेरे मन में भी थी। मगर सबके साथ मेरी माँ ने भी उसका विरोध ही किया। मेरा पुरुष दुम दबाकर भाग गया। इतना क्रोध आया उस पर कि जी चाहा सरे-बाजार खड़ा करके उसका मुँह तोड़ दूँ...थूक

दूँ उसके मुँह पर। पर उस समय मैं बहुत छोटी थी। कमज़ोर थी, अनजान थी। अपने को मृत्यु के हवाले करने के लिए घर के छज्जे पर से कूद पड़ी। मगर मर नहीं सकी। सोचा, तन से नहीं मर सकी तो मन से तो मर ही गई हूँ। मगर मैं मन से भी नहीं मर सकी थी...मैंने फिर से प्रेम किया...सोच-समझकर किया। प्रौढ़ उम्र में किया...सोचा था कि यह प्रेम कुछ और तरह का है...यह प्रेम नहीं, श्रद्धा है। यह एक अनूठी बौद्धिकता के प्रति आकर्षण है...यह प्रेम हो ही नही सकता। यह तो भक्ति है...मगर फिर मैंने भूल की। मन द्वारा की गई उस भक्ति में तन का नैवेद्य चढ़ गया। और नैवेद्य पाते ही मेरा बुद्धि का देवता मुकर गया। उसे मेरी भक्ति की, मेरे श्रद्धा की दरकार कहाँ थी ? बिलकुल ही नहीं थी। (**हलके स्वर में**) वह देवता था ही नहीं। वह मनुष्य था, जिसका सारा प्यार सिर्फ़ शरीर से था...शरीर की खातिर था। बस। फिर वही शरीर। (**चीख-कर**) यह शरीर ही सारा अनर्थ करता है। (**वेदना से व्याकुल होकर**) इस शरीर से घृणा है मुझे। और बहुत-बहुत प्यार है। इस पर क्रोध आता है मगर इसके अस्तित्व को नकार नहीं सकती मैं। तो फिर ? वह तो रहेगा ही और तेरा होकर ही रहेगा। इसे छोड़कर तू जाएगी कहाँ ? और यह भी तुझे छोड़-कर कहाँ जाएगा ? कृतघ्न मत बन। यही है वह शरीर जिसने तपकर तुझको एक अतिशय सुखदायी स्वार्गिक तृप्त क्षण दिया था। भूल गई ? यही है वह जिसने तुझे शरीर से परे किसी बहुत ऊँचे दिव्य लोक में उस क्षण पहुँचा दिया था। इनकार करेगी ? बोल। और अब उसी में तो पनप रहा है उस क्षण का साक्षी, एक नन्हा कोमल अंकुर...हाँ। मेरे बच्चे का है वह बीज ! मेरे प्राण का ! जो कल हँसता-खिलखिलाता, नाचता-थिरकता एक जीव होगा। यह शरीर मुझे चाहिए...उसके लिए यह शरीर मुझे चाहिए। सचमुच चाहिए।

आँखें बन्द हो जाती हैं। उसी आवेग में कुछ बुद-बुदाती रहती है।

: उसे माँ चाहिए...पिता का हक़दार है वह।...उसे घर चाहिए ...संभरण चाहिए...प्रतिष्ठा चाहिए।

अंधकार। उजाला। घड़ी की टिकटिक। बेणारे कठघरे में पहले की तरह निश्चल और चुप।

अन्य सब अपनी-अपनी जगह पर।

काशीकर : (**घड़ी वाला हाथ नीचा करके**) टाइम इज़ अप। अभियुक्त को कुछ कहना नही है। वैसे कहने से कोई लाभ भी नहीं। पाप का घड़ा अब पूरी तरह भर चुका है। नाऊ जजमेंट। (**रोकड़े से**) मेरा विग !

रोकड़े जल्दी से विग निकालकर देता है।

: (**विग पहनकर, धार्मिक विधि की-सी गंभीरता से**) अभियुक्त मिस बेणारे ! ध्यान देकर सुनो ! तुम्हारा गुनाह महा भयंकर है। इस गुनाह की क्षमा नहीं है। पाप के लिए प्रायश्चित होना ही चाहिए। बहकने वाली निरंकुश प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना ही चाहिए। सामाजिक परम्पराएँ चाहे जैसी भी हों, महत्त्वपूर्ण होती हैं। मातृत्व निष्कलंक और पवित्र होना चाहिए। उस पवित्रता में दाग़ लगाकर तुमने परम्पराओं की नींव में जो बारूद लगाई है उसके लिए अदालत यह गंभीर फैसला करती है कि तुम्हारा गुनाह दया से परे है और तुम इतने गंभीर गुनाह के बाद भी जिस ठसक के साथ समाज में घूमती रही हो वह और भी अक्षम्य है। गुनाह करने वाले पापियों को अपनी सीमा के भीतर ही रहना चाहिए। मगर तुमने यह सीमा तोड़ दी है। तुम्हारी यह उद्दंडता कोर्ट के क्रोध में घी की आहुति डालती है। तुम्हारे हाथों में समाज की आने वाली पीढ़ी का भाग्य और भविष्य था। यह कितनी भयंकर बात थी। तुम अपने इसी दुराचरण की मुहर देश की भावी पीढ़ी पर भी लगाने वाली थीं। अर्थात् सिर्फ़ वर्तमान ही नहीं, समाज का भविष्य भी तुम्हारे दुष्कर्मों से ख़तरे में पड़ गया था। तुमको नौकरी से निकाल देने का फ़ैसला करके स्कूल के अधिकारियों ने एक महान् पुण्य कार्य किया है। ईश्वर की दया से तुम्हारे दुराचरण के प्रभाव से समाज अभी बचा हुआ है। तुम्हारी तरह की स्त्रियों के हाथ से यह गुनाह बार-बार न हो, इस चेतावनी की नीयत से कोर्ट तुम्हारे लिए यह फैसला करती है कि तुम्हें जीवित छोड़कर तुम्हारे गर्भ में पल रहे जीव को पूरी तरह से नष्ट कर दिया जाए ताकि तुम्हारे पाप कर्मों का सबूत भावी पीढ़ी के लिए मौजूद न रहे।

बेणारे : (**एकदम व्याकुल होकर**) नहीं, नहीं, नहीं; यह मैं तुम्हें नहीं करने दूँगी...यह मैं नहीं करने दूँगी...नहीं...।

सारे लोग पत्थर के बुत से निश्चल गंभीर। बेणारे बिलखती हुई अभियुक्त के वकील के स्टूल के पास जाती है। बेजान-सी उस पर बैठती है। दुख के आवेग से बैठा नहीं जाता। मेज पर सिर रखकर रोती रहती है।

एकदम चुप्पी। इस बीच काफ़ी अंधकार हो गया है। दरवाज़ा खटकता है। सब चौंककर उधर देखते हैं। धीरे-से दरवाज़ा ज़रा-सा खुलता है। उसमें से प्रकाश की लकीर भीतर घुसती है। दो-तीन चेहरे अन्दर झाँकते हैं।

एक चेहरा : (**अन्दर सब तरफ़ ध्यान से देखता हुआ**) कार्यक्रम शुरू हो गया है क्या ? अभिरूप न्याय सभा ?

सबको किसी बात के स्मरण से एकाएक धक्का लगता है। कुछ नये सिरे से याद आता है। सामंत लाइट कर देता है। फौरन सब नार्मल होने लगते हैं।

सामंत : (**उठकर दरवाज़े के पास जाकर**) आँ ? नहीं नहीं। अभी... अभी शुरू हो जाएगा। मगर आप लोग ज़रा बाहर ही रहिए... चलिए...बस पाँच मिनट और...चलिए...।

उन्हें किसी तरह ठेलता हुआ बाहर ले जाता है।

कर्णिक : अरे बाप रे बाप ! बहुत ही ज़्यादा समय गुज़र गया।

श्रीमती काशीकर : समय का तो पता ही नहीं चला जी।

पोंक्षे : व्हॉट्'स द टाइम ? अँधेरा हो गया।

काशीकर : रोकड़े, समय पर निगरानी रखने का काम तुम्हें सौंपा गया था न ! फिर कर क्या रहे थे अब तक ? नालायक़ कहीं का !

सुखात्मे : जाने दीजिए काशीकर। लेकिन आज मज़ा वैसे बहुत आया। बिलकुल असली केस लड़ने वाला आनन्द मिला।

काशीकर : चलो चलो। सब तैयार हो जाओ चटपट...।

पोंक्षे : आई एम आलवेज़ रेडी...।

बेणारे की तरफ इंगित करता है। सब ठिठक जाते हैं। गम्भीर और सहमे-से सब बेणारे के चारों ओर खड़े हो जाते हैं।

श्रीमती काशीकर : (**अपनी वेणी टटोलती हुई**) इसने तो लगता है बहुत ही ज़्यादा 'ये' किया है जी। कमज़ोर दिल की लगती है बिचारी।

काशीकर : और क्या ? बहुत फ़ील कर गई है। ऑफ्टर ऑल इट वाज़...।

सुखात्मे : जस्ट ए गेम। और क्या ? गेम बस।

पोंक्षे : अ शियर गेम।

कर्णिक : बेणारे बाई चलिए, उठिए। शो का समय हो गया। शो मस्ट गो ऑन।

काशीकर : (**बेणारे को झकझोरकर**) उठ री बेणारे। अरे कार्यक्रम समय पर होगा कि नहीं ? उठ जल्दी ! चल ! अरे वह तो सब झूठ था ! सच थोड़े ही था कुछ !

सामंत आकर दरवाज़े पर खड़ा है।

पोंक्षे : सामंत, चाय का अरेंजमेंट करो। बाई को चाय की ज़रूरत है।

सामंत : अच्छा।

काशीकर जज की कुर्सी से उठते हुए विग उतारते हैं। सहसा 'टिक ट्वेंटी' की शीशी पर नज़र पड़ती है। एकटक उसे देखते रहते हैं फिर फौरन उस पर से ध्यान हटाकर सबसे कहते हैं।

काशीकर : चलो, चलो। मुँह हाथ धोकर तैयार हो जाओ सब लोग। चलो बहुत हो गया खेल...नाऊ टु बिज़नेस...चलो...।

सब लोग बिना आहट किए हुए एक झुंड में भीतर के कमरे में एक-एक कर घुस जाते हैं। रंगमंच में निश्चल और बेजान-सी पड़ी हुई बेणारे। दरवाज़े पर यह देखता हुआ, खड़ा सामंत...। वह बहुत परेशान-सा एक मर्यादा में बँधा-बँधा दरवाज़े के एक तरफ़ से धीरे से अन्दर आता है। मंच पर रखे हुए सामान में से चुपचाप अपना हरा तोता उठाता है और दरवाज़े की दिशा में वापस जाने लगता है। पर उससे जाया नहीं जाता। वह चुपचाप पड़ी हुई बेणारे से कुछ दूर चलकर ठिठक जाता है। उसे देखकर व्याकुल होता है। क्या करे कुछ समझ नहीं पाता। धीरे से आवाज़ देता है।

सामंत : बाई !

कोई प्रत्युत्तर नहीं। वह और अधिक व्याकुल हो उठता है। दुविधा में उसे कुछ और नहीं सूझता। वह अपना हरे रंग का कपड़े का तोता

दूर ही खड़ा-खड़ा अदब और वात्सल्य से, हलके हाथ से उसके निकट रख देता है और दबे क़दम बाहर चला जाता है।

बेणारे में ज़रा-सी अशक्त हरकत होती है और वह फिर उसी तरह निश्चल हो जाती है। कपड़े का हरे रंग का तोता उसके पास पड़ा हुआ है। कहीं से उसी के स्वर में गीत के बोल सुनाई देते हैं...।

बुलबुल से सुगना कहे
    क्यों गीले तेरे नैन ?
कहाँ रहूँ ओ सुगना दादा
    कहाँ बिताऊँ रैन !
कहाँ गया मेरा रैन बसेरा
    चिव चिव चिव
    चिव चिव चिव रे
    चिव चिव चिव ! !
कागा भैया, कागा भैया
    मेरा बसेरा देखा भैया।
ना मैं मैया ना तू बहना
    बात बसेरे की ना कहना।
क्या जानूँ मैं तेरा बसेरा
    चिव चिव चिव
    चिव चिव चिव रे
    चिव चिव चिव ! !

परदा गिरता है।

• • •

आधे अधूरे

निर्देशक का वक्तव्य

ओम शिवपुरी

एक निर्देशक की दृष्टि से 'आधे अधूरे' मुझे समकालीन ज़िंदगी का पहला सार्थक हिन्दी-नाटक लगता है। यह मौजूदा जीवन की विडंबना के कुछेक सघन बिंदुओं को रेखांकित करता है। इसके पात्र, स्थितियाँ एवं मन:स्थितियाँ यथार्थपरक तथा विश्वसनीय हैं। इसकी गठन सुदृढ़ एवं रंगोपयुक्त है। पात्रों के प्रवेश और प्रस्थान रंग-प्रभावों की दृष्टि से भली-भाँति संयोजित हैं। पूरे नाटक की अवधारणा के पीछे सूक्ष्म रग-चेतना निहित है।

'आधे अधूरे' आज के जीवन के एक गहन अनुभव-खंड को मूर्त करता है। इसके लिए हिन्दी के जीवंत मुहावरे को पकड़ने की सार्थक, प्रभावशाली कोशिश की गयी है। पहले वाचन के समय ही मुझे इसकी भाषा में बड़ी कशिश लगी थी। कहना न होगा कि इस नाटक की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण विशेषता इसकी भाषा है। इसमें वह सामर्थ्य है जो समकालीन जीवन के तनाव को पकड़ सके। शब्दों का चयन, उनका क्रम, उनका संयोजन—सब-कुछ ऐसा है, जो बहुत संपूर्णता से अभिप्रेत को अभिव्यक्त करता है। लिखित शब्द की यही शक्ति और उच्चरित ध्वनि-समूह का यही बल है, जिसके कारण यह नाट्य-रचना बंद और खुले, दोनों प्रकार के मंचों पर अपना सम्मोहन बनाये रख सकी।

जहाँ तक अधिनिरूपण का सवाल है, 'आधे अधूरे' मेरे लिए कई दृष्टियों से अर्थवान है। यह आलेख एक स्तर पर स्त्री-पुरुष के बीच के लगाव और तनाव का दस्तावेज़ है। महेन्द्रनाथ सावित्री से बहुत प्रेम करता है। सावित्री भी उसे चाहती रही होगी, लेकिन ब्याह के बाद महेन्द्रनाथ को बहुत निकट से जानने पर उसे उससे वितृष्णा होने लगी, क्योंकि जीवन से सावित्री की अपेक्षाएँ बहुमुखी और अनन्त हैं। अब महेन्द्रनाथ की बेकारी की हालत में सावित्री बहुत कटु हो

गई है। एक ओर घर को चलाने का असह्य बोझ है, तो दूसरी ओर ज़िंदगी में कुछ भी हासिल न कर पाने की तीखी कचोट ! अपने बच्चों के बर्ताव से अत्यंत तिक्त हुई सावित्री बची-खुची ज़िंदगी को ही एक पूरे, संपूर्ण पुरुष के साथ बिताने की आकाँक्षा रखती है। पर यह आकाँक्षा पूरी नहीं हो पाती, क्योंकि संपूर्णता की तलाश ही शायद वाजिब नहीं।

सावित्री की कमाई पर पलता हुआ बेकार महेन्द्रनाथ दयनीय है। कभी जिस घर का वह गृहस्वामी था, आज उसी घर में उसकी हालत एक नौकर के समान है। अब वह केवल 'एक ठप्पा, एक रबर का टुकड़ा' है। वह सावित्री के पुरुष-मित्रों को जानता है और जब-तब उनका ज़िक्र करके अपने दिल की भड़ास निकालता रहता है। अपने कुचले आत्म-सम्मान को बचाने की ख़ातिर वह अकसर 'शुक्र-शनीचर' घर छोड़कर चला जाता है, लेकिन कुछ घंटों बाद वापिस लौट आता है—थका-हारा, पराजित...क्योंकि यही उसकी नियति है।

एक दूसरे स्तर पर यह नाट्य-कृति पारिवारिक विघटन की गाथा है। इस अभिशप्त कुटुम्ब का हर-एक सदस्य एक-दूसरे से कटा हुआ है। घर की त्रास-दायक 'हवा' से वे अपने और एक-दूसरे के लिए ज़हरीले हो रहे हैं। 'बड़ी लड़की' मनोज रूपी हमदर्द द्वार को पाते ही बाहर निकल भागी है। 'लड़का' पत्रिकाओं से अभिनेत्रियों की रगीन तसवीरें काटता हुआ उस मौक़े के इंतज़ार में है, जब वह भी यहाँ से निकल सकेगा। अपने पिता के लिए उसके मन में करुणा है, माँ के लिए आक्रोश। वह बड़ी बहन के प्रेम में विश्वास नहीं करता; उसे घर से निकलने का एक ज़रिया मानता है।

'छोटी लड़की' माता, पिता, बहन, भाई—किसी के प्रति लगाव महसूस नहीं करती। अपनी छोटी-छोटी आवश्यकताओं की अपूर्ति से बेहद कड़वी होकर वह कैंची की तरह ज़ुबान चलाती है और यौन-सम्बन्धो में वह दिलचस्पी लेने लगती है, जो उसकी आयु से कहीं आगे है। उसकी बदमिजाज़ी दिन-पर-दिन बढ़ती जाती है, क्योंकि पिता की बेकारी, माँ के पुरुष-मित्रों और बड़ी बहन के घर से भाग जाने के कारण उसे बाहरी लोगों की कुत्सित बातें सुननी पड़ती हैं।

दफ़्तर और घर में दिन भर खटती सावित्री सिर्फ़ बिन्नी से ही थोड़ी-सी सहानुभूति पाती है, हालाँकि बिन्नी भी उससे इसी सवाल की तलबगार है कि इस घर में ऐसा क्या है, जो यहाँ से निकल जाने के बाद भी उसके और मनोज के बीच काली छाया के समान आ जाता है।

अशोक सावित्री के प्रभावशाली व्यक्तियों से संबंध बनाने का विरोधी है, क्योंकि ऐसे लोगों के घर में आने पर वह अपनी निगाह में 'जितना छोटा है, उससे कहीं और छोटा हो जाता' है। कुल मिलाकर ये पारिवारिक अंतर्संबंध दिलचस्प ढंग से बहुस्तरीय हैं।

एक अन्य स्तर पर यह नाट्य-रचना मानवीय संतोष के अधूरेपन का रेखांकन है। जो ज़िंदगी से बहुत-कुछ चाहते हैं, उनकी तृप्ति अधूरी ही रहती है। महेन्द्रनाथ, सिंघानिया, जगमोहन और जुनेजा—ये अलग-अलग गुणों के चार पुरुष हैं। चुनाव के एक क्षण में सावित्री ने महेन्द्रनाथ के साथ गाँठ बाँध ली और आगे चलकर अपने को भरा-पूरा महसूस नहीं किया। लेकिन अगर वह महेन्द्रनाथ की बजाय जगमोहन से रिश्ता जोड़ती, तब भी अनुभूति वही रहती, क्योंकि तब जगमोहन में जुनेजा के गुण नहीं मिलते...और इस तरह यह दुष्चक्र चलता ही रहता।

एक दूसरे स्तर पर यह नाटक मेरे लिए व्यक्तियों की विभिन्नता के बावजूद मानवीय अनुभव की समानता का दिग्दर्शन है। इसके लिए नाटककार ने एक ही अभिनेता द्वारा पाँच पृथक् भूमिकाएँ निभाये जाने की दिलचस्प रंगयुक्ति का सहारा लिया है। महेन्द्रनाथ की जगह पर जगमोहन को रख देने से या जगमोहन के स्थान पर जुनेजा को रख देने से स्थिति में कोई बुनियादी अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि परिस्थितियों के एक ढाँचे में व्यक्ति लगभग समान ढंग से बरताव करता है। इसी अनुभव पर बल देने के लिए कुछेक प्रदर्शनों में नाटक की शुरूआत के साथ एक स्पॉट कमरे में लगे मुखौटे को अलोकित करता था।

'आधे अधूरे' का कार्य-स्थल मकान का बैठने का कमरा है, जिसमें सोफ़े, कुर्सियाँ, मेज़ें, आलमारी, किताबें, फ़ाइलें आदि हैं। यह कमरा एक समय साफ़-सुथरा रहा होगा, पर सालों की आर्थिक कठिनाइयों के कारण अब सब पर धूल की तह जम गयी है। क्रॉकरी पर चटखन है। दीवारें मटमैली हो गई हैं। परिवार का हर सदस्य एक-दूसरे से कटा हुआ है। घर की हवा तक में उस स्थायी तलख़ी की गंध है, जो पाँचों व्यक्तियों के मन में भरी हुई है—ऊब, घुटन, आक्रोश, विद्रूप...दम घोंटने वाली मनहूसियत, जो मरघट में होती है।

इस तनाव-भरे वातावरण के संप्रेषण के लिए मुझे पहले बॉक्स-सेट ही उपयुक्त लगा और कई प्रारंभिक प्रदर्शनों में उसे ही अपनाया गया। साथ ही कुछेक प्रदर्शनों में नाटक के शुरू और अंत में ऐसे पार्श्व-संगीत का व्यवहार किया गया, जिसकी ध्वनि-तरंगें श्मशान-भूमि की संत्रस्त वीरानगी को संप्रेषित करती थीं।

नाटक के शुरू के कुछ प्रदर्शन बंद प्रेक्षागृहों में हुए। जब मुक्ताकाशी 'त्रिवेणी' में प्रदर्शन की बात आयी, तो कुछ मित्रों ने शंका प्रकट की कि नाटक संभवत: खुले मंच के लिए उपयुक्त नहीं है; उसमें नाटक के तनाव और सघनता के बिखर जाने का ख़तरा है। लेकिन मेरी यह मान्यता है कि गंभीर नाट्य-दल को दर्शक पाने के लिये नये रास्ते ढूँढ़ने होंगे। अगर नाटक गहन, कलात्मक नाट्यानुभूति देने में समर्थ है, अगर वह ज़िंदगी की महत्त्वपूर्ण उथल-पुथल पर

उँगली रखता है, तो हो सकता है कि बाहर सड़क पर कुछ आहट या किसी कार के हॉर्न की आवाज़ मंच पर की कलात्मक मात्रा में कोई रुकावट न डाल सके।

मुझे संतोष है कि मेरा विश्वास सही साबित हुआ। बंद और खुले प्रेक्षागृह के अंतर से नाटक की प्रभावान्विति पर कोई असर नहीं पड़ा। दर्शक के साथ तादात्म्य उतना ही तीव्र और गहन रहा। इन्हीं दिनों यह अनुभव भी हुआ कि बॉक्स-सेट कई व्यावहारिक मुश्किलें पैदा करता है। वह एक ओर जहाँ समय और व्ययसाध्य है, वहीं दूसरी ओर रंगोपकरणों के अधिक आश्रय का भी द्योतक है। और यह बात किसी हद तक मेरी धारणाओं के साथ नहीं जाती। इसलिए हिम्मत करके मैंने बॉक्स-सेट का व्यवहार भी छोड़ दिया और इससे भी प्रस्तुति के प्रभाव में कोई अंतर नहीं महसूस किया गया।

मैं प्रदर्शन में सादगी का कायल हूँ। इसलिए प्रकाश-व्यवस्था में भी किसी तरह के लटके नहीं थे। नाटक के लिए उपयुक्त सादी आलोक-पद्धति थी। प्रारंभ में कुछेक स्पॉट घर की विभिन्न चीज़ों को आलोकित करते थे, फिर हाउस-लाइट में घुल-मिल जाते थे। इसी प्रकार दूसरे अंक के शुरू में दो स्पॉट 'लड़के' और 'बड़ी लड़की' को आलोकित करते थे, फिर एक प्रकाश-व्यवस्था में सम्मिश्रित हो जाते थे।

वेशभूषा के पीछे भी यही दृष्टि थी। प्रमुख पुरुष-अभिनेता को पाँच भूमिकाएँ करनी थीं। इसके लिए वह केवल एक ऊपरी वस्त्र बदलता था—सबसे पहले काला सूट (काले सूट वाला आदमी), फिर कोट उतारकर केवल कमीज (महेन्द्रनाथ), फिर बंद गले का कोट व टोपी (सिंघानिया), आगे हाइनेक की कमीज़ (जगमोहन) और फिर लम्बा कोट (जुनेजा)। बिन्नी, किन्नी और अशोक की पोशाकों में कोई परिवर्तन नहीं था। केवल सावित्री दूसरे अंक के लिए साड़ी बदलती थी, क्योंकि वह स्थिति की माँग थी।

प्रस्तुति की एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता थी मेक-अप का न होना। नायिका केवल वही मेक-अप किए हुए थी, जो उस जैसी स्त्री वास्तविक जीवन में करती है। इसके अलावा किसी कलाकार ने पाउडर इत्यादि छुआ भी नहीं था।

इस प्रदर्शन की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी नाटककार और निर्देशक का पारस्परिक सहयोग। पहले पूर्वाभ्यास से ही राकेश जी साथ थे और पहले प्रदर्शन तक वे बराबर इस कलात्मक यात्रा के सहयात्री रहे। फ़र्नीचर में तिपाई के चुनाव से लेकर नाटक के अधिनिरूपण तक हमने साथ-साथ काम किया। अनेक बार मतभेद भी हुए, लम्बे वाद-विवाद भी। लेकिन अंतिम रूप में जो नाट्य-परिणाम सामने आया, उसे लेकर हम दोनों ही सहमत थे, अर्थात प्रस्तुति में ऐसा एक भी तत्व नहीं था, जिससे या तो मैं असहमत होता या राकेश जी!

मोहन राकेश

आधे अधूरे

पात्र

काले सूटवाला आदमी
स्त्री
पुरुष १
बड़ी लड़की
छोटी लड़की
लड़का
पुरुष २
पुरुष ३
पुरुष ४

काले सूटवाला आदमी : जो कि पुरुष १, पुरुष २, पुरुष ३, तथा पुरुष ४ की भूमिकाओं में भी है। उम्र लगभग उनचास-पचास। चेहरे की शिष्टता में एक व्यंग्य। पुरुष १ के रूप में वेशान्तर : पतलून-कमीज़। ज़िंदगी से अपनी लड़ाई हार चुकने की छटपटाहट लिये। पुरुष २ के रूप में : पतलून और बंद गले का कोट। अपने-आप से सन्तुष्ट, फिर भी आशंकित। पुरुष ३ के रूप में : पतलून-टीशर्ट। हाथ में सिगरेट का डब्बा। लगातार सिगरेट पीता। अपनी सुविधा के लिए जीने का दर्शन पूरे हाव-भाव में। पुरुष ४ के रूप में : पतलून के साथ पुरानी काट का लंबा कोट। चेहरे पर बुज़ुर्ग होने का ख़ासा एहसास। साथ काइयाँपन।

स्त्री : उम्र चालीस को छूती। चेहरे पर यौवन की चमक और चाह फिर भी शेष। ब्लाउज़ और साड़ी साधारण होते हुए भी सुरुचिपूर्ण। दूसरी साड़ी विशेष अवसर की।

बड़ी लड़की : उम्र बीस से ऊपर नहीं। भाव में परिस्थितियों से संघर्ष का अवसाद और उतावलापन। कभी-कभी उम्र से बढ़कर बड़प्पन। साड़ी—माँ से साधारण। पूरे व्यक्तित्व में एक बिखराव।

छोटी लड़की : उम्र बारह और तेरह के बीच। भाव, स्वर, चाल—हर चीज़ में विद्रोह। फ्रॉक चुस्त, पर एक मोज़े में सूराख़।

लड़का : उम्र इक्कीस के आसपास। पतलून के अन्दर दबी भड़कीली बुशशर्ट धुल-धुलकर घिसी हुई। चेहरे से, यहाँ तक कि हँसी से भी, झलकती ख़ास तरह की कड़ुवाहट।

मध्य-वित्तीय स्तर से ढहकर निम्न-मध्य-वित्तीय स्तर पर आया एक घर।

सब रूपों में इस्तेमाल होने वाला वह कमरा जिसमें उस घर के व्यतीत स्तर के कई-एक टूटते अवशेष—सोफ़ा सेट, डाइनिंग टेबल, कबर्ड और ड्रेसिंग टेबल आदि—किसी-न-किसी तरह अपने लिए जगह बनाये हैं। जो कुछ भी है, वह अपनी अपेक्षाओं के अनुसार न होकर कमरे की सीमाओं के अनुसार एक और ही अनुपात से है। एक चीज़

का दूसरी चीज़ से रिश्ता तात्कालिक सुविधा की माँग के कारण लगभग टूट चुका है। फिर भी लगता है कि वह सुविधा कई तरह की असुविधाओं से समझौता करके की गयी है---बल्कि कुछ असुविधाओं में ही सुविधा खोजने की कोशिश की गयी है। सामान में कहीं एक तिपाई, कहीं दो-एक मोढ़े, कहीं फटी-पुरानी किताबों का एक शेल्फ़ और कहीं पढ़ने की एक मेज़-कुरसी भी है। गद्दे, परदे, मेज़पोश और पलंगपोश अगर हैं, तो इस तरह घिसे, फटे या सिले हुए कि समझ में नहीं आता कि उनका न होना क्या होने से बेहतर नहीं था ?

तीन दरवाज़े तीन तरफ़ से कमरे में झाँकते हैं। एक दरवाज़ा कमरे को पिछले अहाते से जोड़ता है, एक अन्दर के कमरे से और एक बाहर की दुनिया से। बाहर का एक रास्ता अहाते से होकर भी है। रसोईघर में भी अहाते से होकर जाना होता है।

परदा उठने पर सबसे पहले चाय पीने के बाद डाइनिंग टेबल पर छोड़ा गया अधटूटा टी-सेट आलोकित होता है। फिर फटी किताबों और टूटी कुरसियों आदि में से एक-एक। कुछ सेकंड बाद प्रकाश सोफ़े के उस भाग पर केन्द्रित हो जाता है जहाँ बैठा काले सूट वाला आदमी सिगार के कश खींच रहा है। उसके सामने रहते प्रकाश उसी तक सीमित रहता है, पर बीच-बीच में कभी यह कोना कभी वह कोना साथ आलोकित हो उठता है।

का. सू. वा. : (कुछ अन्तर्मुख भाव से सिगार की राख झाड़ता) फिर एक बार, फिर से वही शुरुआत...।

जैसे कोशिश से अपने को एक दायित्व के लिए तैयार करके सोफ़े से उठ पड़ता है।

: मैं नहीं जानता आप क्या समझ रहे हैं मैं कौन हूँ, और क्या आशा कर रहे हैं मैं क्या कहने जा रहा हूँ। आप शायद सोचते हों कि मैं इस नाटक में कोई एक निश्चित इकाई हूँ...अभिनेता, प्रस्तुतकर्ता, व्यवस्थापक या कुछ और। परन्तु मैं अपने सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकता...उसी तरह जैसे इस नाटक के सम्बन्ध में नहीं कह सकता। क्योंकि यह नाटक भी अपने में मेरी ही तरह अनिश्चित है। अनिश्चित होने का कारण यह है कि...परन्तु कारण की बात करना बेकार है। कारण हर चीज़ का कुछ-न-कुछ होता है, हालाँकि यह आवश्यक नहीं कि जो कारण दिया जाय, वास्तविक कारण वही हो। और जब मैं अपने ही सम्बन्ध में निश्चित नहीं हूँ, तो और किसी चीज़ के कारण-अकारण के सम्बन्ध में निश्चित कैसे हो सकता हूँ?

सिगार के कश खींचता पल-भर सोचता-सा खड़ा रहता है।

: मैं वास्तव में कौन हूँ?...यह एक ऐसा सवाल है जिसका सामना करना इधर आकर मैंने छोड़ दिया है। जो मैं इस मंच पर हूँ, वह यहाँ से बाहर नहीं हूँ और जो बाहर हूँ...

ख़ैर, इसमें आपकी क्या दिलचस्पी हो सकती है कि मैं यहाँ से बाहर क्या हूँ ? शायद अपने बारे में इतना कह देना ही काफ़ी है कि सड़क के फ़ुटपाथ पर चलते आप अचानक जिस आदमी से टकरा जाते हैं, वह आदमी मैं हूँ। आप सिर्फ़ घूरकर मुझे देख लेते हैं...इसके अलावा मुझसे कोई मतलब नहीं रखते कि मैं कहाँ रहता हूँ, क्या काम करता हूँ, किस-किससे मिलता हूँ और किन-किन परिस्थितियों में जीता हूँ। आप मतलब नहीं रखते क्योंकि मैं भी आपसे मतलब नहीं रखता, और टकराने के क्षण में आप मेरे लिए वही होते हैं जो मैं आपके लिए होता हूँ। इसलिए जहाँ इस समय मैं खड़ा हूँ, वहाँ मेरी जगह आप भी हो सकते थे...दो टकराने वाले व्यक्ति होने के नाते आपमें और मुझमें बहुत बड़ी समानता है। यही समानता आपमें और उसमें, उसमें और उस दूसरे में, उस दूसरे में और मुझमें...बहरहाल, इस गणित की पहेली में कुछ नहीं रखा है। बात इतनी ही है कि विभाजित होकर मैं किसी-न-किसी अंश में आपमें से हर-एक व्यक्ति हूँ और यही कारण है कि नाटक के बाहर हो या अंदर, मेरी कोई भी एक निश्चित भूमिका नहीं है।

कमरे के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में टहलने लगता है।

: मैंने कहा था यह नाटक भी मेरी ही तरह अनिश्चित है। उसका कारण भी यही है कि मैं इसमें हूँ और मेरे होने से ही सब-कुछ इसमें निर्धारित या अनिर्धारित है। एक विशेष परिवार, उसकी विशेष परिस्थितियाँ! परिवार दूसरा होने से परिस्थितियाँ बदल जातीं, मैं वही रहता। इसी तरह सब-कुछ निर्धारित करता। इस परिवार की स्त्री के स्थान पर कोई दूसरी स्त्री किसी दूसरी तरह से मुझे झेलती—या वह स्त्री मेरी भूमिका ले लेती और मैं उसकी भूमिका लेकर उसे झेलता। नाटक अन्त तक फिर भी इतना ही अनिश्चित बना रहता और यह निर्णय करना इतना ही कठिन होता कि इसमें मुख्य भूमिका किसकी थी...मेरी, उस स्त्री की, परिस्थितियों की, या तीनों के बीच से उठते कुछ सवालों की।

फिर दर्शकों के सामने आकर खड़ा हो जाता है। सिगार मुँह में लिए पल-भर ऊपर की तरफ़ देखता रहता है। फिर 'हुँ-ह' के स्वर के साथ सिगार मुँह से निकालकर उसकी राख झाड़ता है।

: पर हो सकता है मैं एक अनिश्चित नाटक में एक अनिश्चित पात्र होने की सफ़ाई-भर पेश कर रहा हूँ। हो सकता है यह नाटक एक निश्चित रूप ले सकता हो... किन्हीं पात्रों को निकाल देने से, दो-एक पात्र और जोड़ देने से, कुछ भूमिकाएँ बदल देने से, कुछ पंक्तियाँ हटा देने से, कुछ पंक्तियाँ बढ़ा देने से, या परिस्थितियों में थोड़ा हेर-फेर कर देने से। हो सकता है आप पूरा देखने के बाद, या उससे पहले ही, कुछ सुझाव दे सकें इस सम्बन्ध में। इस अनिश्चित पात्र से आपकी भेंट इस बीच कई बार होगी...।

हलके अभिवादन के रूप में सिर हिलाता है जिसके साथ ही उसकी आकृति धीरे-धीरे धुँधलाकर अँधेरे में गुम हो जाती है। उसके बाद कमरे के अलग-अलग कोने एक-एक करके आलोकित होते हैं और एक आलोक-व्यवस्था में मिल जाते हैं। कमरा खाली है। तिपाई पर खुला हुआ हाई स्कूल का बैग पड़ा है जिसमें से आधी कापियाँ और किताबें बाहर बिखरी हैं। सोफ़े पर दो-एक पुराने मैगज़ीन, एक कैंची और कुछ कटी-अधकटी तसवीरें रखी हैं। एक कुरसी की पीठ पर उतरा हुआ पाजामा झूल रहा है।

स्त्री कई-कुछ सँभाले बाहर से आती है। कई-कुछ में कुछ घर का है, कुछ दफ्तर का, कुछ अपना। चेहरे पर दिन-भर के काम की थकान है और इतनी चीज़ों के साथ चलकर आने की उलझन। आकर सामान कुरसी पर रखती हुई वह पूरे कमरे पर एक नज़र डाल लेती है।

स्त्री : **(थकान निकालने के स्वर में)** ओहहोहहोहहोहहोह! (कुछ

हताश भाव से) फिर घर में कोई नहीं। **(अंदर के दरवाज़े की तरफ़ देखकर)** किन्नी ! ...होगी ही नहीं, जवाब कहाँ से दे ? **(तिपाई पर पड़े बैग को देखकर)** यह हाल है इसका ! **(बैग की एक किताब उठाकर)** फिर फाड़ लायी एक और किताब ! ज़रा शरम नहीं कि रोज़-रोज कहाँ से पैसे आ सकते है नयी किताबों के लिए ! **(सोफ़े के पास आकर)** और अशोक बाबू यह कमाई करते रहते रहे हैं दिन-भर ! **(तसवीरें उठाकर देखती)** एलिज़ाबेथ टेलर...ऑड्रे हेब्बर्न...शर्ले मैक्लेन ! ज़िंदगी काट रहे हैं इन तसवीरों के साथ !

तसवीरें वापस रखकर बैठने ही लगती है कि नज़र झूलते पाजामे पर जा पड़ती है।

: **(उस तरफ़ जाती)** बड़े साहब वहाँ अपनी कारगुज़ारी कर गये हैं।

पाजामे को मरे जानवर की तरह उठाकर देखती है और कोने में फेंकने को होकर फिर एक झटके के साथ उसे तहाने लगती है।

: दिन-भर घर पर रहकर आदमी और कुछ नही, तो अपने कपड़े तो ठिकाने से रख ही सकता है।

पाजामा कबर्ड में रखने से पहले डाइनिंग टेबल पर पड़े चाय के सामान को देखकर और खीझ जाती है, पाजामे को कुरसी पर पटक देती है और प्यालियाँ वग़ैरह ट्रे में रखने लगती है।

: इतना तक नहीं कि चाय पी है, तो बरतन रसोईघर में छोड़ आयें। मैं ही आकर उठाऊँ, तो उठाऊँ...।

ट्रे उठाकर अहाते के दरवाज़े की तरफ़ बढ़ती ही है कि पुरुष १ उधर से आ जाता है। स्त्री ठिठककर सीधे उसकी आँखों में देखती है, पर वह उससे आँखें बचाता पास से निकलकर थोड़ा आगे आ जाता है।

पुरुष १ : आ गयीं दफ़्तर से ? लगता है आज बस जल्दी मिल गयी।

स्त्री : **(ट्रे वापस मेज़ पर रखती)** यह अच्छा है कि दफ़्तर से आओ, तो कोई घर पर दिखे ही नहीं। कहाँ चले गये थे तुम ?

पुरुष १ : कहीं नहीं। यहीं बाहर था। मार्केट में।

स्त्री : **(उसका पाजामा हाथ में लेकर)** पता नहीं यह क्या तरीक़ा

है इस घर का ? रोज़ आने पर पचास चीज़ें यहाँ-वहाँ बिखरी मिलती हैं।

पुरुष १ : **(हाथ बढ़ाकर)** लाओ, मुझे दे दो।

स्त्री : **(पाजामे को झाड़कर फिर से तहाती हुई)** अब क्या दे दूँ ? पहले खुद भी तो देख सकते थे।

गुस्से से कबर्ड खोलकर पाजामे को जैसे उसमें क़ैद कर देती है। पुरुष १ फ़ालतू-सा इधर-उधर देखता है, फिर कुरसी की पीठ पर हाथ रख लेता है।

: **(कबर्ड के पास से आकर ट्रे उठाती)** चाय किस-किसने पी थी ?

पुरुष १ : **(अपराधी स्वर में)** अकेले मैंने।

स्त्री : तो अकेले के लिए क्या ज़रूरी था कि पूरी ट्रे की ट्रे...। किन्नी को दूध दे दिया था ?

पुरुष १ : वह मुझे दिखी ही नहीं अब तक।

स्त्री : **(ट्रे लेकर चलती)** दिखे तब न जो घर रहे कोई।

अहाते के दरवाज़े से होकर पीछे रसोईघर में चली जाती है। पुरुष १ एक लंबी 'हूँ' के साथ कुरसी को झुलाने लगता है। स्त्री पल्ले से हाथ पोंछती रसोईघर से वापस आती है।

पुरुष १ : मैं बस थोड़ी देर के लिए ही निकला था बाहर।

स्त्री : **(और चीज़ों को समेटने में व्यस्त)** मुझे क्या पता कितनी देर के लिए निकले थे...! वह आज फिर आयेगा, अभी थोड़ी देर में। तब तो घर पर रहोगे तुम ?

पुरुष १ : **(हाथ रोककर)** कौन आयेगा ? सिंघानिया ?

स्त्री : उसे किसी के यहाँ खाना खाने आना है इधर। पाँच मिनट के लिए यहाँ भी आयेगा।

पुरुष १ फिर उसी तरह 'हूँ' के साथ कुरसी को झुलाने लगता है।

: मुझे यह आदत अच्छी नहीं लगती तुम्हारी। कितनी बार कह चुकी हूँ।

पुरुष १ कुरसी से हाथ उठा लेता है।

पुरुष १ : तुम्हीं ने कहा होगा उससे आने के लिए।

स्त्री : कहना फर्ज़ नहीं बनता मेरा ? आखिर मेरा बॉस है।

पुरुष १ : बॉस का मतलब यह थोड़े ही है न कि...?

स्त्री : तुम ज़्यादा जानते हो? काम तो मैं ही करती हूँ उसके मातहत।

पुरुष १ फिर कुरसी को झुलाने को होकर एकाएक हाथ हटा लेता है।

पुरुष १ : किस वक़्त आयेगा?

स्त्री : पता नहीं। जब भी गुज़रेगा इधर से।

पुरुष १ : **(छिले हुए स्वर में)** यह अच्छा है...।

स्त्री : लोगों को तो ईर्ष्या है मुझसे, कि दो बार मेरे यहाँ आ चुका है। आज तीसरी बार आयेगा।

कैंची, मैगज़ीन और तसवीरें समेटकर पढ़ने की मेज़ की दराज़ में रख देती है। किताबें बैग में बंद करके उसे एक तरफ़ सीधा खड़ा कर देती है।

पुरुष १ : तो लोगों को भी पता है वह आता है यहाँ?

स्त्री : **(एक तीखी नज़र उस पर डालकर)** क्यों, बुरी बात है?

पुरुष १ : मैंने कहा है बुरी बात है? मैं तो बल्कि कहता हूँ अच्छी बात है।

स्त्री : तुम जो कहते हो, उसका सब मतलब समझ में आता है मेरी।

पुरुष १ : तो अच्छा यही है कि मैं कुछ न कहकर चुप रहा करूँ। अगर चुप रहता हूँ, तो...।

स्त्री : तुम चुप रहते हो! और न कोई!

अपनी चीज़ें कुरसी से उठाकर उन्हें यथास्थान रखने लगती है।

पुरुष १ : पहले जब-जब आया है वह, मैंने कुछ कहा है तुमसे?

स्त्री : अपनी शरम के मारे! कि दोनों बार तुम घर पर नहीं रहे।

पुरुष १ : उसमें क्या है? आदमी को काम नहीं हो सकता बाहर?

स्त्री : **(व्यस्त)** वह तो आज भी हो जायेगा तुम्हें।

पुरुष १ : **(ओछा पड़कर)** जाना तो है आज भी मुझे...पर तुम ज़रूरी समझो मेरा यहाँ रहना, तो...।

स्त्री : मेरे लिए रुकने की ज़रूरत नहीं। **(यह देखती कि कमरे में और कुछ तो करने को शेष नहीं)** तुम्हें और प्याली चाहिए चाय की? मैं बना रही हूँ अपने लिए।

पुरुष १ : बना रही हो, तो बना लेना एक मेरे लिए भी।

स्त्री अहाते के दरवाज़े की तरफ़ जाने लगती है।

: सुनो।

स्त्री रुककर उसकी तरफ़ देखती है।

: उसका क्या हुआ...वह जो हड़ताल होने वाली थी तुम्हारे दफ़्तर में।

स्त्री : जब होगी, पता चल ही जायेगा तुम्हें।

पुरुष १ : पर होगी भी ?

स्त्री : तुम उसी के इंतज़ार में हो क्या ?

चली जाती है। पुरुष १ सिर हिलाकर इधर-उधर देखता है कि अब वह अपने को कैसे व्यस्त रख सकता है। फिर जैसा याद हो आने से शाम का अख़बार जेब से निकालकर खोल लेता है। हर सुर्ख़ी पढ़ने से साथ उसके चेहरे का भाव और तरह का हो जाता है—उत्साहपूर्ण, व्यंग्यपूर्ण, तनाव-भरा या पस्त। साथ मुँह से 'बहुत अच्छे !', 'मार दिया !', 'लो !' और 'अब ?' जैसे शब्द निकल पड़ते हैं। स्त्री रसोई-घर से लौटकर आती है।

पुरुष १ : **(अख़बार हटाकर स्त्री को देखता)** हड़तालें तो आजकल सभी जगह हो रही हैं। इसमें देखो...।

स्त्री : **(उस ओर से विरक्त)** तुम्हें सचमुच कहीं जाना है क्या ? कहाँ जाने की बात कर रहे थे तुम ?

पुरुष १ : सोच रहा था जुनेजा के यहाँ हो आता।

स्त्री : ओऽऽ ! जुनेजा के यहाँ ! ...हो आओ।

पुरुष १ : फ़िलहाल उसे देने के लिए पैसा नहीं है, तो कम-से-कम मुँह तो उसे दिखाते रहना चाहिए।

स्त्री : हाँऽऽ, दिखा आओ मुँह जाकर।

पुरुष १ : वह छः महीने बाहर रह कर आया है। हो सकता है कोई नया कारबार चलाने की सोच रहा हो जिसमें मेरे लिए...।

स्त्री : तुम्हारे लिए तो पता नहीं क्या-क्या करेगा वह ज़िन्दगी में ! पहले ही कुछ कम नहीं किया है।

झाड़न लेकर कुरसियों वग़ैरह को झाड़ना शुरू कर देती है।

: इतनी गर्द भरी रहती है हर वक़्त इस घर में ! पता नहीं कहाँ से चली आती है !

पुरुष १ : तुम नाहक कोसती रहती हो उस आदमी को। उसने तो अपनी तरफ़ से हमेशा मेरी मदद ही की है।

स्त्री : न करता मदद, तो उतना नुक़सान तो न होता जितना उसके मदद करने से हुआ है।

पुरुष १ : (**कुढ़कर सोफ़े पर बैठता**) तो नही जाता मैं ! अपने अकेले के लिए जाना है मुझे ! अब तक तक़दीर ने साथ नही दिया, तो इसका यह मतलब तो नहीं कि...।

स्त्री : यहाँ से उठ जाओ। मुझे झाड़ लेने दो ज़रा।

पुरुष १ उठकर फिर से बैठने की प्रतीक्षा में खड़ा रहता है।

: उस कुरसी पर चले जाओ, वह साफ़ हो गयी है।

पुरुष १ गाली देती नज़र से उसे देखकर उस कुरसी पर जा बैठता है।

: (**बड़बड़ाती**) पहली बार प्रेस में जो हुआ सो हुआ। दूसरी बार फिर क्या हो गया ? वही पैसा जुनेजा ने लगाया, वही तुमने लगाया। एक ही फ़ैक्टरी लगी, एक ही जगह जमा-ख़र्च हुआ। फिर भी तक़दीर ने उसका साथ दे दिया, तुम्हारा नहीं दिया।

पुरुष १ : (**गुस्से से उठता**) तुम तो ऐसे बात करती हो जैसे...।

स्त्री : खड़े क्यों हो गये ?

पुरुष १ : क्यों, मैं खड़ा नहीं हो सकता ?

स्त्री : (**हलका वक़्फा लेकर तिरस्कारपूर्ण स्वर में**) हो तो सकते हो, पर घर के अन्दर ही।

पुरुष १ : (**किसी तरह ग़ुस्सा निगलता**) मेरी जगह तुम हिस्सेदार होतीं न फ़ैक्टरी की, तो तुम्हें पता चल जाता कि...।

स्त्री : पता तो मुझे अब भी चल रहा है। नहीं चल रहा ?

पुरुष १ : (**बड़बड़ाता**) उन दिनों पैसा लिया कितना था फ़ैक्टरी से ! जो कुछ लगाया था, वह सारा तो शुरू में ही निकाल-निकाल कर खा लिया और...।

स्त्री : किसने खा लिया ? मैंने ?

पुरुष १ : नहीं, मैंने ! पता है कितना ख़र्च था उन दिनों इस घर का ? चार सौ रुपये महीने का मकान था। टैक्सियों में आना-जाना

होता था। क़िस्तों पर फ्रिज ख़रीदा गया था। लड़के-लड़की की कान्वेंट की फ़ीसें जाती थीं...।

स्त्री : शराब आती थी। दावतें उड़ती थीं। उन सब पर पैसा तो ख़र्च होता ही था।

पुरुष १ : तुम लड़ना चाहती हो ?

स्त्री : तुम लड़ भी सकते हो इस वक़्त। ताकि उसी बहाने चले जाओ घर से।...वह आदमी आयेगा, तो जाने क्या सोचेगा कि क्यों हर बार इसके आदमी को कोई-न-कोई काम हो जाता है बाहर। शायद समझे कि मैं ही जान-बूझकर भेज देती हूँ।

पुरुष १ : वह मुझसे तय करके तो आता नहीं कि मैं उसके लिए मौजूद रहा करूँ घर पर।

स्त्री : कह दूँगी, आगे से तय करके आया करे तुमसे। तुम इतने बिज़ी आदमी जो हो! पता नहीं कब किस बोर्ड की मीटिंग में जाना पड़ जाय!

पुरुष १ : **(कुछ धीमा पड़कर, पराजित भाव से)** तुम तो बस...आमादा ही रहती हो हर वक़्त।

स्त्री : अब जुनेजा आ गया है न लौटकर, तो रहा करना फिर तीन-तीन दिन घर से ग़ायब।

पुरुष १ : **(पूरी शक्ति समेटकर सामना करता)** तुम फिर से वही बात उठाना चाहती हो? अगर रहा भी हूँ कभी मैं तीन दिन घर से बाहर, तो आख़िर किस वजह से ?

स्त्री : वजह का पता तुम्हें होगा या तुम्हारे लड़के को। वह भी तीन-तीन दिन दिखाई नहीं देता घर पर।

पुरुष १ : तुम मेरा मुक़ाबला उससे करती हो ?

स्त्री : नहीं, उसका मुक़ाबला तुमसे करती हूँ। जिस तरह तुमने ख़्वार की है अपनी ज़िन्दगी, उसी तरह वह भी...।

पुरुष १ : और लड़की तुम्हारी ? उसने अपनी ज़िन्दगी ख़्वार करने की सीख किससे ली है ? **(अपने जाने भारी पड़ता)** मैंने तो कभी किसी के साथ घर से भागने की बात नहीं सोची थी।

स्त्री : **(एकटक उसकी आँखों में देखती)** तुम कहना क्या चाहते हो ?

पुरुष १ : कहना क्या है...जाकर चाय बना लो, पानी हो गया होगा।

सोफ़े पर बैठकर फिर अख़बार खोल लेता है, पर ध्यान पढ़ने में लगा नहीं पाता।

स्त्री : मुझे भी पता है पानी हो गया होगा। मैं जब भी किसी को

बुलाती हूँ यहाँ, मुझे पता होता है तुम यही सब बातें करोगे।

पुरुष १ : **(जैसे अख़बार से कुछ पढ़ता हुआ)** हूँ-हूँ-हूँ-हूँ-हूँ !

स्त्री : वैसे हज़ार बार कहोगे कि लड़के की नौकरी के लिए किसी से बात क्यों नहीं करतीं। और जब मैं मौक़ा निकालती हूँ उसके लिए, तो...।

पुरुष १ : हाँऽऽ, सिंघानिया तो लगवा ही देगा ज़रूर। इसीलिए बेचारा आता है यहाँ चलकर।

स्त्री : शुक्र नहीं मानते कि इतना बड़ा आदमी, सिर्फ़ एक बार कहने भर से...।

पुरुष १ : मैं नहीं शुक्र मनाता ? जब-जब किसी नये आदमी का आना-जाना शुरू होता है यहाँ, मैं हमेशा शुक्र मनाता हूँ। पहले जगमोहन आया करता था। फिर मनोज आने लगा था...।

स्त्री : **(स्थिर दृष्टि से उसे देखती)** और क्या-क्या बात रह गयी है कहने को बाकी ? वह भी कह डालो जल्दी से।

पुरुष १ : क्यों...जगमोहन का नाम मेरी ज़बान पर आया नहीं कि तुम्हारे हवास गुम होने शुरू हुए ?

स्त्री : **(गहरी वितृष्णा के साथ)** जितने नाशुक्रे आदमी तुम हो, उससे तो मन करता है कि आज ही मैं...।

कहती हुई अहाते के दरवाज़े की तरफ़ मुड़ती ही है कि बाहर से बड़ी लड़की की आवाज़ सुनायी देती है।

बड़ी लड़की : ममा !

स्त्री रुककर उस तरफ़ देखती है। चेहरा कुछ फीका पड़ जाता है।

स्त्री : बीना आयी है बाहर।

पुरुष १ न चाहते मन से अख़बार लपेटकर उठ खड़ा होता है।

पुरुष १ : फिर उसी तरह आयी होगी।

स्त्री : जाकर देख लोगे क्या चाहिए उसे ?

बड़ी लड़की की आवाज़ फिर सुनायी देती है।

बड़ी लड़की : ममा, टूटे पचास पैसे देना ज़रा।

पुरुष १ किसी अनचाही स्थिति का सामना करने की तरह बाहर के दरवाज़े की तरफ़ बढ़ता है।

स्त्री : पचास पैसे हैं न तुम्हारी जेब में ? होंगे तो सही दूध के पैसों में से बचे हुए।

पुरुष १ : मैंने सिर्फ़ पाँच पैसे ख़र्च किये हैं अपने पर...इस अख़बार के।

बाहर निकल जाता है। स्त्री पल-भर उधर देखती रहकर अहाते के दरवाज़े से रसोईघर में चली जाती है। बड़ी लड़की बाहर से आती है। पुरुष १ उसके पीछे-पीछे आकर इस तरह कमरे में नज़र दौड़ाता है जैसे स्त्री के उस समय कमरे में न होने से वह अपने को एक ग़लत जगह पर अकेला पा रहा हो।

पुरुष १ : **(अपने अटपटेपन को ढक पाने में असमर्थ, बड़ी लड़की से)** बैठ तू।

बड़ी लड़की : ममा कहाँ हैं ?

पुरुष १ : उधर होगी रसोईघर में।

बड़ी लड़की : **(पुकारकर)** ममा !

स्त्री दोनों हाथों में चाय की प्यालियाँ लिये अहाते के दरवाज़े से आती है।

स्त्री : क्या हाल हैं तेरे ?

बड़ी लड़की : ठीक हैं।

पुरुष १ स्त्री को हाथों के इशारे से बतलाने की कोशिश करता है कि वह अपने साथ सामान कुछ भी नहीं लायी।

स्त्री : चाय लेगी ?

बड़ी लड़की : अभी नहीं। पहले हाथ-मुँह धो लूँ गुसलख़ाने में जाकर। सारा जिस्म इस तरह चिपचिपा रहा है कि बस...।

स्त्री : तेरी आँखें ऐसी क्यों हो रही हैं ?

बड़ी लड़की : कैसी हो रही हैं ?

स्त्री : पता नहीं कैसी हो रही हैं !

बड़ी लड़की : तुम्हें ऐसे ही लग रहा है। मैं अभी आती हूँ हाथ-मुँह धोकर।

अहाते के दरवाज़े से चली जाती है। पुरुष १ अर्थपूर्ण दृष्टि से स्त्री को देखता उसके पास आ जाता है।

पुरुष १ : मुझे तो यह उसी तरह आयी लगती है।

स्त्री चाय की प्याली उसकी तरफ़ बढ़ा देती है।

स्त्री : चाय ले लो।

पुरुष १ : (**चाय लेकर**) इस बार कुछ सामान भी नहीं है साथ में।

स्त्री : हो सकता है थोड़ी देर के लिए आयी हो।

पुरुष १ : पर्स में सिर्फ़ एक ही रुपया था। स्कूटर-रिक्शा का पूरा किराया भी नहीं।

स्त्री : क्या पता कहीं और से आ रही हो।

पुरुष १ : तुम हमेशा बात को ढकने की कोशिश क्यों करती हो? एक बार इससे पूछतीं क्यों नहीं खुलकर?

स्त्री : क्या पूछूँ?

पुरुष १ : यह मैं बताऊँगा तुम्हें?

स्त्री चाय के घूंट भरती एक कुरसी पर बैठ जाती है।

: (**पल-भर उत्तर की प्रतीक्षा करने के बाद**) मेरी उस आदमी के बारे में कभी अच्छी राय नहीं थी। तुम्हीं ने हवा बाँध रखी थी कि मनोज यह है, वह है...जाने क्या है! तुम्हारी शह से उसका घर में आना-जाना न होता, तो क्या यह नौबत आती कि लड़की उसके साथ जाकर बाद में इस तरह...?

स्त्री : (**तंग पड़कर**) तो तुम खुद ही क्यों नहीं पूछ लेते उससे जो पूछना चाहते हो?

पुरुष १ : मैं कैसे पूछ सकता हूँ?

स्त्री : क्यों नहीं पूछ सकते?

पुरुष १ : मेरा पूछना इसलिए ग़लत है कि...।

स्त्री : तुम्हारा कुछ भी करना किसी-न-किसी वजह से ग़लत होता है। मुझे पता नहीं है?

बड़े-बड़े घूँट भरकर चाय की प्याली खाली कर देती है।

पुरुष १ : तुम्हें सब पता है! अगर सब-कुछ मेरे करने से होता इस घर में...।

स्त्री : (**उठती हुई**) तो पता नहीं और क्या बरबादी हुई होती? जो दो रोटी आज मिल जाती हैं मेरी नौकरी से, वह भी न मिल पातीं। लड़की भी घर में रहकर ही बुढ़ा जाती, पर यह न सोचा होता किसीने कि...।

पुरुष १ : (**अहाते के दरवाज़े की तरफ़ संकेत करके**) वह आ रही है।

जल्दी-जल्दी अपनी प्याली खाली करके स्त्री को
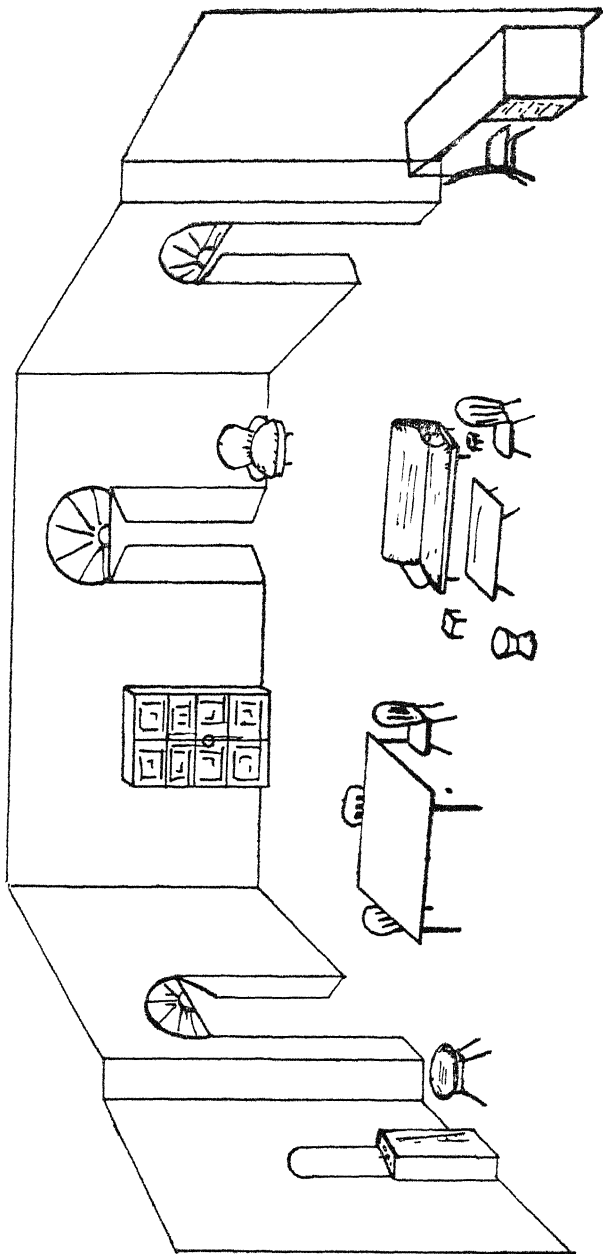
'आधे अधूरे' का पहला दृश्यबन्ध : बाद के मंचनों में बॉक्स हटाकर जबकि फर्नीचर की स्थिति इसी के अनुसार रही, केवल तीन दरवाज़े रखे गये थे—एक प्रवेश का, दूसरा रसोईघर का और तीसरा अन्दर के कमरे का।

दे देता है। बड़ी लड़की पहले से काफी सँभली हुई वापस आती है।

बड़ी लड़की : **(आती हुई)** ठंडे पानी के छीटे मुँह पर मारे, तो कुछ होश आया। आजकल के दिनों में तो बस...**(उन दोनों को स्थिर दृष्टि से अपनी ओर देखते पाकर)** क्या बात है, ममा ? आप लोग इस तरह क्यों देख रहे हैं मुझे ?

स्त्री : मैं प्यालियाँ रखकर आ रही हूँ अन्दर से।

अहाते के दरवाज़े से चली जाती है। पुरुष १ भी आँखें हटाकर व्यस्त होने का बहाना खोजता है।

बड़ी लड़की : क्या बात है डैडी ?

पुरुष १ : बात ?...बात कुछ भी नहीं।

बड़ी लड़की : **(कमज़ोर पड़ती)** है तो सही कुछ-न-कुछ बात।

पुरुष १ : ऐसे ही तेरी ममा अभी कुछ कह रही थी...।

बड़ी लड़की : क्या कह रही थीं ?

पुरुष १ : मतलब वह नहीं, मैं कह रहा था उससे...।

बड़ी लड़की : क्या कह रहे थे ?

पुरुष १ : तेरे बारे में बात कर रहा था।

बड़ी लड़की : क्या बात कर रहे थे ?

स्त्री लौटकर आ जाती है।

पुरुष १ : वह आ गई है, खुद ही बता देगी तुझे।

जैसे अपने को स्थिति से बाहर रखने के लिए थोड़ा परे चला जाता है।

बड़ी लड़की : **(स्त्री से)** डैडी मेरे बारे में क्या बात कर रहे थे, ममा ?

स्त्री : उन्हीं से क्यों नहीं पूछती ?

बड़ी लड़की : वे कहते हैं तुम बताओगी और तुम कहती हो उन्हीं से क्यों नहीं पूछती !

स्त्री : तेरे डैडी तुझसे यह जानना चाहते हैं कि...।

पुरुष १ : **(बीच में ही)** अगर तुम अपनी तरफ़ से नहीं जानना चाहतीं तो रहने दो बात को।

बड़ी लड़की : पर बात ऐसी है क्या जानने की ?

स्त्री : बात सिर्फ़ इतनी है कि जिस तरह से तू आजकल आती है वहाँ से, उससे इन्हें कहीं लगता है कि...।

पुरुष १ : तुम्हें जैसे नहीं लगता !

बड़ी लड़की : **(जैसे कठघरे में खड़ी)** क्या लगता है ?

स्त्री : कि कुछ है जो तू अपने मन में छिपाये रहती है, हमें नहीं बतलाती।

बड़ी लड़की : मेरी किस बात से लगता है ऐसा ?

स्त्री : **(पुरुष १ से)** अब कहो न इसके सामने वह सब जो मुझसे कह रहे थे।

पुरुष १ : तुमने शुरू की है बात, तुम्हीं पूरी भी कर डालो अब।

स्त्री : **(बड़ी लड़की से)** मैं तुझसे एक सीधा-सा सवाल पूछ सकती हूँ ?

बड़ी लड़की : ज़रूर पूछ सकती हो।

स्त्री : तू खुश है वहाँ पर ?

बड़ी लड़की : **(बचते स्वर में)** हाँऽऽ, बहुत खुश हूँ।

स्त्री : सचमुच खुश है ?

बड़ी लड़की : और क्या ऐसे ही कह रही हूँ ?

पुरुष १ : **(बिलकुल दूसरी तरफ़ मुँह किये)** यह तो कोई जवाब नहीं है।

बड़ी लड़की : **(तुनककर)** तो जवाब क्या तभी होता अगर मैं कहती कि मैं खुश नहीं हूँ, बहुत दु:खी हूँ ?

पुरुष १ : आदमी जो जवाब दे, वह उसके चेहरे से भी तो झलकना चाहिए।

बड़ी लड़की : मेरे चेहरे से क्या झलकता है ? कि मुझे तपेदिक हो गया है ? मैं घुल-घुलकर मरी जा रही हूँ ?

पुरुष १ : एक तपेदिक ही होता है बस आदमी को ?

बड़ी लड़की : तो और क्या-क्या होता है ? आँख से दिखायी देना बन्द हो जाता है ? नाक-कान तिरछे हो जाते हैं ? होंठ झड़कर गिर जाते हैं ? मेरे चेहरे से ऐसा क्या नज़र आता है आपको ?

पुरुष १ : **(कुढ़कर लौटता)** तेरी माँ ने तुझसे पूछा है, तू उसी से बात कर। मैं इस मारे कभी पड़ता ही नहीं इन चीज़ों में।

सोफ़े पर जाकर अखबार खोल लेता है। पर पल-भर बाद ध्यान हो आने से कि वह उसने उलटा पकड़ रखा है, उसे सीधा कर लेता है।

स्त्री : **(बड़ी लड़की से)** अच्छा छोड़ अब इस बात को। आगे से यह सवाल मैं नहीं पूछूँगी तुझसे।

बड़ी लड़की की आँखें छलछला आती हैं।

बड़ी लड़की : पूछने में रखा भी क्या है, ममा ! ज़िंदगी किसी तरह कटती ही चलती है हर आदमी की।

पुरुष १ : **(अख़बार का पन्ना पलटता)** यह हुआ कुछ जवाब !

स्त्री : **(पुरुष १ से)** तुम चुप नहीं रह सकते थोड़ी देर ?

पुरुष १ : मैं क्या कह रहा हूँ ? चुप ही बैठा हूँ यहाँ। **(अख़बार में पढ़ता)** नाले का बाँध पूरा करने के लिए बारह साल के लड़के की बलि। **(अख़बार से बाहर)** आप चाहे जो कह लें, मेरे मुँह से एक लफ्ज़ भी न निकले। **(फिर अख़बार में से)** उदयपुर के मड्ढा गाँव में बाँध के ठेकेदार का अमानुषिक कृत्य। **(अख़बार से बाहर)** हद होती है हर चीज़ की।

स्त्री बड़ी लड़की के कंधे पर हाथ रखे उसे पढ़ने की मेज़ के पास ले जाती है।

स्त्री : यहाँ बैठ।

बड़ी लड़की पलकें झपकाती वहाँ कुरसी पर बैठ जाती है।

: सच-सच बता, तुझे वहाँ किस चीज़ की शिकायत है ?

बड़ी लड़की : शिकायत किसी चीज़ की नहीं...।

स्त्री : तो ?

बड़ी लड़की : ...और हर चीज़ की है।

स्त्री : फिर भी कोई ख़ास बात ?

बड़ी लड़की : खास बात कोई भी नहीं...।

स्त्री : तो ?

बड़ी लड़की : ...और सभी बात ख़ास हैं।

स्त्री : जैसे ?

बड़ी लड़की : जैसे...सभी बातें।

स्त्री : तो तेरा मतलब है कि...?

बड़ी लड़की : मेरा मतलब है...कि शादी से पहले मुझे लगता था कि मनोज को बहुत अच्छी तरह जानती हूँ। पर अब आकर...अब आकर लगने लगा है कि वह जानना बिलकुल जानना नहीं था।

स्त्री : **(बात की गहराई तक जाने की तरह)** हूँ ! .. तो क्या उसके चरित्र में कुछ ऐसा है जो...?

बड़ी लड़की : नहीं। उसके चरित्र में ऐसा कुछ नहीं है। इस लिहाज़ से बहुत साफ़ आदमी है वह।

स्त्री : तो फिर क्या उसके स्वभाव में कोई ऐसी बात है जिससे...?

बड़ी लड़की : नहीं। स्वभाव उसका हर आदमी जैसा है। बलकि आम आदमी से ज़्यादा खुशदिल कहना चाहिए उसे।

स्त्री : **(और भी गहराई में जाकर कारण खोजती)** तो फिर ?

बड़ी लड़की : यही तो मैं भी समझ नहीं पाती। पता नहीं कहाँ पर क्या है जो ग़लत है।

स्त्री : उसकी आर्थिक स्थिति ठीक है ?

बड़ी लड़की : ठीक है।

स्त्री : सेहत ?

बड़ी लड़की : बहुत अच्छी है।

पुरुष १ : **(बिना उधर देखे)** सब-कुछ अच्छा ही अच्छा है फिर तो। शिकायत किस बात की है ?

स्त्री : **(पुरुष १ से)** तुम बात को समझने भी दोगे ? **(बड़ी लड़की से)** जब इनमें से किसी चीज़ की शिकायत नहीं है तुझे, तब या तो कोई बहुत बड़ी ही ख़ास वजह होनी चाहिए, या...।

बड़ी लड़की : या ?

स्त्री : या.. या... मैं अभी नहीं कह सकती।

बड़ी लड़की : वजह सिर्फ़ वह हवा है जो हम दोनों के बीच से गुज़रती है।

पुरुष १ : **(उस ओर देखकर)** क्या कहा...हवा ?

बड़ी लड़की : हाँ, हवा।

पुरुष १ : **(निराश भाव से सिर हिलाकर मुँह फिर दूसरी तरफ़ करता)** यह वजह बतायी है इसने...हवा !

स्त्री : **(बड़ी लड़की के चेहरे को आँखों से टटोलती)** मैं तेरा मतलब नहीं समझी।

बड़ी लड़की : **(उठती हुई)** मैं शायद समझा भी नहीं सकती **(अस्थिर भाव से कुछ क़दम चलती)** किसी दूसरे को तो क्या, अपने को भी नहीं समझा सकती। **(सहसा रुककर)** ममा, ऐसा भी होता है क्या कि...?

स्त्री : कि ?

बड़ी लड़की : कि दो आदमी जितना ज़्यादा साथ रहें, एक हवा में साँस लें, उतना ही ज़्यादा अपने को एक-दूसरे से अजनबी महसूस करें ?

स्त्री : तुम दोनों ऐसा महसूस करते हो ?

बड़ी लड़की : कम-से-कम अपने लिए तो मैं कह ही सकती हूँ।

स्त्री : **(पल-भर उसे देखती रहकर)** तू बैठकर क्यों नहीं बात करती ?

बड़ी लड़की : मैं ठीक हूँ इसी तरह।

स्त्री : तूने जो बात कही है, वह अगर सच है, तो उसके पीछे क्या कोई-न-कोई ऐसी अड़चन नहीं है जो...?

बड़ी लड़की : पर कौन-सी अड़चन ?...उसके हाथ में छलक गयी चाय की प्याली, या उसके दफ्तर से लौटने में आधा घण्टे की देर...ये छोटी-छोटी बातें अड़चन नहीं होतीं, मगर अड़चन बन जाती हैं। एक ग़ुबार-सा है जो हर वक़्त मेरे अंदर भरा रहता है और मैं इंतज़ार में रहती हूँ जैसे कि कब कोई बहाना मिले जिससे कि उसे बाहर निकाल लूँ। और आख़िर ?

स्त्री चुपचाप आगे सुनने की प्रतीक्षा करती है।

: आख़िर वह सीमा आ जाती है जहाँ पहुँचकर वह निढाल हो जाता है। ऐसे में वह एक ही बात कहता है।

स्त्री : क्या ?

बड़ी लड़की : कि मैं इस घर से ही अपने अंदर कुछ ऐसी चीज़ लेकर गयी हूँ जो किसी भी स्थिति में मुझे स्वाभाविक नहीं रहने देती।

स्त्री : **(जैसे किसी ने उसे तमाचा मार दिया हो)** क्या चीज़ ?

बड़ी लड़की : मैं पूछती हूँ क्या चीज़, तो भी उसका एक ही जवाब होता है।

स्त्री : वह क्या ?

बड़ी लड़की : कि इसका पता मुझे अपने अंदर से, या इस घर के अंदर से चल सकता है। वह कुछ नही बता सकता।

पुरुष १ : **(फिर उस तरफ मुड़कर)** यह सब कहता है वह ? और क्या-क्या कहता है ?

स्त्री : वह इस वक़्त तुमसे बात नहीं कर रही।

पुरुष १ : पर बात तो मेरे ही घर की हो रही है।

स्त्री : तुम्हारा घर ! हँह !

पुरुष १ : तो मेरा घर नहीं है यह ? कह दो नहीं है।

स्त्री : सचमुच तुम अपना घर समझते इसे, तो...।

पुरुष १ : कह दो, कह दो, जो कहना चाहती हो।

स्त्री : दस साल पहले कहना चाहिए था मुझे...जो कहना चाहती हूँ।

पुरुष १ : कह दो अब भी...इससे पहले कि दस साल ग्यारह साल हो जायें।

स्त्री : नहीं होने पायेंगे ग्यारह साल...इसी तरह चलता रहा सब-कुछ तो ।

पुरुष १ : (एकटक उसे देखता, काट के साथ) नहीं होने पायेंगे सचमुच ? ...काफी अच्छा आदमी है जगमोहन ! और फिर से दिल्ली में उसका ट्रांसफ़र भी हो गया है। मिला था उस दिन कनॉट प्लेस में। कह रहा था आयेगा किसी दिन मिलने।

बड़ी लड़की : (धीरज खोकर) डैडी !

पुरुष १ : ऐसी क्या बात कही है मैने ? तारीफ़ ही की है उस आदमी की।

स्त्री : खूब करो तारीफ़...और भी जिस-जिसकी हो सके तुमसे। (बड़ी लड़की से) मनोज आज जो तुझसे कहता है यह सब, पहले जब खुद यहाँ आता रहा है, रात-दिन यहाँ रहता रहा है, तब क्या उसे नहीं पता चला कि...?

बड़ी लड़की : यह मैं उससे नहीं पूछती।

स्त्री : पर क्यों नहीं पूछती ?

बड़ी लड़की : क्योंकि मुझे कहीं लगता है कि...कैसे बताऊँ क्या लगता है ? वह जितने विश्वास के साथ यह बात कहता है, उससे... उससे मुझे अपने से एक अजब-सी चिढ़ होने लगती है। मन करता है...मन करता है आसपास की हर चीज़ को तोड़-फोड़ डालूँ। कुछ ऐसा कर डालूँ जिससे...।

स्त्री : जिससे ?

बड़ी लड़की : जिससे उसके मन को कड़ी-से-कड़ी चोट पहुँचा सकूँ। उसे मेरे लम्बे बाल अच्छे लगते हैं। इसलिए सोचती हूँ इन्हें ही जाकर कटा आऊँ। वह मेरे नौकरी करने के हक़ मे नहीं है। इसलिए चाहती हूँ कही भी, कोई भी, छोटी-मोटी नौकरी ढूँढकर कर लूँ। कुछ भी ऐसी बात जिससे एक बार तो वह अंदर से तिलमिला उठे। पर कर मैं कुछ भी नही पाती। और जब नहीं कर पाती, तो खीझकर...।

स्त्री : यहाँ चली आती है ?

बड़ी लड़की पल-भर चुप रहकर सिर हिला देती है।

बड़ी लड़की : नहीं।

स्त्री : तो ?

बड़ी लड़की : कई-कई दिनों के लिए अपने को उससे काट लेती हूँ। पर धीरे-

धीरे हर चीज़ फिर उसी ढर्रे पर लौट आती है। सब-कुछ फिर उसी तरह होने लगता है जब तक कि हम.. जब तक कि हम नये सिरे से फिर उसी खोह में नहीं पहुँच जाते। मैं यहाँ आती हूँ...यहाँ आती हूँ, तो सिर्फ़ इसलिए कि...।

स्त्री : तेरा अपना घर है यह।

बड़ी लड़की : मेरा अपना घर !...हाँ। और मैं आती हूँ कि एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखूँ कि क्या चीज़ है वह इस घर में जिसे लेकर बार-बार मुझे हीन किया जाता है। **(लगभग टूटते स्वर में)** तुम बता सकती हो ममा, कि क्या चीज़ है वह ? और कहाँ है वह ? इस घर के खिड़कियों-दरवाज़ों में ? छत में ? दीवारों में ? तुममें ? डैडी में ? किन्नी में ? अशोक में ? कहाँ छिपी है वह मनहूस चीज़ जो वह कहता है मैं इस घर से अपने अंदर लेकर गयी हूँ ? **(स्त्री की दोनों बाँहें हाथों में लेकर)** बताओ ममा, क्या है वह चीज़ ? कहाँ पर है वह इस घर में ?

काफ़ी लम्बा वकफ़ा। कुछ देर बड़ी लड़की के हाथ स्त्री की बाहों पर रुके रहते हैं और दोनों की आँखें मिली रहती हैं। धीरे-धीरे पुरुष १ की गरदन उनकी तरफ़ मुड़ती है। तभी स्त्री आहिस्ता से बड़ी लड़की के हाथ अपनी बाँहों से हटा देती है। उसकी आँखें पुरुष १ से मिलती हैं और वह जैसे उससे कुछ कहने के लिए कुछ क़दम उसकी तरफ़ बढ़ाती है। बड़ी लड़की जैसे अब भी अपने सवाल का जवाब चाहती, अपनी जगह पर रुकी उन दोनों को देखती रहती है। पुरुष १ स्त्री को अपनी तरफ़ आते देख आँखें उधर से हटा लेता है और दो-एक पल असमंजस में रहने के बाद अनजाने में ही अख़बार को गोल करके दोनों हाथों से उसकी रस्सी बटने लगता है। स्त्री आधे रास्ते में ही कुछ कहने का विचार छोड़कर पल-भर अपने को सहेजती है, फिर बड़ी लड़की के पास वापस जाकर हलके से उसके कंधे को छूती है। बड़ी लड़की पल-भर आँखें मूँदे रहकर अपने आवेग को दबाने का

प्रयत्न करती है, फिर स्त्री का हाथ कंधे से हटाकर एक कुरसी का सहारा लिए उस पर बैठ जाती है। स्त्री, यह समझ में न आने से कि अब उसे क्या करना चाहिए, पल-भर दुविधा में हाथ उलझाए रहती है। उसकी आँखें फिर एक बार पुरुष १ से मिल जाती हैं और वह जैसे आँखों से ही उसका तिरस्कार करके अपने को एक मोढ़े की स्थिति बदलने में व्यस्त कर लेती है। पुरुष १ अपनी जगह से उठ पड़ता है। अख़बार की रस्सी अपने हाथों में देखकर कुछ अटपटा महसूस करता है और कुछ देर अनिश्चित खड़ा रहने के बाद फिर से बैठकर उस रस्सी के टुकड़े करने लगता है। तभी छोटी लड़की बाहर के दरवाज़े से आती है और उन तीनों को उस तरह देखकर अचानक ठिठक जाती है।

छोटी लड़की : कुछ पता ही नहीं चलता यहाँ तो।

तीनों में से केवल स्त्री उसकी तरफ़ देख लेती है।

स्त्री : क्या कह रही है तू ?

छोटी लड़की : बताओ, चलता है कुछ पता ? स्कूल से आयी, तो घर पर कोई भी नहीं था। और अब आयी हूँ, तो तुम भी हो, डैडी भी है, बिन्नी-दी भी हैं...पर सब लोग ऐसे चुप हैं जैसे...।

स्त्री : **(उसकी तरफ़ आती)** तू अपना बता कि चली कहाँ गयी थी ?

छोटी लड़की : कहीं भी चली गयी थी। घर पर था कोई जिसके पास बैठती यहाँ ?...दूध गरम हुआ है मेरा ?

स्त्री : अभी हुआ जाता है।

छोटी लड़की : अभी हुआ जाता है ! स्कूल में भूख लगे, तो कोई पैसा नही होता पास में। और घर आने पर घंटा-घंटा दूध ही नहीं होता गरम।

स्त्री : कहा है न तुझसे अभी हुआ जाता है **(पुरुष १ से)** तुम उठ रहे हो या मैं जाऊँ ?

पुरुष १ अख़बार के टुकड़ों को दोनों हाथों में समेट उठ खड़ा होता है।

पुरुष १ : **(कोई कड़वी चीज़ निगलने की तरह)** जा रहा हूँ मैं ही...।

अख़बार के टुकड़ों पर इस तरह नज़र डाल लेता है जैसे कि वह कोई बहुत ही महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ था जिसे उसने टुकड़े-टुकड़े कर दिया है।

स्त्री : **(छोटी लड़की से)** तू फिर किताब फाड़ लायी है आज ?

पुरुष १ चलते-चलते रुक जाता है कि इस महत्त्वपूर्ण प्रकरण का निपटारा भी देख ही ले।

छोटी लड़की : अपने-आप फट गयी, तो मैं क्या करूँ ? आज सिलाई की क्लास में फिर वही हुआ मेरे साथ। मिस ने कहा...।

स्त्री : तू मिस की बात बाद में करना। पहले यह बता कि...।

छोटी लड़की : रोज़ कहती हो बाद में करना। आज भी मुझे रीलें लाकर न दीं, तो मैं स्कूल नहीं जाऊँगी कल से। मिस ने सारी क्लास के सामने मुझसे कहा कि...

स्त्री : तू और तेरी मिस ! रोग लगा रखा है जान को।

छोटी लड़की : तो उठा लो न मुझे स्कूल से। जैसे शोकी मारा-मारा फिरता है सारा दिन, मैं भी फिरती रहा करूँगी।

बड़ी लड़की इस बीच काफ़ी अस्थिर महसूस करती छोटी लड़की को देखती रहती है।

बड़ी लड़की : **(अपने को रोक पाने में असमर्थ)** तुझे तमीज़ से बात करना नहीं आता ? बड़ा भाई है वह तेरा।

छोटी लड़की : क्यों...फिरता नहीं वह मारा-मारा सारा दिन ?

बड़ी लड़की : किन्नी !

छोटी लड़की : तुम यहाँ थीं, तो क्या कुछ कहा करती थीं उसके बारे में ? तुम्हारा भी तो बड़ा भाई है चाहे एक ही साल बड़ा है, है तो बड़ा ही।

बड़ी लड़की : **(स्त्री से)** ममा, तुमने इस लड़की की ज़बान बहुत खोल दी है।

पुरुष १ : अगर यही बात है मैं कह दूँ न इससे...।

स्त्री : पहले जो-जो कहना है, वह कह लो तुम। उसके बाद देख लेना अगर...।

पुरुष १ : **(अहाते के दरवाज़े की तरफ़ चलता)** कहना क्या है ? कहता ही नहीं कभी। मैं दूध गरम कर रहा हूँ इसका।

दरवाज़े से निकल जाता है।

छोटी लड़की : कल मुझे रीलों का डब्बा ज़रूर चाहिए। और मिस बैनर्जी

ने सब लड़कियों से कहा है आज कि फ़ाउण्डर्स डे पी. टी. के लिए तीन-तीन नये किट...।

स्त्री : कितने ?

छोटी लड़की : तीन-तीन। सब लड़कियों को बनवाने है। और तुमने कहा था क्लिप और मोज़े इस हफ़्ते ज़रूर आ जायेंगे, आ गये हैं ? कितनी शरम आती है मुझे फटे मोज़े पहनकर स्कूल जाते !

पल-भर की औघड़ खामोशी।

स्त्री : **(जैसे अपने को उस प्रकरण से बचाने की कोशिश में)** अच्छा देख...स्कूल से आकर तू अपना बैग यहाँ खुला छोड़ गयी थी ! मैंने आकर बंद किया है। पहले इसे अंदर रखकर आ।

छोटी लड़की : तुमने मेरी बात सुनी है ?

स्त्री : सुन ली है।

छोटी लड़की : तो जवाब क्यों नहीं दिया कुछ ? **(कोने से बैग उठाकर झटके से अंदर को चलती)** मैं कर रही हूँ क्लिप और मोज़ों की बात और ये कह रही हैं बैग रखकर आ अंदर !

चली जाती है। बड़ी लड़की कुरसी से उठ पड़ती है।

बड़ी लड़की : हम कह पाते थे कभी इतनी बात ? आधी बात भी कह दें इससे, तो रासें इस तरह कस दी जाती थीं कि बस !

स्त्री पल-भर अपने में डूबी खड़ी रहती है।

स्त्री : **(चेष्टा से अपने को सहेजकर)** क्या कहा तूने ?

बड़ी लड़की : मैंने कहा है कि... **(सहसा स्त्री के भाव के प्रति सचेत होकर)** तुम सोच रहीं थीं कुछ ?

स्त्री : नहीं...सोच नहीं रही थी। **(इधर-उधर नज़र डालती)** देख रही थी कि और कुछ समेटने को तो नहीं है। अभी कोई आने वाला है बाहर से और...।

बड़ी बड़की : कौन आने वाला है ?

पुरुष १ दूध के गिलास में चीनी हिलाता अहाते के दरवाज़े से आता है।

पुरुष १ : सिंघानिया। इसका बॉस। वह नया आना शुरू हुआ है आजकल।

गिलास डाइनिंग टेबल पर छोड़कर बिना किसी की तरफ़ देखे वापस चला जाता है। स्त्री कड़वी नज़र से उसे जाते देखती है। बड़ी लड़की स्त्री

के पास आ जाती है।

बड़ी लड़की : ममा !

स्त्री की आँखें घूमकर बड़ी लड़की के चेहरे पर आ स्थिर होती हैं। कह वह कुछ नहीं पाती।

: क्या बात है ममा ?

स्त्री : कुछ नहीं।

बड़ी लड़की : फिर भी ?

स्त्री : कहा है न, कुछ नहीं।

वहाँ से हटकर कबर्ड के पास चली जाती है और उसे खोलकर अंदर से कोई चीज़ ढूँढने लगती है।

बड़ी लड़की : (उसके पीछे जाकर) ममा !

स्त्री कोई उत्तर न देकर कबर्ड में से एक मेज़-पोश निकाल लेती है और कबर्ड बन्द कर देती है।

: तुम तो आदी हो रोज़-रोज़ ऐसी बातें सुनने की। कब तक इन्हें मन पर लाती रहोगी ?

स्त्री उसका वाक्य पूरा होने तक रुकी रहती है, फिर जाकर तिपाई का मेज़पोश बदलने लगती है।

: (उसकी तरफ़ आती) एक तुम्हीं करने वाली हो सब-कुछ इस घर में। अगर तुम्हीं...।

स्त्री के बदलते भाव को देखकर बीच में ही रुक जाती है। स्त्री पुराने मेज़पोश को हाथों में लिए एक नज़र उसे देखती है, फिर उमड़ते आवेग को रोकने की कोशिश में चेहरा मेज़पोश से ढक लेती है।

: (काफ़ी धीमे स्वर में) ममा !

स्त्री आहिस्ता से मोढ़े पर बैठती हुई मेज़पोश चेहरे से हटाती है।

स्त्री : (रुलाई पिये स्वर में) अब मुझसे नहीं होता, बिन्नी ! अब मुझसे नहीं सँभलता।

पुरुष १ अहाते के दरवाज़े से आता है, दो जले टोस्ट एक प्लेट में लिये। स्त्री के शब्द उसके कानों में पड़ते हैं, पर वह जान-बूझकर

अपने चेहरे से कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं होने देता। प्लेट दूध के गिलास के पास छोड़कर वह किताबों के शेल्फ़ की तरफ़ चला जाता है और उसके निचले हिस्से में रखी फ़ाइलों में से जैसे कोई खास फ़ाइल ढूँढने लगता है। बड़ी लड़की बात करने से पहले पल-भर का वकफ़ा लेकर उसे देखती है।

बड़ी लड़की : (**विशेष रूप से उसी को सुनाती, स्त्री से**) जो तुमसे नहीं सँभलता, वह और किससे सँभल सकता है इस घर में...जान सकती हूँ ?

पुरुष १ जैसे एक फ़ाइल की धूल झाड़ने के लिए उसे दो-एक ज़ोर के हाथ लगाकर पीट देता है।

: जब से बड़ी हुई हूँ, तभी से देख रही हूँ। तुत सब-कुछ सहकर भी रात-दिन अपने को इस घर के लिए हलाक करती रही हो और...।

पुरुष १ अब एक और फ़ाइल को उससे भी तेज़ और ज़्यादा बार पीट देता है।

स्त्री : पर हुआ क्या है उससे ?

न सह पाने की नज़र से पुरुष १ की तरफ़ देखकर मोढ़े से उठ पड़ती है। पुरुष १ दोनों फ़ाइलों को ज़ोर-ज़ोर से आपस में टकराता है।

: (**एकाएक पुरुष १ की थप्-थप् से उतावली पड़कर**) तुम्हें सारे घर में यह धूल इसी वक़्त फैलानी है क्या ?

पुरुष १ : जुनेजा की फ़ाइल ढूँढ रहा था। नहीं ढूँढता।

जैसे-कैसे फ़ाइलों को उनकी जगह में वापस ठूँसने लगता है। छोटी लड़की पाँव पटकती अंदर से आती है।

छोटी लड़की : देख लो ममा, यह मुझे फिर तंग कर रहा है।

बड़ी लड़की : (**लगभग डाँटती**) तू चिल्ला क्यों रही है इतना ?

छोटी लड़की : चिल्ला रही हूँ क्योंकि शोकी अन्दर मुझे...।

बड़ी लड़की : शोकी-शोकी क्या होता है ? तू अशोक भापाजी नहीं कह सकती ?

छोटी लड़की : अशोक भापाजी ?...वह ?

व्यंग्य के साथ हँसती है।

स्त्री : अशोक अन्दर क्या कर रहा है इस वक़्त ? मैं तो सोचती थी कि वह...।

छोटी लड़की : पड़ा सो रहा था अब तक। मैंने जाकर जगा दिया, तो लगा मेरे बाल खींचने।

लड़का अन्दर से आता है। लगता है दो-तीन दिन से उसने शेव नहीं की।

लड़का : कौन सो रहा था ? मैं ? बिलकुल झूठ।

बड़ी लड़की : शेव करना छोड़ दिया है क्या तूने ?

लड़का : (**अपने चेहरे को छूता**) फ्रेंच कट रखने की सोच रहा हूँ। कैसी लगेगी मेरे चेहरे पर ?

छोटी लड़की : (**उतावली पड़कर**) मेरी बात सुनी नहीं किसी ने। अन्दर मेरे बाल खींच रहा था और बाहर आकर अपनी फ्रेंच कट बता रहा है।

डाइनिंग टेबल से दूध का गिलास लेकर ग़ट-ग़ट दूध पी जाती है। पुरुष १ इस बीच शेल्फ़ और फ़ाइलों से ही उलझता रहता है। एक फ़ाइल को किसी तरह अन्दर समाता है, तो कुछ और फ़ाइलें बाहर को गिर आती हैं। उन्हें सँभालता है, तो पहले की फ़ाइलें पीछे गिर जाती हैं।

स्त्री : (**लड़के के पास आती**) तुझसे एक बात पूछूँ ?

लड़का : पूछो।

स्त्री : इस लड़की की उम्र क्या है ?

लड़का : यही तो मैं तुमसे पूछना चाहता हूँ कि बारह साल की उम्र में यह लड़की...?

बड़ी लड़की : तेरह साल की उम्र में।

स्त्री : तेरह साल की लड़की कितनी बड़ी होती है ?

लड़का : तेरह साल की लड़की तेरह साल बड़ी होती है और तेरह साल बड़ी ही होनी चाहिए उसे, जबकि यह लड़की...।

स्त्री : बच्ची नहीं है अब जो तू इसके बाल खींचता रहे।

छोटी लड़की लड़के की तरफ़ जबान निकालती है। पुरुष १ फ़ाइलों को किसी तरह समेटकर उठ पड़ता है।

लड़का : तब तो सचमुच मुझे अपनी ग़लती माननी चाहिए।

स्त्री : ज़रूर माननी चाहिए।

लड़का : कि मैंने ख़ामख़ाह इसके हाथ से वह किताब छीन ली।

पुरुष १ : **(अपनी तटस्थता बनाये रखने में असमर्थ, आगे आता)** कौन-सी किताब ?

छोटी लड़की : झूठ बोल रहा है। मैंने कोई किताब नहीं ली इसकी।

टोस्टों वाली प्लेट हाथ में लिये मेज़ पर बैठ जाती है।

पुरुष १ : **(लड़के के बहुत पास पहुँचकर)** कौन-सी किताब ?

लड़का : **(बुश्शर्ट के अन्दर से किताब निकालकर दिखाता)** यह किताब।

छोटी लड़की : झूठ, बिलकुल झूठ। मैंने देखी भी नहीं यह किताब।

लड़का : **(आँखें फाड़कर देखता)** नहीं देखी ?

छोटी लड़की : **(कमज़ोर पड़कर ढीठपन के साथ)** तू तकिये के नीचे रखकर सोये, तो भी कुछ नहीं। मैंने ज़रा निकालकर देख भर ली, तो...।

पुरुष १ : **(हाथ बढ़ाकर)** मैं देख सकता हूँ ?

लड़का : **(किताब वापस बुश्शर्ट में रखता)** नहीं...आपके देखने की नहीं है। **(स्त्री से)** अब फिर पूछो मुझसे कि इसकी उम्र कितने साल है।

बड़ी लड़की : क्यों अशोक...यह वही किताब है न...कैसानोवा...?

पुरुष १ : **(ऊँचे स्वर में)** ठहरो। **(बारी-बारी से उन सबकी तरफ़ देखता)** पहले मैं यह जान सकता हूँ यहाँ किसी से कि मेरी उम्र कितने साल है ?

कुछ पलों का व्यवधान जिसमें सिर्फ़ छोटी लड़की का मुँह और टाँगें चलती रहती हैं।

स्त्री : ऐसी क्या बात कह दी है किसी ने कि...?

पुरुष १ : **(एक-एक शब्द पर ज़ोर देता)** मैं पूछ रहा हूँ मेरी उम्र कितने साल है ? कितने साल है मेरी उम्र ?

स्त्री : **(उठ रही स्थिति के लिए तैयार होकर)** यह तुम्हें पूछकर जानना है क्या ?

पुरुष १ : हाँ, पूछकर ही जानना है आज। कितने साल हो चुके हैं मुझे ज़िन्दगी का भार ढोते ? उनमें से कितने साल बीते हैं मेरे इस परिवार की देख-रेख करते ? और उस सबके बाद मैं आज पहुँचा कहाँ हूँ ? यहाँ कि जिसे देखो वहीं मुझसे उलटे

ढंग से बात करता है ! जिसे देखो वही मुझसे बदतमीज़ी से पेश आता है !

लड़का : **(अपनी सफ़ाई देने की कोशिश में)** मैंने तो सिर्फ़ इसलिए कहा था डैडी, कि...।

पुरुष १ : हर एक के पास एक-न-एक वजह होती है। इसने इसलिए कहा था। उसने उस लिए कहा था। मैं जानना चाहता हूँ कि मेरी क्या यही हैसियत है इस घर में कि जो जब जिस वजह से जो भी कह दे, मैं चुपचाप सुन लिया करूँ ? हर वक़्त की धतकार, हर वक़्त की कोंच, बस यही कमाई है यहाँ मेरी इतने सालों की ?

स्त्री : **(वितृष्णा से उसे देखती)** यह सब किसे सुना रहे हो तुम ?

पुरुष १ : किसे सुना सकता हूँ ? कोई है जो सुन सकता है ? जिन्हें सुनाना चाहिए, वे सब तो एक रबड़-स्टैंप के सिवा कुछ समझते ही नहीं मुझे। सिर्फ़ ज़रूरत पड़ने पर इस स्टैंप का ठप्पा लगाकर...।

स्त्री : यह बहुत बड़ी बात नहीं कह रहे तुम ?

लड़का : **(उसे रोकने की कोशिश में)** ममा...!

स्त्री : मुझे सिर्फ़ इतना पूछ लेने दे इनसे कि रबड़-स्टैंप के माने क्या होते हैं ? एक अधिकार, एक रुतबा, एक इज़्ज़त...यही न ?

लड़का : **(फिर उसी कोशिश में)** सुनो तो सही, ममा...!

स्त्री : **(बिना उसकी तरफ़ ध्यान दिए)** यह सब कब-कब मिला है इनसे किसी को भी इस घर में ? किस माने में ये कहते हैं कि...?

पुरुष १ : किसी माने में नहीं। मैं इस घर में एक रबड़-स्टैंप भी नहीं, सिर्फ़ एक रबड़ का टुकड़ा हूँ...बार-बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा ! इसके बाद क्या कोई मुझे वजह बता सकता है, एक भी ऐसी वज़ह, कि क्यों मुझे रहना चाहिए इस घर में ?

सब लोग चुप रहते हैं।

: नहीं बता सकता न ?

स्त्री : मैंने एक छोटी-सी बात पूछी है तुमसे...।

पुरुष १ : **(सिर हिलाता)** हाँ...छोटी-सी बात ही तो है यह। अधिकार, रुतबा, इज़्ज़त...यह सब बाहर के लोगों से मिल सकता है इस घर को। इस घर का आज तक कुछ बना है, या आगे बन

सकता है, तो सिर्फ़ बाहर के लोगों के भरोसे। मेरे भरोसे तो सब-कुछ बिगड़ता आया है और आगे बिगड़ ही बिगड़ सकता है। (**लड़के की तरफ़ इशारा करके**) यह आज तक बेकार क्यों घूम रहा है? मेरी वजह से। (**बड़ी लड़की की तरफ़ इशारा करके**) यह बिना बताये एक रात घर से क्यों भाग गयी थी? मेरी वजह से। (**स्त्री के बिलकुल सामने आकर**) और तुम भी...तुम भी इतने सालों से क्यों चाहती रही हो कि...?

स्त्री : (**बौखलाकर, शेष तीनों से**) सुन रहे हो तुम लोग?

पुरुष १ : अपनी ज़िंदगी चौपट करने का ज़िम्मेदार मैं हूँ। तुम्हारी ज़िंदगी चौपट करने का ज़िम्मेदार मैं हूँ। इन सबकी ज़िंदगियाँ चौपट करने का ज़िम्मेदार मैं हूँ। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूँ क्योंकि अन्दर से मैं आरामतलब हूँ, घर-घुसरा हूँ, मेरी हड्डियों में ज़ंग लगा है।

स्त्री : मैं नहीं जानती तुम सचमुच ऐसा महसूस करते हो या...?

पुरुष १ : सचमुच महसूस करता हूँ। मुझे पता है मैं एक कीड़ा हूँ जिसने अन्दर-ही-अन्दर इस घर को खा लिया है। (**बाहर के दरवाज़े की तरफ़ चलता**) पर अब पेट भर गया है मेरा। हमेशा के लिए भर गया है। (**दरवाज़े के पास रुककर**) और बचा भी क्या है जिसे खाने के लिए और रहता रहूँ यहाँ?

चला जाता है। कुछ देर के लिए सब लोग जड़-से हो रहते हैं। फिर छोटी लड़की हाथ के टोस्ट को मुँह की ओर ले जाती है।

बड़ी लड़की : तुम्हारा ख़्याल है ममा...?

स्त्री : लौट आयेंगे रात तक। हर मंगल-सनीचर यही सब होता है यहाँ।

छोटी लड़की : (**जूठे टोस्ट को प्लेट में वापस पटकती**) थू: थू:!

बड़ी लड़की : (**काफ़ी गुस्से के साथ**) तुझे क्या हो रहा है वहाँ?

छोटी लड़की : मुझे क्या हो रहा है यहाँ! यह टोस्ट है, कोयला है?

स्त्री : (**दाँत भींचे**) तू इधर आयेगी एक मिनट?

छोटी लड़की : नहीं आऊँगी।

बड़ी लड़की : नहीं आयेगी?

छोटी लड़की : नहीं आऊँगी। (**सहसा उठकर बाहर को चलती**) अन्दर जाओ, तो बाल खींचे जाते हैं। बाहर जाओ, तो किटपिट-किटपिट-किटपिट और खाने को कोयला...अब उधर आकर

'आधे अधूरे' का सर्वप्रथम मंचन दिल्ली में ओम शिवपुरी के निर्देशन में 'दिशान्तर' द्वारा १९६९ में हुआ। इस चित्र में पूरा परिवार है... बड़ी लड़की (अनुराधा कपूर)' पुरुष १ (ओम शिवपुरी,) लड़का (दिनेश ठाकुर), स्त्री (सुधा शिवपुरी) और छोटी लड़की (ऋचा व्यास)।
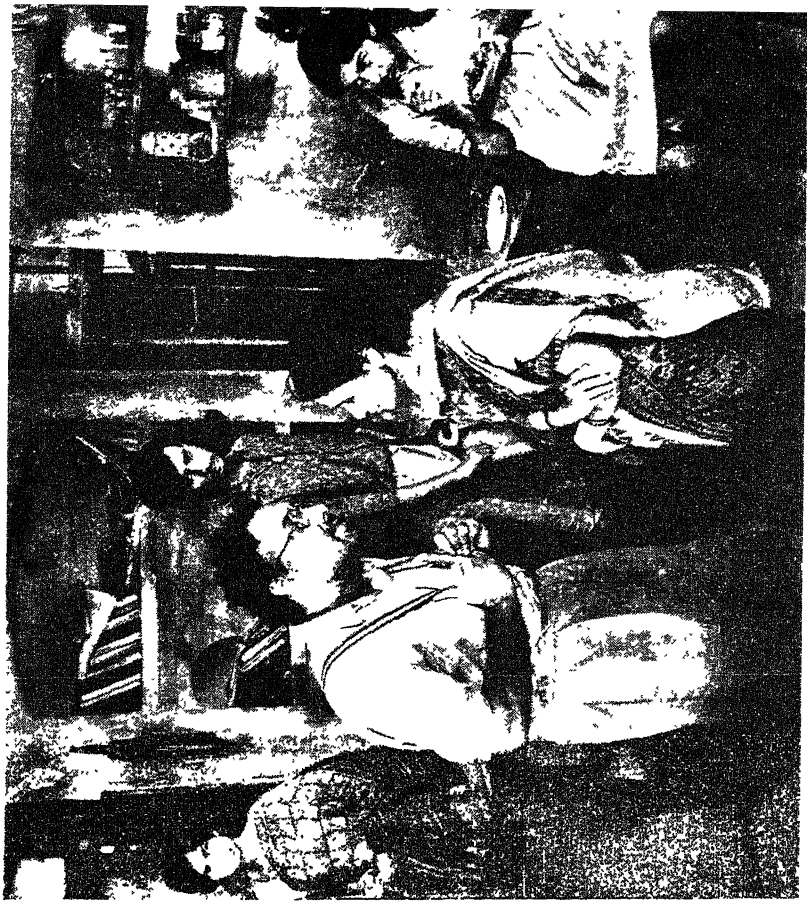
पुरुष २ (ओम शिवपुरी) एवं
स्त्री (सुधा शिवपुरी)

इनके तमाचे और खाने हैं।

चली जाती है।

लड़का : **(उसके पीछे जाने को होकर)** मैं देखता हूँ इसे। कम-से-कम इस लड़की को तो मुझे...।

दरवाज़े के पास पहुँचता ही है कि पीछे से स्त्री आवाज़ देकर उसे रोक लेती है।

स्त्री : सुन।

लड़का : **(किसी तरह निकल जाने की कोशिश में)** पहले मैं जाकर इसे...।

स्त्री : **(काफी सख़्त स्वर में)** पहले तू आकर यहाँ...बात सुन मेरी।

लड़का किसी ज़रूरी काम पर जाने से रोक लिये जाने की मुद्रा में लौटकर स्त्री के पास आ जाता है।

लड़का : बताओ।

स्त्री : कम-से-कम तुझे इस वक़्त कहीं नहीं जाना है। वह आज फिर आने वाला है थोड़ी देर में और...।

लड़का : **('मुझे क्या कोई आने वाला है तो?' की मुद्रा में)** कौन आने वाला है ?

बड़ी लड़की : ममा का बॉस...क्या नाम है उसका ?

लड़का : अच्छा...वह आदमी !

बड़ी लड़की : तू मिला है उससे ?

लड़का : दो बार।

बड़ी लड़की : कहाँ ?

लड़का : इसी घर में।

स्त्री : **(बड़ी लड़की से)** दोनों बार इसी के लिए बुलाया था मैंने उसे। आज भी इसी की ख़ातिर...।

लड़का : **(कुछ तीखा पड़कर)** मेरी ख़ातिर ? मुझे क्या लेना-देना है उससे ?

बड़ी लड़की : ममा उसके ज़रिये तेरी नौकरी के लिए कोशिश कर रही होंगी न...।

लड़का : मुझे नहीं चाहिए नौकरी। कम-से-कम उस आदमी के ज़रिये हरगिज़ नहीं।

बड़ी लड़की : क्यों उस आदमी को क्या है ?

लड़का : चुकंदर है ! वह आदमी है ? जिसे बैठने का शऊर है न बात

करने का।

स्त्री : पाँच हज़ार तनख़ाह है उसकी, पूरा दफ़्तर सँभालता है।

लड़का : पाँच हज़ार तनख़ाह है, पूरा दफ़्तर सँभालता है, पर इतना होश नहीं कि अपनी पतलून के बटन...।

स्त्री : अशोक !

लड़का : तुम्हारा बॉस न होता, तो उस दिन मैंने कान से पकड़कर घर से निकाल दिया होता। सोफ़े पर टाँग पसारे आप सोच कुछ रहे हैं, जाँघ खुजलाते देख किसी तरफ़ रहे हैं और बात मुझसे कर रहे हैं... **(नकल उतारता)** 'अच्छा यह बतलाइए कि आपके राजनीतिक विचार क्या हैं ?' राजनीतिक विचार हैं मेरे...खुजली और उसकी मरहम !

स्त्री : **(अपना माथा सहलाकर बड़ी लड़की से)** ये लोग हैं जिनके लिए मैं जानमारी करती हूँ रात-दिन।

लड़का : पहले पाँच मिनट आदमी की आँखों में देखता रहेगा। फिर होंठों के दाहिने कोने से ज़रा-सा मुसकरायेगा। फिर एक-एक लफ्ज़ को चबाता हुआ पूछेगा... **(उसके स्वर में)** 'आप क्या सोचते हैं, आजकल युवा लोगों में इतनी अराजकता क्यों है ?' ढूँढ-ढूँढकर सरकारी हिन्दी के लफ़्ज़ लाता है। युवा लोगों में ! अराजकता !

स्त्री : तो फिर ?

लड़का : तो फिर क्या ?

स्त्री : तो फिर क्या मर्ज़ी है तेरी ?

लड़का : किस चीज़ को लेकर ?

स्त्री : अपने-आपको।

लड़का : मुझे क्या हुआ है ?

स्त्री : ज़िन्दगी में तुझे भी कुछ करना-धरना है, या बाप ही की तरह...?

लड़का : **(फिर तीखा पड़कर)** हर बात में ख़ामख़ाह उनका ज़िक्र क्यों बीच में लाती हो ?

स्त्री : पढ़ाई थी, तो तूने पूरी नहीं की। एयर-फ्रीज़ में नौकरी दिलवायी थी, तो वहाँ से छ: हफ्ते बाद छोड़कर चला आया। अब मैं नये सिरे से कोशिश करना चाहती हूँ, तो...।

लड़का : पर क्यों करना चाहती हो ? मैंने कहा है तुमसे कोशिश करने के लिए ?

बड़ी लड़की : तो तेरा मतलब है कि तू...ज़िंदगी-भर कुछ भी नहीं करना चाहता ?

लड़का : ऐसा कहा है मैंने ?

बड़ी लड़की : तो नौकरी के सिवा ऐसा क्या है जो तू...?

लड़का : यह मैं नहीं कह सकता। सिर्फ़ इतना कह सकता हूँ कि जिस चीज़ में मेरी अन्दर से दिलचस्पी नहीं है...।

स्त्री : दिलचस्पी तो तेरी...।

बड़ी लड़की : ठहरो ममा...!

स्त्री : तू ठहर, मुझे बात करने दे। **(लड़के से)** दिलचस्पी तो तेरी सिर्फ़ तीन चीज़ों में है—दिन-भर ऊँघने में, तसवीरें काटने में और...घर की यह चीज़ वह चीज़ ले जाकर...।

लड़का : **(कड़वी नजर से उसे देखता है)** इसे घर कहती हो तुम ?

स्त्री : तो तू इसे क्या समझ कर रहता है यहाँ ?

लड़का : मैं इसे...।

बड़ी लड़की : **(उसे बोलने न देने के लिए)** देख अशोक, ममा के यह सब कहने का मतलब सिर्फ़ इतना है कि...।

लड़का : मैं नहीं जानता मतलब ? तू चली गयी है यहाँ से, मैं तो अभी यहीं रहता हूँ।

स्त्री : **(हताश भाव से)** तो क्यों नहीं तू भी फिर...?

बड़ी लड़की : **(झिड़कने के स्वर में)** कैसी बात कर रही हो, ममा ?

स्त्री : कैसी बात कर रही हूँ ? यहाँ पर सब लोग समझते क्या हैं मुझे ? एक मशीन, जो कि सबके लिए आटा पीस-पीसकर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है ? अगर किसी के मन में ज़रा-सा भी ख़्याल नहीं इस चीज़ के लिए कि कैसे मैं...।

इस बीच ही बाहर के दरवाज़े पर पुरुष २ की आकृति दिखाई देती है जो किवाड़ को हलके से खटखटा देता है। स्त्री चौंककर उधर देखती है और अपनी अधकही बात को बीच में ही चबा जाती है।

: **(स्वर को किसी तरह सँभालती)** आप ?...आ गये हैं आप ?...आइए-आइये अन्दर।

बड़ी लड़की : **(दायित्वपूर्ण ढंग से दरवाज़े की तरफ़ बढ़ती)** आइये।

पुरुष २ अभ्यस्त मुद्रा में उनके अभिवादन का उत्तर देता अंदर आ जाता है।

स्त्री : यह मेरी बड़ी लड़की, बिन्नी। अशोक तो आपसे मिल ही चुका है।

पुरुष २ : अच्छा-अच्छा...यही है वह लड़की! तुम चर्चा कर रही थीं इसकी। इसी का ऑपरेशन हुआ था न पिछले साल?...न न न न! वह तो मिसेज़ माथुर की लड़की का हुआ था। **(आँखें सिकोड़)** मिसेज़ माथुर की लड़की का? नहीं शायद...पर हुआ था किसी की लड़की का।

स्त्री : यहाँ आ जाइये सोफ़े पर।

सोफ़े की तरफ़ बढ़ते हुए पुरुष २ की आँखें लड़के से मिल जाती है। लड़का चलते ढंग से उसे हाथ जोड़ देता है। पुरुष २ फिर उसी अभ्यस्त ढंग से उत्तर देता है।

पुरुष २ : **(बैठता हुआ)** इतने लोगों से मिलना-जुलना होता है कि... **(अपनी घड़ी देखकर)** पाँच मिनट हैं सात में। उनका अनुरोध था सात तक अवश्य पहुँच जाऊँ। कई लोगों को बुला रखा है उन्होंने...विशेष रूप से मिलने के लिए। **(बड़ी लड़की को ध्यान से देखता, स्त्री से)** तुमने बताया था कुछ इसके विषय में। किस कॉलेज में है यह?

स्त्री : अब कॉलेज में नहीं है...।

पुरुष २ : हाँ-हाँ-हाँ...बताया था तुमने। **(बड़ी लड़की से)** बैठो न। **(स्त्री से)** बैठो तुम भी।

स्त्री सोफ़े के पास कुरसी पर आकर बैठ जाती है। बड़ी लड़की कुछ दुविधा में खड़ी रहती है।

स्त्री : बैठ जा, खड़ी क्यों है?

बड़ी लड़की : ये जल्दी चले जायेंगे, सोच रही थी चाय का पानी...।

पुरुष २ : नहीं-नहीं, चाय-वाय नहीं इस समय। वैसे भी बहुत कम पीता हूँ। एक लेख था कहीं...रीडर्स डाइजेस्ट में था?...कि अधिक चाय पीने से...।**(जाँघ खुजलाता)** यह रीडर्स डाइजेस्ट भी क्या चीज़ निकालते है! अपने यहाँ तो बस ये कहानियाँ वो कहानियाँ, कोई अच्छी पत्रिका मिलती ही नहीं देखने को। एक अमरीकन आया हुआ था पिछले दिनों। बता रहा था कि...।

लड़का, जो इतनी देर परे खड़ा रहता है, अब बढ़कर उनके पास आ जाता है।

लड़का : (**स्त्री से**) ऐसा है ममा, कि...।

स्त्री : रुक अभी। (**पुरुष २ से**) एक प्याली भी नहीं लेंगे ?

पुरुष २ : ना, बिलकुल नहीं।...अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क हैं कम्पनी के, सो सभी देशों के लोग मिलने आते रहते हैं। जापान से तो पूरा एक प्रतिनिधि-मंडल ही आया हुआ था पिछले दिनों।... कुछ भी कहिए, जापान ने इस सबकी नाक में नकेल डाल रखी है आजकल। अभी उस दिन मैं जापान की पिछले वर्ष की औद्योगिक सांख्यिकी देख रहा था...।

लड़का : मैं क्षमा चाहूँगा क्योंकि...।

स्त्री : तुझसे कहा है रुक अभी थोड़ी देर। (**पुरुष २ से**) आप कॉफ़ी पसंद करते हों, तो...।

पुरुष २ : न चाय, न कॉफ़ी ।...एक घटना सुनाऊँ आपको कॉफ़ी पीने के सम्बन्ध में। आज की बात नहीं, बहुत साल पहले की है। तब की जब मैं अपने विश्वविद्यालय की साहित्य-सभा का मन्त्री था। (**मन में उस बात का रस लेता**) हँ-हैं हँ-हैं हँ-हैं।...साहित्यिक गतिविधियों में रुचि आरम्भ से ही थी। सो...। (**बड़ी लड़की और लड़के से**) बैठ जाओ तुम लोग।

बड़ी लड़की बैठ जाती है।

लड़का : बात यह है कि...।

स्त्री : (**उठती हुई**) बैठ। मैं थोड़ा नमकीन लेकर आ रही हूँ।

लड़के को बैठने के लिए कोंचकर अहाते के दरवाज़े से चली जाती है। लड़का असन्तुष्ट भाव से उसे देखता है, फिर टहलता हुआ पढ़ने की मेज़ के पास चला जाता है। बड़ी लड़की से आँख मिलने पर हलके से मुँह बनाता है और कुरसी का रुख थोड़ा सोफ़े की तरफ़ करके बैठ जाता है।

पुरुष २ : (**बड़ी लड़की से**) तुम्हें पहले कहीं देखा है...नहीं देखा ?

बड़ी लड़की : मुझे ?...आपने ?

पुरुष २ : किसी इंटरव्यू में ?

बड़ी लड़की : नहीं तो।

पुरुष २ : फिर भी लगता है देखा है।...कोई और होगी। बिलकुल तुम्हारे जैसी थी। विचित्र बात नहीं है यह ?

बड़ी लड़की : क्या ?

पुरुष २ : कि बहुत-से लोग एक-दूसरे जैसे होते हैं। हमारे अंकल हैं एक। पीठ से देखो, मोरारजी भाई लगते हैं।

लड़का इस बीच मेज़ की दराज़ खोलकर तसवीरें निकाल लेता है और उन्हें मेज़ पर फैलाने लगता है।

लड़का : हमारी आंटी हैं एक। गरदन काटकर देखो, जीना लोलो-ब्रिजिदा नज़र आती हैं।

पुरुष २ : हाँ ! कई लोग होते हैं ऐसे। जीवन की विचित्रताओं की ओर ध्यान देने लगें, तो कई बार तो लगता है कि···। **(सहसा जेबें टटोलता)** भूल तो नहीं आया घर पर ? **(जेब से चश्मा निकालकर वापस रखता)** नहीं। तो मैं कह रहा था कि... क्या कह रहा था ?

बड़ी लड़की : कि जीवन की विचित्रताओं की ओर ध्यान देने लगें, तो...।

लड़का : जापान की औद्योगिक...क्या थी वह...उसकी बात नहीं कर रहे थे ?

स्त्री इस बीच नमकीन की प्लेट लिए अहाते के दरवाज़े से आ जाती है।

स्त्री : कोई घटना सुना रहे थे...कॉफ़ी पीने के सम्बन्ध में।

पुरुष २ : हाँ...तो...तो...तो वह...वह जो...।

स्त्री : लीजिये थोड़ा-सा।

पुरुष २ : हाँ-हाँ...ज़रूर।**(बड़ी लड़की से)** लो तुम भी। **(स्त्री से)** बैठ जाओ अब।

स्त्री : **(मोढ़े पर बैठती)** उस विषय में सोचा आपने कुछ ?

पुरुष २ : **(मुँह चलाता)** किस विषय में ?

स्त्री : वह जो मैंने बात की थी आपसे...कि कोई ठीक-सी जगह हो आपकी नज़र में, तो...।

पुरुष २ : बहुत स्वादिष्ट है।

स्त्री : याद है न आपको ?

पुरुष २ : याद है। कुछ बात की थी तुमने एक बार। अपनी किसी कज़िन के लिए कहा था...नहीं वह तो मिसेज़ मलहोत्रा ने कहा था। तुमने किसके लिए कहा था ?

स्त्री : **(लड़के की तरफ़ देखती)** इसके लिए।

पुरुष २ घूमकर लड़के की तरफ़ देखता है, तो लड़का एक बनावटी मुसकराहट मुसकरा देता है।

पुरुष २ : हूँ-हूँ...! क्या पास किया है इसने ? बी० कॉम० ?

स्त्री : मैंने बताया था। बी० एस०-सी० कर रहा था...तीसरे साल में बीमार हो गया, इसलिए...।

पुरुष २ : अच्छा-अच्छा...हाँ...बताया था तुमने। कि कुछ दिन एयर-इण्डिया में...।

स्त्री : एयर-फ़्रीज़ में।

पुरुष २ : हाँ, एयर-फ़्रीज़ में।...हूँ-हूँ...हूँ।

फिर घूमकर लड़के की तरफ़ देख लेता है। लड़का फिर उसी तरह मुसकरा देता है।

: इधर आ जाइये आप। वहाँ दूर क्यों बैठे हैं ?

लड़का : (**अपनी नाक की तरफ़ इशारा करता**) जी मुझे ज़रा...।

पुरुष २ : अच्छा-अच्छा...देश का जलवायु ही ऐसा है, क्या किया जाय ? जलवायु की दृष्टि से जो देश मुझे सबसे पसंद है, वह है इटली। पिछले वर्ष काफ़ी यात्रा पर रहना पड़ा। पूरा यूरोप घूमा। पर जो बात मुझे इटली में मिली, वह और किसी देश में नहीं। इटली की सबसे बड़ी विशेषता पता है क्या है ?...बहुत ही स्वादिष्ट है। कहाँ से लाती हो ? (**घड़ी देखकर**) सात-पाँच यहीं हो गये। तो...।

स्त्री : यहीं कोने पर एक दुकान है।

पुरुष २ : अच्छी दुकान है ? मैं प्राय: कहा करता हूँ कि खाना और पहनना, इन दो दृष्टियों से...। वह अमरीकन भी यही बात कह रहा था कि जितनी विविधता इस देश के खान-पान और पहनावे मे है...। और वही क्या, सभी विदेशी लोग इस बात को स्वीकार करते हैं। क्या रूसी, क्या जर्मन ! मैं कहता हूँ संसार में शीत-युद्ध को कम करने में हमारी कुछ वास्तविक देन है, तो यही कि...तुम अपनी इस साड़ी को ही लो। कितनी साधारण है, फिर भी...। यह हड़तालों-अड़तालों का चक्कर न चलता अपने यहाँ, तो हमारा वस्त्र-उद्योग अब तक...। अच्छा, तुमने वह नोटिस देखा है जो यूनियन ने मैंनेजमेंट को दिया है ?

स्त्री 'हाँ' के लिए सिर हिला देती है।

: कितनी बेतुकी बातें हैं उसमें ? हमारे यहाँ डी० ए० पहले ही इतना है कि...।

लड़का दराज से एक पैड निकालकर दराज बंद

करता है। पुरुष २ फिर घूमकर उस तरफ़ देख लेता है। लड़का फिर मुसकरा देता है। पुरुष २ के मुँह मोड़ने के साथ ही वह पैड पर पेंसिल से लकीरें खींचने लगता है।

: तो मैं कह रहा था कि...क्या कह रहा था ?

स्त्री : कह रहे थे...।

बड़ी लड़की : कई बातें कह रहे थे।

पुरुष २ : पर बात शुरू कहाँ से की थी मैंने ?

लड़का : इटली की सबसे बड़ी विशेषता से।

पुरुष २ : हाँ, पर उसके बाद...?

लड़का : खान-पान और पहनावे की विविधता...अमरीकन, जर्मन रूसी...शीत-युद्ध, हड़तालें...वस्त्र-उद्योग...डी० ए०...।

पुरुष २ : बहुत अच्छी स्मरण-शक्ति है लड़के की। तो कहने का मतलब था कि...।

स्त्री : थोड़ा और लीजिये ?

पुरुष २ : और नहीं अब।

स्त्री : थोड़ा-सा।...देखिये, जैसे भी हो, इसके लिए आपको कुछ-न-कुछ ज़रूर करना है।

पुरुष २ : ज़रूर।...किसके लिए क्या करना है ?

स्त्री : **(लड़के की तरफ़ देखकर)** इसके लिए...कुछ-न-कुछ...।

पुरुष २ : हाँ-हाँ...ज़रूर। वह तो है ही। **(लड़के की तरफ़ मुड़कर)** बी० एस-सी० में कौन-सा डिवीज़न था आपका ?

लड़का उँगली से हवा में सिफ़र खींच देता है।

: कौन-सा ?

लड़का : **(तीन-चार बार उँगली घुमाकर)** ओ।

पुरुष २ : **(जैसे समझकर)** ओ !

स्त्री : तीसरे साल में बीमार हो गया था, इसलिए..।

पुरुष २ : अच्छा-अच्छा...हाँ ! ...ठीक है...देखूँगा मैं। **(घड़ी देखकर)** अब चलना चाहिए। बहुत समय हो गया। **(उठता हुआ)** तुम घर पर आओ किसी दिन। बहुत दिनों से नहीं आयीं।

स्त्री और बड़ी लड़की साथ ही उठ खड़ी होती हैं।

स्त्री : मैं भी सोच रही थी आने के लिए। बेबी से मिलने।

पुरुष २ : वह पूछती रहती है, आंटी इतने दिनों से क्यों नहीं आयीं।

बहुत प्यार करती है अपनी आंटियों से। माँ के न होने से बेचारी...।

स्त्री : बहुत ही प्यारी बच्ची है। मैं पूछ लूँगी किसी दिन आपसे। इससे भी कह दूँ आकर मिल ले आपसे एक बार ?

पुरुष २ : (**बड़ी लड़की को देखता**) किससे ? इससे ?

स्त्री : अशोक से।

पुरुष २ : हाँ-हाँ...क्यों नहीं ? पर तुम तो आओगी ही। तुम्हीं को बता दूँगा।

स्त्री : ये जा रहे हैं, अशोक !

लड़का : (**जैसे पहले पता न चला हो**) जा रहे हैं आप ?

उठकर पास आ जाता है।

पुरुष २ : (**घड़ी देखता**) सोचा नहीं था इतनी देर रुकूँगा। (**बाहर से दरवाज़े की तरफ़ बढ़ता बड़ी लड़की से**) तुम नहीं करतीं कहीं नौकरी ?

बड़ी लड़की : जी नहीं।

स्त्री : चाहती है करना, पर... (**बड़ी लड़की से**) चाहती है न ?

बड़ी लड़की : हाँ...नहीं...ऐसा है कि...।

स्त्री : डरती है।

पुरुष २ : डरती है ?

स्त्री : अपने पति से।

पुरुष २ : पति से ?

स्त्री : हाँ...उसे पसंद नहीं है।

पुरुष २ : अच्छा-अच्छा...हाँ...।

स्त्री : तो आपको ध्यान रहेगा न इसके लिए...?

पुरुष २ : इसके लिए ?

स्त्री : मेरा मतलब है उसके लिए...।

पुरुष २ : हाँ-हाँ-हाँ-हाँ-हाँ...तुम आओगी ही घर पर। दफ़्तर की भी कुछ बातें करनी हैं। वही जो यूनियन-ऊनियन का झगड़ा है।

स्त्री : मैं तो आऊँगी ही। यह भी अगर मिल ले...?

पुरुष २ : (**घड़ी देखकर**) बहुत देर हो गयी। (**लड़के से**) अच्छा, एक बात बतायेंगे आप कि ये जो हड़तालें हो रही हैं सब क्षेत्रों में आजकल, इनके विषय में आप क्या सोचते हैं ?

लड़का ऐसे उचक जाता है जैसे कोई कीड़ा पतलून के अन्दर चला गया हो।

लड़का : ओह् ! ओह् ! ओह् !

जैसे बाहर से कीड़े को पकड़ने की कोशिश करने लगता है।

बड़ी लड़की : क्या हुआ ?

स्त्री : (**कुछ खीझ के साथ**) उन्होंने क्या पूछा है ?

लड़का : (**बड़ी लड़की से**) हुआ कुछ नहीं...कीड़ा है एक।

बड़ी लड़की : कीड़ा ?

पुरुष २ : अपने देश में तो...।

लड़का : पकड़ा गया।

पुरुष २ : ...इतनी तरह का कीड़ा पाया जाता है कि...।

लड़का : मसल दिया।

पुरुष २ : मसल दिया ? शिव-शिव-शिव ! यह् हिंसा की भावना...।

स्त्री : बहुत है इसमें। कोई कीड़ा हाथ लग जाय सही।

लड़का : और कीड़ा चाहे जितनी हिंसा करता रहे ?

पुरुष २ : मूल्यों का प्रश्न है। मैं प्राय: कहा करता हूँ...बैठो तुम लोग।

स्त्री : मैं सड़क तक चल रही हूँ साथ।

पुरुष २ : इस देश में नैतिक मूल्यों के उत्थान के लिए...। तुमने भाषण सुना है...वे जो आये हुए हैं आजकल, क्या नाम उनका ?

लड़का : निरोध मह्रषि ?

पुरुष २ : हाँ-हाँ-हाँ...यही नाम है न ? इतना अच्छा भाषण देते हैं... जन्म-कुंडली भी बनाते हैं वैसे...पर भाषण ? वाह्-वाह्-वाह् !

अंतिम शब्दों के साथ दरवाज़ा लाँघ जाता है। स्त्री भी साथ ही बाहर चली जाती है।

लड़का : हाहा !

बड़ी लड़की : यह किस बात पर ?

लड़का : एक्टिंग देखा ?

बड़ी लड़की : किसका ?

लड़का : उल्लू बना रहा था उसे।

बड़ी लड़की : पता नहीं असल में कौन उल्लू बना रहा था।

लड़का : क्यों ?

बड़ी लड़की : उसे तो फिर भी पाँच हज़ार तनख़ाह् मिल जाती है।

लड़का : चेहरा देखा है पाँच हज़ार तनख़ाह् वाले का ?

पैड पर बनाया ख़ाका लाकर उसे दिखाता है।

बड़ी लड़की : यह उसका चेहरा है ?

लड़का : नहीं है ?

बड़ी लड़की : सिर पर क्या है यह ?

लड़का : सींग बनाये थे, काट दिये। कहते हैं न...सींग नहीं होते।

बड़ी लड़की पैड उसके हाथ से लेकर देखती है।

स्त्री लौटकर आती है।

स्त्री : तू एक मिनट जायेगा बाहर ?

लड़का : क्यों ?

स्त्री : गाड़ी चल नहीं रही उनकी।

लड़का : क्या हुआ ?

स्त्री : बैटरी डाउन हो गयी है। धक्का लगाना पड़ेगा।

लड़का : अभी से ? अभी तो नौकरी की बात तक नहीं की उसने...।

स्त्री : जल्दी चला जा। उन्हें पहले ही देर हो गयी है।

लड़का : अगर सचमुच दिला दी उसने नौकरी, तब तो पता नहीं...।

बाहर के दरवाज़े से चला जाता है।

स्त्री : कुछ समझ में नहीं आता क्या होने को है इस लड़के का...। यह तेरे हाथ में क्या है ?

बड़ी लड़की : मेरे हाथ में ?...यह ? यह तो वह है...वह जो बना रहा था।

स्त्री : क्या बना रहा था ?...देखूँ।

बड़ी लड़की : (**पैड उसकी तरफ़ बढ़ाती**) ऐसे ही...पता नहीं क्या बना रहा था। बैठे-बैठे इसे भी बस...!

स्त्री पल-भर उस खाके को लेकर देखती रहती रहती है।

स्त्री : यह चेहरा कुछ-कुछ वैसा नहीं है ?

बड़ी लड़की : जैसा ?

स्त्री : तेरे डैडी जैसा ?

बड़ी लड़की : डैडी जैसा नहीं तो।

स्त्री : लगता तो है कुछ-कुछ।

बड़ी लड़की : वह तो इस आदमी का चेहरा बना रहा था...यह जो अभी गया है।

स्त्री : (**त्यौरी डालकर**) यह करतूत कर रहा था ?

लड़का लौटकर आ जाता है।

लड़का : (**जैसे हाथों से गर्द झाड़ता**) क्या तो अपनी सूरत है और

क्या गाड़ी की !

स्त्री : इधर आ।

लड़का : (**पास आता**) गाड़ी का इंजन तो फिर भी धक्के से चल जाता है, पर जहाँ तक... (**माथे की तरफ़ इशारा करके**) इस इंजन का सवाल है...।

स्त्री : (**कुछ सख़्त स्वर में**) यह क्या बना रहा था तू ?

लड़का : तुम्हें क्या लगता है ?

स्त्री : तू क्या बना रहा था ?

लड़का : एक आदिम बन-मानुस।

स्त्री : क्या ?

लड़का : बन-मानुस।

स्त्री : नाटक मत कर। ठीक से बता।

लड़का : देख नहीं रहीं यह लपलपाती जीभ, ये रिसती गुफ़ाओं जैसी आँखें, ये...।

स्त्री : मुझे तेरी ये हरकतें बिलकुल पसंद नहीं है। सुन रहा है तू ?

लड़का उत्तर न देकर पढ़ने की मेज़ की तरफ़ बढ़ जाता है और वहाँ से तसवीरें उठाकर देखने लगता है।

: सुन रहा है या नहीं ?

लड़का : सुन रहा हूँ।

स्त्री : सुन रहा है, तो कुछ कहना नहीं है तुझे ?

लड़का उसी तरह तसवीरें देखता रहता है।

: नहीं कहना है ?

लड़का : (**तसवीरें वापस मेज़ पर रखता**) क्या कह सकता हूँ ?

स्त्री : मत कह, नहीं कह सकता तो। पर मैं मिन्नत-ख़ुशामद से लोगों को घर पर बुलाऊँ और तू आने पर उनका मज़ाक उड़ाये, उनके कार्टून बनाये...ऐसी चीज़ें अब मुझे बिलकुल बरदाश्त नहीं हैं। सुन लिया ? बिलकुल-बिलकुल बरदाश्त नहीं हैं।

लड़का : नहीं बरदाश्त हैं, तो बुलाती क्यों हो ऐसे लोगों को घर पर कि जिनके आने से...?

स्त्री : हाँ-हाँ...बता, क्या होता जिनके आने से ?

लड़का : रहने दो। मैं इसीलिए चला जाना चाहता था पहले ही।

स्त्री : तू बात पूरी कर अपनी।

लड़का : जिनके आने से हम जितने छोटे हैं, उससे और छोटे हो जाते हैं अपनी नज़र में।

स्त्री : **(कुछ स्तब्ध होकर)** मतलब !

लड़का : मतलब वही जो मैंने कहा है। आज तक जिस किसी को बुलाया है तुमने, किस वजह से बुलाया है ?

स्त्री : तू क्या समझता है किस वजह से बुलाया है !

लड़का : उसकी किसी 'बड़ी' चीज़ की वजह से। एक को कि वह इंटलेक्चुअल बहुत बड़ा है। दूसरे को कि उसकी तनख़ाह पाँच हज़ार है। तीसरे को कि उसकी तख़्ती चीफ़ कमिश्नर की है। जब भी बुलाया है आदमी को नहीं...उसकी तनख़ाह को, नाम को, रुतबे को बुलाया है।

स्त्री : तू कहना क्या चाहता है इससे ? कि ऐसे लोगों के आने से इस घर के लोग छोटे हो जाते हैं ?

लड़का : बहुत-बहुत छोटे हो जाते हैं।

स्त्री : और मैं उन्हें इसलिए बुलाती हूँ कि...?

लड़का : पता नहीं किसलिए बुलाती हो, पर बुलाती सिर्फ़ ऐसे ही लोगों को हो। अच्छा, तुम्हीं बताओ किसलिए बुलाती हो ?

स्त्री : इसलिए कि किसी तरह इस घर का कुछ बन सके। कि मेरे अकेली के ऊपर बहुत बोझ है इस घर का, जिसे कोई और भी मेरे साथ ढोने वाला हो सके। अगर मैं कुछ ख़ास लोगों के साथ सम्बन्ध बनाकर रखना चाहती हूँ, तो अपने लिए नहीं, तुम लोगों के लिए। पर तुम लोग इससे छोटे होते हो, तो मैं छोड़ दूँगी कोशिश। हाँ, इतना कहकर कि मैं अकेले दम इस घर की ज़िम्मेदारियाँ नहीं उठाती रह सकती और एक आदमी है जो घर का सारा पैसा डुबोकर सालों से हाथ पर हाथ धरे बैठा है। दूसरा अपनी कोशिश से कुछ करना तो दूर, मेरे सिर फोड़ने से भी किसी ठिकाने लगना अपना अपमान समझता है। ऐसे में मुझसे भी नहीं निभ सकता। जब और किसी को यहाँ दर्द नहीं किसी चीज़ का, तो अकेली मैं ही क्यों अपने को चीथती रहूँ रात-दिन ? मैं भी क्यों न सुर्ख़रू होकर बैठ रहूँ अपनी जगह ? उससे तो तुममें से कोई छोटा नहीं होगा ?

लड़का चुप रहकर मेज़ की दराज़ खोलने-बंद करने लगता है।

: चुप क्यों है अब ? बता न अपने बड़प्पन से ज़िंदगी काटने का क्या तरीक़ा सोच रखा है तूने ?

लड़का : बात को रहने दो, ममा ! मैं नहीं चाहता मेरे मुँह से कुछ ऐसा निकल जाए जिससे तुम...।

स्त्री : जिससे मैं क्या ? कह दे जो भी कहना है तुझे।

लड़का : **(कुरसी पर बैठता)** कुछ नहीं कहना है मुझे।

उड़ते मन से एक मैगज़ीन और कैंची दराज़ से निकालकर उसे ज़ोर से बंद कर देता है।

स्त्री : तुछ नहीं तैना है तुजे। बैथ दा तुलछी पर औल तछ्वीलें तात। तितनी तछ्वीलें ताती एं अब तत लाजे मुन्ने ने ? अगर कुछ नहीं कहना था तुझे, तो पहले ही क्यों नहीं अपनी ज़बान...?

बड़ी लड़की : **(पास आकर उसकी बाँह थामती)** रुक जाओ ममा, मैं बात करूँगी इससे। **(लड़के से)** देख अशोक...।

लड़का : तेरा इस वक्त बात करना बहुत ज़रूरी है क्या ?

बड़ी लड़की : मैं तुझसे सिर्फ़ इतना पूछना चाहती हूँ कि...?

लड़का : पर क्यों पूछना चाहती है ? मैं इस वक्त किसी की किसी भी बात का जवाब नहीं देना चाहता।

बड़ी लड़की : **(कुछ रुककर)** यह तू भी जानता है कि ममा ने ही आज तक...।

लड़का : तू फिर भी कर रही है बात ?

स्त्री : क्यों कर रही है बात तू इससे ? कोई ज़रूरत नहीं किसी से भी बात करने की। आज वक्त आ गया है जब खुद ही मुझे अपने लिए कोई-न-कोई फ़ैसला...।

बड़का : ज़रूर कर लेना चाहिए।

बड़ी लड़की : अशोक !

लड़का : मैं कहना नहीं चाहता था, लेकिन...।

बड़ी लड़की : तो कह क्यों रहा है ?

लड़का : कहना पड़ रहा है क्योंकि...। जब नहीं निभता इनसे यह सब, तो क्यों निभाये जाती हैं इसे ?

स्त्री : मैं निभाये जाती हूँ क्योंकि...।

लड़का : कोई और निभाने वाला नहीं है। यह बात बहुत बार कही जा चुकी है इस घर में।

बड़ी लड़की : तो तू सोचता है कि ममा जो कुछ भी करती हैं यहाँ...?

लड़का : मैं पूछता हूँ क्यों करती हैं ? किसके लिए करती हैं ?

बड़ी लड़की : मेरे लिए करती थीं...।

लड़का : तू घर छोड़कर चली गयी।

बड़ी लड़की : किन्नी के लिए करती हैं...।

लड़का : वह दिन-ब-दिन पहले से बदतमीज़ होती जा रही है।

बड़ी लड़की : डैडी के लिए करती हैं...।

लड़का : उनकी हालत देखकर रहम नहीं आता ?

बड़ी लड़की : और सबसे ज़्यादा तेरे लिए करती हैं।

लड़का : और मैं ही शायद इस घर में सबसे ज़्यादा नाकारा हूँ।...पर क्यों हूँ ?

बड़ी लड़की : यह...यह मैं कैसे बता सकती हूँ ?

लड़का : कम-से-कम अपनी बात तो बता ही सकती है। तू यह घर छोड़कर क्यों चली गयी थी ?

बड़ी लड़की : **(अप्रतिभ होकर)** मैं चली गयी थी...चली गयी थी... क्योंकि...।

लड़का : क्योंकि तू मनोज से प्रेम करती थी ! ...खुद तुझे ही यह गुट्टी बहुत कमज़ोर नहीं लगती ?

बड़ी लड़की : **(रुआँसी पड़कर)** तो तू मुझसे...मुझसे भी कह रहा है कि...?

शिथिल होती एक मोढ़े पर बैठ जाती है।

लड़का : मैंने कहा था तुझसे...मत कर बात।

स्त्री आहिस्ता से दो क़दम चलकर लड़के के पास आ जाती है।

स्त्री : **(अत्यधिक गम्भीर)** तुझे पता है न तूने क्या बात कही है ?

लड़का बिना कुछ कहे मैगज़ीन खोलकर उसमें से एक तसवीर काटने लगता है।

: पता है न ?

लड़का उसी तरह चुपचाप तसवीर काटता रहता है।

: तो ठीक है। आज से मैं सिर्फ़ अपनी ज़िंदगी को देखूँगी...तुम लोग अपनी-अपनी ज़िंदगी को खुद देख लेना।

बड़ी लड़की एक हाथ से दूसरे हाथ के नाखूनों को मसलने लगती है।

: मेरे पास अब बहुत साल नहीं हैं जीने को। पर जितने हैं,

उन्हें मैं इसी तरह और निभाते हुए नहीं काटूँगी। मेरे करने से जो कुछ हो सकता था इस घर का, हो चुका आज तक। मेरी तरफ़ से अब यह अन्त है उसका...निश्चित अन्त !

एक खँडहर की आत्मा को व्यक्त करता हलका संगीत। लड़का अपनी काटी तसवीर को पल-भर हाथ में लेकर देखता है, फिर चक्-चक् उसे बड़े-बड़े टुकड़ों में कतरने लगता है जो नीचे फ़र्श पर बिखरते जाते हैं। प्रकाश आकृतियों पर धुँधलाकर कमरे के अलग-अलग कोनों में सिमटता विलीन होने लगता है। मंच पर पूरा अँधेरा होने के साथ संगीत भी रुक जाता है। पर कैंची की चक्-चक् फिर भी कुछ क्षण सुनायी देती रहती है।

अन्तराल-विकल्प।

दो अलग-अलग प्रकाश-वृत्तों में लड़का और बड़ी लड़की। लड़का सोफ़े पर औंधा लेटकर टाँगे हिलाता...सामने 'पेशेंस' के पत्ते फैलाये। बड़ी लड़की पढ़ने की मेज़ पर प्लेट रखे स्लाइसों पर मक्खन लगाती। पास में टिन-कटर और 'चीज़' का एक डब्बा। पूरा प्रकाश होने पर कमरे में वह बिखराव नज़र आता है जो एक दिन ठीक से देख-रेख न होने से आ सकता है। यहाँ-वहाँ चाय की ख़ाली प्यालियाँ, उतरे हुए कपड़े और ऐसी ही अस्त-व्यस्त चीज़ें।

बड़ी लड़की : यह डब्बा खोल देगा तू ?

लड़का : **(पत्तों में व्यस्त)** मुझसे नहीं खुलेगा।

बड़ी लड़की : नहीं खुलेगा, तो लाया किसलिए था ?

लड़का : तूने कहा था जो-जो उधार मिल सके, ले आ बनिये से। मैं उधार में एक फ़ोन भी कर आया।

बड़ी लड़की : कहाँ ?

लड़का : जुनेजा अंकल के यहाँ।

बड़ी लड़की : डैडी से बात हुई ?

लड़का : नहीं।

बड़ी लड़की : तो ?

लड़का : जुनेजा अंकल से हुई।

बड़ी लड़की : कुछ कहा उन्होंने ?

लड़का : बात हुई, इसी का यह मतलब नहीं कि...?

बड़ी लड़की : मतलब डैडी के घर आने के बारे में।

लड़का : कहा, नहीं आयेंगे।

बड़ी लड़की : नहीं आयेंगे ?

लड़का : नहीं।

बड़ी लड़की : तो पहले क्यों नहीं बताया तूने ? मैं ऐसे ही ये सैंडविच-ऐंडविच...?

लड़का : मैंने सोचा चीज़-सैंडविच तुझे खुद को पसंद हैं, इसलिए कह रही है।

बड़ी लड़की : मैंने कहा नहीं था कि ममा के दफ़्तर से लौटने तक डैडी भी आ जायें शायद ? चीज़-सैंडविच दोनों को पसंद हैं।

लड़का : जुनेजा अंकल को भी पसंद हैं। वे आयेंगे, उन्हें खिला देना।

बड़ी लड़की : कहा है आयेंगे ?

लड़का : ममा से कुछ बात करना चाहते हैं। छः-साढ़े-छः तक आयें शायद।

बड़ी लड़की : ममा का मूड वैसे ही ऑफ़ है। ऊपर से वे आकर बात करेंगे, तो...। चेहरा देखा था ममा का सुबह दफ़्तर जाते वक़्त ?

लड़का : मैं पड़ा ही नहीं सामने।

बड़ी लड़की : रात से ही चुप थीं, सुबह तो.. , इतनी चुप पहले कभी नहीं देखा।

लड़का : बात हुई थी तेरी कुछ ?

बड़ी लड़की : यही चाय-वाय के बारे में।

लड़का : साड़ी तो बहुत बढ़िया बाँधकर गयी हैं, जैसे किसी ब्याह का न्यौता हो।

बड़ी लड़की : देखा था तूने ?

लड़का : झलक पड़ी थी जब बाहर निकल रही थीं।

बड़ी लड़की : मैंने सोचा दफ़्तर से कहीं और जायेंगी। पर कहा साढ़े-पाँच तक आ जायेंगी...रोज़ की तरह।

लड़का : तूने पूछा था ?

बड़ी लड़की : इसलिए पूछा था कि मैं भी उसी हिसाब से अपना प्रोग्राम... पर सच कुछ पता नहीं चला।

लड़का : किस चीज़ का ?

बड़ी लड़की : कि मन में क्या सोच रही हैं। कहा तो कि साढ़े-पाँच तक लौट आयेंगी, पर चेहरे से लगता था जैसे...।

लड़का : जैसे ?

बड़ी लड़की : जैसे सचमुच मन में कोई फ़ैसला कर लिया हो और...।

लड़का : अच्छा नहीं है यह ?

बड़ी लड़की : अच्छा कहता है इसे ?

लड़का : इसलिए कि हो सकता है कुछ-न-कुछ हो इससे।

बड़ी लड़की : क्या हो ?

लड़का : कुछ भी। जो चीज़ बरसों से एक जगह रुकी है, वह रुकी ही नहीं रहनी चाहिए।

बड़ी लड़की : तो तू सचमुच चाहता है कि...?

लड़का : (**अपनी बाज़ी का अन्तिम पत्ता चलता**) सचमुच चाहता हूँ कि बात किसी भी एक नतीजे तक पहुँच जाय।...तू नहीं चाहती ?

पत्ते समेटता उठ खड़ा होता है।

बड़ी लड़की : मुझे तेरी बातों से डर लगता है आजकल।

लड़का : (**उसकी तरफ़ आता**) पर ग़लत तो नहीं लगतीं मेरी बातें ?

बड़ी लड़की : पता नहीं...सही भी नही लगतीं, हालाँकि...। (**डब्बा और टिन-कटर हाथ में लेकर**) यह डब्बा...!

लड़का : इस टिन-कटर से नहीं खुलेगा। इसकी नोक इतनी मर चुकी है कि...।

बड़ी लड़की : तो क्या करें फिर ?

लड़का : कोई और चीज़ नहीं है ?

बड़ी लड़की : मैं कैसे बता सकती हूँ ? मैं तो इतनी बेगानी महसूस करती हूँ अब इस घर में कि...।

लड़का : पहले नहीं करती थी ?

बड़ी लड़की : पहले ? पहले तो...।

लड़का : महसूस करना ही महसूस नहीं होता था। और कुछ-कुछ महसूस होना शुरू हुआ जब, तो पहला मौक़ा मिलते ही घर से चली गयी।

बड़ी लड़की : (**तीखी पड़कर**) तू फिर कल वाली बात कह रहा है ?

लड़का : बुरा क्यों मानती है ? मैं ख़ुद अपने को बेगाना महसूस करता हूँ यहाँ...और महसूस करना शुरू किया है मैंने तेरे जाने के दिन से।

बड़ी लड़की : मेरे जाने के दिन से ?

लड़का : महसूस शायद पहले भी करता था, पर सोचना तभी से शुरू किया है।

बड़ी लड़की : और सोचकर जाना है कि...?

लड़का : एक ख़ास चीज़ है इस घर के अन्दर जो...।

बड़ी लड़की : **(अस्थिर होकर)** तू भी यही कहता है ?

लड़का : और कौन कहता है ?

बड़ी लड़की : कोई भी...पर कौन-सी चीज़ है वह ?

लड़का : **(स्थिर दृष्टि से उसे देखता)** तू नहीं जानती ?

बड़ी लड़की : **(आँखें बचाती)** मैं ? मैं कैसे ?

लड़का : तुझसे तो मैंने जाना है उसे, और तू कहती है तू कैसे ।

बड़ी लड़की : तूने मुझसे जाना है उसे ? ...मैं नहीं समझी ।

लडका : ठीक है, ठीक है। उस चीज़ को जानकर भी न जानना ही बेहतर है शायद। पर दूसरे को तो धोखा दे भी ले आदमी, अपने-आपको कैसे दे ?

बड़ी लड़की इस तरह हो जाती है कि उसका हाथ ठीक से स्लाइस पर मक्खन नहीं लगा पाता ।

बड़ी लड़की : तू तो बस हमेशा ही...देख ऐसा है कि...मैं कह रही थी तुझसे कि...भई, यह डब्बा खुलवाकर ला पहले कहीं से। यह अगर नहीं खुलेगा, तो...।

लड़का : हाथ काँप क्यों रहा है तेरा ? **(डब्बा लेता)** अभी खुला जाता है यह। तेज़ औज़ार चाहिए...एक मिनट नहीं लगेगा।

बाहर के दरवाज़े से चला जाता है। बड़ी लड़की काम जारी रखने की कोशिश करती है, पर हाथ नहीं चलते तो छोड़ देती है ।

बड़ी लड़की : **(माथे पर हाथ फेरती, शिथिल स्वर में)** कैसे कहता है यह ?...मैं सचमुच...सचमुच जानती हूँ क्या ?

सिर को झटक लेती है...जैसे अन्दर एक बवंडर उठ रहा हो। कोशिश से अपने को सहेजकर उठ पड़ती है और अन्दर के दरवाज़े के पास जाकर आवाज़ देती है ।

: किन्नी !

जवाब नहीं मिलता, तो एक बार अन्दर झाँक कर लौट आती है ।

: कहाँ चली जाती है ? सुबह स्कूल जाने से पहले रोना कि जब तक चीज़ें नहीं आयेंगी, नहीं जायेगी। और अब दिन-भर से

पता ही नहीं कब घर में है, कब बाहर है।

लड़का बाहर के दरवाज़े से छोटी लड़की को अन्दर धकेलता है।

लड़का : चल अन्दर।

छोटी लड़की अपने को बचाकर बाहर भाग जाना चाहती है, पर वह उसे बाँह से पकड़ लेता है।

: कहा है अन्दर चल।

बड़ी लड़की : (**ताव से**) यह क्या हो रहा है ?

छोटी लड़की : देख लो बिन्नी-दी, यह मुझे...।

झटके से बाँह छुड़ाने की कोशिश करती है, पर लड़का उसे सख़्ती से खींचकर अन्दर ले आता है।

लड़का : इधर आ न, अभी पता चलता है तुझे।

बड़ी लड़की पास आकर छोटी लड़की की बाँह छुड़ाती है।

बड़ी लड़की : छोड़ दे इसे। किया क्या है इसने जो...?

लड़का : (**डब्बा उसे देता**) यह डब्बा ले। खुल गया है। (**छोटी लड़की पर तमाचा उठाकर**) इसे तो मैं अभी...।

बड़ी लड़की : (**उसका हाथ रोकती**) सिर फिर गया है तेरा ?

लड़का : फिरा नहीं, फिर जायेगा।...बाई जोव !

बड़ी लड़की : बात क्या हुई है ?

लड़का : इससे पूछ क्या बात हुई है।...माई गॉड !

बड़ी लड़की : क्या बात हुई है, किन्नी ? क्या कर रही थी तू ?

छोटी लड़की जवाब न देकर सुबकने लगती है।

: बता न क्या कर रही थी ?

छोटी लड़की चुपचाप सुबकती रहती है।

लड़का : कर नहीं, कह रही थी किसी से कुछ।

बड़ी लड़की : क्या ?

लड़का : इसी से पूछ।

बड़ी लड़की : (**छोटी लड़की से**) बोलती क्यों नहीं ? ज़बान सिल गयी है तेरी ?

लड़का : सिल नहीं, थक गयी। बताने में कि औरतें और मर्द किस तरह आपस में...।

बड़ी लड़की : क्या ???

लड़का : पूछ ले इससे। अभी बता देगी तुझे सब...जो सुरेखा को बता रही थी बाहर।

छोटी लड़की : (**सुबकने के बीच**) वह बता रही थी मुझे कि मैं उसे बता रही थी ?

लड़का : तू बता रही थी।

छोटी लड़की : वह बता रही थी।

लड़का : तू बता रही थी। अचानक मुझ पर नज़र पड़ी कि मै पीछे खड़ा सुन रहा हूँ, तो...।

छोटी लड़की : सुरेखा भागी थी कि मैं भागी थी ?

लड़का : तू भागी थी।

छोटी लड़की : सुरेखा भागी थी।

लड़का : तू भागी थी। और मैंने पकड़ लिया दौड़कर, तो लगी चिल्ला कर आसपास को सुनाने कि यह ममा से मेरी शिकायतें करती है और ममा घर पर नहीं हैं, इसलिए मैं इसे पीट रहा हूँ।

बड़ी लड़की : (**छोटी लड़की से**) यह सच कह रहा है ?

छोटी लड़की : बात सुरेखा ने शुरू की थी। वह बता रही थी कि कैसे उसके ममी-डैडी...।

बड़ी लड़की : (**सख्त पड़कर**) और तुझे बहुत शौक है जानने का कि कैसे उसके ममी-डैडी आपस में...?

लड़का : आपस में नहीं। यही तो बात थी ख़ास।

बड़ी लड़की : चुप रह, अशोक !

छोटी लड़की : इससे कभी कुछ नहीं कहता कोई। रोज़ किसी-न-किसी बात पर मुझे पीट-देता है।

बड़ी लड़की : क्यों पीट देता है ?

छोटी लड़की : क्योंकि मैं अपनी सब चीज़ें इसे नहीं ले जाने देती। उसे देने।

बड़ी लड़की : किसे देने ?

छोटी लड़की : वह जो है इसकी।...कभी मेरी बर्थ-डे प्रेज़ेंट की चूड़ियाँ दे आता है उसे, कभी मेरा प्राइज़ का फ़ाउण्टेन पेन। मैं अगर ममा से कह देती हूँ, तो अकेले में मेरा गला दबाने लगता है।

बड़ी लड़की : (**लड़के से**) किस की बात कर रही है यह ?

लड़का : ऐसे ही बक रही है। झूठ-मूठ।

छोटी लड़की : झूठ-मूठ ? मेरा फ़ाउण्टेन पेन तेरी वर्णा के पास नहीं है ?

बड़ी लड़की : वर्णा कौन ?

छोटी लड़की : वही उद्योग सेंटर वाली। जिसके पीछे जूतियाँ चटखाता

फिरता है।

लड़का : **(फिर उसे पकड़ने को होकर)** तू ठहर जा, आज मैं तेरी जान निकालकर रहूँगा।

छोटी लड़की उससे बचने के लिए इधर-उधर भागती है। लड़का उसका पीछा करता है।

बड़ी लड़की : अशोक!

लड़का : आज मैं नहीं छोड़ने का इसे। इसकी ज़बान जिस तरह खुल गयी है, उससे..।

छोटी लड़की रास्ता पाकर बाहर के दरवाज़े से निकल जाती है।

छोटी लड़की : **(जाती हुई)** वर्णा उद्योग सेंटर वाली!...वर्णा उद्योग सेंटर वाली!...वर्णा उद्योग सेंटर वाली!!

लड़का उसके पीछे बाहर जाने ही लगता है कि अचानक स्त्री को अन्दर आते देखकर ठिठक जाता है। स्त्री अन्दर आती है जैसे वहाँ की किसी चीज़ से उसे मतलब ही नहीं है। वातावरण के प्रति उदासीनता के अतिरिक्त चेहरे पर संकल्प और असमंजस का मिला-जुला भाव। उन लोगों की ओर न देखकर वह हाथ का सामान परे की एक कुरसी पर रखती है। लड़का अपने को एक भोंडी स्थिति में पाता इस चीज़, उस चीज़ को छूकर देखने लगता है। बड़ी लड़की प्लेट, स्लाइसें और चीज़ का डब्बा लिये अहाते के दरवाज़े की तरफ़ चल देती है।

बड़ी लड़की : **(स्त्री के पास से गुज़रती)** मैं चाय लेकर आती हूँ अभी।

स्त्री : मुझे नहीं चाहिए।

बड़ी लड़की : एक प्याली ले लेना।

चली जाती है। स्त्री कमरे के बिखराव पर एक नज़र डाल लेती है, पर सिवाय अपने साथ लायी चीज़ों को यथास्थान रखने के और किसी चीज़ को हाथ नहीं लगाती। बड़ी लड़की लौटकर आती है।

: **(पत्ती का खाली पैकेट दिखाती)** पत्ती ख़त्म हो गयी है।

स्त्री : मैं नहीं लूँगी चाय।

बड़ी लड़की : सबके लिए बना रही हूँ, एक-एक प्याली।

लड़का : मेरे लिए नहीं।

बड़ी लड़की : क्यों ? पानी रख रही हूँ, सिर्फ़ पत्ती लानी है...।

लड़का : अपने लिए बनानी है, बना ले।

बड़ी लड़की : मैं अकेली पिऊँगी ? इतने चाव से चीज़-सैंडविच बना रही हूँ।

लड़का : मेरा मन नहीं है।

स्त्री : मुझे चाय के लिए बाहर जाना है किसी के साथ।

बड़ी लड़की : तो तुम घर नहीं रहोगी इस वक़्त ?

स्त्री : नहीं। जगमोहन आयेगा लेने।

बड़ी लड़की : यहाँ आयेंगे वे ?

स्त्री : लेने आयेगा। क्यों ?

बड़ी लड़की : वे भी आने वाले हैं अभी...जुनेजा अंकल।

स्त्री : उनका कैसे पता है आने वाले हैं ?

बड़ी लड़की : अशोक ने फ़ोन किया था। कह रहे थे कुछ बात करनी है।

स्त्री : लेकिन मुझे कोई बात नही करनी उनसे।

बड़ी लड़की : फिर भी जब वे आयेंगे ही, तो...।

स्त्री : कह देना मैं घर पर नहीं हूँ। पता नहीं कब लौटूँगी।

बड़ी लड़की : कहें इन्तज़ार करते हैं, तो ?

स्त्री : करने देना इन्तज़ार।

कबर्ड में से दो-तीन पर्स निकालकर देखती है कि उनमें से कौन-सा साथ रखना चाहिए। बड़ी लड़की एक नज़र लड़के को देख लेती है, जो लगता है किसी तरह वहाँ से जाने का बहाना ढूँढ रहा है।

बड़ी लड़की : **(एक पर्स को छूकर)** यह अच्छा है इनमें।...कब तक सोचती हो लौट आओगी ?

स्त्री : **(उस पर्स को रखकर दूसरा निकालती)** पता नहीं। बात करने में देर भी हो सकती है।

बड़ी लड़की : **(उस पर्स को लिए)** यह और भी अच्छा है।...अगर पूछें कहाँ गई हैं, किसके साथ गई हैं ?

स्त्री : कहना बताया नहीं...या बता देना जगमोहन आया था लेने। **(एक नज़र फिर कमरे पर डालकर)** कितना गंदा पड़ा है !

बड़ी लड़की : समेट रही हूँ। **(व्यस्त होती)** बताना ठीक होगा उन्हें ?

स्त्री : क्यों ?
बड़ी लड़की : ऐसे ही। वे जाकर डैडी को बतायेंगे, ख़ामख़ाह...।
स्त्री : तो क्या होगा ? **(कुछ चीज़ें ख़ुद उठाकर उसे देती)** अन्दर रख आ अभी।
बड़ी लड़की : होगा यही कि...।
स्त्री : एक आदमी के साथ चाय पीने जा रही हूँ मैं, कहीं चोरी करने तो नहीं।
बड़ी लड़की : तुम्हें पता ही है डैडी जगमोहन अंकल को...।
स्त्री : पसन्द भी करते हैं तेरे डैडी किसी को ?
बड़ी लड़की : फिर भी थोड़ा जल्दी आ सको तुम, तो...।
स्त्री : मुझे उससे कुछ ज़रूरी बात करनी है। उसे कई काम थे शाम को जो उसने मेरी ख़ातिर कैंसिल किये हैं। बेकार आदमी नहीं है वह कि जब चाहा बुला लिया, जब चाहा कह दिया जाओ अब।

लड़का अस्थिर भाव से टहलता दरवाज़े के पास पहुँच जाता है।

लड़का : मैं ज़रा जा रहा हूँ, बिन्नी !
बड़ी लड़की : तू भी ?.. तू कहाँ जा रहा है ?
लड़का : यहीं तक ज़रा। आ जाऊँगा थोड़ी देर में।
बड़ी लड़की : तो जुनेजा अंकल के आने पर मैं...?
लड़का : आ जाऊँगा तब तक शायद।
बड़ी लड़की : शायद ?
लड़का : नहीं...आ ही जाऊँगा।

चला जाता है।

बड़ी लड़की : **(पीछे से)** सुन ! **(दरवाज़े की ओर बढ़ती)** अशोक !

लड़का नहीं रुकता, तो होंठ सिकोड़े स्त्री की तरफ़ लौट आती है।

: कम-से-कम पत्ती लेकर तो दे जाता।
स्त्री : **(जैसे कहने से पहले तैयारी करके)** तुझसे एक बात कहना चाहती थी।
बड़ी लड़की : यह सब छोड़ आऊँ अन्दर ? वहाँ भी कितना कुछ बिखरा है। सोचती हूँ जगमोहन अंकल के आने से पहले...।
स्त्री : मुझे ज़रा-सी ही बात कहनी है।
बड़ी लड़की : बताओ।

स्त्री : अगली बार आने पर मैं तुझे यहाँ न मिलूँ शायद ।

बड़ी लड़की : कैसी बात कर रही हो ?

स्त्री : जगमोहन को आज मैंने इसीलिए फ़ोन किया था ।

बड़ी लड़की : तो ?

स्त्री : तो अब जो भी हो। मैं जानती थी एक दिन आना ही है ऐसा ।

बड़ी लड़की : तो तुमने पूरी तरह सोच लिया है कि...?

स्त्री : (**हलके से आँखें मूंदकर**) बिलकुल सोच लिया है ।

: (**आँखें झपकती**) जा तू अब ।

बड़ी लड़की पल-भर चुपचाप उसे देखती खड़ी रहती है। फिर सोचते भाव से अन्दर को चल देती है ।

बड़ी लड़की : (**चलते-चलते**) और सोच लेतीं थोड़ा...।

चली जाती है ।

स्त्री : कब तक और ?

गले की माला को उँगली में लपेटते हुए झटका लगने से माला टूट जाती है। परेशान होकर वह माला को उतार देती है और जाकर कबर्ड से दूसरी माला निकाल लेती है ।

: साल पर साल...इसका यह हो जाय, उसका वह हो जाय !

मालाओं का डब्बा रखकर कबर्ड को बन्द करना चाहती है। पर बीच की चीज़ों के अव्यवस्थित हो जाने से कबर्ड ठीक से बन्द नहीं होता ।

: एक दिन...दूसरा दिन !

नहीं ही बन्द होता, तो उसे पूरा खोलकर झटके से बन्द करती है ।

: एक साल...दूसरा साल !

कबर्ड के नीचे रखे जूते-चप्पलों को पैर से टटोल कर एक चप्पल निकालने की कोशिश करती है। पर दूसरा पैर नहीं मिलता, तो सबको ठोकरें लगाकर पीछे हटा देती है ।

: अब भी और सोचूँ थोड़ा !

ड्रेसिंग टेबल के सामने चली जाती है। कुछ पल असमंजस में रहती है कि वहाँ क्यों आयी

है। फिर ध्यान हो आने से आईने में देखकर माला पहनने लगती है। पहनकर अपने को ध्यान से देखती है। गरदन उठाकर और खाल को मलकर चेहरे की झुर्रियाँ निकालने की कोशिश करती है।

: कब तक ?...क्यों ?

फिर समझ में नहीं आता कि क्या करना है। ड्रेसिंग टेबल की कुछ चीज़ों को ऐसे ही उठाती-रखती है। क्रीम की शीशी हाथ में आ जाने पर पल-भर उसे देखती रहती है। फिर खोल लेती है।

: घर दफ़्तर...घर दफ़्तर !

क्रीम चेहरे पर लगाते हुए ध्यान आता है कि वह इस वक्त नही लगानी थी। उसे तौलिये से पोंछ कर एक और शीशी उठा लेती है। उसमें से लोशन रूई पर लेकर सोचती है कहाँ लगाये। और कहीं का नहीं सूझता, तो उससे कलाइयाँ साफ़ करने लगती है।

: सोचो...सोचो !

ध्यान सिर के बालों में अटक जाता है। अनमनेपन में लोशन वाली रूई सिर पर लगाने लगती है, पर बीच में ही हाथ रोककर उसे अलग रख देती है। उँगलियों से टटोलकर देखती है कि कहाँ सफ़ेद बाल ज्यादा नजर आ रहे हैं। कंघी ढूँढती है, पर वह मिलती नहीं। उतावली में सभी खाने-दराज़ें देख डालती है। आखिर कंघी वहीं तौलिये के नीचे से मिल जाती है।

: चख्-चख्... किट्-किट्... चख्-चख्.. किट्-किट् ! क्या सोचो ?

कंघी से सफ़ेद बालों को ढकने लगती है। ध्यान आँखों की झाइयों पर चला जाता है, तो कंघी रखकर उन्हें सहलाने लगती है। तभी पुरुष ३ बाहर के दरवाज़े से आता है...सिगरेट के कश खींचकर छल्ले बनाता। स्त्री उसे नहीं देखती,

तो वह राख झाड़ने के लिए तिपाई पर रखी ऐश-ट्रे की तरफ़ बढ़ जाता है। स्त्री पाउडर की डब्बी खोलकर आँखों के नीचे पाउडर लगाती है। डब्बी वाला हाथ काँप जाने से थोड़ा पाउडर बिखर जाता है।

: **(उसाँस के साथ)** कुछ मत सोचो।

उठ खड़ी होती है। एक बार अपने को अच्छी तरह आईने में देख लेती है। पुरुष ३ पहले सिगरेट से दूसरा सिगरेट सुलगाता है।

: होने दो जो होता है।

सोफ़े की तरफ़ मुड़ती ही है कि पुरुष ३ पर नज़र पड़ने से ठिठक जाती है, आँखों में एक चमक भर आती है।

पुरुष ३ : **(काफ़ी कोमल स्वर में)** हलो, कुकू!

स्त्री : अरे! पता ही नहीं चला तुम्हारे आने का।

पुरुष ३ : मैंने देखा अपने से ही बात कर रही हो कुछ। इसलिए...।

स्त्री : इंतज़ार में ही थी मैं। तुम सीधे आ रहे हो दफ़्तर से?

पुरुष ३ कश खींचकर छल्ले बनाता है।

पुरुष ३ : सीधा ही समझो।

स्त्री : समझो यानी कि नहीं।

पुरुष ३ : नाउ-नाउ।...दो मिनट रुका बस पोल स्टार में। एक डिज़ाइन देना था उनका। फिर घर जाकर नहाया और सीधा...।

स्त्री : सीधा कहते हो इसे?

पुरुष ३ : **(छल्ले बनाता)** तुम नहीं बदलीं बिलकुल। उसी तरह डाँटती हो आज भी। पर बात इतनी-सी है कुकू डियर, कि दफ़्तर के कपड़ों में सारी शाम उलझन होती, इसलिए सोचा कि...।

स्त्री : लेकिन मैंने कहा नहीं था बिलकुल सीधे आना? बिना एक मिनट भी ज़ाया किये?

पुरुष ३ : ज़ाया कहाँ किया एक मिनट भी? पोल स्टार में तो !

स्त्री : रहने दो अब। तुम्हारी बहानेबाज़ी नयी चीज़ नहीं है मेरे लिए।

पुरुष ३ : **(सोफ़े पर बैठता)** कह लो जो जी चाहे। बिला वजह लगाम खींचे जाना मेरे लिए भी नयी चीज़ नहीं है।

स्त्री : बैठ रहे हो, चलना नहीं है ?

पुरुष ३ : एक मिनट। चल ही रहे हैं बस। बैठो।

स्त्री अनमने ढंग से पास सोफ़े पर बैठ जाती है।

: जिस तरह फ़ोन किया तुमने अचानक, उससे मुझे कहीं लगा कि...।

स्त्री की आँखें उमड़ आती हैं।

स्त्री : **(उसके हाथ पर हाथ रखकर)** जोग !

पुरुष ३ : **(हाथ सहलाता)** क्या बात है, कुकू ?

स्त्री : मैं वहाँ पहुँच गयी हूँ जहाँ पहुँचने से डरती रही हूँ ज़िंदगी-भर। मुझे आज लगता है कि...।

पुरुष ३ : **(हाथ पर हलकी थपकियाँ देता)** परेशान नहीं होते इस तरह।

स्त्री : मैं सच कह रही हूँ। आज अगर तुम मुझसे कहो कि...।

पुरुष ३ : **(अंदर की तरफ़ देखकर)** घर पर कोई नहीं है ?

स्त्री : बिन्नी है अंदर।

हाथ हटा लेती है।

पुरुष ३ : यहीं हैं वह ? उसका तो सुना था कि...।

स्त्री : हाँ ! ...पर आयी हुई है कल से।

पुरुष ३ : तब का देखा है उसे। कितने साल हो गये !

स्त्री : अब आ ही रही होगी बाहर।...देखो, तुमसे बहुत-बहुत बातें करनी हैं मुझे आज।

पुरुष ३ : मैं सुनने के लिए ही तो आया हूँ। फ़ोन पर तुम्हारी आवाज़ से ही मुझे लग गया था कि...।

स्त्री : मैं बहुत...वो थी उस वक्त।

पुरुष ३ : वह तो इस वक्त भी हो।

स्त्री : तुम कितनी अच्छी तरह समझते हो मुझे...कितनी अच्छी तरह ! इस वक्त मेरी जो हालत है अंदर से...।

स्वर भर्रा जाता है।

पुरुष ३ : प्लीज़ !

स्त्री : जोग !

पुरुष ३ : बोलो।

स्त्री : तुम जानते हो मैं...एक तुम्हीं हो जिस पर मैं...।

पुरुष ३ : कहती क्यों हो ? कहने की बात है यह ?

स्त्री : फिर भी मुँह से निकल जाती है। देखो, ऐसा है कि...नहीं।

बाहर चलकर ही बात करूँगी।

पुरुष ३ : एक सुझाव है मेरा।

स्त्री : बताओ।

पुरुष ३ : बात यहीं कर लो जो करनी है। उसके बाद...।

स्त्री : ना-ना। यहाँ नहीं।

पुरुष ३ : क्यों?

स्त्री : यहाँ हो नहीं सकेगी बात मुझसे। हाँ, तुम कुछ वैसा समझते हो बाहर चलने में मेरे साथ, तो...।

पुरुष ३ : कैसी बात करती हो? तुम जहाँ भी कहो, चलते हैं। मैं तो इसलिए कह रहा था कि...।

स्त्री : जानती हूँ सब। तुम्हारी बात ग़लत नहीं समझती मैं कभी।

पुरुष ३ : तो बताओ कहाँ चलोगी?

स्त्री : जहाँ भी ठीक समझो तुम।

पुरुष ३ : मैं ठीक समझूँ? हमेशा तुम्हीं नहीं तय किया करती थीं?

स्त्री : गिज़ा कैसा रहेगा?...वहाँ वही कोने वाली टेबल खाली मिल जाय शायद।

पुरुष ३ : पूछो नहीं। यह कहो, गिज़ा।

स्त्री : या यॉर्क्स?...वहाँ इस वक्त ज़्यादा लोग नहीं होते।

पुरुष ३ : मैंने कहा न...।

स्त्री : अच्छा उस छोटे रेस्तराँ में चलें जहाँ के कबाब तुम्हें बहुत पसंद हैं? मैं तब के बाद कभी वहाँ नहीं गयी।

पुरुष ३ : (**हिचकिचाहट के साथ**) वहाँ? जाता नहीं वैसे मैं वहाँ अब। ...पर तुम्हारा वहीं के लिए मन हो, तो चल भी सकते हैं।

स्त्री : देखो...एक बात तो बता ही दूँ तुम्हें चलने से पहले।

पुरुष ३ : (**छल्ले छोड़ते**) क्या बात?

स्त्री : मैंने...कल एक फ़ैसला कर लिया है मन में।

पुरुष ३ : हँहाँ?

स्त्री : वैसे उन दिनों भी सुनी होगी तुमने ऐसी बात मेरे मुँह से... पर इस बार सचमुच कर लिया है।

पुरुष ३ : (**जैसे बात को आत्मसात् करता**) हूँ!

पल-भर की खामोशी जिसमें वह कुछ सोचता हुआ इधर-उधर देखता है। फिर जैसे किसी किताब पर आँख अटक जाने से उठकर शेल्फ़ की तरफ़ चला जाता है।

स्त्री : उधर क्यों चले गये ?

पुरुष ३ : **(शेल्फ़ से किताब निकालता)** ऐसे ही ।...यह किताब देखना चाहता था ज़रा ।

स्त्री : तुम्हें शायद विश्वास नहीं आया मेरी बात पर ।

पुरुष ३ : सुन रहा हूँ मैं ।

स्त्री : मेरे लिए पहले भी असम्भव था यहाँ यह सब सहना । तुम जानते ही हो । पर अब आकर बिलकुल-बिलकुल असम्भव हो गया है ।

पुरुष ३ : **(पन्ने पलटता)** तो मतलब है कि...?

स्त्री : ठीक सोच रहे हो तुम ।

पुरुष ३ : **(किताब वापस रखता)** हूँ !

स्त्री उठकर उसकी तरफ़ आती है ।

स्त्री : मैं तुम्हें बता नहीं सकती कि मुझे हमेशा कितना अफ़सोस रहा है इस बात का कि मेरी वजह से तुम्हें भी...तुम्हें भी इतनी तकलीफ़ उठानी पड़ी है ज़िंदगी में ।

पुरुष ३ : **(अपनी गरदन सहलाता)** देखो...सच पूछो, तो मैं अब ज़्यादा सोचता ही नहीं इस बारे में ।

टहलता हुआ उसके पास से आगे निकल आता है ।

स्त्री : मुझे याद है तुम कहा करते थे, 'सोचने से कुछ होना हो, तब तो सोचे भी आदमी ।'

पुरुष ३ : हाँ...यही तो ।

स्त्री : पर यह भी कि 'कल और आज में फ़र्क होता है ।' होता है न ?

पुरुष ३ : हाँ...होता है । बहुत-बहुत ।

स्त्री : इसीलिए कहना चाहती हूँ तुमसे कि...।

बड़ी लड़की अन्दर से आती है ।

बड़ी लड़की : ममा, अंदर जो कपड़े इस्तरी के लिए रखे हैं...**(पुरुष ३ को देखकर)** हलो, अंकल !

पुरुष ३ : हलो, हलो ! ...अरे वाह ! यह तू ही है क्या ?

बड़ी लड़की : आपको क्या लगता है ?

पुरुष ३ : इतनी-सी थी तू तो ? **(स्त्री से)** कितनी बड़ी नज़र आने लगी अब !

स्त्री : हाँ...यह चेहरा निकल आया है !

पुरुष ३ : उन दिनों फ्राक पहना करती थी अभी।

बड़ी लड़की : (**सकुचाती**) पता नहीं किन दिनों !

पुरुष ३ : याद है कैसे मेरे हाथ पर काटा था इसने एक बार ? बहुत ही शैतान थी।

स्त्री : (**सिर हिलाकर**) धरी रह जाती है सारी शैतानी आखिर।

बड़ी लड़की : बैठिये आप। मैं अभी आती हूँ उधर से।

अहाते के दरवाज़े की तरफ़ चल देती है।

पुरुष ३ : भाग कहाँ रही है ?

बड़ी लड़की : आ रही हूँ बस।

चली जाती है।

पुरुष ३ : कितनी गदरायी हुई लड़की थी ! गाल इस तरह फूले-फूले थे कि...।

स्त्री : सब पिचक जाते हैं गाल-वाल !

पुरुष ३ : पर मैंने तो सुना था कि...अपनी मर्ज़ी से ही इसने...?

स्त्री : हाँ, अपनी मर्ज़ी से ही। अपनी मर्ज़ी का ही तो फल है यह कि...।

पुरुष ३ : बात लेकिन काफ़ी बड़प्पन से करती है।

स्त्री : यह उम्र और इतना बड़प्पन ! ...हाँ तो चलें अब फिर ?

पुरुष ३ : जैसा कहो।

स्त्री : (**अपने पर्स में रुमाल ढूँढती**) कहाँ गया ? (**रुमाल मिल जाने से पर्स बंद करती**) है यह इसमें।...तो कब तक लौट आऊँगी मैं ? इसलिए पूछ रही हूँ कि उसी तरह कह जाऊँ इससे ताकि...।

पुरुष ३ : तुम पर है यह। जैसा भी कह दो।

स्त्री : कह देती हूँ, शायद देर हो जाय मुझे। कोई आने वाला है, उसे भी बता देगी।

पुरुष ३ : कोई और भी आने वाला है ?

स्त्री : जुनेजा। वही आदमी जिसकी वजह से...तुम जानते ही हो सब।(**अहाते की तरफ़ देखती**) बिन्नी! (**जवाब न मिलने से**) बिन्नी ! ...कहाँ चली गयी यह ?

अहाते के दरवाज़े से जाकर उधर देख लेती है और कुछ उत्तेजित-सी लौट आती है।

: पता नहीं कहाँ चली गयी। यह लड़की भी अब...!

पुरुष ३ : इंतज़ार कर लो।

स्त्री : नहीं। वह आदमी आ गया, तो मुश्किल हो जायेगी। मुझे बहुत ज़रूरी बात करनी है तुमसे। आज ही। अभी!

पुरुष ३ : **(नया सिगरेट सुलगाता)** तो ठीक है। एट योर डिस्पोज़ल।

स्त्री : **(इस तरह कमरे को देखती जैसे कि कोई चीज वहाँ छूटी जा रही हो)** हाँ...आओ।

पुरुष ३ : **(चलते-चलते रुककर)** लेकिन...घर इस तरह अकेला छोड़ जाओगी?

स्त्री : नहीं...अभी आ जायेगा कोई-न-कोई।

पुरुष ३ : **(छल्ले छोड़ता)** तुम्हारे ऊपर है। जैसा भी ठीक समझो।

स्त्री : **(फिर एक नजर कमरे पर डालकर)** मेरे लिए तो...आओ।

पुरुष ३ पहले निकल जाता है। स्त्री फिर से पर्स खोलकर उसमें कोई चीज ढूँढती पीछे-पीछे। कुछ क्षण मंच खाली रहता है। फिर बाहर से छोटी लड़की के सिसककर रोने का स्वर सुनायी देता है। वह रोती हुई अन्दर आकर सोफ़े पर औंधी हो जाती है। फिर उठकर कमरे के खालीपन पर नजर डालती है और उसी तरह रोती-सिसकती अंदर के कमरे में चली जाती है। मंच फिर दो-एक क्षण खाली रहता है। उसके बाद बड़ी लड़की चाय की ट्रे लिये अहाते के दरवाज़े से आती है।

बड़ी लड़की : अरे! चले भी गये ये लोग?

ट्रे डाइनिंग टेबल पर छोड़कर बाहर के दरवाज़े तक आती है, एक बार बाहर देख लेती है और कुछ क्षण अन्तर्मुख भाव से वहीं रुकी रहती है। फिर अपने को झटककर वापस डाइनिंग टेबल की तरफ़ चल देती है।

: कैसे पथरा जाता है सिर कभी-कभी!

रास्ते में ड्रेसिंग टेबल के बिखराव को देखकर रुक जाती है और जल्दी से वहाँ की चीज़ों को सहेज देती है।

: ज़रा ध्यान न दे आदमी...जंगल हो जाता है सब।

वहाँ से हटकर डाइनिंग टेबल के पास आ जाती

है और अपने लिए चाय की प्याली बनाने लगती है। छोटी लड़की उसी तरह सिसकती अंदर से आती है।

छोटी लड़की : जब नहीं हो-होना होता, तो सब लोग होते हैं सिर पर। और जब हो-होना होता है, तो कोई भी नहीं दि-दिखता कहीं।

बड़ी लड़की चाय बनाना बीच में छोड़कर उसकी तरफ़ बढ़ आती है।

बड़ी लड़की : किन्नी ! यह फिर क्या हुआ तुझे ? बाहर से कब आयी तू ?

छोटी लड़की : कब आयी मैं ! यहाँ पर को-कोई भी क्यों नहीं था ? तु-तुम भी कहाँ थीं थोड़ी देर पहले !

बड़ी लड़की : मैं चाय की पत्ती लाने चली गयी थी।...किसने, अशोक ने मारा है तुझे ?

छोटी लड़की : वह भी क-कहाँ था इस वक्त ? मेरे कान खींचने के लिए तो पता नहीं क-कहाँ से चला आयेगा। पर ज-जब सुरेखा की ममी से बात करने की बात थी, त-तो...।

बड़ी लड़की : सुरेखा की ममी ने कुछ कहा है तुझसे ?

छोटी लड़की : ममा कहाँ हैं ? मुझे उन्हें स-साथ लेकर जाना है वहाँ।

बड़ी लड़की : कहाँ ? सुरेखा के घर ?

छोटी लड़की : सुरेखा की ममी बुला रही है उन्हें। कहती है अभी ल-लेकर आ।

बड़ी लड़की : पर किस बात के लिए ?

छोटी लड़की : अशोक को देख लिया था सबने हम लोगों को डाँटते। सुरेखा की ममी ने सुरेखा को घ-घर ले जाकर पीटा, तो उसने... उसने म-मेरा नाम लगा दिया।

बड़ी लड़की : क्या कहा ?

छोटी लड़की : कि मैं सिखाती हूँ उसे ये सब ब-बातें।

बड़ी लड़की : अच्छा...तो ?

छोटी लड़की : तो...सुरेखा की ममी ने मुझे बुलाकर इस तरह डाँटा है जैसे ...पहले बताओ ममा कहाँ हैं ? मैं उन्हें अभी स-साथ लेकर जाऊँगी। क-कहती है मैं उसकी लड़की को बिगाड़ रही हूँ। और भी बु-बुरी-बुरी बातें हमारे घर को लेकर।

बड़ी लड़की : हमारे घर में किसे लेकर ?

छोटी लड़की : सभी को। तु-तुम्हें। अशोक को। डैडी को। म-ममा को। तुम बताती क्यों नहीं ममा कहाँ हैं ?

बड़ी लड़की : ममा बाहर गयी हैं ।

छोटी लड़की : बाहर कहाँ ?

बड़ी लड़की : तुझे सब जगह का पता है कि कहाँ-कहाँ जाया जा सकता है बाहर ?

छोटी लड़की : **(और बिफरती)** तु-तुम भी मुझी को डाँट रही हो ? ममा नहीं हैं, तो तुम चलो मेरे साथ ।

बड़ी लड़की : मैं नहीं चल सकती ।

छोटी लड़की : **(ताव में)** क्यों नहीं चल सकतीं ?

बड़ी लड़की : नहीं चल सकती, कह दिया न !

छोटी लड़की : **(उसे परे धकेलती)** मत चलो, नहीं चल सकतीं तो ।

बड़ी लड़की : **(ग़ुस्से से)** किन्नी !

छोटी लड़की : बात मत करो मुझसे । किन्नी !

बड़ी लड़की : तुझे बिलकुल भी तमीज़ नहीं है क्या ?

छोटी लड़की : नहीं है मुझे तमीज़ ।

बड़ी लड़की : देख, तू मुझसे ही मार खा बैठेगी आज ।

छोटी लड़की : मार लो न तुम ।...इनसे ही म-मार खा बैठूँगी आज !

बड़ी लड़की : तू इस वक़्त अपना यह रोना बंद करेगी या नहीं ?

छोटी लड़की : नहीं बंद करूँगी ।...रोना बंद करेगी या नहीं !

बड़ी लड़की : तो ठीक है । रोती रह बैठकर ।

छोटी लड़की : रो-रोती रह बैठकर !

अहाते के पीछे से दरवाज़े की कुंडी खटखटाने की आवाज़ सुनायी देती है ।

बड़ी लड़की : **(उधर देखती)** यह...यह इधर से कौन आया हो सकता है इस वक़्त ?

जल्दी से अहाते के दरवाज़े से चली जाती है । छोटी लड़की विद्रोह के भाव से एक कुरसी पर जम जाती है । बड़ी लड़की पुरुष ४ के साथ वापस आती है ।

बड़ी लड़की : **(आती हुई)** मैंने सोचा कि कौन हो सकता है जो पीछे का दरवाज़ा खटखटाये । आपका पता था आप आने वाले हैं । पर आप तो हमेशा आगे के दरवाज़े से ही आते हैं, इसलिए...।

पुरुष ४ : मैं उसी दरवाज़े से आता लेकिन...**(छोटी लड़की को देखकर)** इसे क्या हुआ है ? इस तरह क्यों बैठी है वहाँ ?

बड़ी लड़की : (**छोटी लड़की से**) जुनेजा अंकल आये हैं, इधर आकर बात तो कर इनसे।

छोटी लड़की मुँह फेरकर कुरसी की पीठ पर बाँह फैला लेती है।

पुरुष ४ : (**छोटी लड़की के पास आता**) अरे! यह तो रो रही है। (**उसके सिर पर हाथ फेरता**) क्यों, क्या हुआ मुनिया को? किसने नाराज़ कर दिया? (**पुचकारता**) उठो बेटे, इस तरह अच्छा नहीं लगता। अब आप बड़े हो गये हैं, इसलिए...।

छोटी लड़की : (**सहसा उठकर बाहर को चलती**) हाँ...बड़े हो गये हैं? पता नहीं किस वक़्त छोटे हो जाते हैं, किस वक़्त बड़े हो हो जाते हैं! (**बाहर के दरवाज़े के पास से**) हम नहीं लौटकर आयेंगे अब...जब तक ममा नहीं आ जातीं।

चली जाती है।

पुरुष ४ : (**लौटकर बड़ी लड़की की तरफ़ आता**) सावित्री बाहर गयी है?

बड़ी लड़की सिर्फ़ सिर हिला देती है।

: मैं थोड़ी देर पहले आ गया था। बाहर सड़क पर न्यू इण्डिया की गाड़ी खड़ी देखी, तो कुछ देर पीछे को घूमने को निकल गया। तेरे डैडी ने बताया था जगमोहन आजकल यहीं है... फिर से ट्रांसफ़र होकर आ गया है।...वह ऐसे ही आया था मिलने, या...?

बड़ी लड़की : ममा को पता होगा। मैं नहीं जानती।

पुरुष ४ : अशोक ने ज़िक्र नहीं किया मुझसे। उसे भी पता नहीं होगा शायद।

बड़ी लड़की : अशोक मिला है आपसे?

पुरुष ४ : बस स्टाप पर खड़ा था। मैंने पूछा, तो बोला कि आप ही के यहाँ जा रहा हूँ, डैडी का हालचाल पता करने। कहने लगा आप भी चलिए, बाद में साथ ही आ जायेंगे। पर मैंने सोचा कि एक बार जब इतनी दूर आ ही गया हूँ, तो सावित्री से मिलकर ही जाऊँ। फिर उसे भी जिस हाल में छोड़ आया हूँ, उसकी वजह से...।

बड़ी लड़की : किसकी बात कर रहे हैं...डैडी की?

पुरुष ४ : हाँ, महेन्द्रनाथ की ही। एक तो सारी रात सोया नहीं वह। दूसरे...।

बड़ी लड़की : तबीयत ठीक नहीं उनकी ?

पुरुष ४ : तबीयत भी ठीक नहीं और वैसे भी...मैं तो समझता हूँ महेन्द्रनाथ ख़ुद ज़िम्मेदार है अपनी यह हालत करने के लिए ?

बड़ी लड़की : (**उस प्रकरण से बचना चाहती**) चाय बनाऊँ आपके लिए ?

पुरुष ४ : (**चाय का सामान देखकर**) किसके लिए बनाये बैठी थी इतनी चाय ? पी नहीं, लगता है, किसी ने ।

बड़ी लड़की : (**असमंजस में**) यह मैंने...बनायी थी क्योंकि...क्योंकि सोच रही थी कि...।

पुरुष ४ : (**जैसे बात को समझकर**) वे लोग जल्दी चले गये होंगे। ...सावित्री को पता था न मैं आने वाला हूँ ?

बड़ी लड़की : (**आहिस्ता से**) पता था ।

पुरुष ४ : यह भी बताया नहीं मुझे अशोक ने...पर उसके लहज़े से ही मुझे लग गया था कि...।(**फिर जैसे कोई बात समझ में आ जाने से**) अच्छा, अच्छा, अच्छा ! काफ़ी समझदार लड़का है।

बड़ी लड़की : (**चीनीदानी हाथ में लिए**) चीनी कितनी ?

पुरुष ४ : चीनी बिलकुल नहीं। मुझे मना है चीनी। वह शायद इसीलिए मुझे वापस ले चलना चाहता था कि...उसे मालूम होगा जगमोहन का ।

बड़ी लड़की : दूध ?

पुरुष ४ : हमेशा जितना ।

बड़ी लड़की : कुछ नमकीन लाऊँ अंदर से ?

पुरुष ४ : नहीं ।

बड़ी लड़की : बैठ जाइये ।

पुरुष ४ : ओ हाँ !

वहीं एक कुरसी खींचकर बैठ जाता है। बड़ी लड़की एक प्याली उसे देकर दूसरी प्याली ख़ुद लेकर बैठ जाती है। कुछ पल ख़ामोशी ।

बड़ी लड़की : आप कहाँ-कहाँ घूम आये इस बीच ? सुना था कहीं बाहर गये थे ।

पुरुष ४ : हाँ, गया था बाहर। पर किसी नई जगह नहीं गया ।

फिर कुछ पल ख़ामोशी ।

बड़ी लड़की : सुषमा का क्या हाल है ?

पुरुष ४ : ठीक-ठाक है अपने घर में।

बड़ी लड़की : कोई बच्चा-अच्चा ?

पुरुष ४ : अभी नहीं।

फिर कुछ पल ख़ामोशी।

बड़ी लड़की : आप तो बिलकुल चुप बैठे हैं। कोई बात कीजिए न !

पुरुष ४ : (**उसाँस के साथ**) क्या बात करूँ ?

बड़ी लड़की : कुछ भी।

पुरुष ४ : सोचकर तो बहुत-सी बातें आया था। सावित्री होती, तो शायद कुछ बात करता भी। पर अब लग रहा है बेकार ही है सब।

फिर कुछ पल ख़ामोशी। दोनों लगभग एक-साथ अपनी-अपनी प्याली ख़ाली करके रख देते हैं।

बड़ी लड़की : एक बात पूछूँ...डैडी को फिर से वही दौरा तो नहीं पड़ा, ब्लड-प्रेशर का ?

पुरुष ४ : यह भी पूछने की बात है ?

बड़ी लड़की : आप उन्हें समझाते क्यों नहीं कि...?

पुरुष ४ : (**उठता हुआ**) कोई समझा सकता है उसे ? वह इस औरत को इतना चाहता है, इतना चाहता है अंदर से कि...।

बड़ी लड़की : यह आप कैसे कह सकते हैं ?

पुरुष ४ : तुझे लगता है यह बात सही नहीं है ?

बड़ी लड़की : (**उठती हुई**) कैसे सही हो सकती है ?...(**अन्तर्मुख भाव से**) आप नहीं जानते हमने इन दोनों के बीच क्या-क्या गुज़रते देखा है इस घर में।

पुरुष ४ : देखा जो कुछ भी हो...।

बड़ी लड़की : इतने साधारण ढंग से उड़ा देने की बात नहीं है, अंकल ! मैं यहाँ थी, तो मुझे कई बार लगता था कि मैं एक घर में नहीं, चिड़ियाघर के एक पिंजरे में रहती हूँ जहाँ...आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या-क्या होता रहा है यहाँ। डैडी का चीख़ते हुए ममा के कपड़े तार-तार कर देना...उनके मुँह पर पट्टी बाँधकर उन्हें बंद कमरे में पीटना...खींचते हुए गुसलखाने में कमोड पर ले जाकर...(**सिहरकर**) मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने-कितने भयानक दृश्य देखे हैं इस घर में मैंने। कोई भी बाहर का आदमी उस सबको देखता-जानता, तो यही कहता कि क्यों नहीं बहुत पहले ही ये लोग...?

पुरुष ४ : तूने मुझे नयी बात नहीं बतायी कोई। महेन्द्रनाथ खुद मुझे बताता रहा है यह सब।

बड़ी लड़की : बताते रहे हैं ? फिर भी आप कहते हैं कि...?

पुरुष ४ : फिर भी कहता हूँ कि वह इसे बहुत प्यार करता है।

बड़ी लड़की : कैसे कहते हैं यह आप ? दो आदमी जो रात-दिन एक-दूसरे की जान नोंचने में लगे रहते हों...?

पुरुष ४ : मैं दोनों की नहीं, एक की बात कह रहा हूँ।

बड़ी लड़की : तो आप सचमुच मानते है कि...?

पुरुष ४ : बिलकुल मानता हूँ। इसीलिए कहता हूँ कि अपनी आज की हालत के लिए ज़िम्मेदार महेन्द्रनाथ खुद है। अगर ऐसा न होता, तो आज सुबह से ही रिरियाकर मुझसे न कह रहा होता कि जैसे भी हो, मैं इससे बात करके इसे समझाऊँ। मैं इस वक्त यहाँ न आया होता, तो पता है क्या होता ?

बड़ी लड़की : क्या होता ?

पुरुष ४ : महेन्द्र खुद यहाँ चला आया होता। बिना परवाह किये कि यहाँ आकर इस ब्लड-प्रेशर में उसका क्या हाल होगा। और ऐसा पहली बार न होता, तुझे पता ही है। मैंने कितनी मुश्किल से समझा-बुझाकर उसे रोका है, मैं ही जानता हूँ। मेरे मन में कहीं थोड़ा-सा भरोसा बाक़ी था कि शायद अब भी कुछ हो सके...मेरे बात करने से ही कुछ बात बन सके। पर आकर बाहर न्यू इण्डिया की गाड़ी खड़ी देखी, तो मुझे लगा कि नहीं, कुछ नहीं हो सकता। कुछ नहीं हो सकता। बात करके मैं सिर्फ़ अपने को...मेरा ख़याल है चलना चाहिए मुझे अब। जाते हुए मुझे उसके लिए दवाई भी ले जानी है।...अच्छा।

बाहर के दरवाज़े की तरफ़ चल देता है। बड़ी लड़की अपनी जगह पर जड़-सी खड़ी रहती है। फिर दो-एक क़दम उसकी तरफ़ बढ़ जाती है।

बड़ी लड़की : अंकल !

पुरुष ४ : (**रुककर**) कहो।

बड़ी लड़की : आप जाकर डैडी को यह बात बता देंगे ?

पुरुष ४ : कौन-सी ?

बड़ी लड़की : यही...जगमोहन अंकल के आने की ?

पुरुष ४ : क्यों ?...नहीं बतानी चाहिए ?

बड़ी लड़की : ऐसा है कि...।

पुरुष ४ : (**हल्के से आँखें मूँदकर खोलता**) मैं न भी बताऊँ शायद। पर कुछ फ़र्क नहीं पड़ने का उससे...बैठ तू।

दरवाज़े से बाहर जाने लगता है।

बड़ी लड़की : अंकल!

पुरुष ४ : (**फिर रुककर**) हाँ, बेटे!

बड़ी लड़की : सचमुच कुछ नहीं हो सकता क्या?

पुरुष ४ : एक दिन के लिए हो सकता है शायद। दो दिन के लिए हो सकता है। पर हमेशा के लिए...कुछ भी नहीं।

बड़ी लड़की : तो इस हालत में क्या यही बेहतर नहीं कि...?

बाहर से स्त्री के शब्द सुनायी देते है।

स्त्री : छोड़ दे मेरा हाथ। छोड़ भी।

बड़ी लड़की : आ गयीं हैं वे लौटकर।

पुरुष ४ : हाँ।

बाहर जाने की बजाय होंठ चबाता डाइनिंग टेबल की तरफ़ बढ़ जाता है। स्त्री छोटी लड़की के साथ आती है। छोटी लड़की उसे बाँह से बाहर खींच रही है।

छोटी लड़की : चलती क्यों नहीं तुम मेरे साथ? चलो न!

स्त्री : (**बाँह छुड़ाती**) तू हटेगी या नहीं?

छोटी लड़की : नहीं हटूँगी। उस वक्त तो घर पर नहीं थी, और अब कहती हो...।

स्त्री : छोड़ मेरी बाँह।

छोटी लड़की : नहीं छोड़ूँगी।

स्त्री : नहीं छोड़ेगी? (**ग़ुस्से से बाँह छुड़ाकर उसे परे धकेलती**) बड़ा ज़ोम चढ़ने लगा है तुझे?

छोटी लड़की : हाँ चढ़ने लगा है। जब-जब कोई बात कहता है मुझसे, यहाँ किसी को फ़ुरसत ही नहीं होती चलकर उससे पूछने की।

बड़ी लड़की : उन्हें साँस तो लेने दे। वे अभी घर में दाख़िल नहीं हुईं कि तूने...।

छोटी लड़की : तुम बात मत करो। मिट्टी के लोंदे की तरह हिली ही नहीं जब मैंने...।

स्त्री : (**उसे फ्राक से पकड़कर**) फिर से कह जो कहा है तूने!

छोटी लड़की : (**अपने को छुड़ाने के लिए संघर्ष करती**) क्या कहा है मैंने?

पूछो इनसे जब मैंने आकर इन्हें बताया था, तो...।

स्त्री : (**उसे चपत जड़ती**) तू कह तो फिर से एक बार वही बात।

पल-भर की ख़ामोशी जिसमें सबकी नज़रें स्थिर हो रहती हैं—छोटी लड़की की स्त्री पर और शेष सबकी छोटी लड़की पर।

छोटी लड़की : (**अपने आवेश से बेबस**) मिट्टी के लोंदे !...सब-के-सब मिट्टी के लोंदे !

पुरुष ४ : (**उनकी तरफ़ आता**) छोड़ दो लड़की को, सावित्री ! उस पर इस वक्त पागलपन सवार है, इसलिए...।

स्त्री : आप मत पड़िए बीच में।

पुरुष ४ : देखो...।

स्त्री : आपसे कहा है आप मत पड़िए बीच में। मुझे अपने घर में किससे किस तरह बरतना चाहिए, यह मैं औरों से बेहतर जानती हूँ। (**छोटी लड़की के एक और चपत जड़ती**) इस वक्त चुपचाप चली जा उस कमरे में। मुँह से एक लफ़्ज़ भी और कहा, तो ख़ैर नहीं तेरी।

छोटी लड़की के केवल होंठ हिलते हैं। शब्द उसके मुँह से कोई नहीं निकल पाता पर वह घायल नज़र से स्त्री को देखती उसी तरह खड़ी रहती है।

: जा उस कमरे में। सुना नहीं !

छोटी लड़की फिर भी खड़ी रहती है।

: नहीं जाएगी ?

छोटी लड़की दाँत पीसकर बिना कुछ कहे एका-एक झटके से अन्दर के कमरे में चली जाती है। स्त्री जाकर पीछे से दरवाज़े की कुण्डी लगा देती है।

: तुझसे समझूँगी अभी थोड़ी देर में।

बड़ी लड़की : बैठिए अंकल !

पुरुष ४ : नहीं, मैं अभी चला आऊँगा।

स्त्री : (**उसकी तरफ़ आती**) आपको कुछ बात करनी थी मुझसे... बताया था इसने।

पुरुष ४ : हाँ...पर इस वक्त तुम ठीक मूड में नहीं हो...।

स्त्री : मैं बिलकुल ठीक मूड में हूँ। बताइए आप।

बड़ी लड़की : अंकल कह रहे थे डैडी की तबियत फिर ठीक नहीं है।

स्त्री : घर से जाकर तबियत ठीक कब रहती है उनकी ? हर बार का यह वही एक किस्सा नहीं है ?

बड़ी लड़की : तुम थकी हुई हो। अच्छा होगा जो भी बात करनी हो, बैठकर आराम से कर लो।

स्त्री : मैं बहुत आराम से हूँ। (**पुरुष ४ से**) बताइये आप।

पुरुष ४ : ज्यादा बात अब नहीं करना चाहता। सिर्फ़ एक ही बात कहना चाहता हूँ तुमसे।

स्त्री : (**पल भर प्रतीक्षा करने के बाद**) कहिए।

पुरुष ४ : तुम किसी तरह छुटकारा नहीं दे सकती उस आदमी को ?

स्त्री : छुटकारा ? मैं ? उन्हें ? कितनी उलटी बात है !

पुरुष ४ : उलटी बात नहीं है। तुमने जिस तरह बाँध रखा है उसे अपने साथ...।

स्त्री : उन्हें बाँध रखा है ? मैंने अपने साथ ?...सिवा आपके कोई नहीं कह सकता था यह बात।

पुरुष ४ : क्योंकि और कोई जानता भी तो नहीं उतना जितना मैं जानता हूँ।

स्त्री : आप हमेशा यही मानते आए हैं कि आप बहुत ज्यादा जानते हैं। नहीं ?

पुरुष ४ : महेन्द्रनाथ के बारे में, हाँ। और जानकर ही कहता हूँ कि तुमने इस तरह शिकंजे में कस रखा है उसे कि वह अब अपने दो पैरों पर चल सकने लायक़ भी नहीं रहा।

स्त्री : अपने दो पैरों पर ! अपने दो पैर कभी थे भी उसके पास ?

पुरुष ४ : कभी की बात क्यों करती हो ? जब तुमने उसे जाना, तब से दस साल पहले से मैं उसे जानता हूँ।

स्त्री : इसीलिए शायद जब मैंने जाना, तब तक अपने दो पैर रहे ही नहीं थे उसके पास।

पुरुष ४ : मैं जानता हूँ सावित्री, कि तुम मेरे बारे में क्या-क्या सोचती और कहती हो...।

स्त्री : ज़रूर जानते होंगे...लेकिन फिर भी कितना कुछ है जो सावित्री कभी किसी के सामने नहीं कहती।

पुरुष ४ : जैसे ?

स्त्री : जैसे...पर बात तो आप करने आए हैं।

पुरुष ४ : नहीं। पहले तुम बात कर लो। (**बड़ी लड़की से**) तू बेटे, ज़रा

उधर चली जा थोड़ी देर।

बड़ी लड़की चुपचाप जाने लगती है।

स्त्री : सुन लेने दीजिए इसे भी, अगर मुझे बात करनी है तो।

पुरुष ४ : ठीक है। यहीं रह तू, बिन्नी।

बड़ी लड़की : पर मैं सोचती हूँ कि...।

स्त्री : मैं चाहती हूँ तू यहाँ रहे, तो किसी वजह से ही चाहती हूँ।

बड़ी लड़की आहिस्ता से आँखें झपककर उन दोनों से थोड़ी दूर डाइनिंग टेबल की एक कुरसी पर जा बैठती है।

पुरुष ४ : (**स्त्री से**) बैठ जाओ तुम भी।

कहता हुआ खुद सोफ़े पर बैठ जाता है। स्त्री एक मोढ़ा ले लेती है।

: कह डालो अब जो भी कहना है तुम्हें।

स्त्री : कहने से पहले एक बात पूछनी है आपसे। आदमी किस हालत में सचमुच एक आदमी होता है?

पुरुष ४ : पूछो कुछ नहीं। जो कहना है, कह डालो।

स्त्री : यूँ तो जो कोई भी एक आदमी की तरह चलता-फिरता, बात करता है, वह आदमी ही होता है...पर असल में आदमी होने के लिए क्या ज़रूरी नहीं कि उसमें अपना एक मादा, अपनी एक शख़्सियत हो?

पुरुष ४ : महेन्द्र को सामने रखकर यह तुम इसलिए कह रही हो कि...?

स्त्री : इसलिए कह रही हूँ कि जब से मैंने उसे जाना है, मैंने हमेशा हर चीज़ के लिए उसे किसी-न-किसी का सहारा ढूँढते पाया है। ख़ासतौर से आपका। यह करना चाहिए या नहीं, जुनेजा से पूछ लूँ। यहाँ जाना चाहिए या नहीं, जुनेजा से राय कर लूँ। कोई छोटी-से-छोटी चीज़ ख़रीदनी है, तो भी जुनेजा की पसंद से। कोई बड़े-से-बड़ा ख़तरा उठाना है, तो भी जुनेजा की सलाह से। यहाँ तक कि मुझसे ब्याह करने का फ़ैसला भी कैसे किया उसने? जुनेजा के हामी भरने से।

पुरुष ४ : मैं दोस्त हूँ उसका। उसे भरोसा रहा है मुझ पर।

स्त्री : और उस भरोसे का नतीजा? कि अपने-आप पर उसे कभी किसी चीज़ के लिए भरोसा नहीं रहा। ज़िंदगी में हर चीज़ की कसौटी, जुनेजा। जो जुनेजा सोचता है, जो जुनेजा

चाहता है, जो जुनेजा करता है, वही उसे भी सोचना है, वही उसे भी चाहना है, वही उसे भी करना है। क्यों ? क्योंकि जुनेजा तो एक पूरा आदमी है अपने में। और वह ख़ुद ? वह ख़ुद एक पूरे आदमी का आधा-चौथाई भी नहीं है।

पुरुष ४ : तुम इस नज़र से देख सकती हो इस चीज़ को। पर असलियत इसकी यह है कि...।

स्त्री : (**खड़ी होती**) मुझे उस असलियत की बात करने दीजिये जिसे मैं जानती हूँ।...एक आदमी है। घर बसाता है। क्यों बसाता है ? एक ज़रूरत को पूरी करने के लिए। कौन-सी ज़रूरत ? अपने अंदर के किसी उसको...एक अधूरापन कह लीजिए उसे...उसको भर सकने की। इस तरह उसे अपने लिए... अपने में...पूरा होना होता है। किन्हीं दूसरों को पूरा करते रहने में ही ज़िंदगी नहीं काटनी होती। पर आपके महेन्द्र के लिए ज़िंदगी का मतलब रहा है...जैसे सिर्फ़ दूसरों के ख़ाली ख़ाने भरने की ही एक चीज़ है वह। जो कुछ वे दूसरे उससे चाहते हैं, उम्मीद करते हैं,...या जिस तरह वे सोचते हैं उनकी ज़िंदगी में उसका इस्तेमाल हो सकता है...।

पुरुष ४ : इस्तेमाल हो सकता है ?

स्त्री : नहीं ? इस काम के लिए और कोई नहीं जा सकता, महेन्द्रनाथ चला जायेगा...इस बोझ को और कोई नहीं ढो सकता, महेन्द्रनाथ ढो लेगा। प्रेस खुला, तो भी। फ़ैक्टरी शुरू हुई, तो भी। ख़ाली ख़ाने भरने की जगह पर महेन्द्रनाथ, और ख़ाने भर चुकने पर ? महेन्द्रनाथ कहीं नहीं। महेन्द्रनाथ अपना हिस्सा पहले ही ले चुका है। पहले ही खा चुका है। और उसका हिस्सा ? (**कमरे के एक-एक सामान की तरफ़ इशारा करती**) ये ये ये ये ये, दूसरे-तीसरे-चौथे दरजे की घटिया चीज़ें जिनसे वह सोचता था उसका घर बन रहा है ?

पुरुष ४ : महेन्द्रनाथ बहुत जल्दबाज़ी बरतता था इस मामले में, मैं जानता हूँ। मगर वजह इसकी...।

स्त्री : वजह इसकी मैं थी, यही कहना चाहते हैं न ? वह मुझे ख़ुश रखने के लिए ही यह लोहा-लकड़ी जल्दी-से-जल्दी घर में भरकर हर बार अपनी बरबादी की नींव खोद लेता था ! पर असल में उसकी बरबादी की नींव क्या चीज़ खोद रही थी... क्या चीज़ और कौन आदमी...अपने दिल में तो आप भी

जानते ही होंगे।

पुरुष ४ : कहती रहो तुम। मैं बुरा नहीं मान रहा। आख़िर तुम महेन्द्र की पत्नी हो और...।

स्त्री : **(आवेश में उसकी तरफ़ मुड़ती)** मत कहिये मुझे महेन्द्र की पत्नी। महेन्द्र भी एक आदमी है, जिसके अपना घरबार है, पत्नी है, यह बात महेन्द्र को अपना कहने वालों को शुरू से ही रास नहीं आयी। महेन्द्र ने ब्याह क्या किया, आप लोगों की नज़र में आपका ही कुछ आपसे छीन लिया। महेन्द्र अब पहले की तरह हँसता नहीं! महेन्द्र अब दोस्तों में बैठकर पहले की तरह खिलता नही! महेन्द्र अब वह पहले वाला महेन्द्र रह ही नहीं गया! और महेन्द्र की जी-जान से कोशिश कि वह वही बना रहे किसी तरह। कोई यह न कह सके जिससे कि वह अब पहले वाला महेन्द्र रह ही नहीं गया। और इसके लिए महेन्द्र घर के अन्दर रात-दिन छटपटाता है। दीवारों से सिर पटकता है। बच्चों को पीटता है। बीवी के घुटने तोड़ता है। दोस्तों को अपना फ़ुरसत का वक़्त काटने के लिए उसकी ज़रूरत है। महेन्द्र के बग़ैर कोई पार्टी जमती नहीं, महेन्द्र के बग़ैर किसी पिकनिक का मज़ा नहीं आता! दोस्तों के लिए जो फ़ुरसत काटने का वसीला है, वही महेन्द्र के लिए उसका मुख्य काम है ज़िंदगी में। और उसका ही नहीं। उसके घर के लोगों का भी वही मुख्य काम होना चाहिए। तुम फ़लां जगह चलने से इनकार कैसे कर सकती हो? फ़लां से तुम ठीक से बात क्यों नहीं करतीं? तुम अपने को पढ़ी-लिखी कहती हो?...तुम्हें तो लोगों के बीच उठने-बैठने की तमीज़ नहीं है। एक औरत को इस तरह चलना चाहिए, इस तरह से बात करना चाहिए, इस तरह मुसकराना चाहिए। क्यों तुम लोगों के बीच हमेशा मेरी पोज़ीशन ख़राब करती हो? और वही महेन्द्र जो दोस्तों के बीच दब्बू-सा बना हलके-हलके मुसकराता है, घर आकर एक दरिंदा बन जाता है। पता नहीं कब किसे नोंच लेगा, कब किसे फाड़ खायेगा। आज वह ताव में अपनी कमीज़ को आग लगा देता है। कल वह सावित्री की छाती पर बैठकर उसका सिर ज़मीन से रगड़ने लगता है। बोल, बोल, बोल, चलेगी उस तरह कि नहीं जैसे मैं चाहता हूँ? मानेगी वह सब कि

नहीं जो मैं कहता हूँ ? पर सावित्री फिर भी वैसे नहीं चलती। वह सब नहीं मानती। वह नफ़रत करती है इस सबसे...इस आदमी के ऐसा होने से। वह एक पूरा आदमी चाहती है अपने लिए...एक...पूरा. आदमी। गला फाड़कर वह यह बात कहती है। कभी इस आदमी को ही वह आदमी बना सकने की कोशिश करती है। कभी तड़पकर अपने को इससे अलग कर लेना चाहती है। पर अगर उसकी कोशिशों से थोड़ा भी फ़र्क पड़ने लगता है इस आदमी में, तो दोस्तों में इसका ग़म मनाया जाने लगता है। सावित्री महेन्द्र की नाक में नकेल डालकर उसे अपने ढंग से चला रही है! सावित्री बेचारे महेन्द्र की रीढ़ तोड़कर उसे किसी लायक़ नहां रहने दे रही है! जैसे कि आदमी न होकर बिना हाड़-माँस का पुतला हो वह एक...बेचारा महेन्द्र!

हाँफती हुई चुप कर जाती है बड़ी लड़की कुहनियाँ मेज़ पर रखे और मुट्ठियों पर चेहरा टिकाये पथरायी आँखों से चुपचाप दोनों को देखती रहती है।

पुरुष ४ : **(उठता हुआ)** बिना हाड़-माँस का पुतला, या जो भी कह लो तुम उसे...पर मेरी नज़र में वह हर आदमी जैसा एक आदमी है...सिर्फ़ इतनी ही कमी है उसमें।

स्त्री : यह आप मुझे बता रहे हैं ? जिसने बाईस साल साथ जीकर जाना है उस आदमी को ?

पुरुष ४ : जिया ज़रूर है तुमने उसके साथ...जाना भी है उसे कुछ हद तक...लेकिन...।

स्त्री : **(हताशा से सिर हिलाती)** ओफ्फ़ोह! ओफ्फ़ोह! ओफ्फ़ोह!

पुरुष ४ : जो-जो बातें तुमने कहीं है अभी, वे ग़लत नहीं हैं अपने में। लेकिन बाईस साल साथ जीकर जानी हुई बातें वे नहीं हैं। आज से बाईस साल पहले भी एक बार लगभग ऐसी ही बातें मैं तुम्हारे मुँह से सुन चुका हूँ...तुम्हें याद है ?

स्त्री : आप आज ही की बात नहीं कर सकते ? बीस साल पहले! पता नहीं किस ज़िंदगी की बात है वह!

पुरुष ४ : मेरे घर पर हुई थी वह बात। तुम बात करने के लिए ही ख़ास आयी थीं वहाँ, और मेरे कंधे पर सिर रखे देर तक रोती रही थीं। तब तुमने कहा था कि...।

स्त्री : देखिये, उन दिनों की बात अगर छेड़ना ही चाहते हैं आप, तो मैं चाहूँगी कि यह लड़की...।

पुरुष ४ : क्या हर्ज है अगर अब यह यहीं रहे तो ? जब आधी बात इसके सामने हुई है, तो बाक़ी आधी भी इसके सामने ही हो जानी चाहिए ।

बड़ी लड़की : (**उठने को होकर**) लेकिन, अंकल...!

पुरुष ४ : (**स्त्री से**) तुम समझती हो कि इसके सामने मुझे नहीं करनी चाहिए यह बात ?

स्त्री : मैं अपने ख़याल से नहीं कह रही थी ।...ठीक है। आप कीजिये बात ।

कहती हुई एक कुरसी पर बैठ जाती है ।

पुरुष ४ : बैठ बिन्नी !

बड़ी लड़की फिर उसी तरह बैठ जाती है ।

: (**स्त्री से**) उस दिन पहली बार मैंने तुम्हें उस तरह ढुलते देखा था। तब तुमने कहा था कि...।

स्त्री : मैं बिलकुल बच्ची थी तब तक अभी और...।

पुरुष ४ : बच्ची थीं या जो भी थीं, पर बात बिलकुल इसी तरह करती थीं जैसे आज करती हो । उस दिन भी बिलकुल इसी तरह तुमने महेन्द्र को मेरे सामने उधेड़ा था। कहा था कि वह बहुत लिजलिजा और चिपचिपा-सा आदमी है। पर उसे वैसा बनाने वालों में नाम तब दूसरों के थे। एक नाम था उसकी माँ का और दूसरा उसके पिता का...।

स्त्री : ठीक है। उन लोगों की भी कुछ कम देन नहीं रही उसे ऐसा बनाने में ।

पुरुष ४ : पर जुनेजा का नाम तब नहीं था ऐसे लोगों में। क्यों नहीं था, कह दूँ न यह भी ?

स्त्री : देखिये...।

पुरुष ४ : बहुत पुरानी बात है। कह देने में कोई हर्ज नहीं है। मेरा नाम इसलिए नहीं था कि...।

स्त्री : मैं इज़्ज़त करती थी आपकी...बस इतनी-सी बात थी।

पुरुष ४ : तुम इज़्ज़त कह सकती हो उसे...पर वह इज़्ज़त किस लिए करती थीं ? इसलिए नहीं कि एक आदमी के तौर पर मैं महेन्द्र से कुछ बेहतर था तुम्हारी नज़र में। बल्कि सिर्फ़ इसलिए कि.. ।

स्त्री : कि आपके पास बहुत पैसा था ? और आपका बहुत दबदबा था इन लोगों के बीच ?

पुरुष ४ : नहीं। सिर्फ़ इसलिए कि मैं जैसा भी था, जो भी था...महेन्द्र नहीं था।

स्त्री : (**एकाएक उठती**) तो आप कहना चाहते हैं कि...?

पुरुष ४ : उतावली क्यों होती हो ? मुझे बात कह लेने दो। मुझसे उस वक्त तुम क्या चाहती थीं, मैं ठीक-ठीक नहीं जानता। लेकिन तुम्हारी बात से इतना ज़रूर ज़ाहिर था कि महेन्द्र को तुम तब भी वह आदमी नहीं समझती थीं जिसके साथ तुम ज़िंदगी काट सकतीं...।

स्त्री : हालाँकि उसके बाद भी आज तक उसके साथ ज़िंदगी काटती आ रही हूँ...।

पुरुष ४ : पर हर दूसरे-चौथे साल अपने को उससे झटक लेने की कोशिश करती हुई। इधर-उधर नज़र दौड़ाती हुई कि कब कोई ज़रिया मिल जाय जिससे तुम अपने को उससे अलग कर सको। पहले कुछ दिन जुनेजा एक आदमी था तुम्हारे सामने। तुमने कहा है तब तुम उसकी इज़्ज़त करती थीं। पर आज उसके बारे में जो सोचती हो, वह भी अभी बता चुकी हो। जुनेजा के बाद जिससे कुछ दिन चकाचौंध रहीं तुम, वह था शिवजीत। एक बड़ी डिग्री, बड़े-बड़े शब्द और पूरी दुनिया घूमने का अनुभव। पर असल चीज़ वही कि वह जो भी था, और ही कुछ था...महेन्द्र नहीं था। पर जल्द ही तुमने पहचानना शुरू किया कि वह निहायत दोगला क़िस्म का आदमी है। हमेशा दो तरह की बातें करता है। उसके बाद सामने आया जगमोहन। ऊँचे सम्बन्ध, ज़बान की मिठास, टिप-टाप रहने की आदत और ख़र्च की दरिया-दिली। पर तीर की असली नोक फिर उसी जगह पर। कि उसमें जो कुछ भी था, जगमोहन का-सा था...महेन्द्र का-सा नहीं था। पर शिकायत तुम्हें उससे भी होने लगी थी कि वह सब लोगों पर एक-सा पैसा क्यों उड़ाता है, दूसरे की सख़्त-से-सख़्त बात को एक ख़ामोश मुसकराहट के साथ क्यों पी जाता है। अच्छा हुआ वह ट्रांसफ़र होकर चला गया यहाँ से, वरना...।

स्त्री : यह ख़ामख़ाह का ताना-बाना क्यों बुन रहे हैं ? जो असल बात कहना चाहते हैं, वही क्यों नहीं कहते ?

पुरुष ४ : असल बात इतनी ही है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी ज़िंदगी में, तो साल-दो-साल बाद तुम यही महसूस करतीं कि तुमने एक ग़लत आदमी से शादी कर ली है। उसकी ज़िंदगी में भी ऐसे ही कोई महेन्द्र, कोई जुनेजा, कोई शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचतीं, यही सब महसूस करतीं। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है कितना कुछ एक-साथ होकर, कितना कुछ एक-साथ पाकर और कितना कुछ एक-साथ ओढ़कर जीना। वह उतना कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस-किसी के साथ भी ज़िंदगी शुरू करतीं, तुम हमेशा इतनी ही ख़ाली, इतनी ही बेचैन बनी रहतीं। वह आदमी भी इसी तरह तुम्हें अपने आसपास सिर पटकता और कपड़े फाड़ता नज़र आता और तुम...।

स्त्री : **(साड़ी का पल्लू दाँतों में लिए सिर हिलाती हँसी और रुलाई के बीच के स्वर में)** हहहहहहहहह-हः ह-हहहहह-हः हहः हहः हहः।

पुरुष ४ : **(अचकचाकर)** तुम हँस रही हो?

स्त्री : हाँ...पता नहीं...हँस ही रही हूँ शायद। आप कहते रहिये।

पुरुष ४ : आज महेन्द्र एक कुढ़ने वाला आदमी है। पर एक वक्त था जब वह सचमुच हँसता था। अंदर से हँसता था। पर यह तभी था जब कोई उस पर यह साबित करने वाला नहीं था कि कैसे हर लिहाज़ से वह हीन और छोटा है...इससे, उससे, मुझसे, तुमसे, सभी से। जब कोई उससे यह कहने वाला नहीं था कि जो-जो वह नहीं है, वही-वही उसे होना चाहिए, और जो वह है...।

स्त्री : एक उसी-उसी को देखा है आपने इस बीच...या उसके आस-पास भी किसी के साथ कुछ गुज़रते देखा है?

पुरुष ४ : वह भी देखा है। देखा है कि जिस मुट्ठी में तुम कितना कुछ एक-साथ भर लेना चाहती थीं, उसमें जो था, वह भी धीरे-धीरे बाहर फिसलता गया है। कि तुम्हारे मन में लगातार एक डर समाता गया है जिसके मारे कभी तुम घर का दामन थामती रही हो, कभी बाहर का। और कि वह डर एक दहशत में बदल गया जिस दिन तुम्हें एक बहुत बड़ा झटका खाना पड़ा...अपनी आख़िरी कोशिश में।

स्त्री : किस आख़िरी कोशिश में ?

पुरुष ४ : मनोज का बड़ा नाम था। उस नाम की डोर पकड़कर ही कहीं पहुँच सकने की आख़िरी कोशिश में। पर तुम एकदम बौरा गयीं जब तुमने पाया कि वह उतने नाम वाला आदमी तुम्हारी लड़की को साथ लेकर रातों-रात इस घर से...।

बड़ी लड़की : **(सहसा उठती)** यह आप क्या कह रहे हैं, अंकल ?

पुरुष ४ : मजबूर होकर कहना पड़ रहा है, बिन्नी ! तू शायद मनोज को अब भी उतना नहीं जानती जितना...।

बड़ी लड़की : **(हाथों में चेहरा छिपाये ढहकर बैठती)** ओह !

पुरुष ४ : ...जितना यह जानती है इसीलिए आज यह उसे बरदाश्त भी नहीं कर सकती। **(स्त्री से)** ठीक नहीं है यह ? बिन्नी के मनोज के साथ चले जाने के बाद तुमने एक अंधाधुंध कोशिश शुरू की...कभी महेन्द्र को ही और झकझोरने की, कभी अशोक को ही चाबुक लगाने की, और कभी उन दोनों से धीरज खोकर कोई और ही रास्ता, कोई और ही चारा ढूँढ सकने की। ऐसे में पता चला जगमोहन यहाँ लौट आया है। आगे के रास्ते बंद पाकर तुमने फिर पीछे की तरफ़ देखना चाहा। आज अभी बाहर गयी थीं उसके साथ। क्या बात हुई ?

स्त्री : आप समझते हैं आपको मुझसे जो कुछ भी जानने का, जो कुछ भी पूछने का हक़ हासिल है ?

पुरुष ४ : न सही। पर मैं बिना पूछे भी बता सकता हूँ कि क्या बात हुई होगी। तुमने कहा तुम बहुत-बहुत दुखी हो आज। उसने कहा उसे बहुत-बहुत हमदर्दी है तुमसे। तुमने कहा तुम जैसे भी हो अब इस घर से छुटकारा पा लेना चाहती हो। उसने कहा कितना अच्छा होता अगर इस नतीजे पर तुम कुछ साल पहले पहुँच सकी होतीं। तुमने कहा जो तब नहीं हुआ, वह अब तो हो ही सकता है। उसने कहा वह चाहता है हो सकता, पर आज इसमें बहुत-सी उलझनें सामने हैं...बच्चों की ज़िंदगी को लेकर, इसको-उसको लेकर। फिर यह भी कि इस नौकरी में उसका मन नहीं लग रहा, पता नहीं कब छोड़ दे, इसलिए अपने को लेकर भी उसका कुछ तय नहीं है इस समय। तुम गुमसुम होकर सुनती रहीं और रुमाल से आँखें पोंछती रहीं। आख़िर उसने कहा कि तुम्हें देर हो रही है,

अब लौट चलना चाहिए। तुम चुपचाप उठकर उसके साथ गाड़ी में आ बैठीं। रास्ते में उसके मुँह से यह भी निकला शायद कि तुम्हें अगर रुपये-पैसे की कुछ ज़रूरत है इस वक्त तो वह...।

स्त्री : बस बस बस बस बस बस बस! जितना सुनना चाहिए था, उससे बहुत ज्यादा सुन लिया है आपसे मैंने। बेहतर यही है कि अब आप यहाँ से चले जायें क्योंकि...।

पुरुष ४ : मैं जगमोहन के साथ हुई तुम्हारी बातचीत का सही अंदाज़ा लगा सकता हूँ क्योंकि उसकी जगह मैं होता, तो मैंने भी तुमसे यही सब कहा होता। वह कल-परसों फिर फ़ोन करने को कहकर तुम्हें घर के बाहर उतार गया। तुम मन में एक घुटन लिए घर में दाख़िल हुईं और आते ही तुमने बच्ची को पीट दिया। जाते हुए सामने थी एक पूरी ज़िंदगी। पर लौटने तक का कुल हासिल ?...उलझे हाथों का गिजगिजा पसीना और...।

स्त्री : मैंने आपसे कहा है न बस! सब-के-सब...सब-के-सब...एक-से! बिलकुल एक-से हैं आप लोग! अलग-अलग मुखौटे, पर चेहरा ?...चेहरा सबका एक ही!

पुरुष ४ : फिर भी तुम्हें लगता रहा है कि तुम चुनाव कर सकती हो। लेकिन दायें से हटकर बायें, सामने से हटकर पीछे, इस कोने से हटकर उस कोने में...क्या सचमुच कहीं कोई चुनाव नज़र आया है तुम्हें ? बोलो, आया है नज़र कहीं ?

कुछ पल ख़ामोशी जिसमें बड़ी लड़की चेहरे से हाथ हटाकर पलकें झपकती उन दोनों को देखती है। फिर अंदर के दरवाज़े पर खट्-खट् सुनायी देती है।

छोटी लड़की : (**अंदर से**) दरवाजा खोलो। खोलो दरवाज़ा।

बड़ी लड़की : (**स्त्री से**) क्या करना है, ममा ? खोलना है दरवाज़ा ?

स्त्री : रहने दे अभी।

पुरुष ४ : लेकिन इस तरह बंद रखोगी, तो...।

स्त्री : मैंने पहले भी कहा था। मेरा घर है। मैं बेहतर जानती हूँ।

छोटी लड़की : (**दरवाज़ा खटखटाती**) खोलो।(**हताश होकर**) मत खोलो।

अंदर से कुण्डी लगाने की आवाज़।

: अब खुलवा लेना मुझसे भी।

पुरुष ४ : तुम्हारा घर है। तुम बेहतर जानती हो कम-से-कम मानकर यही चलती हो। इसलिए बहुत-कुछ चाहते हुए भी मुझे अब कुछ भी सम्भव नज़र नहीं आता। और इसीलिए फिर एक बार पूछना चाहता हूँ तुमसे...क्या सचमुच किसी तरह तुम उस आदमी को छुटकारा नहीं दे सकतीं ?

स्त्री : आप बार-बार किसलिए कह रहे हैं यह बात ?

पुरुष ४ : इसलिए कि आज वह अपने को बिलकुल बेसहारा समझता है। उसके मन में यह विश्वास बिठा दिया है तुमने कि सब-कुछ होने पर भी उसके लिए ज़िंदगी में तुम्हारे सिवा कोई चारा, कोई उपाय नहीं है। और ऐसा क्या इसीलिए नहीं किया तुमने कि ज़िंदगी में और कुछ हासिल न हो, तो कम-से-कम यह नामुराद मोहरा तो हाथ में बना ही रहे ?

स्त्री : क्यों क्यों क्यों आप और-और बात करते जाना चाहते हैं अभी ? आप जाइये और कोशिश करके उसे हमेशा के लिए अपने पास रख रखिये। इस घर में आना और रहना सचमुच हित में नहीं है उसके। और मुझे भी...मुझे भी अपने पास उस मोहरे की बिलकुल-बिलकुल ज़रूरत नहीं है जो न खुद चलता है, न किसी और को चलने देता है।

पुरुष ४ : **(पल-भर चुपचाप उसे देखता रहकर हताश निर्णय के स्वर में)** तो ठीक है। वह नहीं आयेगा। वह कमज़ोर है, मगर इतना कमज़ोर नहीं है। तुमसे जुड़ा हुआ है, मगर इतना जुड़ा हुआ नहीं है। उतना बेसहारा भी नहीं है जितना वह अपने को समझता है। वह ठीक से देख सके, तो एक पूरी दुनिया है उसके आसपास। मैं कोशिश करूँगा कि वह आँख खोलकर देख सके उसे।

स्त्री : ज़रूर-ज़रूर। इस तरह उसका तो उपकार करेंगे ही आप, मेरा भी इससे बड़ा उपकार ज़िंदगी में नहीं कर सकेंगे।

पुरुष ४ : तो अब चल रहा हूँ मैं। तुमसे जितनी बात कर सकता था, कर चुका हूँ। और बात अब उसीसे जाकर करूँगा। मुझे पता है कितना मुश्किल होगा यह...फिर भी यह बात मैं उसके दिमाग़ में बिठाकर रहूँगा इस बार कि...।

लड़का बाहर से आता है। चेहरा काफ़ी उतरा हुआ है—जैसे कोई बड़ी-सी चीज़ कहीं हारकर आया हो।

: क्या बात है, अशोक ? तू चला क्यों आया वहाँ से ?

लड़का बिना उससे आँख मिलाये बड़ी लड़की की तरफ़ बढ़ जाता है।

लड़का : उठ बिन्नी ! अंदर से छड़ी निकाल दे ज़रा।

बड़ी लड़की : (**उठती हुई**) छड़ी ? वह किस लिए चाहिए तुझे ?

लड़का : डैडी को स्कूटर-रिक्शा से उतारकर लाना है। उनकी तबीयत काफ़ी ख़राब है।

बड़ी लड़की : डैडी लौट आये हैं ?

पुरुष ४ : तो...आ ही गया है वह आख़िर ?

लड़का : (**उसकी ओर देखकर मुरझाये स्वर में**) हाँ...आ ही गये हैं।

पुरुष ४ के चेहरे पर व्यथा की रेखाएँ उभर आती हैं और उसकी आँखें स्त्री से मिलकर झुक जाती हैं। स्त्री एक कुरसी की पीठ थामे चुप खड़ी रहती है। शरीर में गति दिखायी देती है, तो सिर्फ़ साँस के आने जाने की।

: (**बड़ी लड़की से**) जल्दी से निकाल दे छड़ी क्योंकि...।

बड़ी लड़की : (**अंदर के दरवाज़े की तरफ बढ़ती**) अभी दे रही हूँ।

जाकर दरवाज़ा खटखटाती है।

: किन्नी ! दरवाज़ा खोल जल्दी से।

छोटी लड़की : (**अंदर से**) नहीं खुलेगा दरवाज़ा।

बड़ी लड़की : तेरी शामत तो नहीं आयी है ? कह रही हूँ खोल जल्दी से।

छोटी लड़की : आने दो न शामत। दरवाज़ा नहीं खुलेगा।

बड़ी लड़की : (**ज़ोर से खटखटाती**) किन्नी

सहसा हाथ रुक जाता है। बाहर से ऐसा शब्द सुनायी देता है जैसे पाँव फिसल जाने से किसीने दरवाज़े का सहारा लेकर अपने को बचाया हो।

पुरुष ४ : (**बाहर से दरवाज़े की तरफ़ बढ़ता**) यह कौन फिसला है ड्योढ़ी में !

लड़का : (**उससे आगे जाता**) डैडी ही होंगे। उतरकर चले आये होंगे ऐसे ही। (**दरवाज़े से निकलता**) आराम से डैडी, आराम से...।

पुरुष ४ : (**एक नज़र स्त्री पर डालकर दरवाज़े से निकलता**) सँभलकर महेन्द्रनाथ, सँभलकर...।

प्रकाश खण्डित होकर स्त्री और बड़ी लड़की

तक सीमित रह जाता है। स्त्री स्थिर आँखों से बाहर की तरफ़ देखती आहिस्ता से कुरसी पर बैठ जाती है। बड़ी लड़की एक बार उसकी तरफ़ देखती है, फिर बाहर की तरफ़। हल्का मातमी संगीत उभरता है जिसके साथ उन दोनों पर भी प्रकाश मद्धिम पड़ने लगता है। तभी, लगभग अँधेरे में, लड़के की बाँह थामे पुरुष १ की धुँधली आकृति अन्दर आती दिखायी देती है।

लड़का : (जैसे बैठे गले से) देखकर डैडी, देखकर...।

उन दोनों के आगे बढ़ने के साथ संगीत अधिक स्पष्ट और अँधेरा अधिक गहरा होता जाता है।